जैनहितैषी

मासिकपत्र।

आठवाँ भाग।

सम्पादक—

श्रीनाथूराम प्रेमी।

प्रकाशक—

श्रीजैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय

हीराबाग, पोष्ट गिरगांव—बम्बई

२४३८.

Printed by G. N. Kulkarni at his Karnatak Press, No. 7 Girgaon Back Road, Bombay and Published by Nathuram Premi, Proprietor.

विषयानुक्रमणिका।

१ आख्यायिकायें।

२ ऐतिहासिक विषय।

३ कविता।

४ जीवनचरित।

५ फुटकर विषय।

६ मनोरंजक।

७ वैज्ञानिक और धार्मिक।

८ साहित्य-विषय।

९. सामाजिक विषय।

Reg. B. N. 719.

ॐ

जैनहितैषी

जैनियोंके साहित्य, इतिहास, समाज और
धर्मसम्बन्धी लेखोंसे विभूषित

मासिकपत्र।

सम्पादक और प्रकाशक—श्रीनाथूराम प्रेमी।

आठवाँ भाग। | कार्त्तिक श्री वीर नि० संवत् २४३८ | प्रथमांक

विषयसूची।

Printed by G. N. Kulkarni at his Karnatak Press, No. 7,
Girgaon Back Road, Bombay. for the Proprietors.

जैनहितैषीके नियम।

१. जैनहितैषीका वार्षिक मूल्य डांकखर्च सहित १॥) पेशगी है।

२. प्रतिवर्ष अच्छे २ ग्रन्थ उपहारमें दिये जाते हैं और उनके छोटे बड़ेपनके अनुसार कुछ उपहारी खर्च अधिक भी लिया जाता है। इस सालका उपहारी खर्च ॥) है। कुल मूल्य उपहारी खर्चसहित २) है

३. इसके ग्राहक सालके शुरूहीसे बनाये जाते हैं, 'बीचमें नहीं बीचमें ग्राहक बननेवालोंको पिछले सब अंक शुरू सालसे मंगाना पड़ेंगे, साल दिवालीसे शुरू होती है।

४. जिस साल जो ग्रन्थ उपहारके लिये नियत होगा वही दिया जायगा। उसके बदले दूसरा कोई ग्रन्थ नहीं दिया जायगा।

५. प्राप्त अंकसे पहिलेका अंक यदि न मिला होगा, तो भेज दिया जायगा। दो दो महिने बाद लिखने वालोंको पहिलेके अंक फी अंक दो आना मूल्यसे भेजे जावेंगे।

६. बैरंग पत्र नहीं लिये जाते। उत्तरके लिये टिकट भेजना चाहिये।

७. बदलेके पत्र, समालोचनाकी पुस्तकें, लेख वगैरह **"सम्पादक, जैनहितैषी, पो० गिरगांव-बम्बई"** के पतेसे भेजना चाहिये।

८. प्रबंध सम्बंधी सब बातोंका पत्रव्यवहार मैनेजर, **जैनग्रंथरत्नाकरकार्यालय, पो० गिरगांव, बम्बईसे** करना चाहिये।

हम बम्बईके नये सहयोगी 'स्याद्वादीका, सादर स्वागत करते हैं, और अपने पाठकोंसे उसको आश्रय देनेकी भी सिफारिश करते हैं। साथ ही गर्भस्था सहयोगिनी जैनरत्नमालाके अवतारकी प्रतिक्षा करते हैं।

नमः सिद्धेभ्यः

जैनहितैषी.

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम् ।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥ १ ॥

आठवाँ भाग] कार्तिक श्रीवीर नि० सं० २४३८ [प्रथमांक ।

आकारनिरूपण ।

[स्वर्गीय गांधी वीरचन्द राघवजी, बी. ए., एम. आर. ए. एस. के वाशिंगटन-अमेरिकामें दिये हुए एक व्याख्यानका अनुवाद ।]

इस व्याख्यानके उदाहरणीय भागको लेनेके पहिले मैं 'आकार-विज्ञान' पर कुछ कहना चाहता हूं। पाश्चात्य विद्वानोंका सामान्य विचार आकार और कहावतोंके सम्बन्धमें यह है कि, इनकी जड़ मनुष्यके मनकी प्राथमिक अवस्थाको प्रगट करती है। उनका विचार है कि, जिस समय मनुष्यकी उत्पत्ति हुई, उस समय उनका विचार बच्चोंके समान था। इस कारण उन्होंने पहिले तो अपने विचारोंको चित्रों (तसवीरों) के द्वारा प्रगट किये और फिर पीछेसे उन्हें भावरूपमें जाहिर किये। परन्तु उनका यह कथन वास्तवमें कोई असली बुनियाद नहीं रखता। क्योंकि जबतक अपने मनमें पूर्णभाव न बना लिया जाय, तबतक कोई उसका चित्र नहीं बना सकता है। इसलिये पहिले विचार उत्पन्न होते हैं, पीछे उन विचारोंको चित्रों तथा आकारोंसे समझाते हैं।

आकारके प्रयोग करनेके कारण हैं। देखो, ऊंचे विचार या गहरे विज्ञानको साधारण वाक्योंमें क्यों नहीं समझा देते? मेरी समझमें इसके चार कारण हैं, एक तो यह है कि, बहुतसे तत्त्व ऐसे गूढ़ होते हैं कि, उन्हें हर एकके साम्हने यों ही नहीं फेंक देना चाहिये। मोती कहीं सुअरके आगे फेंके जाते हैं? बहुतसे मनुष्य हैं, जो गूढ़ तत्त्वोंके गुणोंको नहीं समझते हैं। इस कारण उन्हें आकारमें प्रगट करना चाहिये। बस, छुपाना पहिला कारण है। दूसरा कारण यह है कि, यदि वे सामान्य भाषामें कहे जावें, तो सबको उनका पता लग जाय, और बहुत लोग उन्हें दूसरोंको तथा अपने आपको पीड़ा देनेके काममें ले आवें। इस तरह रक्षण दूसरा कारण है। तीसरा कारण उनको नित्य वा अमर कर देना है। यदि कोई बात मामूली भाषामें प्रगट की जाय, तो संभव है कि कुछ समयके पश्चात् हम उसे भूल जावें। परन्तु यदि उसी बातको चित्रद्वारा प्रगट करें, तो हम उसको अधिक समय तक याद रख सकते हैं। चौथा कारण यह है कि आकारसे जो असर होता है, वह मामूली भाषाके असरसे अधिक बलिष्ठ होता है।

आकारोंका प्रयोग सब ही प्राचीन जातियोंने किया है। रूम मिश्र यूनानवालोंने भी इनको काममें लिया है। हिन्दू, पारसी और मिश्रवाले तो इन आकार प्रयोगोंके लिये विशेषतासे प्रसिद्ध रहे हैं। रौसीक्रूसी, मैसनवाले और गुप्त सभाओंके सदस्य इनको काममें लाते थे। परन्तु पीछेसे वे उनके असली भावार्थको भूल गये।

हिन्दूलोग प्राचीन समयसे ॐ का प्रयोग कर रहे हैं जिसका कि अर्थ अब उत्पादक, रक्षक और नाशक तत्त्व लगाया जाता है।

यह भी ख्याल है कि, इस चिन्हका उच्चारण मनुष्यकी गुप्त शक्तियोंपर एक बहुत बड़ा तांत्रिक असर रखता था। परन्तु हिन्दूलोग ॐके असली मतलबको भूल गये हैं। मेरी जैनजाति इस चिन्हके वास्तविक अर्थकी अब भी रक्षा कर रही है। इसी प्रकार स्वस्तिकको भी हमारे प्राचीन तत्त्वज्ञानके भावार्थ समझानेवाले पश्चिमी भाई नहीं समझे और उन्होंने उसका उलटा अर्थ लगा दिया। वास्तवमें इस आकारका विचार बहुत ऊंचे दर्जेका था। परन्तु पीछेसे लोगोंने यह समझा कि, वह क्रॉस अर्थात् स्वस्तिक केवल पुरुष और स्त्रीकी जननेन्द्रियके मिलानको प्रगट करता है। जब हम इस शारीरिक संसारमें हैं और हमारी इच्छाएं भी पुद्गलकी ओर हैं, तो हम समझते हैं कि, इन इन्द्रियोंका मिलान अपनी उन्नतिके लिये आवश्यक है। परन्तु ऊंचे स्थानपर आत्मा लिंगरहित है। इस कारण जो शारीरिक संसारसे ऊंचा जाना चाहते हैं, उनको लिंगविचाररहित होना चाहिये।

मैं अब उदाहरणके द्वारा जैन स्वस्तिकके भावको बतलाता हूं।
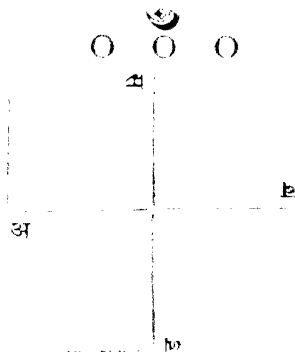
इसमें अ ब और स ड ये दो लकीरें विना किसी और आकारके यूनानी क्रॉस बनाती हैं। हम इनमें चार लकीरें और मिलाते

हैं जैसा कि ऊपरके चित्रमें दिखलाया गया है। इनके ऊपर तीन वृत्ताकार और हैं और सबसे ऊपर आधे चन्द्रमाका आकार है जिसके कि बीचमें एक और वृत्त है। इस तरह हमारा स्वस्तिक पूरा होता है।

यदि कोई कथन अधूरा किया जाय तो उसका अर्थ उलटा लग जाता है। दो पंक्तियोंका एक श्लोक था, जिसमें दूसरी पंक्तिका अर्थ पहिलीसे मिला हुआ था। उक्त दोनों पंक्तियां एक साथ पढ़नी चाहिये थी, परन्तु ब्राह्मणोंने जो किसी समय जैनियोंसे शत्रुता रखते थे केवल दूसरी पंक्तिको* लेकर यह अर्थ लगाया कि- "यदि मनुष्यको हाथीसे कुचल जानेका डर हो, तो भी जैनमन्दिरमें न जावे।" इससे यह अभिप्राय प्रगट किया गया कि, जैनमंदिर ऐसा बुरा स्थान है कि, वहां अपनी रक्षाके लिये भी नहीं जाना चाहिये। परन्तु यदि इस दूसरी पंक्तिके साथ पहिली पंक्तिको भी मिला लो, तो उसका अर्थ बदल जाता है। दोनों पंक्तियोंका अर्थात् समग्र श्लोकका यह अर्थ हो जाता है कि, यदि कोई जीवहत्या करके आया हो, या वेश्याके घरसे अथवा और किसी पापस्थानसे आया हो, या मदिरा पीकर आया हो तो उसे जैनमन्दिरमें नहीं जाना चाहिये; चाहे उस समय उसपर हाथी चढ़ा आता हो। स्वस्तिककी बात भी ठीक ऐसी ही है। यदि तुम केवल क्रॉस (आरपारकी लकीरें) या पासकी लकीरें लोगे, तो पूरा अर्थ नहीं निकल सकेगा। परन्तु यदि तीन वृत्त और अर्द्धचन्द्र मिला लिया जाय, तो सारा अर्थ तुम्हारे साम्हने है। अर्थ यह है—

जीवकी इस संसारमें चार अवस्थाएं हैं, जिनमें पहिली नरक अवस्था है। इस अवस्थासे उन्नति पाकर जीव तिर्यंच अवस्थाको

* हस्तिना ताड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैनमन्दिरम्।

प्राप्त करता है जो कि मनुष्य अवस्थासे नीचे दर्जेकी है । फिर तीसरी मनुष्य अवस्थाको पाता है । इससे आगे चौथी देवलोक की अवस्था है । ये सब अवस्थाएं पुद्गल और जीवके भिन्न २ प्रकारके मिलावसे होती हैं । आत्मिक लोक वह है, जहां कि जीव पौद्गलिक बंधसे मुक्त होता है । उस लोकमें पहुंचनेके लिये तीन रत्नोंके पानेका यत्न करना चाहिये । ये तीन रत्न (तीन वृत्त) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र हैं । यदि ये प्राप्त हो गये, तो समझ लो कि, तुम्हारा मार्ग ठीक है। नहीं तो तुम्हारे लिये कोई निश्चित मार्ग नहीं है । तुम ऐसे संसाररूपी समुद्रमें डोलते हो, जिसमें इस बातका पता नहीं पड़ सकता है कि, किधरको जावें । यदि ये रत्न तुम्हारे पास हैं, तो तुम्हारी बुनियाद ठीक है । अर्थात् यदि तुम्हें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी प्राप्ति हो गई है, तो तुम उन्नतिके शिखरपर बराबर ऊंचे ऊंचे चढ़ते चले जाओगे, यहां तक कि मोक्षको पा जाओगे । मोक्षप्राप्तिके आरंभको चन्द्राकारसे प्रगट किया है । क्यों कि बढ़ते हुए चन्द्रमाकी यह वह पहिली अवस्था है, जिससे वह आगे अधिक २ बढ़ता जाता है । जब जीव इस अवस्थाको पहुंच जाता है, तब वह केवलज्ञानी होता है । इस तरह जैनी अपने स्वस्तिकका उस अर्थसे कोई सम्बन्ध नहीं बतलाते हैं, जिसमें पुरुषस्त्रीकी इन्द्रियके मिलानका तथा पुरुष और स्त्रीकी जननेन्द्रियकी पूजाका विचार है; जिसका आधार लिंग है, और इस पौद्गलिक लोकमें भी जो सबसे नीचेका विचार है और इस कारण जो हमको पुरुष और स्त्रीकी अवस्थासे बढ़कर अवस्था-पर कभी नहीं पहुंचा सकता है ।

हम जब मंदिर जाते हैं, तब प्रतिदिन प्रातःकाल स्वस्तिक बनाते हैं । इसके बनानेका मन्तव्य यह है कि, यह हमको उस बड़े तत्व-

का स्मरण करावे कि, संसारभ्रमणसे छूटनेके लिये तीन रत्नोंकी प्राप्ति करना चाहिए। इन रत्नोंकी प्राप्ति होनेपर इष्ट स्थान मिल सकता है। इन आकारोंसे हमारे विचार पक्के हो जाते हैं।

आरपारवाली दो लकीरें जीव और पुद्गलको दिखलाती हैं। अर्द्धचन्द्रके बीचमें जो वृत्त है, वह मोक्षावस्थाको प्रगट करता है, जब कि पुद्गल उसके साथ नहीं रहता।

स्मिथसन वालोंकी संस्था मैंने अभी देखी है और वहां कई क्रॉसों को भी देखा है। यह स्वस्तिक कहलाता है। इसका शब्दार्थ 'भलाभाग्य' है। डाक्टर **विलसनने** मुझे बतलाया था कि, इनमेंसे बहुतसे जो मैंने देखे हैं, वे अमेरिकाकी दक्षिणी रियासतोंमें मिले हैं। ये चिह्न मिट्टीके वर्तनों और प्रत्येक दिन काममें आनेवाली वस्तुओंपर बने हुए मिले हैं। बनानेवाले समझते थे कि, इससे हमारा 'भला भाग्य' होगा। भारतवर्षमें भी भाग्यवान् होनेके लिये अपने वर्तनोंपर बहुतसे लोग ऐसा आकार बना लेते हैं।

और भी अनेक चिह्न हैं, जिन्हें जैनी काममें लाते हैं। उनमेंसे एक जनेऊ (यज्ञोपवीत) का भी है। इसे ब्राम्हण और जैनी दोनों काममें लाते हैं। परन्तु इसके विषयमें अभिप्राय दोनोंके जुदे २ हैं। ब्राह्मण जनेऊ तत्त्वको जड़वादसम्मतिसे बयान करते हैं। उनका कथन है कि, इसके तीन धागे **सतोगुण रजोगुण** और **तमोगुणको** प्रगट करते हैं जो कि आदिके पुद्गलके तीन गुण हैं। जैनी कहते हैं कि, ये तीन सूत तीर्थंकरोंके तीन समूहोंको प्रगट करते हैं जो कि भूत, वर्तमान और भविष्यकालके हैं। तीर्थंकर तो अनन्त हुए हैं, परन्तु उनमेंसे हम यहां तीन ही लेते हैं। अतीत अनागतकालमें चौवीस २ तीर्थंकर हुए हैं और आगामीकालमें चौवीस

होंगे। जनेऊको हम कंधेपर रखते हैं। इसका आशय यह है कि, हम उक्त तीर्थंकरोंके कहे हुए वाक्योंको अपने कंधेपर विचारके लिये रखते हैं और उनपर नित्य अमल करते हैं। यह इस बातका सूचक है कि, हमारे तीर्थंकरोंने जो कुछ उपदेश दिया है, उसको मानने और उसपर अमल करनेके लिये हम तयार हैं। *

जैनियोंका एक और आकार मधुबिन्दुकका है। भारतवर्षके प्रायः प्रत्येक भागके जैनमन्दिरोंमें उपदेशके लिये बड़े २ कमरे रहते हैं। और उन कमरोंकी दीवालोंपर बहुतसी तसबीरें रहती हैं। मैं जब आठ वर्षका बालक था, तब अपने पिताके साथ जैन-साधुओंका उपदेश सुननेके लिये जाया करता था। एक दिन हम वहां आधा घंटा पहिले पहुंच गये, इसलिये यथेष्ट समय मिल जानेसे मैंने दीवारोंकी तसवीरोंपर बड़े ध्यान और शौकसे नजर डाली। एक तसवीर जिसने मेरे ध्यानको विशेषरूपसे आकर्षित किया, इस प्रकारकी थी — " एक आदमी कुएके बीचमें उसके पास ही ऊगे हुए वृक्षकी शाखासे लटक रहा है। कुएके किनारे एक बड़ा हाथी खड़ा हुआ है, जो लटके हुए आदमीको नहीं पा सकनेके कारण अपनी सूंड़से वृक्षको इसलिये हिला रहा है कि, उसे कुएमें पटक दे। कुएकी दीवारोंपर नीचेकी ओर चार सांप, लटके हुए मनुष्यको काटनेकी गरजसे ऊपरको फण कर रहे हैं। नीचे तलीमें एक और बड़ा सांप उस मनुष्यकी ओर मुंह फैलाए हुए है। मनुष्य जिस शाखाको पकड़कर लटक रहा है, उसे एक काला

* दिगम्बर सम्प्रदायके ग्रन्थकारोंने जनेऊको सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्ररूप रत्नत्रयका चिह्न माना है। किसी आचार्यने उपर्युक्त प्रकारसे तीन चौवीसियोंको प्रगट करनेवाला माना है या नहीं, हम कह नहीं सकते।

सम्पादक।

और एक सफेद चूहा काट रहा है। वृक्षकी एक ऊंची शाखापर एक शहदका छत्ता है, जिसपर बहुतसी मधुमक्खियां झूम रही हैं। हाथीके इस प्रयत्नसे कि, यह मनुष्य वृक्षको हिलानेसे छूटकर गिर पड़े शहदकी बूंद टपककर लटके हुए मनुष्यके मुंहमें पड़ती है। एक साधु[1] श्वेत वस्त्र धारण किए हुए हाथीके साम्हने कुएकी दूसरी तरफ खड़ा है और उस मनुष्यको सब डरोंसे छुटाकर सहायता देना चाहता है।" यह तो मैं समझ गया था कि, यह मनुष्य कितनी पीड़ामें है। परन्तु मुझे विश्वास था कि, इसका कोई और ही गूढ़ अर्थ होगा। बहुत देरतक तसबीरकी तरफ देखकर मैंने अपने पिताजीसे पूछा कि, इसका क्या अभिप्राय है? उन्होंने कहा, बेटा, यदि मैं बतलाऊं तो क्या तुम समझ जाओगे? अच्छा सुनो, " एक समय कई एक मनुष्य एक बड़े जंगलमें जहां कि, भयंकर जानवर थे, जा रहे थे। जब वे बीच जंगलमें पहुंचे, तब उनपर बहुतसे डांकुओंने हमला किया। निदान वे अपनी जान बचाकर भागे। यह आदमी भी जिसे कि तुम कुएमें लटका देख रहे हो, उनमेंसे एक है। यह जंगलमें भूल गया था, रास्ता नहीं पाता था। उसी समय एक हाथीने इसका पीछा किया। इसने सोचा कि, यदि शीघ्र रक्षाके स्थानमें नहीं पहुंचा, तो मारा जाऊंगा। यह दौड़ा हुआ जा रहा था कि, थोड़ी दूर पर एक कुआ दिखलाई दिया। बचनेका कोई उपाय न देखकर यह उसमें कूद पड़ा और उस वृक्षकी टहनीको पकड़के लटक रहा, जो कुएके ऊपर छाया हुआ था और जिसके पाये कुएमें लटक रहे थे। इतनेमें ही वहां एक साधु आ पहुंचा और उसने मौतसे बचनेका

१ ब्रह्मविलासमें साधुकी जगह एक विद्याधरका अपनी स्त्रीसहित आकाशमार्गसे आना लिखा है परन्तु धर्मपरीक्षामें साधुपुरुष ही बतलाया है। सम्पादक

उपाय बतलाना चाहा। परन्तु इस लटके हुए मनुष्यने कह दिया कि, मैं आरामसे हूं। मुझे किसी प्रकारकी सहायताकी आवश्यकता नहीं है। हाथी मेरे पास आ नहीं सकता है, मैं शाखाको अच्छी तरहसे पकड़े हुए हूं, इसलिये गिर नहीं सकता हूं और ऊपरसे मधुकी बूंदे मेरे मुंहमें टपक रही है, जो कि बहुत ही मीठी हैं। मैं बहुत ही आनन्दमें हूं। मुझे यह मिठास चख लेने दो। साधुने कहा, जिस शाखाको तू पकड़े हुए है, उसे दो चूहे काट रहे हैं, और कुएमें तेरे नीचे एक बड़ा भारी सांप है, जो तुझे खानेके लिये उद्यत हो रहा है। परन्तु आदमीने जिद्द की और यह कहा कि, इन चूहोंको वृक्षकी शाखा काटनेमें बड़ा समय लगेगा। ऐसी छोटी २ बातोंसे मैं नहीं डरता। मैं तो मजेसे मधु (शहद) का स्वाद लूंगा। " मैं इतना बता देनेसे ही सन्तुष्ट नहीं हुआ। मैंने अपने पिताजीसे कहा कि, इस कौतुकमें कोई गूढ़ तत्व अवश्य है। उन्होंने जब देखा कि, मेरी हार्दिक इच्छा जाननेकी है, तब कहा कि, " यह चित्र एक साङ्केतिक आकार है। यह बड़ा जंगल तो संसार है। आदमी जो कुएमें लटक रहा है, वह साधारण मनुष्य (जीव) है। कुआ और सारी डरकी वस्तुएं उस आदमीके जीवनको प्रगट करती हैं। हाथी उसके पीछे मौत है। सर्प कुएकी तलीमें वह नीच जीवन है, जिसे वे लोग प्राप्त करते हैं जो इस बातका यत्न नहीं करते कि हम बच जावें, जो अपनी शक्तिको व्यर्थ ही पापमें गमाते हैं, न उन्नतिकी इच्छा करते हैं और न यत्न करते हैं। और इस तरह जो केवल वर्तमान जीवनका ख्याल करते हैं। दीवारों परके सांप क्रोध मान माया लोभके आकार हैं। वृक्षका तना हमारे इस सांसारिक जीवनके थोड़ेसे समयको (आयुको) प्रगट

करता है । दो चूहे काले और सफेद समयको बतलाते हैं (हमारा एक मास शुक्लपक्ष और कृष्णपक्षमें विभाजित है) जो कि हमारी सांसारिक आयुको पूरा करता है । मक्खियां जो छत्तेमें हैं, इन्द्रियोंको प्रगट करती हैं । मधुबिन्दु विषयसुख हैं और साधु धर्म है * इसतरह सारे आकारका अभिप्राय यह है कि, यह सांसारिक जीव समझता है कि, मैं सांसारिक जीवनसे शीघ्र अलग नहीं होऊंगा । यह इन्द्रियोंके सुख भोगकर संतुष्ट होता है, असली धर्मको अंगीकार नहीं करता है । क्योंकि इसे क्रोध मान माया लोभरूप चार सांपोंने घेर रक्खा है । (अपूर्ण)

चेतनदास, बी. ए., एस. सी.,

ललितपुर ।

विद्वद्रत्नमाला ।

(९)

भगवज्जिनसेन और गुणभद्राचार्य ।

[गतवर्षके १०-११ अंकसे आगे]

आदिपुराण जिनसेनस्वामीकी सबसे अन्तिम रचना है। यह पार्श्वाभ्युदयसे लगभग ३० वर्ष पीछे और वर्द्धमानपुराणसे लगभग ६० वर्ष पीछे जब कि कविकी अवस्था ९० वर्षसे ऊपर होगी, रचा गया है । इसीसे इसमें जिनसेनस्वामीके सारे जीवनके अध्ययनका और विचारोंका सार संग्रह हो गया है । इसमें कविके कवि-

* ब्रह्मविलासमें बड़े अजगरको निगोद, चार सांपोंको चार गतियां, कुआको भ्रम, विद्याधरको गुरु और मक्खियोंको रोग बतलाया है । पर धर्मपरीक्षामें प्रायः ऐसा ही है । **सम्पादक.**

त्वका परिपाक हुआ दिखलाई देता है। इतनी आयुके रचे हुए ग्रन्थ बहुत कम विद्वानोंके पाये जाते हैं और जो पाये जाते हैं, वे अनुभूत और सिद्ध सिद्धान्तोंके आकर होते हैं। आदिपुराणके स्वाध्यायसे जैनधर्मके गूढ़से गूढ़ रहस्योंका ज्ञान होता है और साथ ही उच्चकोटिके काव्यका सुमधुर सुस्निग्ध आस्वाद मिलता है। मेरे विचारसे इसकी कवितामें जो सुन्दरता, कोमलता और स्वाभाविकता है, वह पार्श्वाभ्युदयमें भी नहीं है।

आदिपुराणके अन्तके ५ सर्ग गुणभद्रस्वामीके बनाये हुए हैं, ऐसा पूर्वमें कहा जा चुका है। ये पांच सर्ग आदिपुराणमें शामिल करनेके सर्वथा योग्य हुए हैं। अपने पूज्य गुरुकी कविताकी समता करनेमें गुणभद्रस्वामीने वैसी ही सफलता प्राप्त की है, जैसी कि बाणभट्टके पुत्रने अपने पिताकी अधूरी कादम्बरीको पूर्ण करनेमें पाई है। यह कार्य गुणभद्रके सिवाय दूसरेसे शायद ही ऐसा अच्छा होता। यह लेख इच्छासे बहुत अधिक बढ़ गया है, इसलिये गुणभद्रस्वामीका कवित्व कैसा है यह बतलानेके लिये अधिक स्थान न रोक कर हम उस भूमिकाके थोड़ेसे श्लोक ही यहां उद्धृत कर देते हैं, जो कि उन्होंने आदिपुराणका शेष भाग पूर्ण करनेका प्रारंभ करते समय लिखे हैं—

निर्मितोऽस्य पुराणस्य सर्वसारो महात्मभिः।
तच्छेषे यतमानानां प्रसादस्येव नः श्रमः॥ ११॥

अर्थात् इस पुराणका मुख्य सारभाग महात्मा जिनसेन बना चुके हैं। अब उसके शेष भागको पूरा करनेका हमारा परिश्रम वैसा ही है, जैसा एक महलके थोड़ेसे बाकी रहे कार्यको पूरा करना।

इक्षोरिवास्य पूर्वार्द्धमेवाभावि रसावहम्।
यथा तथाऽस्तु निष्पत्तिरिति प्रारभ्यते मया॥ १४॥

जिस तरह गन्नेका पूर्वभाग (नीचेका हिस्सा) अतिशय रसीला होता है, उसी प्रकारसे इस आदिपुराणका पूर्वभाग हुआ है। अब आगेके भागमें गन्नेके ऊपरके भाग समान जैसे तैसे रसकी प्राप्ति होगी, ऐसा समझकर मैं उसे प्रारंभ करता हूं। अभिप्राय यह कि, वह पूर्वार्धके समान सरस नहीं हो सकेगा। कैसी सुन्दर उपमा है।

अथवाऽग्रं भवेदस्य विरसं नेति निश्चयः।
धर्माग्रं ननु केनापि नादर्शि विरसं क्वचित् ॥१६॥

अथवा ऐसा भी निश्चय होता है कि, इसका अग्रभाग विरस नहीं होगा। क्योंकि धर्मके अन्तको किसीने कभी विरस होते नहीं देखा है—सरस ही होता है और यह धर्मस्वरूप है।

गुरूणामेव माहात्म्यं यदपि स्वादु मद्वचः।
तरूणां हि स्वभावोऽसौ यत्फलं स्वादु जायते ॥१७॥

यदि मेरे वचन सरस वा सुस्वादु हों, तो इसमें मेरे गुरुमहाराजका ही माहात्म्य समझना चाहिये। क्योंकि यह वृक्षोंका ही स्वभाव है—उन्हींकी खूबी है, जो उनके फल मीठे होते हैं।

निर्यान्ति हृदयाद्वाचो हृदि मे गुरवः स्थिताः।
ते तत्र संस्करिष्यन्ते तन्न मेऽत्र परिश्रमः ॥१८॥

हृदयसे वाणीकी उत्पत्ति होती है और हृदयमें मेरे गुरुमहाराज विराजमान हैं. सो वे वहांपर बैठे हुए संस्कार करेंगे ही (रचना करेंगे ही) इसलिये मुझे इस शेष भागके रचनेमें परिश्रम नहीं करना पड़ेगा।

मतिर्मे केवलं सूते कृतिं राज्ञीव तत्सुताम्।
धियस्तां वर्तयिष्यन्ति धात्रीकल्पाः कवीशिनाम् ॥ ३३ ॥

रानी जैसे अपनी पुत्रीको केवल उत्पन्न करती है—पालती नहीं है, उसी प्रकारसे मेरी बुद्धि इस काव्यरूपी कृतिको केवल

उत्पन्न करेगी। परन्तु उसका पालनपोषण दाईके समान कवीश्वरोंकी बुद्धि ही करेगी।

सत्कवेरर्जुनस्येव शराः शब्दास्तु योजिताः।
कर्णं दुस्संस्कृतं प्राप्य तुदन्ति हृदयं भृशम् ॥३९॥

अर्जुनके छोड़े हुए बाण जिस तरह दुस्संस्कृत अर्थात् **दुस्सा**सनके बहकाये हुए **कर्ण**के हृदयमें अतिशय पीड़ा उत्पन्न करते थे, उसी प्रकारसे सत्कविके योजित किये हुए शब्द दुस्संस्कृत अर्थात् बुरे संस्कारोंवाले पुरुषोंके कानोंके समीप पहुंचकर उनके हृदयमें चूभते हैं—उन्हें बुरे लगते हैं।

पुराणं मार्गमासाद्य जिनसेनानुगा ध्रुवम्।
भवाब्धेः पारमिच्छन्ति पुराणस्य किमुच्यते ॥ ४० ॥

भगवान् जिनसेनके अनुयायी उनके पुराणके मार्गके आश्रयसे संसाररूपी समुद्रके भी पार पहुंचनेकी इच्छा करते हैं, फिर मेरे लिये इस पुराणसागरका पार करना क्या कठिन है? अर्थात् यह तो सहज ही पूरा हो जायगा।

गुणभद्रस्वामीके बनाये हुए अभीतक तीन ग्रन्थ प्राप्य हैं, एक आदिपुराणका **शेषभाग** तथा **उत्तरपुराण**, दूसरा **आत्मानुशासन** और तीसरा **जिनदत्त चरित्र**। इनमेंसे आदिपुराणके शेष भागके विषयमें तो ऊपर कहा जा चुका है। उत्तरपुराणका अभीतक मैंने स्वाध्याय नहीं किया है, इसलिये उसकी विशेष आलोचना तो नहीं की जा सकती है, तो भी आदिपुराणके शेषभागके समान उसकी कविता भी उच्चश्रेणीकी होगी। **तंजौर**के श्रीयुक्त **कुप्पूस्वामीशास्त्रीने जीवंधरचरित्रको** उत्तरपुराणसे जुदा निकालकर छपवाया है, उसे विद्वानोंने बहुत पसन्द किया है, इससे भी उत्तर-

पुराणके कवित्वकी उत्तमताका अनुमान होता है। उसमें तेईस तीर्थंकरोंका और उनके तीर्थमें होनेवाले शलाकापुरुषोंका चरित्र है। जितनी संक्षेपतासे यह ग्रन्थ पूर्ण किया गया है, यदि उतनी संक्षेपतासे नहीं किया जाता, आदिपुराणके समान विस्तारसे रचा जाता तो इससे कई गुना होता। पर जितना है, उतना भी कुछ थोड़ा नहीं है, आठ हजार श्लोकोंमें है।

आत्मानुशासन—यह २७२ पद्योंका छोटासा परन्तु बहुत ही उत्तम ग्रन्थ है। इसकी रचना कब हुई है, इसके जाननेका कोई साधन नहीं है। क्योंकि इसके अन्तमें शिवाय निम्नलिखित श्लोकके जिसमें कि ग्रन्थकर्त्ताका और उसके गुरुका उल्लेख है और कुछ भी नहीं लिखा है—

जिनसेनाचार्य्यपादस्मरणाधीनचेतसाम्।
गुणभद्रभदन्तानां कृतिरात्मानुशासनम्॥

तौ भी ऐसा अनुमान होता है कि, यह महापुराणका शेष भाग पूर्ण करनेके पहिले बनाया गया होगा। क्योंकि इस ग्रन्थकी भाषा टीकाके प्रारंभमें जो कि स्वर्गीय पं० **टोडरमल्लजी**की बनाई हुई है, किसी संस्कृतटीकाके आधारसे लिखा है कि "यह आत्मानुशासन **गुणभद्र**स्वामीने **लोकसेन** मुनिके सम्बोधनके लिये बनाया है।" और उत्तरपुराणकी प्रशस्तिमें **लोकसेन** मुनिको विदितसकलशास्त्र, मुनीश, कवि, अविकलवृत्त आदि विशेषण दिये गये हैं। इससे यह कल्पना हो सकती है कि, उत्तरपुराण बननेके समय यदि लोकसेन 'विदितसकलशास्त्र' थे, तो फिर उसके पश्चात् उन्हें संबोधनकी उतनी आवश्यकता नहीं थी, जितनी कि इस विशेषणके योग्य होनेके पहिले थी। अतएव जबतक और कोई बाधक

प्रमाण न मिले, तब तक यह मान लेना कुछ अनुचित नहा दिखता है कि, आत्मानुशासन उत्तरपुराणके पहिले बना है।

आत्मानुशासन[1] आत्माका शासन करनेके लिये—उसको वशीभूत करनेके लिये न्यायी शासकके समान है। अध्यात्मके प्रेमी इसके अध्ययनसे अभूतपूर्व शान्ति लाभ करते हैं। इसकी रचनाशैली **भर्तृहरिके वैराग्यशतकके** ढंगकी है और उसीके समान प्रभावशालिनी भी है। थोड़ेसे पद्य यहां उद्धृत कर दिये जाते हैं—

हे चन्द्रमः किमिति लाञ्छनवानभूस्त्वं
तद्वान् भवेः किमिति तन्मय एव नाभूः।
किं ज्योत्स्नयामलमलं तव घोषयन्त्या
स्वर्भानुवन्ननु तथा सति नाऽसि लक्ष्यः॥ २४१॥

अर्थात्—हे चन्द्रमा! तू कालिमारूप थोड़ेसे कलंकसे युक्त क्यों हुआ? यदि कलंकवान् ही होना था, तो सर्वथा कलंकमय ही क्यों न हुआ? तेरी इस चांदनीसे जो कि तेरे कलंकको और भी अधिक साफ २ बतला रही है, क्या लाभ है? यदि तू राहुके समान सबका सब काला होता, तो तेरा दोष किसीकी दृष्टिमें तो नहीं आता—तुझे कोई टोकता तो नहीं? ऊंचा पद प्राप्त करके उसमें जो नीचताका कार्य करता है, उसको लक्ष्य करके यह अन्योक्ति कही गई है।

लोकाधिपाः क्षितिभुजो भुवि येन जाता-
स्तस्मिन्विधौ सति हि सर्वजनप्रसिद्धे।
शोच्यं तदेव यदमी स्पृहणीयवीर्या—
स्तेषां बुधाश्च बत किङ्करतां प्रयान्ति॥ ९५॥

---

१ यह ग्रन्थ भाषाटीका सहित छप चुका है। सनातनजैनग्रन्थमालाके प्रथम गुच्छकमें मूलमात्र भी छपा है।

जिस लोकप्रसिद्ध धर्मके सेवनसे राजादि पुरुष लोकके स्वामी होते हैं, उसके होते हुए जो बड़े २ पराक्रमी पंडित उन राजाओं-के दास बनते हैं, उनकी दशा बड़ी शोचनीय है—उनपर बड़ा तरस आता है। अभिप्राय यह है कि, ये लोग धर्महीका सेवन क्यों नहीं करते हैं जिसके कि कारण राजादिकोंके सुख प्राप्त होते हैं।

सत्यं वदात्र यदि जन्मनि बन्धुकृत्य-
माप्तं त्वया किमपि बन्धुजनाद्धितार्थम्।
एतावदेव परमस्ति मृतस्य पश्चात्—
संभूय कायमहितं तव भस्मयन्ति॥८३॥

हे भाई! यदि तूने अपने बन्धुजनोंसे इस जन्ममें कुछ बन्धुता-रूप लाभ उठाया हो तो, सच सच बता दे। हमको तो इनका इतना ही उपकार भासता है कि, मरनेके पीछे ये सब इकट्ठे होकर तेरे अपकार करनेवाले शरीरको जला देते हैं।

प्रियामनुभवत्स्वयं भवति कातरं केवलं
परेष्वनुभवत्सु तां विषयिषु स्फुटं ल्हादते।
मनो ननु नपुंसकं त्विति न शब्दतश्चार्थतः
सुधीः कथमनेन सन्नुभयथा पुमान् जीयते॥१३८॥

मन केवल शब्दसे ही नपुंसक नहीं है किन्तु अर्थसे भी है। क्योंकि यह स्वयं तो स्त्रीको भोग नहीं सकता है। केवल कायर होता है और दूसरोंको अर्थात् स्पर्शादि इन्द्रियोंको भोगते देखकर प्रसन्न होता है। तब ऐसा नपुंसक मन सुधी (बुद्धिमान्) पुरुषको जो कि शब्दसे और अर्थसे सर्वथा पुल्लिंग है, कैसे जीत सकता है। अभिप्राय यह कि, मनको बलवान् समझकर उसके जीतनेका उपाय करनेमें त्रुटि नहीं करनी चाहिये।

ज्ञानमेव फलं ज्ञाने ननु श्लाघ्यमनश्वरम् ।
अहो मोहस्य माहात्म्यमन्यदप्यत्र मृग्यते ॥ १७६ ॥

ज्ञानका फल ज्ञानही है, जो कि सर्वथा प्रशंसा योग्य और अविनाशी है । इसको छोड़ जो उससे दूसरे सांसारिक फलोंकी इच्छा की जाती है, सो अवश्यही मोहका वा मूर्खताका माहात्म्य है । अभिप्राय यह कि, ज्ञान होनेसे निराकुलतारूप जो सुख होता है, उसे छोड़कर लोग विषयसुखोंको टटोलते हैं, सो मूर्खता है ।

जिनदत्त चरित्र—यह ग्रन्थ अभी तक देखनेमें नहीं आया, परन्तु इसका एक भाषा पद्यानुवाद **पं० बख्तावरमल रतनलालका** बनाया हुआ **मुंशी अमनसिंहजीने** छपवाया था । एक तो अनुवादक महाशय स्वयं संस्कृतज्ञ नहीं थे किसी दूसरे विद्वान्से अर्थ पूछकर उन्होंने अनुवाद किया था । दूसरे कविताशक्ति भी उनमें विशेष नहीं जान पड़ती है । इसका उक्त अनुवाद परसे मूल ग्रंथके कवित्वका अनुमान नहीं हो सकता है । दूसरे यह भी सन्देह है कि, गुणभद्र नामके एक और आचार्य होगये हैं, यह उनका तो नहीं है । इन कारणोंसे इस ग्रन्थके विषयमें विशेष कुछ नहीं कहा जा सकता है । यह ग्रन्थ नव सर्गात्मक है और इसमें **जिनदत्त** नामक एक शेठकी कथा है ।

एक **भावसंग्रह** नामका ग्रन्थ भी गुणभद्राचार्यका बनाया हुआ कहा जाता है, परन्तु अभी तक हमें उसके दर्शन नहीं हुए हैं ।

श्रीयुक्त **तात्या नेमिनाथ पांगलने** मराठीके '**विविधज्ञान-विस्तार**' नामक मासिकपत्रमें गुणभद्रस्वामीके विषयमें एक दन्तकथाका उल्लेख किया है । यद्यपि ठीक ऐसीही कथा सुप्रसिद्ध कवि

बाणभट्टके विषयमें भी सुनी जाती है और विद्वानोंमें उसका प्रचार भी विशेषतासे है, इससे उसके सत्य होनेमें भी सन्देह है; तो भी हम पाठकोंके जाननेके लिये यहां उसे उद्धृत कर देते हैं—

"जिस समय जिनसेनस्वामीको ज्ञात हुआ कि, अब मेरा अन्तसमय निकट है और महापुराणको मैं पूरा नहीं कर सकूंगा, तब उन्होंने इस बातकी चिन्ता की कि, मेरे शिष्योंमें ऐसा कौन है, जो इस ग्रन्थको योग्यताके साथ पूर्ण कर देगा। और अपने दो शिष्योंको जो कि सबसे अधिक विद्वान् समझे जाते थे, पास बुलाकर कहा कि, यह जो साम्हने सूखावृक्ष खड़ा है, इसका काव्यवाणीमें वर्णन करो। तब उन दोनोंमेंसे पहिलेने कहा—

"शुष्कं काष्ठं तिष्ठत्यग्रे।"

फिर दूसरेने कहा—

"नीरसतरुरिह विलसति पुरतः।"

यह दूसरा और कोई नहीं था, गुणभद्रस्वामी थे। इनके सरस उत्तरको सुनकर जिनसेनस्वामीने इन्हींको योग्य समझा और इन्हें ही आज्ञा दी कि तुम शेष ग्रन्थको पूर्ण करना।"

(शेष आगे।)

---

१ बाणभट्ट जब अपनी अधूरी कादम्बरीको छोड़कर मृत्युशय्यापर पड़े थे, तब उन्होंने भी अपने दो पुत्रोंसे इसी प्रकार पूछा था और ऐसा ही उत्तर पाया था।

विधवाओंका मंगल गान।

"दया करी हमपर भगवान। अब होगा सच्चा कल्यान॥
खड़े हुए बूढोंके कान। सम्मेलन[1] है किया महान॥
बोलो जयजय दयानिधान।
आओ, गावें मंगल गान॥ १॥

चलती थी चिर दिनसे बात। कोई न करता था दृक्पात॥
हित कोई करता था एक। तो होते थे शत्रु अनेक।
लेकिन अब मिल गया विधान।
गाओ सब मिल मंगल गान॥ २॥

जब सुनते 'हा विधवा व्याह'। तब देखी कुछ ऐसी राह॥
ओल्ड[2]—धर्म्मके एडीकाँग[3]। अड़ा धर्म्मकी देते टाँग॥
पर न रही अब खींचाँ तान।
इससे गाओ मंगल गान॥ ३॥

कुछ बूढोंने कर मन्तव्य। सभा एक खोली है भव्य॥
पास[4] हुए हैं जो प्रस्ताव। उनमें गूढ भरे हैं भाव॥
जिनसे अब अपना भी मान।
होगा, गाओ मंगल गान॥ ४॥

खूब चले हैं बूढे चाल। व्याह करें मिल बूढे—बाल॥
लेकिन हमें गये वे भूल। चलो करें उनको अनुकूल॥

---

१ जैनहितैषीके पिछले वर्षके ७–८ वें अंकमें जो 'वृद्ध महासभाका सम्मेलन' नामक लेख प्रकाशित हुआ है, उसको लक्ष्य करके यह कविता लिखी गई है। जिन पाठकोंने उक्त लेख नहीं पढा हो, वे अब अवश्य पढ लेवें। २. प्राचीन। ३. मुसाहिब। ४. स्वीकृत।

होवेगा तब उनको ध्यान ।
गावेंगीं हम मंगलगान ॥ ५ ॥
बाल बधूसे करके ब्याह । उन्हें मिलेगा कौन उछाह ॥
बच्चे क्या जाने व्यवहार । जिनको हुए, हुए दिन चार ॥
चलो खोल दें, उनके कान ।
गा, गाकर सब मंगल गान ॥ ६ ॥
चलो दिलावें उनको याद । नहीं करेंगे, कभी विवाद ॥
उनके ही हितकी है बात । कहो करेंगे, क्यों उत्पात ? ॥
सिर नींचा कर लेंगे मान ।
तब गावें हम मंगल गान ॥ ७ ॥
सचमुच विद्यालय संसार । जिसमें शिक्षाका विस्तार ॥
जो जितना करता अभ्यास । वह उतना पाता आभास ॥
पाया है हमने भी ज्ञान ।
चलो सुनावें मंगल गान ॥ ८ ॥
सम्मेलनके बूढे सभ्य । जिनने पाया ज्ञान अलभ्य ॥
शिक्षित हुए जहां वह लोग । नीच–ऊंच कितने भोग ॥
हुए वहीं हम हैं सज्ञान ।
क्यों न करें फिर मंगलगान ॥ ९ ॥
इसीलिये बूढोंके संग । नाता अपना लगा अभंग ॥
वह सहपाठी निस्सन्देह । आवेगा उनको गत नेह ॥
हंसी–खुशीसे कर सम्मान ।
साथ करेंगे मंगल गान ॥ १० ॥
अगर बचाना चाहो नेशन[१] । तो जल्दीसे डेपूटेशन ॥
भेजो उन बूढोंके पास । जो सम्मेलनके जन खास ॥

---

१ जाति ।

वह सुनकर सब कथा महान ।
गावेंगे मिल मंगल गान ॥ ११ " ॥

पुण्य तीर्थ काशीकी भूमि । छुएं जिसे गंगाकी ऊर्मि ॥
बंगाली टोलेके पास । महिलाओंका जमघट खास ॥
जुड़ा, जहां था है चौगान ।
हुआ वहीं यह मंगल गान ॥ १२ ॥

विदुषी-विधवा आईं अनेक । उनमें थी '**कमला**' भी एक ॥
उसकाही था यह उद्योग । जो आ, दिया सबोंने योग ॥
ऊपर जो कुछ हुआ बयान ।
वह कमलाका मंगल गान ॥ १३ ॥

सुनकर सबने कर स्वीकार । धन्यवादकी, की बौछार ॥
कमलाको ही सभापतित्व । देकर कहा, विचारो तत्त्व ॥
विहँसी कमला गौरववान ।
गाने लगी सुमंगल गान ॥ १४ ॥

हे महिलाओ ! धीरजवान । दिया आपने मुझको मान ॥
है सबका ही यह औदार्य । मुझको सौंपा गुरुतर कार्य ॥
हम सबका रक्षक भगवान ।
करने देगा मंगल गान ॥ १५ ॥

बजीं मन्द ध्वनिसे करताल । कुछ ठहरी कमला तत्काल ॥
कहा, एकसा समय सदैव । रखता नहीं, बदलता दैव ॥
अब सुखका है हुआ विहान ।
दिक गातीं हैं मंगल गान ॥ १६ ॥

नहीं जानते जो आचार । उन पुरुषोंने अत्याचार ॥
करके हम सबका प्रतिबन्ध । तोड़ा है सुखसे सम्बन्ध ॥

आया उनको होश निदान ।
वह भी गाते मंगल गान ॥ १७ ॥

सदा सत्यकी होती जीत। समझ यही हम रहीं विनीत ॥
कभी प्रकृतिका प्रबल प्रवाह । रोक सका नहिं कोई नाह ॥
कहो, कौन फिर वह बलवान ? ।
रोक सके जो मंगल गान ॥ १८ ॥

आखिर हुई वही अब बात । नाश हुआ सारा व्यतिपात ॥
जहां न्यायका रहा प्रकाश । सुख—उन्नतिका वहीं उजास ॥
उड़ा मेलका सदा निशान ।
हुआ बंद नहिं मंगल गान ॥ १९ ॥

आप यहां आई कर प्यार । मैं इसका मानूं आभार ॥
हुआ आपको जो कुछ क्लेश । क्षमा करेंगी, सुन उद्देश ॥
बूढ़ोंने भी छेड़ी तान ।
गाया है कुछ मंगल गान ॥ २० ॥

कुछ थोड़ेसे लोग जवान । बूड़ोंके हकका अवसान ॥
करना चाहें करके द्वन्द । ‘ हो बूढ़ोंकी शादी बंद ’ ॥
इसी लिये कुछ वृद्ध महान ।
तमक उठे कर मंगल गान ॥ २१ ॥

मरी नसोंमें आया जोश । सम्मेलन करके आक्रोश ॥
किया कहां है ? जगह न ज्ञात। हुआ, ‘हितैषी’[1] में है ख्यात॥
भला ‘ हितैशी’ का भगवान ।
करे, गांय हम मंगल गान ॥ २२ ॥

नीति सरोवरमें अवगाह । सिद्ध किया है वृद्धविवाह ॥
तरुणोंको बतला कर डाँट । खूब किये हैं खट्टे दाँत ॥

---

[1] जैनहितैषी, भाग सातवां, अंक ७–८ वां ।

दिये खोजके प्रौढ़ प्रमाण ।
खासा गाया मंगल गान ॥ २३ ॥

पास किये हैं जो प्रस्ताव । उनसे मिला हमें भी दाव ॥
सुनकर प्रस्तावोंका सार । सभी कहें, हैं वृद्ध उदार ॥
ओत प्रोत उसमें है ज्ञान ।
फल जिसका है मंगल गान ॥ २४ ॥

लेकिन उनने की है भूल । पत्ते सींचे तजके मूल ॥
सुकुमारी कन्यासे ब्याह । करके होंगे व्यर्थ तबाह ॥
जब पत्नी होगी नादान ।
तब होगा क्या मंगल गान ॥ २५ ॥

पहिले धन होगा बरबाद । पीछे होगा घर आबाद ॥
सिखलाना होगा व्यवहार । बोल–चाल–आचार–विचार ॥
तोतेको सिखला कर ज्ञान ।
कौन गायगा मंगल गान ? ॥ २६ ॥

अज्ञानी, कर ध्रुवका त्याग । अध्रुवसे करते अनुराग ॥
इससे चलो दिलावें याद । उनका होगा दूर प्रमाद ॥
तब आवेगा उनको ध्यान ।
गावेंगे मिल मंगल गान ॥ २७ ॥

हम करके सेवा भरपूर । उनका क्लेश करेंगी दूर ॥
जरा इशारे पर सब काम । होनेसे होगा आराम ॥
चिन्ताका करके अवसान
वृद्ध गाँयगे मंगल गान ॥ २८ ॥

शुद्ध रहेंगे सब व्यवहार । होगा नाहिं व्यभिचार प्रचार ॥
विधवा होनेका आतंक । छोड़ रहेंगे बेनिश्शंक ॥

बढ़ जावेगा उनका मान ।
अरि गावेंगे मंगल गान ॥ २९ ॥

करना पड़ती सेवा व्यर्थ । खर्च बहुत होता है अर्थ ॥
धोखा देकर सड़ियल माल । मढ देते हैं गले दलाल ॥
पछताते हैं वृद्ध निदान ।
गा सकते नहिं मंगल गान ॥ ३० ॥

अगर हमारी मानें बात । तो सुखकी होगी बरसात ॥
होगा सुभग फसल सन्तान । नेशन[1]को होगा अभिमान ॥
लज्जित होंगे हठी जवान ।
गावेंगी हम मंगल गान ॥ ३१ ॥

जो नेचरका[2] जानें तत्व । वह स्त्रीका समझें स्वत्व ॥
दम्पतिका जगमें अधिकार । रक्खा विधिने तुल्य विचार ॥
अब उपजा है हमको ज्ञान ।
जिससे होगा मंगल गान ॥ ३२ ॥

समय बहुत बीता अब आज । होगा शायद विकल समाज ॥
इससे करती कथन समाप्त । होवे यश अपना जगव्याप्त ॥
" नहीं नहीं " हम देती मान ।
और गाइये मंगल गान ॥ ३३ ॥

सबने कहकर सहित सनेह । बरसा दिया थैंक्सका[3] मेह ।
कमलाने माना आभार । कहा, कहूं अब उपसंहार ॥
सब बहने ऐसा ही ध्यान ।
देकर गावें मंगल गान ॥ ३४ ॥

तो होगा अपना कल्याण । फिर पावेंगे सुख निज प्राण ॥
इसी तरहसे हम प्रतिवर्ष । अगर मनावेंगे उत्कर्ष ॥

१ जाति. २ प्रकृति. ३ धन्यवाद.

तो होगा अपना भी मान ।
बन्द न होगा मंगल गान ॥ ३५ ॥

अब अपने सारे मन्तव्य । जो हैं अभी अछूते-भव्य ॥
लिखकर उन बूढ़ोंके पास भेजो, जो हैं बुद्धि-निवास ॥
सुनकर वह मतलबकी तान ।
नाचेंगें, गा मंगल गान ॥ ३६ ॥

हुआ मिलन जो यह अभिराम । विधवामण्डल इसका नाम ॥
चिरस्थाई दफ्तर भी एक । इसका खोलो सहित विवेक ॥
द्रव्य और संग्रह हो मान ।
कहां हुआ है मंगलगान ॥ ३७ ॥

यह मंडल जब अगले साल । होवे, उसमें वह सब हाल ॥
पेश किया जावे सानन्द । जिससे हो उत्साह अमन्द ॥
अपना भी हो पुनरुत्थान ।
फिर ऐसा हो मंगल गान ॥ ३८ ॥

जितनी बहिनें पावें मान । फिर सुहागका अच्युतदान ॥
दिये जाँय उन सबको थैंक्स । जिससे यत्न न होवें लैंक्स[1] ॥
आवेगी बुड्ढोंमें शान ।
खूब करेंगे मंगल गान ॥ ३९ ॥

अब होगा अगला दरबार । कहां ? आप सब करें विचार ॥
बोली 'सहदेवी' कर जोड़ । हो प्रयागमें' यह शुभ जोड़[2] ॥
मैं सब बहनोंका सम्मान । २५५६
करके गाऊं मंगल गान ॥ ४० ॥

मान लिया सबने साभार । दिये थैंक्स उसको कइ बार ।
कर 'कमला' फिर लैक्चर बन्द । बैठी, पाये थैंक्स अमन्द ॥

१ निर्ब्बल ढीले, २ सम्मेलन.

मीर सुनी यह अबला तान ॥
कैसा गाया मंगल गान ॥ ४१

मीर ।

निष्पृह महात्मा मन्दनीस ।

ईस्वीसन्‌से ३०५ वर्ष पहिले सीरियाके सुप्रसिद्ध बादशाह **सेल्यूकसने** भारतवर्षपर चढाई की थी, परन्तु इस चढाईमें उसे सफलता प्राप्त नहीं हुई, उलटी हानि उठाना पड़ी। उत्तर भारतवर्षके तत्कालीन प्रतापी-सम्म्राट **चन्द्रगुप्त**से पराजित हो कर उसे सन्धि करना पड़ी, समग्र **आरिआना** देश देना पड़ा और अपनी लड़की देकर चन्द्रगुप्तके साथ विवाहसूत्रमें बद्ध होना पड़ा। इस संधिके स्थापित हो चुकने पर सेल्यूकसने **मेगास्थनीस** नामके एक विद्वानको दूत बनाकर चन्द्रगुप्तके दरबारमें भेजा। मेगास्थनीस कई वर्षोंतक चन्द्रगुप्तकी राजधानी पाटलीपुत्र (पटना) में रहा और इस बीचमें उसनें भारतवर्षके विषयमें इंडिका नामका एक बड़ाभारी ग्रन्थ ग्रीकभाषामें लिखा। दुर्भाग्यवशतः यद्यपि उक्त समग्र ग्रन्थ नष्ट हो चुका है, तो भी ग्रीकादि देशोंके उसके पश्चाद्वर्ती कई ग्रन्थकारोंने जो उक्त ग्रन्थके बहुतसे प्रकरण अपने ग्रन्थोंमें उद्धृत किये थे, उन्हें अनेक पाश्चात्य विद्वानोंने संग्रह करके एक स्वतंत्र ग्रन्थके रूपमें प्रकाशित किये हैं। यह संग्रह ही इस समय मेगास्थनीसका भारतविवरण[1] कहलाता है।

---

१ श्रीरजनीकान्त गुह, एम. ए. नामक एक बंगाली विद्वानने यह ग्रन्थ प्रो० शोयानबेक कृत विस्तृत भूमिका सहित मूल ग्रीक और लेटिन भाषासे बंगला भाषामें अनुवादित करके हाल ही प्रकाशित किया है।

उस समय ग्रीक देशवासियोंसे भारतवर्षका बहुतही कम परिचय था और इस देशके आचार विचार, व्यवहार, धर्म आदि विदेशियोंके लिये सर्वथा ही विलक्षण थे। इस लिये जिसका केवल इस देशके साथ राजनैतिक सम्बन्ध था और जो यहांकी भाषाओंसे जैसा चाहिये वैसा परिचित नहीं था ऐसे एक विदेशी राजदूतके द्वारा भारतवर्षका निर्भ्रान्त और विश्वस्त विवरण तो नहीं लिखा जा सकता है, तो भी इस देशके लिये जहां कि प्राचीन इतिहासका प्रायः अभाव है, मेगास्थनीसका भारतविवरण बड़े भारी महत्त्वकी वस्तु है और उससे आजसे लगभग २२०० वर्ष पहिलेके भारतका जो अस्पष्ट परन्तु मूल्यवान् भ्रान्ति पूर्ण और सारमूलक स्वरूप मालुम होता है, वह ऐतिहासिकोंकी दृष्टिमें बहुतही आदरणीय वस्तु है।

मेगास्थनीसने भारतवर्षमें सात जातियोंका उल्लेख किया है, जिनमें एक **पंडितोंकी जाति** (philosophic) थी इस जातिको उसने **ब्राह्मण** और **श्रमण** इन दो श्रेणियोंमें विभक्त बतलाई है। श्रमणोंके विषयमें पाश्चात्य पंडितोंमें मतभेद है। कोई २ कहते हैं कि, श्रमणोंसे मतलब **बौद्धोंका** है और कोई २ इसे अस्वीकार करते हैं। अपने २ पक्षको पुष्ट करनेके लिये दोनों-हीने बीसों प्रमाण दिये हैं और अभी तक उक्त प्रमाणोंमें बौद्ध विषयक प्रमाणही समीचीन समझे गये हैं। परन्तु हमारी समझमें **मेगास्थनीसने** श्रमणोंका जो स्वरूप बतलाया है, वह न वेदानुयायी पंडितोंका है और न बौद्धोंका ही है किन्तु इन दोनोंसे पृथक दिगम्बर जैनसाधुओंका है। क्योंकि एक तो **श्रमण** शब्द बौद्ध साधुओंके समान जैन साधुओंके लिये भी व्यवहृत होता है और जैनग्रन्थोंमे इस शब्दका प्रचार भी अधिकताके साथ देखा

जाता है, दूसरे श्रमणोंको उसने नग्न रहनेवाला, मद्य, मांस मत्स्य तथा इन्द्रियसंभोगका त्यागी बतलाया है। इससे भी मालूम होता है कि ये श्रमण दिगम्बर जैनसाधुहीं होंगे। क्योंकि नग्नवृत्ति की सबसे अधिक महिमा एक जैनधर्मने ही गाई है। बौद्धसाधु नग्न नहीं रहते हैं और बौद्धधर्ममें जीवके मारनेमें वा उसे कष्ट देनेमें ही पाप बतलाया है। मरे हुए जीवके मांस खानेका निषेध नहीं किया है। अतएव वे श्रमण जैन मुनिही होंगे। मेगास्थनीसके इस लेखसे कि "वे सन्यासी[१] स्वतंत्र जीवन व्यतीत करते हैं, मत्स्य, मांस और अग्निपक्व खाद्यको नहीं खाते हैं, फलभोजन करके ही सन्तुष्ट रहते हैं, परन्तु उन्हें (फलोंको) वृक्षसे नहीं तोड़ते हैं, जो फल पृथ्वी-पर गिर पड़ते हैं, उन्हींको ग्रहण करलेते हैं और **तुंगभद्रा** (Togalena) नदीका जलपान करते हैं। वे जीवन भर नग्न हो-कर विचरते रहते हैं, वे कहा करते हैं कि, "इस शरीरकी सृष्टि आत्माके लिये एक प्रकारसे परिच्छदरूप हुई है। ...." जैनसाधुओंका हीं आभास होता है। परन्तु इसमें जो "अग्निपक्व खाद्य नहीं खाते हैं तथा वृक्षोंसे पड़े हुए फलोंको खाकर तुंगभद्राका जलपान करते हैं" लिखा है, वह अवश्य ही खटकता है और जैनमुनिकी चर्यासे नहीं मिलता है। परन्तु हमारी समझमें मेगास्थ-नीसने भ्रमसे ऐसा लिख दिया है। इस भ्रमका कारण यह हो सकता है कि, उसने श्रमणोंको बनमें तपश्चर्यादि करते हुए देखकर परन्तु नगरोंमें आहारके लिये जाते न देखकर अन्य वेदानुयायी साधु-ओंके समान यह अनुमान कर लिया होगा कि जब ये वनोंमें रहते हैं,

---

१ इन्हें मेगास्थनीसने 'ब्राह्मणोंमें एक श्रेणीके सन्यासी' ऐसा लिखा है। हमारी समझमें इसका अभिप्राय 'श्रमण' ही होगा।

तब अवश्यही यहींसे फल चुनकर खा लेते होंगे। 'अग्निपक्व' खाद्य नहीं खाते हैं' इसका अभिप्राय जैनसाधुओंके सम्बन्धमें इतना ही हो सकता है कि, वे स्वयं अग्निसे पकाकर कोई वस्तु नहीं खाते हैं किसी द्वारा पकी पकाई मिलनेपर खाते हैं, और फल तोड़कर नहीं खाते हैं, स्वयं पड़े हुए खाते हैं इसका अभिप्राय यह हो सकता है कि, फल वृक्षोंसे तोड़ कर नहीं खाते हैं कोई (श्रावक) लाकर फल देता है, तो खाते हैं।

मेगास्थनीस इन साधुओंमेंसे एक **मन्दनीस** वा **दन्दमिस** नामके साधुका उल्लेख किया है। वह नग्न रहता था और एक सम्प्रदायका प्रधान गुरु वा अधिकारी था। हमारा अनुमान है कि, वह बहुत करके जैनसाधु होगा और उसकी सम्प्रदाय जैनसम्प्रदाय होगी। संभव है कि, इतिहासके पारंगत पंडितोंके समीप हमारा यह अनुमान ठीक न हो, और मन्दनीस किसी अन्य सम्प्रदायका साधु ठहरे। क्योंकि उसके उत्तरमें कर्त्तृवादित्वकी कई जगह झलक दिखती है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि, मन्दनीसका आख्यान बहुत ही शिक्षाप्रद है और इस बातका साक्षी है कि, पूर्वकालके साधु पुरुष कैसे निःपृह और निर्भय होते थे। इससे प्रत्येक पुरुष चाहे वह किसी ही सम्प्रदायका हो, बहुत कुछ सीख ले सकता है। वह आख्यान यह है।

जिस समय जगद्विजयी सम्म्राट **सिकन्दरने मन्दनीस**की कीर्ति सुनी, उस समय उसने उसे उसके धर्मकी शिक्षाको प्राप्त करनेके लिये बुलवाया। **ईजिना** निवासी सीनिक सम्प्रदायके प्रसिद्ध दार्शनिक **अनिसिक्रिटेस** बुलानेके लिये भेजे गये। उन्होंने महात्मा मन्दनीसके समीप उपस्थित होकर कहा—"हे ब्राह्मणकुलके

शिक्षक, कल्याण हो। महान् देव **जियूसके**[1] पुत्र और समग्र मानव जातिके प्रभु राजा **सिकन्दर** आपको बुलवाते हैं। यदि आप उनके समीप चलेंगे तो प्रचूर और बहुमूल्य उपहार प्राप्त करेंगे और यदि नहीं जावेंगे; तो वे आपका सिर काट डालेंगे।" **मन्द-नीसने** मृदु और मधुर हास्यके साथ राजदूतकी बातें सुनी। उन्होंने पत्तोंकी शय्यापरसे मस्तक नहीं उठाया, पड़े ही पड़े उदासीनताके साथ यह उत्तर दिया कि "महतो महीयान्" परमेश्वर किसीका अपकार करना नहीं जानता है। किन्तु इस लोकका त्याग करने-वालोंको वह जीवनालोक प्रत्यर्पण करता है। इसलिये वह ही हमारा एक मात्र प्रभु है। उसने नरहत्याका निषेध किया है और युद्धके लिये कभी किसीको उत्तेजित नहीं किया है। **सिकन्दर** कभी ईश्वर नहीं हो सकता है। क्योंकि उसे मृत्युके मुखमें पतित होना पड़ेगा। वह अब भी **टिबेरबोया** नदीको पार नहीं कर सका है, समग्र पृथिवीमें वासगृह नहीं बना सका है, गाडीस (Gades) की सीमा पार नहीं हो सका है, और जगत्के मध्यभागमें सूर्यका अयनकक्ष नहीं देख सका है। फिर वह कैसे ईश्वर हो जायगा? बहुतसी जातियां तो आजतक उसका नाम भी नहीं जानती हैं, यदि अपने आधिकृत भूखंडमें उसको संतोप नहीं हो सकता है, तो वह गंगानदीको पार करे। वह इस पार ऐसा देश पायगा, जो मनुष्योपयोगी आहार जुटानेको समर्थ है। सिकन्दर जो कुछ देना चाहता है और जो कुछ उपहार तुम्हारे मुंहसे देना सुना है; वह सर्व ही मेरे समीप तुच्छ अकिञ्चित्कर है। ये पत्ते हमारे गृह हैं, समीपवर्ती वनस्पतियां हमारे खाद्यद्रव्य हैं, जल पेय है। इनके अतिरिक्त लोग और जो कुछ पदार्थ आकुलतासे श्रमपूर्वक संग्रह

[1] देवराज, देव और मनुष्योंका पिता।

करते हैं, वे सब हमारे समीप तुच्छ हैं। क्योंकि वे सब पदार्थ ध्वंसशील (विनाशीक) हैं, और उन्हें जो चाहते हैं और जिन्हें वे प्राप्त हैं, उन सबके लिये ही वे दुःखके कारण हैं। इसलिये इस समय निराकुलता निरुद्वेगपूर्वक विश्राम करते हैं। अभी हम नेत्र बन्द करके पर्णशय्यापर सोते हैं, क्योंकि हमारे पास रक्षा करनेके लिये कुछ भी नहीं है। किन्तु यदि हमें स्वर्णरक्षा करनी होती, तो निद्रा दूर भाग जाती। माता जिस तरह सन्तानको दूध पिलाती है, उसी तरह पृथ्वी हमारे सारे अभावोंको पूर्ण करती है। हम जहां जानेकी इच्छा करते हैं जाते हैं; और नहीं जाना चाहते हैं, तो कोई दुश्चिन्ता हमको जानेके लिये विवश नहीं कर सकती है। सिकन्दर हमारा शिरच्छेद करना चाहता है, पर वह हमारे आत्माका छेद नहीं कर सकता है। वह केवल भूपतित नीरव मस्तकको पा सकेगा। आत्मा तो पृथिवीसे जिस देहको पाई है, उसे जीर्ण वस्त्रके समान पृथ्वीपरही पड़ी छोड़कर अपने प्रभुके पास पहुंच जायगा। जिस समय उसने हमें देहमें आच्छादित किया था, उस समय उसका अभिप्राय यह देखनेका था कि, हम इस लोकमें अवतीर्ण होकर किस प्रकार जीवन व्यतीत करते हैं और पीछे जब हम उसके सम्मुख उपस्थित होवेंगे, तब वह हमसे जीवनका हिसाब पूछेगा। उसके पास खड़े होकर हम अपना अपकार निरीक्षण करेंगे और जिन्होंने हमारा अपकार किया है, उनका भी विचार पर्यवेक्षण करेंगे। क्योंकि, उत्पीड़ितकी गहरी निःश्वास और क्रन्दन उत्पीड़कके दंडमें परिणत होता है।"

"जो धनकी आकांक्षा रखते हैं अथवा मृत्युको डरते हैं, सिकन्दर उनको ये सब भय और विभीषिकाएं प्रदर्शित करै, हम धन

१ 'श्रमण' भी एक प्रकारके ब्राह्मण ही थे।

और मृत्यु दोनोंको तुच्छ समझते हैं। क्योंकि ब्राह्मण[1] स्वर्णका लोभ नहीं करते हैं और मृत्युसे भी नहीं डरते हैं। अतएव जाओ और सिकन्दरसे कहो कि, मन्दनीस आपसे कुछ नहीं चाहता है किन्तु यदि आप समझें कि उससे कुछ प्रयोजन है, तो उसके पास जानेके लिये आप कुछ संकोच वा घृणा नहीं करें।"

जिस समय द्विभाषीके द्वारा **सिकन्दरने** ये सब बातें सुनी, उस समय वह ऐसे विलक्षण पुरुषको देखनेके लिये और भी व्यग्र हुआ। जिसने नाना जातियोंको जीता था, उसीको एक नग्न शरीर वृद्धने थोड़ेसे शब्दोंमें ही पराजित कर दिया।

सत्यकी जय।

स्याद्वादवारिधि पं० **गोपालदासजीने** दस्सोंको पूजाअधिकारी बतला कर और जैनगजटके पूर्व सम्पादक बाबू **जुगलकिशोरजीने** शूद्रोंको पूजाके अधिकारी कहकर अपने ऊपर जो आपत्ति और अपमानका तूफान बुलाया है, वह किसीसे छुपा नहीं है। यह सुनकर बहुतसे सज्जन यह सोचते होंगे कि, " इन लोगोंने खड़े बैठे यह झगड़ा क्यों मोल लिया? इनका कहना तो सत्य है परन्तु एक तो **शास्त्राद्रूढिः बलीयसी** होती है और दूसरे नीतिकारोंने यह भी कहा है कि **यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्धं नाचरणीयं नो करणीयम्** अर्थात् जो आचरण लोकके विरुद्ध हो–वह चाहे शुद्ध भी हो–यथार्थ भी हो परन्तु उसे नहीं करना चाहिये और ऐसी बातोंके प्रगट करनेसे लाभ ही क्या है! हमें तो वस्तुका स्वरूप समझ लेना और अपनी आत्माका कल्याण करना चाहिये। परन्तु हमारी समझमें ऐसा सोचनेवाले दुर्बल–हृदय और सत्यके

साहसहीन अनुयायी हैं। भले ही ऐसे लोग शान्तिप्रिय और दूर-दर्शी कहलावें परन्तु हम अपने अधःपतित समाजके लिये इनकी आवश्यकता नहीं देखते हैं। इस समय जैनसमाजके लिये ऐसे सुधारकोंकी वा संचालकोंकी आवश्यकता है, जो सत्यके अनन्य सेवक हैं और जो सत्यके पक्षको खड़ा करनेके लिये सब प्रकारके कष्ट, अपमान सहनेके लिये तयार रहते हैं। क्योंकि अन्तमें सत्यका ही विजय होता है और सत्यके प्रचारके विना सत्यका स्वरूप समझाये विना किसी भी समाजका न आज तक उत्थान हुआ है और न होगा।

जो लोग मूर्खोंके वा रूढीके गुलामोंके भयसे वा अपने अपमानादिके भयसे सत्यको छुपानेकी कोशिश करते हैं, वे सत्यके महत्वको नहीं समझते हैं। वे इस बातको भूल जाते हैं कि, एक न एक दिन कस्तूरीके आमोदके समान सत्य प्रगट होगा और आखिर हमारी गणना सत्यके घातकोंमें की जायगी। जो लोग सत्यके सच्चे सेवक नहीं हैं, उन्हें किसी भी समाजकी उन्नति करनेवाली सभा या मंडलीका सभासद होनेका भी अधिकार नहीं है। उन्हें यह भी आशा छोड़ देना चाहिये कि, हमारे द्वारा इस समाजका कुछ उपकार होगा। क्योंकि परोपकारके पवित्र सिंहासनपर सत्यापलापकोंके पैर नहीं ठहर सकते हैं।

पंडित **गोपालदासजीके** वा बाबू जुगलकिशोरजीके अपमानित करनेके लिये मूर्ख समाजकी ओरसे जो प्रयत्न हो रहे हैं, वास्तवमें देखा जाय तो वे बहुत ही तुच्छ हैं। जिन लोगोंने सत्यका पक्ष लिया है, उनके लिये इससे सैकड़ों गुणें कष्टकर षड्यंत्र रचे गये हैं और उनके जीवन कष्ट ही कष्टमें पूरे हो गये हैं। इस प्रकारकी घटनाओंसे प्राचीन और अर्वाचीन इतिहास भरे पड़े हैं।

रोमके इतिहासमें लिखा है कि, ईसाइयोंकी **बाईबिलका** जब वहांकी देशभाषामें अनुवाद करनेका कुछ लोगोंने प्रयत्न किया, तो उन्हें फांसी पर चढना पड़ा और कारागारवास आदि दंड भोगना पड़े। परन्तु वही बाइबिल आज पृथ्वीकी कई सौ भाषाओंमें अनुवादित हो कर गली२ कूचों २ में फैल रही है! "बाईबिलका देशभाषामें अनुवाद करनेसे उसकी पवित्रता नष्ट नहीं होगी, किन्तु उसका प्रचार अधिक होगा" यह जो सत्यसिद्ध बात थी वह **पोपके** हर प्रकारके प्रबन्धसे यहां तक कि प्राणदंडकी व्यवस्था कर देनेपर भी नहीं छुपी। जैनसमाजमें भी ग्रन्थोंके छपानेका प्रचार करनेवालोंके विरुद्ध क्या थोड़े षड्यंत्र रचे गये हैं, छपे ग्रन्थोंके न लेनेकी लाखों प्रतिज्ञाएं कराई गईं, हस्ताक्षर कराये गये, गालियां दी गईं, तिरस्कार किये गये, परन्तु आखिर सत्यकी जय हुई। छापेके विरोधियोंके घरोंमें भी आज छापेके ग्रन्थ पहुंचे गये गये हैं।

कोलम्बसने जब अपने इस विचारको प्रकाशित किया था कि, पश्चिमकी ओर भी कोई पृथ्वीका खंड है; तब लोगोंने उसको विक्षिप्त हवाई किला बनानेवाला और मूर्ख कहकर तिरस्कार किया था। परन्तु अन्तमें उसने अपने असीम परिश्रम और साहससे **अमेरिकाखंडका** पता लगाकर अपनी हंसी करनेवालोंके मुखको फिका करके सत्यकी सत्यता दिखलाई थी।

सुप्रसिद्ध ज्योतिषी **ग्यालिलियोसने** जब इटली निवासियोंकी मान्यताके विरुद्ध यह कहा था कि, "पृथ्वी चलती है और सूर्य अस्थिर है" तब उसे कठिन कारागारकी शिक्षा दी गई थी। परन्तु आज इटली तो क्या सारा यूरोप इस मतका माननेवाला है और ग्यालिलियोसका बड़े सन्मानके साथ स्मरण करता है।

भगवान् महावीरने जब अपने पवित्र और सच्चे धर्मका उपदेश देना प्रारंभ किया था, तब लोग उन्हें नास्तिक, इन्द्रजालिया आदि कहकर अपनी गतानुगतिक प्रकृतिको शान्त करते थे। उनके अनुयायी आचार्योंको अपने कर्मवादपर विश्वास उत्पन्न करानेके लिये उस समयके ईश्वरवादी तथा अनात्मवादी लोगोंके द्वारा क्या थोड़े अपमानादि सहना पड़े होंगे? यदि वे उन लोगोंके भयसे अपने सत्य पदार्थोंको छुपाते, तो क्या कभी यह संभव हो सकता था कि, उनके लाखों करोडों अनुयायी हो जाते।

सारांश यह कि, पंडितजी तथा बाबू जुगलकिशोरजीका जो अपमान और परिहास हो रहा है, वह स्वाभाविक है और सत्यका प्रचार करानेवालोंके इतिहासमें वह एक बहुत ही मामूली बात है। दीर्घकालके अंधःकारके पश्चात् जब किसी धर्म वा समाजके उत्थानका प्रारंभ होता है, तब ऐसे अनेक पुरुषोंका जन्म होता है और वे अज्ञानताके विचारोंको नष्ट करनेके लिये निर्भय होकर अपने सत्य विचारोंको इसी तरह प्रगट करते हैं। यद्यपि उनके सत्य विचारोंका तत्कालही सत्कार नहीं होने लगता है, पर इसमें सन्देह नहीं है कि समय आनेपर उनके विचार मान्य हो जाते हैं और एकदिन जिनको सुनकर लोग भड़क उठते थे, उन्हें ही लोग प्रसन्नतासे अनायास मानने लगते हैं।

वास्तवमें देखा जाय, तो अभी जैनसमाजमें सुधारकयुगका सूत्रपात ही हुआ हैं। आगे ऐसे २ अनेक विषय उपस्थित होनेवाले हैं, जो रूढीके सर्वथा विरुद्ध हैं। केवल हमारे प्राचीन ग्रन्थ ही जिनके अस्पष्ट रूपको अपने कलेवरोंमें छुपाये हुए हैं। उनके उपस्थित होनेपर गतानुगतिक लोग इस 'दस्सोबीसों' के मामलेसे भी

अधिक उपद्रव उठावेंगे और जितनी उनकी शक्ति है, उसे खर्च करके उनका विरोध करेंगे। इस लिये उस समयके लिये हमको अभीसे तयार हो रहना चाहिये। और अपना कर्तव्य स्थिर कर लेना चाहिये। यदि हमारे हृदयमें जैन समाजकी उन्नति करनेकी कुछ भी वासना है, यदि हम इसे संसारमें प्रतिष्ठा पूर्वक जीवित देखना चाहते हैं, तो हमें अपमान, तिरस्कार, बहिष्कार, कष्ट, आदि किसी भी बातसे नहीं डरना चाहिये और ऐसा अभ्यास करना चाहिये जिससे ऐसी बातोंसे हमारे विचार शिथिल होनेके बदले और भी अधिक दृढ तथा अटल होवें। स्मरण रक्खो, आज जो लोग हमें अपमानकी दृष्टिसे देखते हैं, वे ही कल हमारा असाधारण सत्कार करेंगे और हमारे अनुयायी बनकर हमारे स्थिर किये हुए मन्तव्योंके प्रचारक बनेंगे। 'दस्सोंबीसों'के मामलेमें हमारे लिये जो कुछ किया जा रहा है, उसकी ओर हमें दृष्टि निक्षेप भी नहीं करना चाहिये और अपने कार्यमें आगे बढ़ते जाना चाहिये। ऐसी घटनाएं तो सुधारकोंके इतिहासमें तुच्छ समझकर छोड़ दी जाती हैं। हमें अपने हितशत्रुओंको अपनें उत्तम कार्योंसे परास्त करना चाहिये—बातोंसे या व्यर्थका बाद विवाद करके नहीं। अलमितिविस्तरेण।

सभापतिकी जगह खाली।

हमारी सभाका अधिवेशन बहुत ही शीघ्र होनेवाला है। जिन धनाढ्य सज्जनोंकी इच्छा इस अपूर्व पदको सुशोभित करनेकी हो, वे कृपाकरके अपने किसी कृपोपजीवीसे पत्र लिखवाकर सूचित करें। हमारी सभा अपने सभापतिमें निम्न लिखित बातोंकी आवश्यकता समझती है—

१. कमसे कम लखपती हो और सभाके फंडमें हजार रुपयेसे कम चन्दा न दे।

२. वह इतना पढ़ा लिखा अवश्य हो कि, प्रस्तावादिकोंके नीचे अपनी सही कर दिया करे।

३. देखनेमें रौबीला हो, शरीर सम्पत्तिमें कमसे कम उसकी तोंद अवश्य ही कुछ बढ़ी हो और सदा प्रसन्न मुख रहता हो। सेठानी भी उसकी ऐसी ही हो, क्योंकि महिलापरिषद्की सभापतिनीका आसन उसीको दिया जायगा।

४. साथमें कोई पंडित या परिचारक ऐसा रहता हो, जो सभापतिकी सारपूर्ण और लम्बी स्पीच तयार कर दे और मौकेपर उसे यह कहकर सबको पढ़के सुना दे कि, सेठजी अपने व्याख्यानको तबियत ठीक नहीं होनेके कारण मुझसे पढ़ देनेका आग्रह करते हैं।

५. सभामें जो प्रस्तावादि होते हैं, उन्हें चाहे जरा भी न समझे परन्तु दुसरोंकी चेष्टा देखकर अपनी भी ऐसी यथायोग्य प्रसन्न उदासादि भावों युक्त मुद्रा बना लिया करें, जिससे दूसरे समझें कि, सभापति साहेब समझदार—परन्तु शान्त चित्त हैं।

६. उसे प्रबन्धकारिणीकमेटी, सब्जैक्टकमेटी, स्वागतकारिणी कमेटी, प्रस्ताव, समर्थन, अनुमोदन, पास, डेलीगेट, वालंटियर, प्रोग्राम, सभासद आदि चुने हुए शब्द जो सभामें अकसर काममें आते हैं, यादकर रखना चाहिये—जिससे लोग यह न समझने पावें कि, शेठजीका सभासे नया नया ही परिचय है।

७. उसके बाप दादाओंने वा उसने स्वयं एक दो मन्दिर बनवा कर प्रतिष्ठाएं करवाई हों, चाहे वे केवल मान बड़ाईके लिये विना जरूरतके ही करवाई हों और जातिके दो चार बड़े २ मोज भी कर-

वाये हों, क्योंकि ऐसी बातोंका उल्लेख सभापतिके जीवनचरित्रमें करनेसे उसमें कुछ खूबी आ जाती है।

सभापतिका स्वागत करनेकेलिये खूब तयारियां की जा रही हैं। बड़े २ पंडित और बड़े २ ग्रेज्युएट स्वागतके लिये स्टेशनपर उपस्थित होंगे और जयजयकी ध्वनि करते तथा पुष्पवर्षा करते हुए लावेंगे। अतएव जिन्हें यह अलभ्यपूर्व सत्कार पानेकी इच्छा हो वे विलम्ब न करें।

इस वर्ष दो एक पढ़े लिखे आदमी इस पदके लिये उम्मेदवार हो रहे हैं और अधिकांश लोगोंने उनके लिये सिफारिश भी की है, परन्तु सभाके कर्त्ताओंने यह महत्वका पद धनिकोंके लिये ही रिजर्व कर रक्खा है, इसलिये यह चिन्ता नहीं करनी चाहिये कि, हमें लोग चुनेंगे या नहीं। प्रबन्धकारिणी और स्वागतकारिणी कमेटीके सारे सभ्य हमारे हाथमें हैं। बस सूचना मिलनेकी देरी है कि, बेड़ा पार। सैक्रेटरी।

सम्पादकीय टिप्पणियां।

१. नवीनवर्षका आरंभ।

आज जैनहितैषी अपने नवीन वर्षमें प्रवेश करता है और फिर नये उत्साहके साथ अपने कार्यक्षेत्रमें अवतीर्ण होता है। यद्यपि गत वर्ष कईएक कौटुम्बिक संकटोंके कारण फिर भी हम इसे समयपर नहीं निकाल सके थे और आकार प्रकारमें भी कुछ विशेष उन्नति नहीं कर सके थे, तो भी हर्ष है कि, जैनियोंने और सर्व साधारणने इसको आदरकी दृष्टिसे देखा और इसके विषयमें अपने अभिप्राय प्रगट करके हमको उत्साहित किया। पाठकोंके अवलोक-

नार्थ उनमेंसे कुछ पत्र सम्पादकोंके अभिप्राय आगामी अंकमें प्रकाशित किये जावेंगे । गतवर्ष जो हमने हितैषीको सचित्र निकालनेका विचार किया था, उसको पूर्ण करनेके लिये हम लगभग एक महिने पहिले बम्बईके कई चित्रकारोंसे और चित्र प्रकाशित करनेवालोंसे मिले और इस विषयमें अनुसंधान किया, तो मालूम हुआ कि, हम जिस प्रकारके पौराणिक कथाओंके आधारसे सोचे हुए तथा अन्यान्य काल्पनिक चित्र प्रकाशित करना चाहते हैं, उनकी बनवाई ब्लाक तयार करवाई और छपवाईमें प्रत्येक चित्रके पीछे २५–३० रुपयेसे कम खर्च नहीं पड़ सकता है ! इस खर्चको सुनकर और हितैषीकी ग्राहकसंख्याका विचार करके हम ठंडे हो गये । पाठक आप ही सोच सकते हैं कि, जिस पत्रकी ग्राहकसंख्या केवल ६००–७०० ही है, उसके पीछे यह तीनसौ चारसौ रुपया सालके खर्चका नया भार कैसे उठाया जा सकता है ? इससे तो अच्छा यही है कि, चित्रोंके बदले हम इसकी पृष्ठसंख्यामें ही कुछ और वृद्धि कर दें और चित्रोंके लिये उस दिनकी प्रतीक्षा करते रहे जब कमसे कम डेड़ दो हजार ग्राहकोंके हाथमें यह पहुंचने लगेगा । आशा है कि, पाठक हमारे इस विचारसे सहमत होंगे और इसकी ग्राहकसंख्या बढ़ानेका निरन्तर प्रयत्न करेंगे। इस साल उपहारमें जो महान् ग्रन्थ दिया जानेवाला है उसके कारण ग्राहकसंख्यामें वृद्धि होनेकी बहुत कुछ आशा है।

---

२. वेदोंमें हिंसाका अभाव ।

काशीके महामहोपाध्याय पं० शिवकुमारशास्त्री सनातनधर्मके स्तंभ समझे जाते हैं और वेदानुयायी विद्वानोंमेंसे आप सर्व शिरोमणि पंडित समझे जाते हैं । काशीमें एक ' समुद्रयात्रा ' विषयक

मुकद्दमा बहुत दिनोंसे चल रहा था। उसमें आपने एक बड़ी भारी लम्बी चौड़ी गवाह नाना ग्रन्थोंके प्रमाणोंसहित दी थी। जिसमें समुद्रयात्राका निषेध करते हुए "श्राद्धमें मछली खाना दूषित नहीं है।" "देवताको भोग लगाकर मछली खानेमें दोष नहीं।" "मधुपर्कमें पशुका मारना धर्म था।" मधुपर्कमें मांस देना या बकरीका मांस देना विधि थी।" "कलिमें गोमांस देना निषिद्ध है, परन्तु बकरीका मांस देना निषिद्ध नहीं। नरमेध भी धर्म था।" अश्वमेध भी धर्म था। गोको यज्ञमें वध करना भी धर्म था आदि बातें प्रकरण पाकर कही थीं। जिससे मालूम होता है कि, ब्राह्मणोंके वेदादि ग्रन्थोंमें हिंसाके विधानोंकी कमी नहीं है। परन्तु रामगढ़ (सीकर) के वि०वा पं० बालचन्द्र शास्त्री नामके एक विद्वान्‌ने कलकत्तेसे एक विज्ञापन छपवा कर प्रकाशित किया है कि, "पं० शिवकुमारजीकी उक्त बातें सर्वथा वेदोंके विरुद्ध हैं। चारों वेदोंमें कहीं भी हिंसाका विधान नहीं है। वाममार्गियोंके ग्रन्थ देखकर सायण और महीधरादि वेदके टीकाकारोंने भूलें की हैं। मांसाहारियोंने हमारे बहुतसे ग्रन्थ बिगाड़ दिये हैं। वास्तवमें हमारे ग्रन्थोंमें में कहीं भी हिंसाका विधान नहीं है। इस विषयमें मैं हर किसीसे शास्त्रार्थ करनेके लिये तयार हूं। जो विद्वान् समक्ष न मिल सकें, वे अपनें लेख हिन्दीपत्रोंमें प्रकाशित करें, मैं उत्तर दूंगा।" अच्छा है, हम भी यही चाहते हैं कि, किसी भी ग्रन्थमें हिंसाका विधान न पाया जावे। न किसी धर्मके ग्रन्थमें हिंसाका विधान मिलेगा और न हिंसा होगी। परन्तु हमारी समझमें वेदोंमें और मनुस्मृति आदि ग्रन्थोंमें जो पद पदपर हिंसाका विधान किया गया है, उसका अपलाप 'एकाक्षरी कोष' की सहायता और 'धातूनामनेकार्थाः' सूत्रकी उदार शरण लिये विना होना कठिन है। अभीतक तो वेदा-

नुयायी विद्वान् 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' की दुहाई देकर अहिंसोपासक बनते थे, पर अब कहते हैं कि, वेदमें हिंसा ही नहीं है। यदि यह पिछली बात सिद्ध हो गई तो जैनियोंको बहुत संतोष होगा।

---

३. जीवज्योतिका फोटू।

पाश्चात्यदेशोंमें एक आख्यायिका प्रसिद्ध है कि, जीव एक प्रकारकी ज्योति है। इस कल्पनामें सत्यांश कितना है यह जाननेके लिये एक बड़े भारी वैद्यने एक आसन्नमरण मनुष्यके मुखपर कांच का पात्र रखकर जीवज्योति देखनेका प्रयत्न किया था, पर उसमें सफलता प्राप्त नहीं हुई थी। इस आख्यायिकाका और कल्पनाका स्वरूप प्रगट करनेके लिये शिकागो (अमेरिका) के 'पाट्रिक ओडोनेल' नामक डाक्टर जो कि एक्सकिरण शास्त्रमें अतिशय प्रवीण हैं, बहुत समयसे प्रयत्न कर रहे हैं, और अब प्रकाशित हुआ है कि, उन्हें उसमें असाधारण सफलता प्राप्त हुई है। उन्होंने एक आसन्नमृत्यु मनुष्यके शरीरसे निकलती हुई जीवज्योतिका फोटू लेलिया है। इस सफलतासे लोगोंका ऐसा भ्रम हो सकता है कि, जीव भी एक पौद्गलिक पदार्थ है। क्योंकि फोटू उसी चीजका लिया जा सकता है, जिसकी रचना परमाणुओंसे हुई है। परन्तु जैनधर्मके सिद्धान्तानुसार यह जीव ज्योति जिसका कि, डाक्टर साहबने फोटू लिया है जीवात्मा नहीं किन्तु जीवके साथ रहनेवाला तैजस शरीर होगा जो कि पौद्गिलिक होता है और जिसका एक्सकिरणोंकी सहायतासे फोटू लिया जाना संभव है। जीवात्मा अरूपीनिराकार है, चैतन्य मात्र है और ज्योति एक रूपगुणका भेद है रूप नेत्रेन्द्रिय ग्राह्य पुद्गलका गुण है। इसलिये उस ज्योतिका फोटू होना संभव है। किन्तु आत्मा अरूपी होनेसे उसका फोटू होना सर्वथा असंभव है।

---

४. शरीरके चारों ओरका तेजोवलय।

डाक्टर केल्नर नामके एक और डाक्टर इंग्लेंडमें हैं, उन्होंने भी इसी प्रकारका एक अनुसंधान किया है। वे कहते हैं कि, दो स्वच्छ कांचके पात्रोंमें 'डायसीओनिन' नामक नीले रंगके पदार्थसे मिले हुए पानीको भर दो, फिर एक पात्रके पानीमेंसे कुछ समय तक बाहर प्रकाशकी ओर देखते रहो और तत्कालही दूसरे पात्रके पानीमेंसे अंधेरेमें बैठे हुए मनुष्यकी ओर देखो, तो उसके शरीरके चारों ओर कुछ अन्तरपर दो प्रकारके तेजोवलय दिखलाई देंगे। इन तेजोवलयोंकी चौड़ाई अनुमान ६ इंच होती है और उनसे सारा शरीर वेष्टित रहता है। एक विशेषता यह है कि, उनका आकार पुरुषोंमें स्त्रियोंमें, निरोगी पुरुषोंमें और रोगी पुरुषोंमें जुदे २ प्रकारका दिखलाई देता है। अभी तक इन तेजोवलयोंका फोटो नहीं लिया जा सका है। जान पड़ता है कि, यह तेजोवलय भी जैनधर्मोक्त तेजस शरीर होगा।

---

५ कौंसिलमें दो विचारणीय बिल।

भारत सरकारकी कानून बनानेवाली सभामें इस वर्ष दो बड़े महत्वके बिल पेश हुए हैं। सारे देशभरमें इस समय उक्त बिलोंकी चर्चा हो रही है और अपने २ विचारोंके अनुसार सब ही समाजके लोग उनका विधि और निषेधरूपसे आन्दोलन कर रहे हैं। हमारा जैनसमाज देशका एक प्रधान समाज समझा जाता है। इस लिये उसकी ओरसे इन बिलोंके विषयमें कुछ आन्दोलन अवश्य होना चाहिये था। परन्तु हम देखते हैं कि, न तो जैनियोंकी किसी सभाने अभी तक इन बिलोंका समर्थ किया है और न किसीने निषेध

किया है। और इसका कारण जैनियोंके समाचारपत्रोंकी इस विषय सम्बन्धी चुपकी ही मालूम पड़ती है। जो हो, आज हम अपने पाठकोंको इन दोनों बिलोंका स्वरूप क्या है, सो बतला देना चाहते हैं जिससे कि लोगोंको उनके विषयमें अपना मत स्थिर करनेका सुभीता हो जाय।

पहिला बिल आनरेबल मि० गोपालकृष्ण गोखलेने पेश किया है, जिसका अभिप्राय भारतवर्षमें बलात् शिक्षाका कानून जारी कराना है। इस देशमें अंग्रेजी राज्य स्थापित हुए पचास वर्ष-से अधिक हो गये तो भी यहां शिक्षाका प्रचार जितना होना चाहिये उतना नहीं हुआ है बहुतही थोड़ा हुआ है। यद्यपि इस शिक्षाप्रचारकी कमीके बहुतसे कारण हैं परन्तु उनमें प्रधान कारण लोगोंकी निर्धनता, विद्याविषयक अरुचि, और पाठशालाओंकी कमी है। और ये कारण तब ही दूर हो सकते हैं, जब बलात्शिक्षाका कानून जारी किया जाय। इस कानूनका अभिप्राय यह है कि, प्रत्येक माता पिता इस बातपर मजबूर किये जावें कि, वे अपने पढने योग्य लड़के लड़कियोंको कमसे कम प्राथमिक शिक्षा अवश्य दिलावें, जिनके लड़के लड़कियां पाठशालाओंके होते हुए भी पढनेको न जावें उनको आर्थिक दंड किया जाय। नीच ऊंच धनिक निर्धन आदि सर्वस्थितिके लोगोंमें शिक्षा प्रचारका इससे अच्छा और कोई उपाय नहीं है। यह कानून जब पूर्ण रीतिसे अमलमें लाया जावेगा, तब प्राथमिक पाठशालाओंकी संख्या बढेगी। यहां तक कि, प्रायः प्रत्येक ग्राममें शालाएं खोली जावेंगी और निर्धन बालकोंसे फीस न ली जायगी। फल यह होगा कि, थोड़े ही समयमें दूसरे देशोंके समान यहां भी १०० में ९९ मनुष्य पढे लिखे हो जावेंगे।

बडौदा, गोंडल आदि देशी रियासतोंमें इस बलात्शिक्षणके कानूनसे यथेष्ट लाभ हुआ है। इस बिलका दो चार मुसलमानों और इनेगिने पुराने ढंगके हिन्दुओंको छोड़कर प्रायः सब ही शिक्षित पुरुषोंने तथा सभा सुसाइटियोंने अनुमोदन किया है और सरकारसे प्रार्थना की है कि, वह शीघ्रही इस कानूनको बना डाले। हम आशा करते हैं कि; इसी प्रकार हमारा जैनसमाज भी इस विद्या प्रसारक बिलका अनुमोदन करेगा और स्थान २ में सभा करके अपनी सहानुभूतिकी सूचना भारत सरकारको दिये विना नहीं रहेगा।

दूसरा बिल आनरेबल बाबू भूपेन्द्रनाथ बसुने पेश किया है। उसका नाम है 'सिविल मेरेज एक्टका संशोधन'। सन् १८७२ में एक 'सिविल मेरेज एक्ट नामका कानून बनाया गया था। जिसका अभिप्राय यह था कि, "यदि एक जातिका पुरुष किसी अन्य जातिकी स्त्रीके साथ विवाह करना चाहे और वे दोनों पुरुष स्त्री यह स्वीकार करें कि, हम हिन्दू, पारसी, मुसलमान, यहूदि, क्रिश्चिन, जैन, बौद्ध अथवा सिक्ख इनमेंसे किसी भी धर्मके अनुयायी नहीं हैं। तो उनके विवाहकी रजिष्ट्री कर दी जायगी और वह विवाह जायज समझा जावेगा।" बसू बाबूका बिल इस कानूनमें यह संशोधन कराना चाहता है कि, इसमें जो पुरुष स्त्रीको यह प्रतिज्ञा करनी पड़ती है कि, हम हिन्दू मुसलमान आदि किसी भी धर्मके अनुयायी नहीं हैं। वह न करना पड़े और इसमें जो यह बंधन है कि जो हिन्दू मुसलमान पारसी आदि नहीं हो, वही इस कानूनसे विवाह कर सकेगा, सो न रहै। इस समय इस बिलके सम्बन्धमें प्रायः सारे देशमें दो पक्ष खड़े हो गये हैं। जिनमेंसे एक तो इसको बहुत ही लाभकारी समझता है और जी जानसे इसका अनुमोदन करता है और

दूसरा इसको हिन्दूओंकी समाज रचनाको विशृंखल करनेवाला वर्णसंकरी बिल कहता है और घोर विरोध कर रहा है। दोनोंही पक्षोंकी ओरसे बड़े २ साधक बाधक प्रमाण दिये जा रहे हैं। पूनाके मराठी केसरीमें इस विषयका बहुतसा साहित्य प्रकाशित हुआ हैं और हो रहा है।

जो लोग इस बिलके विरोधी हैं, वे कहते हैं कि, इससे १. हिन्दू समाजकी विशृंखला होगी। २. स्वधर्म निर्दिष्ट विवाहपद्धतिको छोड़कर रजिष्ट्रारके साम्हने विवाह करनेवाले एक प्रकारके बलवाई हैं। वे मानों इस बिलके द्वारा यह चाहते हैं कि हम बलवा तो करेंगे। परन्तु बलवाई होनेपर भी हमें अपने पूर्वके धर्ममें रहने दो। यह बड़ा अन्याय है। ३. इस रजिष्टरी विवाहपद्धतिका अवलम्बन करनेवाले लोगोंके लड़के बच्चे अभी केवल माबापकी सम्पतिके अधिकारी होते हैं। परन्तु इस बिलसे मा बापके पुरुषाओंकी सम्पत्तिके भी अधिकारी हो सकेंगे। इससे धर्मशृंखला बिगड़ जायगी। ४. अपने धर्ममें रहकर रजिष्टरी विवाहपद्धति स्वीकार करनेकी स्वतंत्रता इस बिलसे सब हिन्दूओंको मिलेगी। ५. इस बिलसे हिन्दूओंको अपना धर्म छोड़े बिना म्लेच्छोंके साथ विवाह सम्बन्ध करनेकी स्वतंत्रता मिलेगी। ६. इससे सगोत्रियोंमें विवाह करना भी जायज हो जायगा। ७. इससे सरकारकी दूसरे धर्मोंमें हस्तक्षेप न करनेकी नीतिका घात होगा इत्यादि। अब जो लोग इस बिलको अच्छा समझते हैं, उनकी भी सुन लीजिये—

वे कहते हैं कि, १. यह कोई नवीन बिल नहीं है। इससे जो लोगोंको अन्तर्जातिसे वा विजातिसे विवाह करते समय लाचार होकर कहना पड़ता था कि, हम हिन्दू, जैनी आदि नहीं हैं, सो नहीं

कहना पड़ेगा । २. अपने धर्मकी जिसे और सब बातें मान्य होतीं हैं, परन्तु एक प्रचलित जातिभेदकी पद्धति मान्य नहीं होती है और इसलिये जो अपनी पसन्दगीके अनुसार योग्य कन्यासे विवाह करना चाहता है, उसे बलात् यह कहना पड़ता है कि, मैं अमुक धर्मको नहीं मानता हूं। इस बिलसे यह अनिष्ट टल जायगा । ३. किसीकी किसी धर्मपर श्रद्धा होते हुए भी उससे समाजका यह कहलाना कि मैं अमुक धर्मको नहीं मानता हूं, बड़ा भारी जुल्म है। इस अन्यायका उक्त बिलसे प्रतीकार होगा । ४. अन्यजातीय वा अन्यधर्मी स्त्रीसे विवाह करनेवाले मनुष्यको सामाजिक वा धार्मिक बिषयोंमें बहिष्कृत करनेका जो समाजको वा जातिको अधिकार है, वह ज्योंका त्यों रहेगा । इस बिलसे उसपर कोई आंच नहीं आवेगी। ५. इससे पूर्वजोपार्जित सम्पत्तिके अधिकारमें कोई नई रदबदल नहीं होगी जाति भ्रष्ट वा धर्मभ्रष्ट हुए लोगोंके वारसहक्ककी रक्षाके लिये पहिले ही सन् १८५० में एक बिल बन चुका है। ६. इससे हिन्दूओंकी सामयिक कुटुम्बपद्धतिमें धक्का लगेगा तथा कुटुम्बमें वर्णसंकरता आवेगी, यह भय भी निराधार है । ७. जन्मसे हिन्दू परन्तु जुदी जुदी जातिके अथवा एक ही जातिके अन्तर्गत भेदोंके वर वधू हों, तो भी रजिष्ट्री कराते समय दोनोंको कहना पड़ता है कि, हम हिन्दू नहीं है, यह आपत्ति इस बिलसे दूर हो जायगी । ८. पुराणादि ग्रन्थोंमें वर्णन किये हुए गांधर्व और राक्षसादि विवाहोंसे जोकि शिष्टसंमत थे, यह पुरुषस्त्रीकी प्रसन्नतापूर्वक किया हुआ नियमित विवाह विधान बहुत कुछ श्रेष्ठ है । यह विवाह गान्धर्व और स्वयंवर विवाहके समान होनेपर भी सामाजिक नैतिक दृष्टीसे उसकी अपेक्षा श्रेष्ठ है । केवल धनके लोभसे बुड्ढोंके गलेमें जिस विधिसे कन्याएं बांध दी जाती हैं, उसकी अपेक्षा इस विवाह-

विधिकी पवित्रता विद्वान पुरुष तो अच्छी हीं समझेंगे । ९. इस बिलसे जो यह शंका की जाती है की हिंदुओंमें 'छोड़छुट्टी' की पद्धति रूढ हो जायगी, सो भी व्यर्थ है। क्योंकि अभीतक १७७२ के कायदेसे एक भी 'वैवाहिक इस्तीफा' नहीं हुआ है। १०. यह सब चाहने लगे हैं कि, हिन्दुओंकी संख्या बढ़े और दूसरे धर्मवालोंको हिन्दूधर्मकी दीक्षा देनेका भी उपक्रम हुआ है । फिर जातिभेदको न मानकर विवाह करनेवाले परन्तु हिन्दूधर्मके मूल भूत तत्त्वोंको माननेवाले लोगोंको हिन्दू कहनेका अधिकार न रहना कहांतक बुद्धिमत्ताका काम हो सकता है ? हिन्दूओंमें जिस प्रकार नाना प्रकारकी विवाह पद्धतियोंको माननेवाली अनेक जातियां हैं, उसी प्रकार इस प्रकारके विवाहको माननेवाले लोगोंकी एक विशिष्ट जाति समझी जाने लगे, तो क्या अन्याय है ? ११. प्राचीन ग्रन्थोंमें ब्राम्हण, क्षत्रियादि जातियोंमें अनुलोम प्रतिलोम विवाहोंके सैकड़ों उदाहरण मिलते हैं जो उस समय जायज समझे गये हैं । सुप्रसिद्ध राजा चन्द्रगुप्तने सेल्यूकसकी (म्लेच्छ) राजकन्यासे विबाह किया था। मेवाड़के एक राजपूतराजाका ईराणकी एक राजकन्याके साथ विवाह करनेका उदाहरण इतिहास प्रसिद्ध है । काठियावाड़के अनेक राजा वा सरदार मुसलमान स्त्रियोंसे अब भी विवाह करते हैं और उनकी सन्तति उत्तराधिकारिणी होती है। जैनियों और हिन्दूओंमें परस्पर विवाहसम्बन्ध होते हैं । इस प्रकार यह बिल किसी भी तरह अनिष्टकारक नहीं हैं ।

जैन समाजको इन दोनों पक्षके साधक बाधक प्रमाणोंपर विचार करके अपना मत स्थिर करना चाहिये ।

विविधविषय ।

जैनियोंकी संख्यामें कमी—बम्बई प्रान्तकी मनुष्यगणनाकी निश्चित संख्या अब प्रकाशित हुई है, वह २७०६९८४२ है। उससे मालूम होता है कि, हिन्दुओंकी प्रतिशत ९-३, मुसलमानोंकी ६-४, पारसियोंकी ५-६, और क्रिश्चियनोंकी ११-६ वृद्धि हुई है परन्तु जैनियोंकी वृद्धि न होकर उलटी प्रतिशत ९ की कमी हुई है। जैनियोंके लिये यह बड़ी चिन्ताका विषय है। इसके कारण सोचकर इनको टालनेका उपाय करना चाहिये।

सार्वजनिक पुस्तकालय—अपनी प्रजाको विदुषी बनानेके लिये बड़ौदा महाराज बड़ा भारी उद्योग कर रहे हैं। बड़ौदाके चलते फिरते पुस्तकालयोंकी बात पाठक पढही चुके हैं, अब उन्होंने सार्वजनिक पुस्तयालयोंके लिये एक नया कानून बनाया है। वह यह कि, यदि किसी ग्रामके लोग सार्वजनिक पुस्तकालय खोलना चाहें तो वे स्वयं मिलकर जितना चन्दा करेंगे, उतनाही चन्दा लोकलबोर्ड फंडसे और उतनाही सेंट्रललायब्रेरी डिपार्टमेंटसे सहायता स्वरूप दिलवाया जायगा अर्थात् यदि किसी नगरके लोग ५०० चन्दा करें, तो उन्हें ५००) लोकलबोर्डसे और ५००) से० ला० डि० से मिल जायगा, इस तरह १५००) का खासा पुस्तकालय बन जायगा। पुस्तकालयकी इमारतोंके लिये भी इसी प्रकारका अर्थात् $\frac{1}{3}$ प्रजाका और $\frac{2}{3}$ सहायताका नियम है। महाराजकी इस उदारताके कारण इस समय २४१ से अधिक पुस्तकालय बड़ोदा राज्यमें स्थापित हो चुके हैं!

नई छपी पुस्तकें।

भाषानित्यपाठसंग्रह—जिसमें नमस्कारस्तवन, सुप्रभाताष्टक, दर्शनाष्टक, दौलतकृत दर्शनपाठ, भूधरकृत दर्शनपाठ, प्रातःस्मरणीय पद, आदिनाथस्तोत्र नाथूरामप्रेमीकृत आदिनाथस्तोत्र हेमराजजीकृत, विषापहारस्तोत्र, कल्याणमंदिरस्तोत्र, एकीभावस्तोत्र, भूपालचौबीसी, आलोचनापाठ, सामायिकपाठ, वैराग्यभावना, निर्वाणकाण्ड, गुरुस्तुति, बारह भावना, और सरस्वतीस्तवन इस प्रकार १९ पाठ भाषाके हैं। निर्णयसागर प्रेसमें छपा है। मनोहर रेशमी जिल्दका आठ आना। रेशमी पट्टीवाली जिल्दका मूल्य छह आना है।

सामायिकपाठ—अमितगतिआचार्यकृत मूल और शीतलप्रसादजी ब्रह्मचारीकृत भाषाटीका, प्रथमावृत्ति हाथोंहाथ बिक जानेसे फिरसे छपाया गया है। मूल्य एक आना।

मोक्षशास्त्र—बालबोधिनीभाषाटीका। संशोधन और परिवर्धन करके पहिलेकी अपेक्षा मोटे और पुष्ट कागजपर यह संस्करण छपाया गया है। मूल्य सादी जिल्दका बारह आना, कपड़ेकी जिल्दका चौदह आना।

अनुभवप्रकाश—पं. दीपचंदजीशाहकृत अध्यात्मका वचनिकामय ग्रंथ। खुले १२० पत्रोंपर छपा हुवा। मूल्य सिर्फ छह आना।

ज्ञानदर्पण—यह भी पं. दीपचन्दजीशाहकृत अध्यात्म विषयका छन्दोवद्ध मनोहर ग्रंथ है। मूल्य चार आना।

मुक्तागिरि तीर्थक्षेत्रका रंगीन चित्र—देखने योग्य है। मूल्य पांच आना।

गणरत्नमहोदधि—व्याकरणका अपूर्व ग्रंथ है। इसकी कुछ कापीयें हमने विक्रियार्थ मंगाई है। मूल्य दो रुपिया।

पुस्तकोंका विशेष हाल जानना हो तो बड़ा सूचीपत्र मंगाकर देखिये।

मैनेजर—**श्रीजैनग्रंथरत्नाकर कार्यालय,**
हीराबाग, पो० गिरगांव–**बम्बई**।

नये वर्षका उपहार।

पंडित प्रवर टोडरमलजी कृत

मोक्षमार्गप्रकाश।

जो ग्रन्थ एक बार छपकर तीन रुपयेमें हाथोंहाथ बिक गया है, वही महान् ग्रन्थ बहुत ही शुद्धतापूर्वक छपा हुआ जैनहितैषीके ग्राहकोंको केवल डांक खर्चादिके लिये आठ आना अधिक लेकर उपहारमें दिया जायगा। जैनहितैषी सरीखा एक छोटासा मासिक-पत्र इससे अधिक और क्या साहस कर सकता है?

भाषावचनिकामें अभीतक जैनधर्मके जितने ग्रन्थ बने हैं, मोक्ष-मार्गप्रकाश उनमें सर्वोपरि है। यह किसी मूलग्रन्थका अनुवाद अथवा टीका नहीं है, किन्तु एक आचार्य तुल्य विद्वानके बहुत बड़े धार्मिक अनुभवोंका स्वतंत्र संग्रह है। गहन से गहन विषयोंका जितनी मार्मिकतासे इस ग्रन्थमें निरूपण किया है, वैसा शायद ही किसी ग्रन्थमें मिलेगा। प्रत्येक घरमें इस ग्रन्थके विराजमान होनेकी जरूरत देखकर हमने इस वर्ष इसे उपहारमें रक्खा है। पहिली बार जब यह लाहोरमें छपा था, तब भाषामें बहुत फेरफार किया गया था, परंतु अबकी बार हमने ग्रन्थकर्त्ताकी खास भाषामें ज्योंका त्यों बहुत ही शुद्धतापूर्वक पुष्ट कागजोंपर छपाया है। सब मिला-कर ५०० पृष्ठके अनुमान होंगे। पिछले वर्षोंके उपहार ग्रन्थोंमे इस वर्षका ग्रन्थ ढाई गुणा बड़ा होगा।

ग्रन्थ पूरा छप चुका है जिल्द तयार हो रही है। लगभग एक महिनेमें तयार हो जावेगा। और दूसरे अंकके रवाना होनेके पहिले२ रवाना करना शुरू कर दिया जायगा। इसलिये नये और पुराने ग्राहकोंको या तो २~) का वी. पी. भेजनेकी आज्ञा देना चाहिये। या दो रुपयेका मनीआर्डर भेज देना चाहिये। विना मनीआर्डर आये वा वी. पी. भेजनेकी आज्ञा आये उपहार किसीको नहीं भेजा जायगा।

जैनहितैषीके नियम।

१. जैनहितैषीका वार्षिक मूल्य डांकखर्च सहित १॥) पेशगी है।

२. प्रतिवर्ष अच्छे २ ग्रन्थ उपहारमें दिये जाते हैं और उनके छोटे बड़ेपनके अनुसार कुछ उपहारी खर्च अधिक भी लिया जाता है। इस सालका उपहारी खर्च ॥) है। कुल मूल्य उपहारी खर्चसहित २) है

३. इसके ग्राहक सालके शुरूहीसे बनाये जाते हैं, बीचमें नहीं, बीचमें ग्राहक बननेवालोंको पिछले सब अंक शुरू सालसे मंगाना पड़ेंगे, साल दिवालीसे शुरू होती है।

४. जिस साल जो ग्रन्थ उपहारके लिये नियत होगा वही दिया जायगा। उसके बदले दूसरा कोई ग्रन्थ नहीं दिया जायगा।

५. प्राप्त अंकसे पहिलेका अंक यदि न मिला होगा, तो भेज दिया जायगा। दो दो महिने बाद लिखने वालोंको पहिलेके अंक फी अंक दो आना मूल्यसे प्राप्त हो सकेंगे।

६. बैरंग पत्र नहीं लिये जाते। उत्तरके लिये टिकट भेजना चाहिये।

७. बदलेके पत्र, समालोचनाकी पुस्तकें, लेख वगैरह "**सम्पादक, जैनहितैषी, पो० गिरगांव–बम्बई**"के पतेसे भेजना चाहिये।

८ प्रबंध सम्बंधी सब बातोंका पत्रव्यवहार मैनेजर, **जैनग्रंथरत्नाकरकार्यालय पो० गिरगांव, बम्बईसे** करना चाहिये।

भद्रबाहु चरित्र।

इस ग्रन्थमें अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहुका चरित्र तथा श्वेताम्बर, यापनीय ढूंढक आदि संघोंकी उत्पत्तिका वर्णन है। मूलग्रन्थ आचार्य रत्ननन्दिका बनाया हुआ है, और भाषाटीका पं० उदयलालजी काशलीवालने बनाई है। मूल श्लोक नीचे बारीक टाइपमें दिये हैं और भाषा मोटे टाइपमें ऊपर दी है। प्रारंभमें श्वेताम्बर और दिगम्बरोंकी प्राचीनता अर्वाचीनताके विषयमें लगभग २० पृष्ठका एक निबन्ध है। मूल्य चौदह आना।

नमः सिद्धेभ्यः

जैनहितैषी.

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम् ।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥ १ ॥

आठवाँ भाग] मार्गशिर श्रीवीर नि० सं० २४३८ [दूसरा अंक

आकार निरूपण ।

[मि० गांधी, बी. ए., एम. आर. ए. एस. के वाशिंगटनमें दिए हुए एक अंग्रेजी व्याख्यानका अनुवाद.]

(२)

एक और आकार सात अंधे आदमियों और एक हाथीका है। सात अंधे आदमी यह जानना चाहते थे कि, हाथी कैसा होता है। वे उस स्थानपर गये जहां हाथी था। किसीने उसके कानपर हाथ रक्खा, किसीने टांगपर और किसीने दुम आदि स्थानोंपर। जब लोगोंने पूछा कि, हाथी कैसा होता है, तो एकने कहा—हाथी ऐसा होता है जैसा छाज अर्थात् सूप। दूसरेने कहा—नहीं महाशय, तुम असत्य कहते हो हाथी थंभ जैसा होता है। तीसरेने कहा—नहीं, तुमने धोखा खाया—वह गावदुम कैसा होता है। औरोंने भी इसी तरह बताया। तब उसके मालिकने कहा—मित्रो, तुम सब हीने गलती खाई। तुमने हाथीको सब तरफसे नहीं देखा। यदि

ऐसा करते, तो एक तरफी बात न कहते। इस आकारसे जैनी यह बात सिद्ध करते हैं कि, किसीको ऐसा उपदेश नहीं देना चाहिये कि (**वस्तुका) धर्म इसी प्रकार (एकान्तरूप) है और प्रकार नहीं।** जैनियोंकी एक कहावत है, जिसका यह भाव है कि, छहदर्शन एक ही पूरे (यथार्थ) दर्शनके भाग हैं। यदि उनको अलग अलग लो, तो वे असत्य हैं।

जैनियोंका एक और आकार यह है—एक आमका वृक्ष है और छह मनुष्य हैं। वे मनुष्य एक ही सभाके सभासद थे। उन्होंने आम चखना चाहा, इसलिये वे एक आमके बागमें गये। एक आमके वृक्षके पास पहुंच कर उनमेंसे एकने कहा,—इस झाड़के फल बड़े सुहावने और स्वादिष्ट हैं। हमको चाहिये कि, इस सारे झाड़को काट डालें और आम खावें। दूसरेने कहा,—हमको सब आमोंका क्या करना है? एक बड़ी शाखा काट लें। उससे काम चल जायगा। तीसरेने कहा,—नहीं, छोटी शाखा काफी होगी। चौथेने कहा,—छोटीसे भी छोटी शाखा हमको सन्तुष्ट कर देगी। पांचवेंने कहा,—केवल खानेलायक आम गिरा लेने ही से काम चल जायगा। अन्तिम मनुष्यने कहा,— इन सब बातोंसे हमको क्या करना है? वृक्षको काटने या शाखा काटनेसे क्या प्रयोजन? जो आम नीचे गिरे हैं, वे ही काफी हैं। लोग समझते हैं कि, यह आकार आलस्यकी शिक्षा देता है। परन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं है। यह जीव रक्षाका उपदेश देता है। इससे यह भी सीख मिलती है कि, थोड़ेसेके लिये बहुतको हानि नहीं पहुंचाना चाहिये।*

---

* वास्तवमें यह आकार जीवके कषायानुरंजित परिणामोंकी तरतमताको प्रगट करता है। **सम्पादक.**

हम आपको और भी जैन आकारोंके सम्बन्धमें बतलाते। परन्तु इससे हमारा सारा समय एक ही ओर लग जायगा। इसलिये अब हम कुछ ब्राह्मणोंके आकारोंका वर्णन करेंगे। उनमें कोई २ हमारे भी होंगे जैनियोंके भी होंगे,—

भारतवर्षके कुछ धर्मोंमें ॐ शब्दका प्रयोग होता है। यह शब्द **अ, उ** और **म्** इन तीन अक्षरोंसे बना हुआ है। जब इन तीनोंकी संधिकी जाती है, तब ॐ वा 'ओम्' होता है। ब्राह्मण कहते हैं कि, ये तीन अक्षर उत्पत्ति, रक्षण और विनाश तत्त्वको प्रगट करते हैं। जब अ का उच्चारण किया जाता है, तब कण्ठसे श्वास आती है। इसलिये वह 'उत्पत्ति'को प्रगट करता है। उ के उच्चारणमें थोड़ी देरके लिये श्वास रुकती है- स्थिर होती है इस कारण वह 'रक्षण' तत्त्वको बतलाता है। म्के उच्चारणमें कुछ समयके लिये वायु रुकती है और फिर नासिकामेंसे निकलती है। इससे इसको 'विनाश' और 'पुनर्जन्म'का सूचक मानते हैं। जैनी **ओम्** को अ, अ, आ, उ और **म्** इन पांच अक्षरोंसे बना हुआ मानते हैं। इनमें चार स्वर हैं और पांचवां व्यंजन है। सबकी संधि होकर **ओम्** बनता है। ये पांच अक्षर पंचपरमेष्ठीके द्योतक हैं। पहिला अक्षर **अ** अर्हत् शब्दका पहिला अक्षर है। जब तक वे इस संसारमें रहते हैं, अपने सम्प्रदायके गुरु होते हैं। दूसरा अक्षर **अ** अशरीरी अर्थात् सिद्धका वाचक है। तीसरा अक्षर **आ** आचार्यका वाचक है, जो कि अरहंतके बराबर तो नहीं होते, परन्तु साधुओंके नायक होते हैं, जो मोक्ष प्राप्त करेंगे वा सिद्ध होंगे। चौथा अक्षर **उ** उपाध्याय वाचक है, जिनके कि साधु शिष्य होते हैं। पांचवाँ अक्षर **म्** मुनि शब्दका सूचक है। जब हम **ओम्** शब्द कहते हैं, तब हमारे ध्या-

नमें पंचपरमेष्ठी आजाते हैं। इस प्रकार हमारा अर्थ 'आध्यात्मिक' है और ब्राह्मणोंका 'भौतिक' है। पंचपरमेष्ठीके गुण विलक्षण हैं। प्रथम परमेष्टीके गुण १२ दूसरेके ८ तीसरेके ३६ चौथेके २५, और पांचवेंके २७ होते हैं। यदि किसी मनुष्यमें १२ गुणपाओ तो वह श्रीअरहंत है। यदि २५ गुणपाओ, तो उपाध्याय है। इसी प्रकार २७ पाओ, तो वह मुनि है। ये सब गुण मिलाकर १०८ होते हैं। इसीलिये मालामें १०८ दाने होते हैं। माला फेरते समय हम अपने ध्यानमें इन पंचपरमेष्ठियोंका और उनके गुणोंका विचार करते हैं, जो कि हमको मोक्षके मार्गमें सहायता देते हैं।

हिन्दूओंके मन्दिरोंमें बहुतसी देवी और देवताओंकी प्रतिमाएं होती हैं। कलकत्तेमें आपने सुना होगा कि, एक ऐसी मूर्ति है जिसके साम्हने बहुतसे पशु वध किये जाते हैं। यह पशुवधका रिवाज अभी तक उक्त शहरसे लुप्त नहीं हुआ है। साधारण मनुष्यको वह शकल बहुत डरावनी मालूम होती है। देवीके मुंहसे लम्बी लाल जीभ निकली हुई दर्शकके दिलमें होल पैदा कर देती है। इसके इधर उधर कई छोटे २ देवी देवता हैं और इसके सिरपर शिवकी मूर्ति है। इसका अर्थ आत्मिक और भौतिक दोनों अभिप्राय लिए हुए है। देवीकी जो दश भुजाएं हैं, वे सब उत्पादक शक्तियोंको प्रगट करती हैं। पांच एक प्रकारकी और पांच उनके विरुद्ध। दक्षिण ओरकी भुजाएं एक प्रकारकी शक्तियोंको प्रगट करती हैं और वाम ओरकी उनसे उलटी शक्तियोंको। दाहिनी और एक देवताकी सूरत है, जिसका आकार मनुष्यका-सा परन्तु सिर हाथीकासा है। दाहिनी ओर लक्ष्मी देवी है। पशुके सिरवाले मनुष्याकारसे समझना चाहिये कि मनुष्य पशुकी

इच्छाएँ रखनेवाला है, इस लिये उसके पास लक्ष्मी अर्थात् दौलत है। बाईं ओर इससे उलटी शक्ति आत्मिक है और इस कारण इस ओर मनुष्यका आकार सम्पूर्ण है, तथा ज्ञानदेवी सरस्वतीकी मूर्ति है। उसको (आत्मज्ञ मनुष्यको) दौलतकी इच्छा नहीं है। वह मूर्ति एक प्रकारसे बड़ी अच्छी मूर्ति है, परन्तु पीछेसे लोग उसके असली मतलबको भूल गये और संसारमें फँस गये। उन्होंने यह समझा कि, संसारकी शक्ति एक भावरूप नहीं है, बलिक एक व्यक्ति विशेष है। जिसकी वे शक्तियां हैं, उसको हम प्रसन्न करना चाहते हैं। इसलिये वे देवीके साम्हने पशुका बलिदान करते हैं। यह हिन्दुओंके लिये जो कि बड़े दयावान् और शान्तिप्रिय हैं, बड़े शोककी बात है। वे सत्यताको भूल गये हैं। उन्होंने धार्मिक लेखोंको मटियामेट कर डाला है। बहुतसे नये वाक्य मिला लिये हैं। अक्षर बदलकर सतीका होना भी शास्त्रोक्त बतला दिया है।

भारतवर्षकी सब संप्रदायों और जातियोंके लोग अपने मस्तक पर किसी सुगन्धित वस्तुसे जुदे २ प्रकारके तिलक लगाते हैं। इसके लिये जैनी संदल (चन्दन) को काममें लाते हैं। बहुत थोड़े लोग इन तिलकोंके लगानेका मतलब समझते हैं। जैनी अपने तिलकको हृदयके आकार भौंहोंके बिलकुल बीचमें बनाते हैं * हमारे शरीर विचारके अनुसार वह रगोंका केन्द्र है जो कि प्रकाश या दिव्य दृष्टीका स्थान है जब हम व्रत पालते हैं, तब हमको वे बहुतसी बातें इस केन्द्रमें होकर दिखती हैं, जिनको हम ऐन्द्रीय चक्षुसे नहीं देख सकते हैं। जब हम तिलक लगाते

* दिगम्बर संप्रदायमें तिलकका आकार मानस्तंभाकार माना है।

सम्पादक,

हैं, तब हमारा अभिप्राय इस बातका होता है कि हम इस केन्द्रसे प्रकाश प्राप्त करेंगे। मन्दिरोंमें जानेसे हमारा यह अभिप्राय नहीं होता कि, हमें वहां सम्पदाकी प्राप्ति हो। किन्तु यह प्रयोजन रहता है कि, हमको वह शक्ति प्राप्त हो जाय जिससे बहुत अधिक ज्ञानकी प्राप्ति हो। हम केवल धार्मिक सम्पत्ति चाहते हैं। ब्राह्मण अपने मस्तकपर तीन लकीरें बनाते हैं। ब्राह्मण इससे तीन शक्तियोंका मतलब लेते हैं। ये शक्तियां उत्पादन रक्षण और नाशन हैं। परन्तु जैनी इन भौतिक शक्तियोंका कुछ भी विचार नहीं करते हैं। वे कहते हैं कि, हमारा हृदय अच्छे आचार विचारोंके द्वारा हमको उच्च अवस्थापर ले जा सकता है।

अपने मन्दिरोंमें हम पूजन करते समय चौकी या तिपाईपर जो आकार बनाते हैं, उनमेंसे एक आकार आठ पँखुरीवाले कमलका होता है—
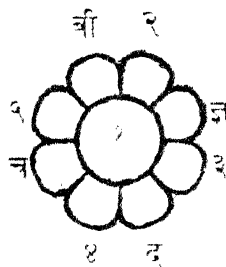
इस कमलकी पँखुरियोंमें हम बड़े २ तत्त्वों वा विचारोंका स्थान बांधते हैं। जैसे पांच परमेष्ठी हैं। पहिले अर्थात् अर्हन्त (१) को हम बीचमें विचार करते हैं। सिद्ध (२) ऊपरके सिरपर, आचार्य (३) दाहिनी ओर, उपाध्याय (४) तलीमें और अन्य साधु (५) बाईं ओर। बीचमें कोणोंकी पँखुरियोंमें सम्यक् ज्ञान (ज्ञ) सम्यग्दर्शन (द) सम्यक्चारित्र (च) और वीर्य (वी) है।

जब माला हमारे हाथमें होती है, तब हम श्रीअरहंतका विचार करते हैं और उनके गुणोंका ध्यान करते हैं। इसी प्रकार सिद्धोंके गुणोंका ध्यान करते हैं और इसी प्रकार औरोंका। जब हम इन गुणोंका विचार करते हैं, तब हमारा ध्यान और कहीं नहीं जाता और मनको दृढ़ता मिलती है।

कईएक प्रकारके आकार पारसी यूनानी और रूमी लोगोंमें भी प्रचलित हैं। मिश्रके लोगोंमें सर्पका आकार माना जाता है, जिसका अर्थ अनादि है। और बिल्लीका आकार मानते हैं, जिसका अर्थ चन्द्रमा बतलाते हैं। रूमी और यूनानी हजरत ईसासे बहुत पहिले क्रॉसको मानते आये हैं। इसका कोई गूढ़ अर्थ होगा। क्रॉसका प्रयोग सब मुल्कोंमें पाया जाता है। 'रोजीक्रूशी' भी क्रॉसको रखते हैं। वे यह अर्थ लगाते हैं----
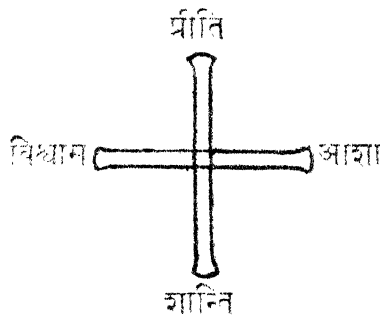
रोजीक्रूशी लोगोंका यह कहना है कि यदि मनुष्य प्रीति आशा शान्ति और विश्वासपर अमल करे तो वह केन्द्रपर पहुंच जायगा इसका असली अभिप्राय यह था कि, अपने उसी अंगका बलिदान करदेवे।

पारसीलोग अग्निकी पूजा करते हैं । अग्निका मूल सूर्य है । सूर्य आत्मिक शक्तिका आकार है । वह आत्मिक शक्तिका मूल समझा जाता था । पारसी पूजनके समय यह आकार बनाते हैं.—
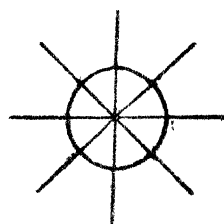
चेतनदास बी. ए. एम. सी. ।

विषयी भ्रमर

(१)

होकर अति अनुरक्त, किया रातोंकी रातें ।
महा मधुर मधुपान, भूलि अलि वे सब बातें ॥
अब हिमतैं लखि क्रांति, कमलिनीकी मुरझाई ।
स्वार्थ साधु उस ओर, न देखें आँख उठाई ॥

(२)

आज पान करके कमलनिके, सुमधुर रसका ।
कल होता बेकल अलि लखि, बकुलनकी कलिका ॥
नित नित नव अभिलाष, मलिन-मानस जो करता ।
'एक प्रीतिव्रत' उससे कहु, कैसे सध सकता ॥

(३)

कमलनिके सहवास रह्यौ, पर तोष न पायौ ॥
बकुल चमेलनिहूकौ संग, न जिसे सुहायौ ॥

उस मधुकरको देखि, रीझते नीम सुमनपर ।
कौतुक होता है विषयी, जीवोंकी रुचिपर ॥

(४)

मधुपराम मत शोक करौ छूटे झंझटसे ।
विचरो जाय करीरनके, फूलनपर सुखसे ॥
सारहीन कीनी तुषारने, शोभा छीनी ।
अबन कामकी रही मालती जाय न चीनी[1] ॥

शिवसहाय चौबे,
देवरी (सागर)

भट्टारक ।

(४)

(भाग ५ अंक १०–११ से आगे)

ये गृहस्थ हैं या मुनि ?

पूर्वके और वर्तमानके भट्टारकोंका स्वरूप दिखलाया जा चुका। अब यह सोचना चाहिये कि, जो धर्मके साक्षात और परम्परारूप दो मार्ग हैं--मुनिमार्ग और गृहस्थमार्ग, उनमेंसे ये किस मार्गमें गिने जा सकते हैं ।

दिगम्बर सम्प्रदायमें मुनियोंका और गृहस्थोंका जो स्वरूप कहा है और जिसे बीसपंथी तेरहपंथी सब ही स्वीकार करते हैं, उसके अनुसार यदि किसीसे पूछा जाय कि, भट्टारक कौन हैं, मुनि या गृहस्थ वा अनगार या सागार ? तो वह विचारके यही उत्तर देगा कि, ये एक प्रकारके गृहस्थ हैं । क्योंकि इनका परिग्रहसे

१ चीनी न जाय अर्थात् पहिचानी नहीं जाती ।

संसर्ग नहीं छूटा है, बड़े भारी परिग्रहके ये स्वामी होते हैं। यद्यपि पहिलेके भट्टारक केवल वस्त्रादि मात्र ही परिग्रह रखते थे और अबके भट्टारक लक्षाधीशों सरीखा परिग्रह रखते हैं, इस अपेक्षा इनके परिग्रहमें न्यूनाधिकता अवश्य हुई है, परन्तु जब केवल एक लंगोटी मात्र परिग्रह रखने वाला और प्रायः सब आचरण मुनियों सरीखे पालनेवाला ऐलक, श्रावकोंमेंही गिना जाता है, तब इन्हें श्रावक वा गृहस्थ क्यों न कहेंगे ? ये तो साक्षात् गृहस्थ हैं। हां; यह बात दूसरी है कि, सामान्य श्रावक वा गृहस्थ और ये एक-हीसे नहीं हो सकते हैं साधारण गृहस्थोंकी अपेक्षा इनका पद ऊंचा माना जा सकता है और इनके आचरणोंके अनुसार पहि-लीसे लेकर सातवीं आठवीं प्रतिमा तककी कल्पना इनके पद सम्बन्धमें की जा सकती है।

अच्छा मानलिया कि, ये एक प्रकारके श्रावक वा गृहस्थ हैं। परन्तु इनसे भी तो पूछ लीजिये कि, आप कौन हैं ? इनसे विना पूछे एकतरफा फैसला कर देना भी तो ठीक नहीं है। ये तो कहते हैं कि, " हम दिगम्बर सम्प्रदायके मुनिही नहीं बल्कि आचार्य हैं और भगवान कुन्दकुन्दादि आचार्योंके पट्टके परम्पराधिकारी हैं। पंचम कालके दोषसे हमने वस्त्रादि परिग्रहको धारण कर लिया है, विवश होकर हमने वस्त्र धारण किये हैं, परन्तु वास्तवमें हैं हम दिगम्बर मुनि।" इनकी बहुतसी क्रियाएं भी ऐसी हैं, जिनसे इन्हें गृहस्थोंकी पंक्तिमें बिठाना ठीक नहीं जान पड़ता है। जब किसी पुरुषको भट्टारककी दीक्षा दी जाती है, तब उसे केशलोंच करना पड़ता है और नग्न भी होना पड़ता है। कोई २ भट्टारक प्रतिवर्ष एक बार नग्न होनेकी क्रिया करते हैं। भोजनके समय

भी बहुतसे भट्टारक नग्न होते हैं। इससे यों मुनि ही मालूम होते हैं और हमेशासे ये अपनेको मुनि ही समझते आये हैं। ईडरके भंडारमें एक प्राचीन तथा जीर्ण पुस्तक है, उसमें भट्टारक दीक्षाकी विधि लिखी है। उसका थोड़ासा अंश जो हमारे पास पं० नन्दनलालजी अध्यापक ने कृपाकरके भेजा है, उससे मालूम होता है कि, पहिले गृहस्थ या श्रावकको भट्टारककी दीक्षा नहीं दी जाती थी किन्तु किसी योग्य मुनिको तलाश करके उसे भट्टारक पदपर प्रतिष्ठित करते थे। उसे सूरिमंत्र देते थे और उसमें आचार्यके गुणोंका आरोपण करते थे। इसके सिवाय उसमें भट्टारकके लिये धर्माचार्याधिपति, मुनि लब्धाचार्यपद, जिनधर्मोद्धरणधीर, आदि विशेषण भी दिये हैं। इससे साफ मालूम होता है कि, भट्टारक वास्तवमें गृहस्थ नहीं हैं, मुनि तथा आचार्य हैं। और कम से कम उस पंथके लोग जिसने भट्टारकोंको अपने धर्मगुरुके रूपमें स्वीकार किया है, प्रारंभसे अबतक उन्हें मुनि वा आचार्य ही मानते आये हैं। नन्दिसंघ, सेनसंघ आदिकी जो गुर्वावली वा पट्टावली है, उनमें भी पूर्व गुरुओंकी परम्परासे भट्टारकोंकी परम्परा मिलाइ गइ है और उनका जो नामकरण होता है, वह भी पूर्व गुरुओंके समान होता है। जैसे गुणचन्द्र, रत्नकीर्ति, वीरसेन, सुरेन्द्रभूषण आदि।

भट्टारक दीक्षा विधानसे और भट्टारकोंके इतिहाससे इस बातका आभास तो जरूर होता है कि, देश कालकी अनुकूलता नहीं होनेसे ही मुनियों वा आचार्योंके स्थानमें भट्टारकोंकी स्थापना की गई थी और समाजके बहुत बड़े भागने इस सुधार वा रिफार्मको स्वीकार कर लिया था। परन्तु इस विषयका प्रतिपादन वा विवेचन

किसी भट्टारकका वा अन्य विद्वानका किया हुआ देखनेमें नहीं आया कि, यह मार्ग शास्त्रोक्त कैसे हो सकता है। जिस तरह श्वेताम्बराचार्योंने वस्त्रादि सहित अवस्थामें भी मुनिपना सिद्ध किया है और इस विषयके अनेक खंडन मंडन युक्त ग्रन्थ रच डाले हैं, उस तरह भट्टारकोंने अपने परिग्रह युक्त वेषमें निर्ग्रन्थपनेकी सिद्धिका कोई ग्रन्थ बनाया हो, ऐसा अभीतक सुननेमें नहीं आया है। यदि बनाया हो, तो मुझे मालूम नहीं है। इस समय हमारे सम्प्रदायमें जिन ग्रन्थोंका विशेषतासे प्रचार है और जिनकी विशेष मान्यता है, उनमें तो जगह २ ऐसे ही वाक्य मिलते हैं। जिनसे भट्टारक पदकी अशास्त्रोक्तता ही सिद्ध होती है। बल्कि यह पद गृहस्थोंके साधारण पदसे भी नीचा और अपूज्य ठहरता है। कुछ प्रमाण यहां उद्धृत किये जाते हैं:—

बालग्गकोडिमत्तपरिग्गहगहणो ण होइ साहूणं।
भुंजेइ पाणिपत्ते दिण्णण्णं एक्कठाणम्मि॥ १७॥
जहजायरूवसरिसो तिलतुसमित्तं ण गहदि अत्थेसु।
जइ लेइ अप्पबहुअं तत्तो पुण जाइ णिग्गोदं॥ १८॥
जस्स परिग्गहगहणं अप्पं बहुयं च हवइ लिंगस्स।
सो गरहिउ जिणवयणे परिग्गहरहिओ निरायारो॥ १९॥

[सूत्र पाहुड]

अर्थात्—साधुओंके पास बालकी नोंकके बराबर भी परिग्रह नहीं होता है। वे एक स्थानहीमें खड़े होकर श्रावकों द्वारा दिये हुए भोजनको अपने हाथमें रखकर खा लेते हैं॥ १७॥ जन्मते बालकके समान नग्न दिगम्बररूप धारण करनेवाले साधु तिलके छिलके बराबर भी परिग्रहको ग्रहण नहीं करते हैं। यदि वे थोड़ा बहुत परिग्रह ग्रहण कर लें, तो निगोद गतिको जाते हैं॥ १८॥

जिस लिंग वा वेषमें थोड़ा बहुत भी परिग्रहका ग्रहण किया जाता है, जिन वचनमें उस लिंगको गर्हित अर्थात् निन्दनीय बतलाया है। क्योंकि परिग्रहरहित ही निरागार वा मुनि होते हैं॥ १९ ॥

णवि सिज्झइ वच्छधरो जिणसासणे जहवि होइ तिच्छयरो।
णग्गो वि मोक्खमग्गो सेसा उम्मग्गया सव्वे ॥ २३ ॥

अर्थात्—चाहे तीर्थंकर भी हो, परन्तु वह भी यपि वस्त्र सहित अवस्थामें हो, तो मुक्त नहीं होता है। क्योंकि नग्न दिगम्बर ही एक मोक्षमार्ग है, शेष सबही उन्मार्ग हैं॥ २३ ॥

सुत्तत्थपयविणट्ठो मिच्छादिट्ठी मुणेयव्वो।
खेडे वि ण कायव्वं पाणियपत्तं सचेलस्स ॥ ७ ॥
णिच्चेलपाणिपत्तं उवइट्ठं परमजिणवरिंदेहिं।
एक्को वि मोक्खमग्गो सेसा य अमग्गया सव्वे ॥ १० ॥

(सूत्र पाहुड)

अर्थात्—जो कोई सूत्रके अर्थ और पदसे विनष्ट है, अर्थात् उसके विपरीत प्रवर्तना है, उसको मिथ्यादृष्टि जानना चाहिये। इस कारण वस्त्रधारी मुनिको कौतुक मात्रसे भी दिगम्बर मुनिके समान हाथपर भोजन न कराना चाहिये॥ ७ ॥ वस्त्रको न धारण करना, पाणिपात्र अर्थात् हाथपर रखकर भोजन करना यही अद्वितीय मोक्षमार्ग जिनेन्द्र देवने बतलाया है। शेप सबही अमार्ग हैं। ॥ १० ॥

जे जिणलिंगधरे वि मुणि, इट्ठपरिग्गह लिंति।
छद्दिकरे वि णु तेवि जिय, सो पुण छद्दि गिलंति ॥ २१७॥
केणवि अप्पा वंचियउ, सिरलुंचवि छारेण।
सयलवि संगह परिहरिय, जिणवरलिंगधरेण ॥ २१६ ॥

[परमात्मप्रकाश]

अर्थात्–हे जीव, जो मुनिलिंगका धारण करके इष्ट परिग्रहको ग्रहण करते हैं, वे कै (छर्दि) करके फिर उसी कैको खाते हैं ॥ २१७ ॥ किस जीवसे आत्मा ठगा गया ? जिसने जिनवरका लिंग धारण करके और राखसे मस्तकका लोंच करके समस्त परिग्रहका त्याग नहीं किया ॥ २१६ ॥

जे पंचचेलसत्ता गंथग्गाही य जायणासीला।
आधाकम्मामि रया ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि ॥ ७९ ॥

[मोक्षपाहुड)

जो पांच प्रकारके वस्त्रोंमें आसक्त हैं, परिग्रहके ग्रहण करनेवाले हैं, याचना सहित हैं, और अधःकर्म आदि दोषोंमें रत हैं, वे मोक्ष मार्गसे भ्रष्ट हैं।

विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः।
ज्ञानध्यानतपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते ॥

(रत्नकरंड श्रा०)

जो विषयोंकी आशासे रहित है, आरंभ और परिग्रह जिसके नहीं है और जो ज्ञान ध्यान तथा तपमें रत रहता है, वह तपस्वी प्रशंसाके योग्य है। (जो आरंभ परिग्रहादि सहित है, वह निंद्य है)।

इत्यादि प्रमाणोंसे स्पष्टतया प्रगट होता है कि, दिगम्बर सम्प्रदायकी धर्मपद्धतिके अनुसार भट्टारक मुनियोंकी वा आचार्योंकी गणनामें कभी नहीं आ सकते हैं। बल्कि भ्रष्ट लिंगियोंकी श्रेणीमें आकर उनका पद गृहस्थोंसे भी नीचा हो जाता है और उनका मानना पूजना भी दूषित ठहरता है।

कई लोग कहते हैं कि, भट्टारक मुनि नहीं किन्तु गृहस्थाचार्य हैं। परन्तु यह केवल एक कल्पना है और इसकी उत्पत्ति बहुतसे

भट्टारकोंको प्रतिष्ठादि कार्य कराते व्रतविधानादि बतलाते तथा श्रावकोंके पंचायती झगड़ोंमें पड़ते देखकर हुई है। वास्तवमें गृहस्थाचार्यके लक्षण भट्टारकोंसे घटित नहीं होते हैं। इन्द्रनंदिकृत **नीतिसारमें** गृहस्थाचार्यका लक्षण हमने देखा है; परन्तु इस समय उक्त ग्रन्थके न रहनेसे हम उसे यहां नहीं लिख सक्ते।

अब भट्टारकोंकी जरूरत है या नहीं?

अब इस बातका विचार करना चाहिये कि, वर्तमान समयमें भट्टारकोंकी जरूरत है या नहीं। मेरी समझमें जिस तरह राष्ट्रशकटको सुखपूर्वक चलानेके लिये राजकार्य धुरंधर संचालकोंकी हमेशा जरूरत रहती है, उसी प्रकारसे धर्मरथको सुव्यवस्थित पद्धतिसे चलानेके लिये धर्मोपदेशकोंकी वा धर्मज्ञोंकी आवश्यकता रहती है। पृथ्वीमें इस समय जितने धर्म प्रचलित हैं उन सबहीमें धर्मोपदेशक वा धर्मगुरु मौजूद हैं और वे ही अपने २ धर्मोंके प्रधान संचालक समझे जाते हैं। गुरुओंकी नियुक्ति जिस तरह प्रत्येक धर्ममें प्राचीन कालसे आवश्यक समझी आ रही है, उसी तरहसे अब भी है। समयमें और जैनसमाजमें असाधारण परिवर्तन हो जानेपर भी उनकी आवश्यकता कम नहीं हो गई है। यदि कोई यह समझता हो कि, जिस धर्मके अनुयायियोंमें शिक्षित कम हो, अशिक्षितोंकी संख्या अधिक हो, उसीमें धर्मवाहक गुरुओं उपदेशकोंकी जरूरत रहती है शिक्षितोंमें नहीं, तो यह भूल है। इंग्लेंड अमेरिका जर्मनी आदि पाश्चात्य देशोंमें अशिक्षितोंका प्रायः नाम शेष हो चुका है शिक्षित दिखलाई देते हैं, तो भी वहांके ईसाई धर्ममें पादरियोंकी आवश्यकता कम नहीं हुई है। अब भी वहां ईसाई धर्मकी बागडोर पादरियोंके हाथमेंसे किसीने छीनी नहीं है। और आगे छीनी जायगी इसके कोई लक्षण नहीं दिखलाई देते हैं।

भाविक प्रवृत्ति संसारकी ओर रहती है। पीछे जीविकादिके प्रपंच ऐसे लगे हैं कि, उन्हें चलानेके लिये उन्हें अपने जीवनका सबसे बड़ा भाग खर्च करना पड़ता है उन्हें इतना अवकाश नहीं मिल सकता है कि वे ऐहिक प्रपंचोंके समान पारलौकिक कार्योंमें भी अपने समयको व्यय करें। मुख्यतासे वे ऐहिक कार्योंहीके सम्पादक हैं। और यह नियम है कि, जब तक किसी कार्यकी ओर कोई पूरा २ लक्ष न लगावे, तब तक उस कार्यका सम्पादन सम्यक रीतिसे नहीं हो सकता है। इसलिये साधारण जैनसमाज कोई इस बातकी आशा करे कि, वह ऐहिक कार्योंके सामान धार्मिक कार्योंका भी भली भांति सम्पादन कर लेगा, तो उसका भ्रम है।

धार्मिक कार्योंके सम्यक् प्रकार चलानेके लिये ऐसे लोगोंकी जरूरत है, जो अपना खास समय धर्मत्तत्त्वोंके अनुसंधान तथा सम्पादनमें ही व्यय कर सकें। जिस तरह ज्योतिष, वैद्यक, विज्ञान, आदि विषयोंका पारंगत विद्वान् होनेके लिये इस बातकी आवश्यकता है कि, एक पुरुष एक ही विषयमें अपनी सारी शक्तियोंको तथा सारे समयको लगादेवे, उसी प्रकारसे धर्म विद्याका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये भी यह आवश्यक है कि, उसमें पुरुष अपना सारा जीवन व्यय कर दे। इससे सिद्ध हुआ कि प्रत्येक धर्ममें एक इस प्रकारका वर्ग होना चाहिये जो केवल धार्मिक हो और जिसका जीवन केवल धर्मसे सम्पर्क रखनेवाला हो।

जैन धर्मकी शिक्षाका प्रचार करनेके लिये जैन समाजकी ओरसे इस समय बहुत कुछ यत्न हो रहा है, और उससे बहुतसे जैन धर्मके ज्ञाता तयार हो रहे हैं। परन्तु ज्यों ही वे पढ़लिखकर तयार होते हैं, त्योंही सांसारिक चिन्ताएं उनका गला आ दवाती हैं, और

आगे उन्हें अपना समय जो केवल धर्मविचारमें ही खर्च करना चाहिये था, जीविकादिके कार्योंमें लगाना पड़ता है, इससे उनका धर्मज्ञान कमालियत पर नहीं पहुँच सकता है और उनसे धर्मका उपकार भी यथेष्ट नहीं हो सकता है। इसलिये ऐसे लोगोंकी बहुत आवश्यकता जान पड़ती है, जो जीवन भर जैनधर्मका अध्ययन मनन तथा परिशीलन करें और साधारण जनसमुदायको जो केवल ऐहिक-प्रपंचोंमें उलझा रहता है, धर्मका उपदेश देते रहकर उनके जीवन-को अधर्ममय न होने दें। वे लोग चाहे भट्टारक हों, चाहे मुनि हों चाहे उपदेशक हों और चाहे इनसे जुदे और किसी नये नामके ही धारक हों।

एक बात और है, वह यह कि, साधारण जन समुदाय पर जितना इस वर्गके लोगोंका प्रभाव पड़ता है, उतना उन लोगोंका नहीं पड़ सकता है, जिनका जीवन केवल प्रवृत्तिमय होता है। और ऐसे प्रभावके विना जिन धार्मिक संस्थाओंकी प्रत्येक समयमें आवश्यकता रहा करती है और जिनसे धर्म प्रचारमें असाधारण सहायता मिलती है, उनकी स्थापना नहीं हो सकती है। हमारे सम्प्रदायमें जो धार्मिक संस्थाओंकी सब सम्प्रदायोंसे अधिक कमी है, इसका एक कारण यह भी है कि, हमारे यहां इस प्रभावशाली वर्गकी सबसे अधिक कमी है, बल्कि ऐसा कहना चाहिये कि एक प्रकारसे अभावही है।

स्वरूप परिवर्तन।

यह तो निश्चय हो गया कि, जैनसमाजके लिये भट्टारकोंकी अथवा उनके समान एक वर्गकी आवश्यकता है। परन्तु इस बात-का विचार करना बाकी ही है कि, वर्तमानमें जो भट्टारक हैं,

उन्हींसे हमारी धार्मिक आवश्यकताएं पूरी हो जावेंगी या उनके स्थानमें कोई नई नियुक्ति करनी पड़ेगी।

हमारी समझमें यह बात संभव नहीं जान पड़ती है कि, भट्टारकोंको लोग उनके वर्तमान स्वरूपमें धर्मगुरु स्वीकार कर लेंगे। क्योंकि दिगम्बर सम्प्रदायमें जिन ग्रन्थोंकी मान्यता है, उनके अनुसार जैसा कि पूर्वमें कहा जा चुका है, भट्टारकका पद न तो गृहस्थोंकी श्रेणीमें आ सकता है और न मुनियोंकी में। यद्यपि बीसपंथके अनुयायी जिनकी संख्या लाखोंकी है, अब भी इन्हें अपना धर्मगुरु मानते हैं, परन्तु यह नहीं समझना चाहिये कि वे इनके चरित्रोंसे सन्तुष्ट हैं! वे यह जरूर चाहते हैं कि, इनके स्वरूपमें कुछ परिवर्तन हो जावे। इसके सिवाय बीसपंथियोंमें जो समझदार हैं, धर्मके जानकार हैं, भोले भक्त नहीं हैं, वे भट्टारकोंको मुनि समझकर अपना गुरु नहीं मानते हैं अर्थात् वे गुरुके स्वरूपको अन्यथा कल्पित नहीं करते हैं किंतु धर्मके एक संचालक, प्रचारक वा उपदेशक समझकर उनका सत्कार करते हैं। इससे यदि भट्टारकोंके स्वरूपमें उचित परिवर्तन किया जाय, और शांतितासे उसका अभिप्राय सर्वसाधारणपर प्रगट कर दिया जाय तो हमारी समझमें उसे तेरहपंथी जो कि, इन्हें भेषी वा कुलिंगी समझते हैं और बीसपंथी जो कि इन्हें शास्त्रोक्त नहीं किन्तु काम चलाऊ गुरु समझते हैं, दोनोंही स्वीकार कर लेंगे।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि, यह स्वरूप परिवर्तन कैसा किया जाय? इसके लिये हमें एक यह युक्ति सूझ पड़ती है कि, ये लोग अपनेको मुनि नहीं किन्तु सातवीं या आठवीं प्रतिमाके धारी गृहस्थही स्वीकार करें और सब लोग भी इन्हें यही समझकर आदर

सत्कारादि करें। इनकी दीक्षाके समय जो केशोत्पाटनके तथा नग्नादि होनेके ढोंग किये जाते हैं, वे नहीं किये जावें। केवल ब्रह्मचर्य्य प्रतिमाकी दीक्षा दी जावे और साथही जो इनका परिग्रह बेहद बढ़ गया है, वह बहुतही मामूली कर दिया जाय तथा जो प्रवृत्ति विशेष हो गई है, वह संकुचित कर दी जाय। नाम इनका भट्टारक ही रक्खा जाय और लोग इन्हें अपने गृहीगुरु समझें। इस पदकी दीक्षा उसीको दी जाय, जो विद्वान् हो, जिसे संसारसे विरक्ति होगई हो और जो भुक्तभोगी हो। अविवाहित और अनुभवहीन बालक तथा युवा इस जोखिमके पदके लिये नहीं मूड़े जावें।

इस परिवर्तनका हमको विश्वास है कि कट्टर तेरहपंथी और भोले बीसपंथी दोनोंही अनुमोदन करेंगे। वल्कि यह मार्ग चल गया, तो बीसपंथ और तेरहपंथमें जो वैमनस्य बढ़ गया है, वह कम होने लगेगा और धीरे २ दोनों एक हो जावेंगे।

इस विषयमें एक शंका यह हो सकती है कि, जब परिवर्तन ही करना है तब ऐसा क्यों न किया जाय कि, ये भट्टारक फिरसे दिगम्बरमुनि बना दिये जावें। परन्तु समयके झुकावको देखते हुए यह बात साध्य नहीं जान पड़ती। अब पूर्वके समान दिगम्बर मुनियोंका फिरसे प्रादुर्भाव होना कठिन जान पड़ता है, और यदि हुआ भी तो वे इस भट्टारकके पदको क्यों स्वीकार करेंगे। जिसे हम अपने लाभके लिये संस्कारित करना चाहते हैं। दूसरी शंका यह हो सकती है कि, अभी हमारे नाम मात्र दिगम्बर गुरु तो हैं, इस परिवर्तनसे उनका भी लोप हो जायगा और फिर हम निगुरा रह जावेंगे। इसका समाधान यह है कि, यदि परिग्रही पुरुषोंको ही गुरु मानना है, तो ये जो सातवीं आठवीं प्रतिमाके धारी होंगे क्या

बुरे हैं ? इन्हें गुरु माननेके लिये किसने रोका है ? और यदि प्रत्यक्षमें हमारे दुर्भाग्यसे दिगम्बर गुरु नहीं हैं तो हमारे ग्रन्थोंमें तो उनका स्वरूप लिखा है। फिर हम निगुरा कैसे ? प्रत्यक्ष किन्तु अपभ्रष्ट आदर्शकी अपेक्षा तो परोक्ष किन्तु सच्चा आदर्श कई गुणा अच्छा है। उस परोक्षसे भी हम अपना बहुत कुछ उपकार कर सकते हैं। तीसरी शंका यह है कि, भट्टारकोंके इस परिवर्तित स्वरूपका पहिले जैसा प्रभाव नहीं पड़ेगा, परन्तु यह भ्रम है। जिन्होंने ऐलक पन्नालालजीकी प्रभावना देखी है, उनके चित्तमें यह शंका कभी स्थान नहीं पा सकती। जो लोग भट्टारकोंके परिवर्तित स्वरूपको धारण करेंगे, यदि उनका चरित्र निर्मल, शास्त्रोक्त होगा और उनमें पांडित्य तथा परोपकारदक्षता होगी तो निश्चय समझिये कि, उनका वर्तमान भट्टारकोंसे कई गुणा प्रभाव पड़ेगा और सब लोग उनके आगे मस्तक झुकावेंगे।

स्वरूप परिवर्तनसे लाभ।

१. संस्कारित भट्टारकोंके प्रयत्नसे जितने पट्टस्थान हैं, वे सब जैनियोंके विद्यापीठ बन जावेंगे, जितने पट्ट हैं प्रायः उन सबके अधिकारमें बड़े २ प्राचीन पुस्तकालय हैं, वे सब पुस्तकालय व्यवस्थित प्रबन्धयुक्त होकर जैनियोंका अपार उपकार करेंगे। प्रत्येक पट्टके आधीन लाखोंका धन है और हजारों रुपयोंकी आमदनी होती है। यदि उद्योग किया जायगा और संस्कारित भट्टारक चाहेंगे तो वे उसके द्वारा प्रत्येक पट्टस्थानपर विद्यालय और ब्रह्मचर्याश्रमादि स्थापित करके विद्याका आशातीत प्रचार कर सकेंगे।

२. गुजरात बागड़ आदि प्रान्तोंमें भेषीभट्टारकोंने अपनी स्वार्थसाधनाके लिये घोर अंधकार फैला रक्खा है, इन पट्टोंके संस्कार

होनेसे वहां ज्ञानका प्रकाश फैलेगा और धर्मकी जागृति हो कर वहां वर्तमान समयके अनुरूप अनेक संस्थाओंका बीजारोपण हो जायगा।

३. उत्तर हिन्दुस्थानके कई एक प्राचीन पट्ट जो अनुपयोगी समझ कर उठा दिये गये हैं अथवा खाली पड़े हैं, वे भर जावेंगे और उनके द्वारा उक्त प्रान्तोंमें धर्मोपदेश आदि होने लगेंगे।

४. तेरहपंथ और बीसपंथका खिंचाव इन विद्वान् भट्टारकोंके शास्त्रोक्त उपदेशोंसे तथा निष्पक्ष प्रयत्नोंसे कम हो जायगा और दोनों पंथके लोग एक होकर धर्म सम्बन्धी कार्य करने लगेंगे।

५. वर्तमानकी सभा सुसाइटियोंको विद्यालयोंको सरस्वतीभंडारों-को, अनाथालयोंको, गरज यह कि सबही उपयोगी संस्थाओंको इनके प्रयत्नसे सब प्रकारकी सहायता मिलने लगेगी।

६. वर्तमानके भट्टारक लोग जो बहुतसे भोले भाइयोंपर बेतरह अन्याय कर रहे हैं, मनमाना मार्ग चला रहे हैं, मनमाने अत्याचार करते हैं, उनसे समाजका पिंड छूट जायगा और लोगोंको आर्थिक हानि उठानी पड़ती है वह नहीं उठानी पड़ेगी।

उपसंहार।

आशा है कि, हमारे पाठकोंने इस लेखको आद्योपान्त पढ़ा होगा। जिन्होंने न पढ़ा हो उनसे प्रार्थना है कि, एकवार पिछले सब अंक एकत्र करके अवश्य पढ़ें, और इस विषयमें अपनी सम्मति निश्चित करके सर्वसाधारणमें प्रकाशित करें, यदि इस लेखमें कोई विचार अनुचित प्रगट किया गया हो तो उसका सप्रमाण खंडन लिखें, नहीं तो अनुमोदन करके इस उपयोगी प्रस्तावका अनुमो-दन करें।

सुना है कि, ईडरका भट्टारकपट्ट जो कि बहुत समयसे खाली है, शीघ्रही भरा जानेवाला है। ईडरके पंच सज्जन उसके भरनेके लिये यहां तक व्याकुल हैं कि, यदि कोई सुयोग्य पुरुष न मिलेगा तो किसी मूर्खानन्दको ही गद्दी नशीन कर देंगे! इसी प्रकारसे मलखेड़की और अन्य एक स्थानकी गद्दीके भरे जानेके लिये भी यत्न हो रहा है। क्या ही अच्छा हो, यदि इस समय यह स्वरूप परिवर्तनका प्रस्ताव सर्वानुमोदित हो जाय और समाजके मुखिया इन खाली पट्टोंको नवीन प्रकारके भट्टारकों द्वाराही अलङ्कृत करके जैनधर्मका हितसाधन करें। एवमस्तु।

जैनहितैषीके विषयमें सहयोगियोंकी सम्मतियां।

हितवार्त्ता, कलकत्ता (भाग ८, संख्या ४४)—जैनहितैषीमें विचारपूर्ण गहन लेखोंके सिवाय किस्से कहानियों और कविताओंकी सहायतासे भी जैनधर्मके तत्त्व समझाये जाते हैं। भाषा सरल और सरस होती है।

लक्ष्मी, गया (भाग ८, संख्या १०)—इस पत्रके लेख जैनियोंके लिये विशेष हितकारी होते हैं। कुछ लेख सर्वसाधारणके पढ़ने योग्य भी होते हैं। जैन महात्माओंके जीवनचरित्र बहुत विचारपूर्ण रीतिसे लिखे जाते हैं। प्राकृतिक विषयोंपर कविताएं भी बहुत अच्छी निकलती हैं। जैनधर्मावलम्बी सज्जनोंको इस पत्रको अवश्य अपना देना चाहिये।

विहारबन्धु, बांकीपूर (भाग ४, अंक २२)—यद्यपि जैनहितैषी सातवर्षोंसे प्रकाशित होता है तथापि गत वर्षसे इसने बहुतही

उन्नति की है। इसमें जो लेख प्रकाशित होते हैं, वे केवल जैनियोंके लिये ही नहीं बल्कि अन्य धर्मावलम्बियोंके लिये भी शिक्षाप्रद और कामके होते हैं।

भारतमित्र, कलकत्ता (भाग ३४, संख्या २४)—जैनहितैषीकी चैत्रकी संख्यामें कई लेख सुलिखित और सुपाठ्य हैं। 'बुड्ढेका विवाह' नामकी कविता समयानुकूल हो रही है। विवाहलोलुप वृद्धोंके पढ़ने योग्य है।

शिक्षा, आरा (खंड १४, संख्या ११)—जैनहितैषी नाम होनेपर भी यह सबके हितकी बातें लिखता है। इस अंकमें 'शिष्य-की परीक्षा' शीर्षक लेख बड़े कामका है।

सरस्वती, प्रयाग (सितम्बर १९११)—जैनहितैषीमें जैन धर्मावलम्बियोंके सिवाय अन्य लोगोंके लिये भी हितकर लेख रहते हैं। कभी २ इसमें ऐतिहासिक लेख बहुत अच्छे निकलते हैं।

सनाढ्योपकारक, आगरा (भाग १८, अंक ४—५)—जैन-हितैषीमें जैनमतके अनुसार अच्छे २ लेख रहते हैं। टाइप भी अति उत्तम है। जैनी महाशय प्रेमीजीसे भलीभांति परिचित होंगे। जैसे आप योग्य हैं, वैसे आपके लेख भी अच्छे होते हैं। जैन महाशयोंके सिवाय और महानुभावोंके लेख भी इसमें होते हैं।

अभ्युदय, प्रयाग (भाग ५, अंक ४०)—राष्ट्रधर्म और वर्ण-व्यवस्था शीर्षक लेखका कथन यद्यपि बहुत थोड़े मनुष्य करेंगे, फिर भी कुल लेखके सुपाठ्य होनेमें कुछ सन्देह नहीं। शिष्यकी परीक्षा शीर्षक लेख अत्युत्तम तथा मनन योग्य है।

साधु, बड़ौदा (पंचम भाग, अंक १२)—जैनहितैषीके प्रथमां-कमें आरोग्यतावाला लेख अच्छा है। बुड्ढेका ब्याह गृहस्थमात्रके पढने

योग्य है। 'खुली चिट्ठी' मनन करने योग्य है। दूसरे अंकमें अन्योक्तिपंचक और जिनसेन गुणभद्राचार्यका अपूर्ण लेख बहुत बढ़िया है। विद्या और बड़प्पन भी उत्तम लेखोंमें है। तीसरे अंकमें गांधी वीरचंद B. A. का व्याख्यान आध्यात्मिक आख्यायिकाएं काल इत्यादि लेख बढ़िया हैं और संपादकीय विचार श्रेष्ठ हैं।

मारवाड़ी, नागपुर (वर्ष ३, अंक २९)—जैनहितैषी अपने ग्राहकोंसे अनुरागके साथ खरीदा जायगा। मीर कविका "बुड्ढेका व्याह" अच्छा लिखा गया है। 'अन्योक्तिपंचक' भी उत्तम है। 'खुली चिट्ठी' भी बड़े मौकेकी और सारगर्भित है। पत्रकी भाषा खरी है।

मारवाड़ी, कलकत्ता (भाग २, अंक ३३) जैनहितैषीके ७ वें भागका छठा अंक हमारे साम्हने है। इसमें छोटे बड़े कुल ६ लेख हैं। लेख प्रायः सभी अच्छे हैं। कई लेख ऐसे हैं, जो जैनियोंके सिवाय अन्यान्य लोगोंके लिये भी लाभदायक हैं। 'बुड्ढेका व्याह' शीर्षक कविता अत्युत्तम है।

नागरी प्रचारक, लखनौ (भाग ५, अंक ५)—यह मासिकपत्र जैनियोंके उपकारार्थ प्रकाशित होता है। जैनधर्मसम्बन्धी विषयोंकी इसमें आलोचना होती है और साधारण पाठकोंके ज्ञातव्य विषयोंका भी इसमें अभाव नहीं होता है। जैनधर्मका मूलतत्त्व जाननेके अर्थ इस पत्रका पाठ करना उचित है। इसके लेख बड़े सुपाठ्य हैं। इसकी गणना नागरीके उच्च कोटिके सामायिक पत्रोंमें है। इस पत्रकी भाषा गंभीर भावपूर्ण और विशुद्ध नागरी है। **जैनसमाजमें जिनसेनाचार्यका नाम बहुत प्रसिद्ध है। हेमाचार्यके**

समान जिनसेन भी बहुत ग्रन्थोंकी रचना कर गये हैं। विद्वानोंके अनुसंधानसे जिनसेनाचार्यका समय ख्रिष्टकी अष्टम शताब्दीका शेष और नवम शताब्दिका प्रारंभ निश्चित किया गया है और उनके रचित आदिपुराण और पार्श्वकाव्य बहुत प्रचलित हैं। जिन-सेनाचार्य्यकी जीवनी इस पत्रमें बड़े अनुसंधानके साथ प्रकाशित हो रही है, जिसके लिये प्रकाशकको धन्यवाद देना चाहिये। साधारण रूपसे जिनसेन आचार्य जैनहरिवंशके भी निर्माता प्रख्यात थे, पर प्रबन्ध लेखकने बहुत अनुसंधान करके यह प्रमाणित कर दिया है कि हरिवंशका ग्रन्थकार जिनसेन नामक कोई दूसरा हो गया है। जैनग्रन्थोंके अधिक आविष्कार होनेसे और प्राचीन जैनविद्वानोंकी जीवनी प्रकाशित होनेसे भारतके लुप्त इति-हासका भी पता लग सकता है....जैनग्रन्थोंके और जैनमतके प्रका-शक सब सज्जन भारत इतिहासके प्रधान सहायक हैं। इस निमित्त जैनहितैषीको हम भारतहितैषी मानते हैं और इसके प्रकाशकको धन्यवाद देते हैं।

जैनमित्र, बम्बई (वर्ष १२, अंक १७)—जैनहितैषीका सम्पादन जबसे प्रेमीजीके हस्तगत हुआ है, तबसे इस पत्रके लेख जैनसमाजके लिये बहुत ही उपयोगी हो गये हैं। जैनसमाजमें इस पत्रकी सानी कोई नहीं रखता भविष्यमें इस पत्रके द्वारा जैनसमाजको बहुतसे नवीन२ उपयोगी विषय मिलनेकी आशा है। कविवर प्रेमीजी जैनसमा-जके एक लेखकरत्न हैं। आपके द्वारा संपादित पत्रके लिये अधिक क्या लिखें। प्रत्येक जैनी भाईको इस पत्रका ग्राहक होकर प्रेमीजीके लेख, विचार एवं कविताका लाभ उठाना चाहिये।

दिगम्बरजैन सूरत (वर्ष ४, अंक ८) जैनहितैषीके सम्पादक उत्साही, अनुभवी और विद्वान हैं, इसलिये सारे जैनसमाजमें यह

मासिकपत्र एक नमूनारूप ही है। प्रत्येक जैनीको इसका ग्राहक होना चाहिये।

जैनगजट, जलेसर—ता. २८ मई, ९ जून (सन् १९११ अंक २९–३०) हमारे समाजमें जैनसमाचारपत्र आज दिन कितनेही निकल रहे हैं, कोई मासिक है, कोई पाक्षिक है, और कोई साप्ताहिक भी है परन्तु जैसी शान जैनहितैषीकी बन रही है वैसी कदाचित् दूसरेकी न होगी। यह पत्र हिन्दीमें कवि नाथूरामजी प्रेमी द्वारा सम्पादित होता है, और बम्बईके कर्नाटकप्रेसमें मुद्रित होता है।

यह पत्र लेखोंकी उत्तमत्तासे चित्तको आकर्षित करनेवाला है। इसके संपादक श्रीयुत नाथूरामजी प्रेमी हिन्दीके रसिक जैनसमाजमें क्या हिन्दूसमाजमें अपरिचित नहीं है, ये महात्मा हिन्दीके एक अच्छे लेखक और कवि हैं, इन्होंने कई पुस्तकोंका संस्कृत प्राकृत भाषाओंसे हिन्दीमें अनुवाद किया है, और कई नवीन भी रचना की है। इनके लेख जैनसमाजमें तो उत्तम श्रेणीके हैं ही किन्तु हिन्दी समाजमें भी बहुत उत्तम गिने जाते हैं। पहिले इन्होंने बहुत दिन-तक प्रसिद्ध पाक्षिकपत्र जैनमित्रका भी उपसम्पादन किया है। जैनमित्रकी अवस्था अब भी अच्छी है परन्तु इनके समयमें कुछ और ही बात थी। इससे आप समझ सक्ते हैं कि इनके द्वारा सम्पादित होनेवाले पत्रमें कितना अच्छापन होगा।

इस पत्रमें कागज स्याही टाइप बहुत अच्छे होने पर भी पत्रकी उत्तमताके प्रधान हेतु नहीं कहे जा सक्ते हैं। सर्वत्र लेखोंकी उत्त-मतासेही पत्रकी असली शोभा बढ़ती है, बुद्धिमान जनोंको ग्राह्य होता है। यह भी कारण इस पत्रमें न हो ऐसा नहीं है। इसके लेख सदाके लिये संगृहीत करनेलायक निकलते हैं। भाषाकी यो-

ग्यताका तो कहना ही क्या है हिन्दीके पत्रोंमेंसे अभीतक या तो सरस्वतीकी लेखनी सर्वोत्तम समझी जाती है या इसकी समझनी चाहिये। इसके प्रत्येक अंकमें एक लेख जैनशास्त्रीय विषयपर ऐसा रहता है जिसका पढ़ना क्या किन्तु बार बार मनन करना प्रत्येक जैनका कर्तव्य होना चाहिये। उसके पढ़ने और उसपर मनन करनेसे शास्त्रीय ज्ञानमें बहुत कुछ फेरफार तथा योग्यता प्राप्त हो सक्ती है। इसके बहुतसे लेख ऐसे होते हैं जो सर्वसामान्यकेलिये भी बहुत कुछ उपयोगी हो सकें, लेखकका उद्देश्य जान पड़ता है कि जैनमंतव्यके अनुकूल लिखते हुए भी हमारा पत्र, सर्व संमत तथा सबको आदरणीय हो।

जैनेतर सहयोगीयोंकी की हुई

निष्पक्ष समालोचना।

जैनहितैषीके गतवर्षके उपहारग्रन्थ उपमितिभवप्रपंचाकथाकी निम्नलिखित समालोचनाकी है—

नागरी प्रचारक—लखनऊ सम्पादक—पं. **रूपनारायण पांडेय लिखते हैं कि—**

उपमितिभवप्रपंचाकथा—प्रथम प्रस्ताव। नाथूरामप्रेमी द्वारा मूल संस्कृतसे अनुवादित। सन् १९११, पृष्ट २०४ "जैनग्रन्थरत्नाकर कार्य्यालय गिरगांव बम्बई"।

मूल ग्रन्थ संस्कृतमें है। कलकत्तेकी एशियाटिक सोसायटी नाम विद्वत्समाजने इस ग्रन्थका एक संस्करण प्रकाश किया है। अध्यापक पिटरसन और हरमान जाकोबी साहबने उस ग्रन्थका सम्पादन किया है। उस ग्रन्थमें आठ प्रस्ताव हैं, उनमेंसे प्रथम प्रस्तावका भाषानुवाद सेठ (!) नाथूराम प्रेमीने किया है और जैनहितैषिणी (?) पत्रिकाने इस अनुवादको उपहार स्वरूपमें अपने ग्राहकोंको वितरण किया है। मूल ग्रन्थ बड़ा मार्मिक है और जैन

सिद्धान्तोंका आकार है। जैन सिद्धान्तोंको सुगमतासे समझनेके लिये यह ग्रन्थ वड़ा सहायक है। जैनोंको इस ग्रन्थका स्वाध्याय करना अवश्यही कर्तव्य है। साधारण पाठक भी इस ग्रन्थका पाठ करके बहुत लाभ उठा सकते हैं। ग्रन्थकर्ता का नाम सिद्धर्षि है। खृ: की नवम शताब्दिमें उनका समय विद्वानोंने निश्चय किया है। बौद्ध और अन्यान्य साम्प्रदायिकोंके ग्रन्थोंको उन्होंने बड़े यत्नसे अध्ययन किया था, पर उनकी दीक्षा श्वेताम्बर मतके अनुसार हुई थी। इस अपूर्व ग्रन्थसे ग्रन्थकारके समयकी सामाजिक अवस्थाका आभास मिलता है। उस समयमें भिन्न धर्म्मावलम्बियोंको जैन लोग प्रीतिकी दृष्टिसे नहीं देखते थे, उनके प्रति असाधुवचनोंका प्रयोग भी करते थे। इस ग्रन्थकारने भी वर्णाश्रमी विद्वानोंको "दुर्विदग्ध" शब्दसे स्मरण किया है, उस समयमें संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषायें प्रचलित थीं। पर वर्णाश्रमी विद्वान लोग संस्कृतमें व्युत्पन्न होते थे और प्राकृत साधारण प्रजाकी भाषा थी। संस्कृतज्ञ विद्वान लोग उस भाषाको नहीं समझते थे और उनका अनुराग उस भाषापर नहीं था इस निमित्त ग्रन्थ-कारने अपना ग्रन्थ संस्कृतमें ही रचा है। ग्रन्थकर्त्ताने सांसारिकजीवोंकी अवस्थाको रूपक कथाके द्वारा बड़े प्रभावसे वर्णन किया है। सद्गुरु की प्राप्तिसे जीव अपने कर्म्मजन्य दोषोंसे मुक्त हो कर किस प्रकार परमपदको प्राप्त हो सकता है–इसकी एक चित्तग्राही रूपक कथा इस ग्रन्थमें है और ग्रन्थ कर्त्ताने प्रस्तावके अन्तमें कथामें उल्लिखित सब पात्रोंका विश्लेषण करके आन्तरिक वृत्तियोंसे उनकी साम्यता दिखाकर पाठकोंके चित्तको मुग्ध किया है और ग्रन्थ पाठ करते समय जितनी शंकायें उत्थित होती हैं उनको दूर किया है। इस प्रकारके सुपाठ्य ग्रंथ बहुत कम देख पड़ते हैं। इसका अनुवाद भी बहुत अच्छा हुआ है। ग्रन्थकर्त्ताके भावको अनुवादकने बड़ी कुशळतासे प्रकाश किया है। हमने कई स्थानपर ग्रन्थसे मिलाकर अनुवादको पाठ किया है जिससे अनुवादककी कार्यदक्षत्ताका परिज्ञान हुआ है। इस ग्रन्थमें समुद्रयात्रा, जहाजका फटना, टूटना जलमें डूबना आदि विषयोंके उल्लेख होनेसे उस समयमें समुद्र यात्राका प्रबन्ध इस देशमें प्रचलित था–ऐसा जान पड़ता है। उस समयमें कौन २ से दार्शनिक और पौराणिक मत भारतमें प्रचलित थे उनका संक्षिप्त सिद्धान्त कुविकल्पके नामसे इस ग्रन्थमें बताया गया है। "यह संसार एक अंडेमेंसे उत्पन्न है (स्मार्तमत) अथवा ईश्वरका बनाया हुआ है (नैयायिक) अथवा ब्रह्मा विष्णु आदिने इसे बनाया है (पौराणिक)

अथवा यह एक प्रकृतिका विकार है (सांख्य) अथवा क्षण क्षणमें क्षय होनेवाला है (बौद्ध) अथवा रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा और संस्कार पांच स्कन्धात्मक जीव, पांच भूतोंसे उत्पन्न हुआ है अथवा विज्ञान मात्र है (बौद्ध) अथवा यह जो कुछ है सो सब शून्य रूप है (माध्यमिक मत) अथवा कर्म कोई पदार्थ ही नहीं है (चार्व्वाक्) अथवा यह सब जगत् महादेवके अंशसे नाना रूपका होता रहता है (पाशुपत दर्शन) "–इस वर्णनसे यह अनुभव होता है कि उस समयमें बौद्ध दर्शनोंका अधिक प्रभाव था–वेदान्त दर्शन वा उपनिषदका उस समय गौरव नहीं हुआ था। कारण उनका नाम ग्रन्थकारने नहीं लिखा है। इन दर्शनोंका उल्लेख करनेसे यह भी स्पष्ट हो गया कि ग्रन्थकारका सिद्धान्त इन दर्शनोंसे भिन्न है। संसार अनादिकालसे है, इसका बनानेवाला कोई ईश्वर नहीं है, सद्गुरुके उपदेशसे मलीन वासनाओंके दूर होनेसे जीव उच्च अवस्थाको पहुंच सकता है और जैन शास्त्रोंमें उन उपदेशोंका संग्रह है– यह ग्रन्थकारका आशय पाया जाता है। प्रत्येक मनुष्यको अपने धर्मकी प्रशंसा करनेका अधिकार है और अपने धर्म सिद्धान्तोंकी प्रशंसा करते हुए धर्मान्तरके विषयमें यदि कोई विरुद्ध युक्ति वा कल्पनाकी अवतारण कीजाय तो उस निमित्त वह प्रस्तोता कटाक्षका पात्र नहीं होता है। कारण उसका विरोध द्वेषात्मक नहीं है, अपने धर्म मार्गमें आरूढ़ होनेके कारण अन्य धर्म उसको भ्रम संकुल जान पड़ते हैं। ग्रन्थकर्त्ताने सनातन धर्म्मियोंको कुविकल्पी समझा है, पर ग्रन्थकर्त्ता पाठकोंके विराग भाजन नहीं हो सकते हैं, क्योंकि उन्होंने अपने विश्वासके अनुरूप यदि दूसरे मतावलम्बियोंको विधर्म्मी कहा तो उस वचनको दोष दृष्टिसे नहीं देखना चाहिये। इसी प्रकारसे चीन देशीय बौद्ध यात्रियोंने भी सनातन धर्म्मियोंको विधर्म्मी लिखा है। इस प्रकारके शब्दोंको सुननेसे जिन वर्णाश्रमियोंके चित्तमें विकार उत्पन्न न होता हो उनको इस अनुवादके पढ़नेसे बहुत आनन्द प्राप्त होगा और जैनशास्त्रके सिद्धान्तोंसे अनायास परिज्ञान लाभ होगा। हम अनुवादकको बहुत धन्यवाद देते हैं और आशा करते हैं कि वह सम्पूर्ण ग्रन्थका अनुवाद करके साहित्यका उपकार साधन करेंगे, और जैन लोग इस अमूल्य ग्रन्थके अनुवादको जी लगाके पढ़कर अनुवादकको उत्साह प्रदान करेंगे। ग्रन्थका छापा और कागज अच्छा है और भाषा भी सरल है, इस प्रकारके ग्रन्थ पाठ करनेमें सबको प्रीति होती है।

(नागरी प्रचारक सितम्बर १९११)

महावीरप्रशादजी द्विवेदी उपमितिभवप्रपंचाकथा–विक्रमके दशवें शतकमें गुजरातके श्रीमालनामक नगरमें वर्मलाभ नामका एक राजा था। उसके मंत्री सुप्रभदेवके दो पुत्र थे:—दत्त और शुभंकर। दत्तके पुत्र माघकविने शिशुपालवध नामक महाकाव्य बनाया और शुभङ्करके पुत्र सिद्धर्षिने उपमितिभवप्रपंचाकथा और भी कई ग्रंथ सिद्धर्षिने बनाये। यह कथा संस्कृतमें है, इसमें १६ हजार श्लोक हैं। वे आठ प्रकरणोंमें विभक्त हैं। इसमें कथाओंके बहाने सांसारिक प्रपञ्चोंकी उपमिति दिखाई गई है। जैन धर्मके गूढ़से गूढ़ सिद्धान्तोंका सरल भाषामें कहानियोंके द्वारा बड़ी ही योग्यतासे प्रतिपादन किया गया है। इसी पुस्तकके पहले प्रस्तावका यह हिन्दी अनुवाद है। अनुवादकर्त्ता है–श्रीयुत नाथूरामजी प्रेमी यह दो सौसे अधिक पृष्ठोंकी सुन्दरता पूर्वक छपी हुई पुस्तक बम्बईके जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, गिरगांवसे मिलती है। यह कार्यालय जैनधर्म सम्बन्धी अच्छी अच्छी पुस्तकें प्रकाशित करके अपने धर्मकी उन्नति और हिन्दी साहित्य भाण्डारकी पूर्तिकर रहा है॥ जैनातिरिक्त जनोंको भी इस पुस्तकको देखनेसे लाभ हो सक्ता है और जैनधर्म विषयक बहुतसी बातें मालूम हो सकती हैं पुस्तककी भाषा बोधगम्य और प्राञ्जल है। (सरस्वती नवम्बर सन् १९११.)

विद्वद्रत्नमाला।

(१०)

भगवज्जिनसेन और गुणभद्राचार्य।

समकालीन राजाओंका परिचय।

अमोघवर्ष—जिनसेन और गुणभद्रस्वामीके समयमें जितने राजा होगये हैं, उन सबमें महाराजा अमोघवर्ष जैनधर्मके परम श्रद्धालु सहायक और उन्नायक समझे जाते हैं। जिनसेनस्वामीके ये परम भक्त थे, जैसा कि, गुणभद्रस्वामीने लिखा है—

यस्य प्रांशुनखांशुजालविसरद्धारान्तराविर्भव-
त्पादाम्भोजरजःपिशङ्गमुकुटप्रत्यग्ररत्नद्युतिः।

संस्मर्ता स्वममोघवर्षनृपतिः पूतोऽहमद्येत्यलं
स श्रीमान् जिनसेनपूज्यभगवत्पादो जगन्मङ्गलम् ॥८॥

इसका अभिप्राय यह है कि, महाराजा अमोघवर्ष जिनसेन-स्वामीके चरणकमलोंमें मस्तकको रखकर आपको पवित्र मानते थे और उनका सदा स्मरण किया करते थे। अमोघवर्षकी बनाई हुई [1]प्रश्नोत्तररत्नमाला नामकी एक छोटीसी पुस्तक है। उसके अन्तमें जो निम्न लिखित श्लोक है, उससे मालूम होता है कि, उन्होंने–विवेकपूर्वक यह समझकर कि संसार सारहीन है, राज्यका त्याग कर दिया था।

विवेकात्त्यक्तराज्येन राज्ञेयं रत्नमालिका।
रचितामोघवर्षेण सुधियां सदलंकृतिः॥

इस पुस्तकके प्रारंभमें जो निम्न लिखित श्लोक है––

प्रणिपत्य वर्धमानं प्रश्नोत्तररत्नमालिकां वक्ष्ये।
नागनरामरवन्द्यं देवं देवाधिपं वीरम्॥

इससे यह भी शंका नहीं रहती कि, उन्होंने किस धर्मके विवेकसे राज्यका त्याग किया था। इससे स्पष्टतः मालूम होता है कि, वे महावीर भगवानके अनुयायी थे और उनके सच्चे उपदेशने उनके चित्तपर इतना प्रभाव डाला था कि, वे संसारके झगड़ोंसे मुक्त होकर धर्मका सेवन करने लगे थे।

---

१ प्रश्नोत्तररत्नमालाको अभी तक श्वेताम्बरी भाई विमलदास कविकी बनाई हुई, और वैष्णव शंकराचार्यकी बनाई हुई कहते थे, परन्तु ईसाकी ग्यारहवीं सदीमें इसका जो तिब्बती भाषामें अनुवाद हुआ था, उसके प्राप्त होनेसे अब यह बात निश्चित हो गई है कि, यह राष्ट्रकूटवंशी अमोघवर्षकी ही बनाई हुई है उक्त तिब्बती अनुवादमें स्पष्ट शब्दोंमें लिखा है कि, इसे अमोघवर्ष प्रथमने संस्कृतमें बनाई थी।

प्राचीन लेखों और पुस्तकोंमें अमोघवर्षका उल्लेख तीन नामोंसे मिलता है—अमोघवर्ष, नृपतुंगदेव और शर्वदेव। अपनी उदारता, दानशीलता और न्यायपरायणतासे अमोघवर्षने अपने अमोघवर्ष[१] नामको इतना प्रसिद्ध किया कि, पीछेसे यह एक प्रकारकी पदवी समझी जाने लगी और उसे राठौरवंशके तीन चार राजाओंने तथा परमारवंशीय महाराज मुंजने भी अपनी प्रतिष्ठाका कारण समझकर धारण की। इन पिछले तीन चार अमोघवर्षोंके कारण इतिहासमें ये अमोघवर्ष प्रथमअमोघवर्षके नामसे उल्लिखित होते हैं।

अमोघवर्ष राष्ट्रकूट वा राठौरवंशके राजा थे। राष्ट्रकूटवंशीय राजा तृतीय कृष्ण, ध्रुवराज, कर्कराज, द्वितीय कर्कराज, और द्वितीय प्रभूतवर्ष आदिके दानपत्रों तथा शिलालेखोंसे इनके पूर्व राजाओं-की परम्पराका पता इस प्रकार लगता है—१ गोविन्दराज, २ कक्कराज (पहिलेका पुत्र), ३ इन्द्रराज (पुत्र), ४ दन्तिदुर्ग अपर नाम वल्लभराज (पुत्र), ५ कृष्णराज अपर नाम शुभतुंग (चाचा, कक्क-राजका द्वितीय पुत्र), ६ गोविन्दराज द्वितीय, अपर नाम वल्लभराज (पुत्र), ७ ध्रुवराज अपर नाम निरुपम (छोटा भाई) ८ जगत्तुङ्ग अपर नाम गोविन्दराज तृतीय वा प्रभूतवर्ष और इनके पुत्र ९ अमोघ-वर्ष प्रथम। अमोघवर्षने शक संवत् ७३७ से ८०० तक राज्य किया है। उस समय राष्ट्रकूटोंका राज्य सारे महाराष्ट्र और कर्नाटक प्रान्तमें फैला हुआ था। सिवा इसके राठौर राजा दन्तिदुर्गने सोलंकी राजा **कीर्तिवर्मा** (द्वितीय) का महाराज्य छीन लिया था, वह तथा

१ अर्थिषु यथार्थतां यः समभीष्टफलाप्तिलब्धतोषेषु ।
वृद्धिं निनाय परमाममोघवर्षाभिधानस्य ॥
(ध्रुवराजका दानपत्र इंडियन ऐंटिक्वेरी १२-१८१)

गुजरातमें जो सोलंकी (चालुक्य) राज्यका शाखाराज्य स्थापित हुआ था, वह भी राठौरोंके हाथमें आ गया था। इस तरह ये दोनों राज्य भी राठौर राज्यके अन्तर्गत हो गये थे और दन्तिदुर्गसे लेकर खोट्टिगदेवके राज्यकाल तक (शक संवत् ८९४ तक) राठौर वंशके ही अधिकारमें रहे थे। शक संवत् ८९४ में मालवाके परमारराजा श्रीहर्षने राठौरोंपर विजय प्राप्तकी थी, और मान्यखेट नगरीको लूटी थी और उसी समय खोट्टिगदेवका देहान्त हुआ था। खोट्टिगदेव अमोघवर्ष प्रथमके [१]प्रपौत्रका पुत्र था। इसीके समय राठौरोंकी राज्यलक्ष्मी प्रभाहीन हुई।

अमोघवर्ष प्रथमके समय राष्ट्रकूटवंशकी स्वतंत्र राज्यलक्ष्मी उन्नतिके शिखरपर विराजमान थी, और अन्य राजाओंकी लक्ष्मीका परिहास करती थी। निम्नलिखित श्लोकोंसे मालूम होता है कि, अमोघवर्ष बड़े भारी प्रतापी वीर थे, बली थे, सोलंकी राजाओंके लिये वे प्रलयकालकी अग्निके समान थे, अन्य शत्रुओंकी स्त्रियोंको वैधव्यकी दीक्षा देनेवाले थे, उनकी सेना इतनी अधिक थी कि, उसके भारसे शेषनाग दबा जाता था। उन्होंने वेंगीमें किसी चालुक्यराजाको मारकरके उसके अपूर्व सुस्वादु खाद्यसे यमराजको सन्तुष्ट किया था। शत्रुओंको उनके मारे कहीं भी ठहरनेका अवकाश नहीं मिलता था, उनका निर्मल यश सब ओर फैल रहा था, और उनकी राजधानीका नगर मान्यखेट इतना विशाल और सुन्दर था कि, उसके साम्हने इन्द्रपुरीकी हँसी होती थी। मानों उन्होंने उसे

---

१ अमोघवर्षका पुत्र अकालवर्ष उसका जगतुंग (दूसरा) और उसका अमोघवर्ष द्वितीय। इस अमोघवर्षके तीन पुत्र थे—१ कृष्ण, २ निरुपम और ३ खोट्टिगदेव।

देवोंके गर्वको खर्व करनेके लिये अपनी राजधानीका स्थान बनाया था—

तस्य श्रीमदमोघवर्षनृपतेश्चालुक्यकालानलः
सूनुर्भूपतिरूर्जिताहितवधूवैधव्यदीक्षागुरुः ।
आसीदिन्द्रपुराधिकं पुरमिदं श्रीमान्यखेटाभिधं
येनेदं च सरः कृतं गुरुकरुप्रासादमन्तःपुरम् ॥

(इंडियन् आण्टिक्वेरी १२।२६४-६७)

तत्सूनुरानतनृपो नृपतुङ्गदेवः
सोऽभूत् स्वसैन्यभरभङ्गरिताहिराज्ञः ।
यो मान्यखेटममरेन्द्रपुरोपहासि
गीर्वाणगर्वमिव खर्वयितुं व्यधत्त ॥

(एपिग्राफिआ इण्डिका ५।१९२-९६)

तस्माच्चामोघवर्षोऽभवदतुलबलो येन कोपादपूर्वैश्चालुक्याम्यूपखाद्यैर्जनितरतियमः प्रीणितोविङ्गवल्ल्याम् ।
वैरिश्चाण्डोदरान्तर्बहिरुपरितले यत्र लब्धावकाशं
तोयव्याजाद्विशुद्धं यश इव निहितं तज्जगतुङ्गसिन्धोः ॥
चतुर्थ गोविन्दराजका दानपत्र ।

(इंडियन आंटिक्वेरी १२।२४९-५२)

अमोघवर्षके एक शिलालेखमें लिखा है—"**वङ्गाङ्गमगधमालववेंगीशैरर्चितो**" (इंडियन एण्टिक्वेरी जि० १२ पृष्ठ २१८) जिससे मालूम होता है कि, वंग अंग मगध, मालव और वेंगीके राजा उनकी सेवा करते थे । अर्थात् अपने समयके वे एक महान् सम्राट थे ।

अमोघवर्ष जैसे वीर तथा उदार थे, उसी प्रकारसे विद्वान् भी थे । उन्होंने संस्कृत और कानड़ी भाषामें अनेक ग्रन्थोंकी रचना की है, जिनमेंसे एक **प्रश्नोत्तररत्नमालाका** उल्लेख तो ऊपर हो चुका

है—जो छप चुकी है, दुसरा प्राप्य ग्रन्थ **कवि—राजमार्ग** है। यह अलंकारका ग्रन्थ है, और कानड़ी भाषाके उत्कृष्ट ग्रन्थोंमें गिना जाता है। इनके सिवाय और भी कई ग्रन्थ अमोघवर्षके सुने जाते हैं, परन्तु वे अप्राप्य हैं।

इतिहासज्ञोंने अमोघवर्षका राज्यकाल शक संवत् ७३६ से ७९९ तक निश्चय किया है। **जिनसेनस्वामी**का स्वर्गवास शक संवत् ७६५ के लगभग निश्चित किया जाचुका है। इससे समझना चाहिये कि, जिनसेनके शरीरत्यागके समय अमोघवर्ष महाराज राज्यही करते थे। राज्यका त्याग उन्होंने शक संवत् ८०० में किया है जब कि आचार्यपदपर **गुणभद्रस्वामी** विराजमान थे। यह बात अभी विवादापन्न ही है कि अमोघवर्षने राज्यको छोड़कर मुनिदीक्षा लेली थी, या केवल उदासीनता धारण करके श्रावककी कोई उत्कृष्ट प्रतिमाका चरित्र ग्रहणकर लिया था। हमारी समझमें यदि उन्होंने मुनिदीक्षा ली होती, तो प्रश्नोत्तररत्नमालामें वे अपना नाम 'अमोघवर्ष न लिखकर मुनि अवस्थामें धारण किया हुआ नाम लिखते। इसके सिवाय राज्यका त्याग करनेके समय उनकी अवस्था लगभग ८० वर्षकी थी, इसलिये भी उनका कठिन मुनिलिंग धारण करना संभव प्रतीत नहीं होता है।

अकालवर्ष—अमोघवर्षके पश्चात् उनका पुत्र अकालवर्ष जिसको कि 'द्वितीयकृष्ण' भी कहते हैं, सार्वभौम सम्राट हुआ था, जैसा कि द्वितीय **कर्कराजके** दानपत्रमें अमोघवर्षका वर्णन करनेके पश्चात् लिखा है:—

तस्मादकालवर्षोऽभूत्सार्वभौमक्षितीश्वरः।
यत्प्रतापपरित्रस्तो व्योम्नि चन्द्रायते रविः॥

परन्तु अकालवर्षका राज्यकाल शक ८११–८३३ तक निश्चित किया गया है। इससे मालूम होता है कि, अमोघवर्ष और अकाल-वर्षके बीचमें १०–११ वर्ष तक किसी दूसरे राजाने राज्य किया है और वह बहुत करके अमोघवर्षका पितृव्य (काका) इन्द्रराज[1] था, जैसा कि ध्रुवराजके दानपत्रके निम्नलिखित श्लोकसे विदित होता है—

राजाभूत्तत्पितृव्यो रिपुभवविभवोद्भूत्यभावैकहेतु-
र्लक्ष्मीवानिन्द्रराजो गुणिनृपनिकरान्तश्चमत्कारकारी।
रागादन्यान्व्युदस्य प्रकटितविषया यं नृपान्सेवमाना
राज्यश्रीरेव चक्रे सकलकविजनोद्गीततथ्यस्वभावम् ॥

शायद अमोघवर्षके राज्य त्याग करनेके समय अकालवर्ष बालक था, इस कारण राज्यका कार्य इन्द्रराज देखता होगा और इसीलिये अमोघवर्षके पश्चात् कहीं इन्द्रराजको और कहीं अकाल-वर्षको राजा माना है।

अकालवर्षभी अपने पिताके समान बड़ा भारी वीर और परा-क्रमी राजा था। तृतीय कृष्णराजके दानपत्रमें जो कि वर्धा नगरके समीप एक कुएमें प्राप्त हुआ है—इसकी इस प्रकार प्रशंसा लिखी है—

तस्योर्जितगूर्जरो हृतहटल्लासोद्भटश्रीमदो
गौडानां विनयव्रतार्पणगुरुः सामुद्रनिद्राहरः।
द्वारस्थाङ्गकलिङ्गगाङ्गमगधैरभ्यर्चिताज्ञश्चिरं
सूनुः सूनृतवाग्भुवः परिवृढः श्रीकृष्णराजोऽभवत् ॥

इसका अभिप्राय यह है कि, उस अमोघवर्षका पुत्र श्रीकृष्ण-राज हुआ जिसने गुर्जर, गौड, समुद्र, अंग, कलिंग, गंग, मगध

---

१ इन्द्रराजकी सन्तानने गुजरात देशमें राष्ट्रकूटवंशका एक शाखाराज्य स्था-पित किया था।

आदि देशोंके राजाओंको अपने वशवर्ती वा आज्ञानुवर्ती किये थे। गुणभद्रस्वामीने भी उत्तरपुराणके अन्तमें इस राजाकी बहुत प्रशंसा की है। दो श्लोक यहां उद्धृत किये जाते हैं—

यस्योत्तुंगमतंगजा निजमदस्रोतस्विनीसंगमा-
द्गाङ्गं वारि कलङ्कितं कटु मुहुः पीत्वाप्यगच्छत्तृषः।
कौमारं घनचन्दनं वनमपां पत्युस्तरंगानिलै-
र्मन्दान्दोलित (?) भास्करकरच्छायं समाशिश्रियन् ॥ २६ ॥

दुग्धाब्धौ गिरिणा हरौ हतसुखागोपीकुचोद्घट्टनैः
पद्मे भानुकरैर्भिदेलिमदले वासायसंकोचने।
यस्योरः शरणे प्रथीयसि भुजस्तम्भान्तरोत्तम्भित-
स्थेये हारकलापतोरणगुणे श्रीः सौख्यमागाश्चिरम् ॥ २७ ॥

यह नहीं कहा जा सकता है कि अमोघवर्षके समान अकाल-वर्ष भी जैनधर्मका श्रद्धालु था या नहीं। क्योंकि इस विषयका हमें अभी तक कोई उल्लेख नहीं मिला है। पर उसका सामन्त **लोकादित्य** जो कि वनवासदेशका राजा था और बंकापुरमें जिसकी राजधानी थी, जैनधर्मका भक्त रहा है, ऐसा जान पड़ता है। क्योंकि—

पद्मालयमुकुलकुलप्रविकासकसत्प्रतापततमहसि।
श्रीमति लोकादित्ये प्रध्वस्तप्रथितशत्रुसंतमसे ॥ २९ ॥
चेल्लपताके चेल्लध्वजानुजे चेल्लकेतनतनूजे।
जैनेन्द्रधर्मवृद्धिविधायिनि स्वविधुवीध्रपृथुयशसि ॥ ३० ॥

इत्यादि श्लोकोंमें गुणभद्रस्वामीने लोकादित्यको "जैनेन्द्र धर्म-वृद्धिविधायिनि विशेषण देकर कमसेकम इतना तो भी स्पष्ट कर दिया है कि, वह जैनधर्मका शुभचिन्तक तथा उसकी वृद्धि करने-वाला था।

जिनसेनस्वामीका जन्म समय शक संवत् ६७५ और मृत्युसमय शक सं० ७७० निश्चित किया जाचुका है और उनके पश्चात् गुणभद्रस्वामी निदान शक संवत् ८२० तक जीते रहे हैं। इस बीचमें अर्थात् शक ६७५ से ८२० तकके समयमें राष्ट्रकूटवंशके चार पांच राजा राज्य कर चुके हैं। जिनमेंसे तीनका समय तो निश्चित है—[1]**श्रीवल्लभ** शक संवत् ७०५से ७३६ तक, **अमोघवर्ष** ७३६ से ७९९ तक और **अकालवर्ष** ८००से ८३३ तक। श्रीवल्लभसे पहिले **शुभतुंग, दन्तिदुर्ग** आदि राजा हुए हैं, परन्तु उनका निश्चित समय विदित नहीं है।

पूर्वके कवि वा आचार्य.

जिनसेनस्वामीने आदिपुराण वा महापुराणकी भूमिकामें जिन बहुतसे कवियों तथा आचार्योंका स्मरण किया है, यहां हम उनका उल्लेख कर देना भी ऐतिहासिक दृष्टिसे उपयोगी समझते हैं;—

१ **सिद्धसेनकवि**—इन्हें 'प्रवादिकरि केसरी' विशेषण दिया है, जिससे मालूम होता है कि, ये बड़े भारी नैयायिक वा तार्किक विद्वान् होंगे। कई लोगोंका अनुमान है कि, ये प्रसिद्ध श्वेताम्बर तार्किक **'सिद्धसेनदिवाकर'**ही होंगे, जिन्होंने अनेक न्यायके ग्रन्थोंकी रचना की है।

२ **समन्तभद्र**—इनकी कवियोंके, वादियोंके, गमकोंके और वाग्मीजनोंके शिरोमणि कहकर स्तुतिकी है। गन्धहस्तिमहाभाष्य, रत्नकरंड-श्रावकाचार और देवागम आदि ग्रन्थोंके कर्ता यही गिने जाते हैं। न्यायशास्त्रके ये अद्वितीय विद्वान् हुए हैं।

---

१ इस राजाके समयमें हरिवंशपुराणकी रचना हुई थी।

३ **श्रीदत्त**—इन्हें बड़े भारी तपस्वी और वादिरूपीसिंहोंके भेदन करनेवाले बतलाये हैं।

४ **यशोभद्र**—इनके विषयमें कहा है कि, विद्वानोंकी सभामें इनका नाम सुनते ही वादियोंका गर्व गलित हो जाता था।

५ **प्रभाचन्द्रकवि**—जिन्होंने चन्द्रोदय (न्यायकुमुदचन्द्रोदय) करके जगतको आल्हादित किया। प्रमेयकमलमार्तंडके कर्त्ता भी येही समझे जाते हैं।

६ **शिवकोटिमुनीश्वर**—जिसके आराधनाचतुष्टय (भगवती आराधना) का आराधन करके यह संसार शीतीभूत वा शान्त हो गया।

७ **जटाचार्य**—काव्यका अनुचिन्तन करते समय जिनकी जटाएं चंचल होकर ऐसी मालूम होती थीं, मानों अर्थका व्याख्यान कर रही हैं। जटाचार्यका दूसरा नाम **सिंहनन्दि** भी है। ऐसा आदिपुराणकी टिप्पणीमें लिखा है।

८ **काणभिक्षु**—कथालंकारके बनानेवाले।

९ **देव**—कवियोंके तीर्थंकर। बहुत करके यह आचार्य देवनन्दिका संक्षिप्त नाम होगा।

१० **भट्टाकलंक**—११ **श्रीपाद**,—१२ **पात्रकेसरी**—इनके अतिशय निर्मलगुण विद्वानोंके हृदयमें हारके भावको प्राप्त होते हैं।

१३ **वादिसिंह**—कवित्व, वाग्मित्व, और गमकत्वकी सीमापर पहुंचे हुए। आश्चर्य नहीं कि, '**वादिसिंह**' यह '**वादिभसिंहका** ही नामान्तर हो जिस तरह वादिभसिंहके कवित्वको प्रगट करनेवाले गद्यचिन्तामणि और क्षत्रचूडामणि दो ग्रन्थ प्रगट हो चुके हैं, उसी प्रकारसे अपने नामानुसार तार्किकत्वको प्रगट करने वाली

उन्होंने आप्तमीमांसाकी भी कोई टीका लिखी है। जिसका उल्लेख अष्टसहस्रीकी उत्थानिकामें (**श्रीमतावादीभसिंहनोपलालिता माप्तमीमांसा**) मिलता है।

१४ **वीरसेन**—जिनसेनस्वामीके गुरु प्रसिद्धकवि और सिद्धान्त-ग्रन्थोंके टीकाकार।

१५ **जयसेन**—तपस्वी, शान्तमूर्ति, शास्त्रज्ञ, पंडिताग्रणी।

१६ **कविपरमेश्वर**—कवियोंद्वारा पूज्य और वागर्थसंग्रह पुराणका रचनेवाला।

समाप्त।

सत्यकी हार।

जैनहितैषीके पिछले अंकके 'सत्यकी जय' शीर्षक लेखको मैंने विचारपूर्वक पढ़ा। उससे मुझे ऐसा भास हुआ कि लेखकको इस बातका दृढ़ विश्वास है कि, सत्यको दबानेका चाहे जितना प्रयत्न किया जावे, परन्तु सत्य छुपता नहीं। आखिर सत्यकी ही जीत होती है। सत्यके प्रचारकोंको चाहे जितना कष्ट दिया जाय, उनका चाहे जितना अपमान किया जाय, परन्तु उनके पक्षकी जीत अवश्य होती है। परन्तु मेरी समझमें सर्वथा यह समझ लेना कि सत्यकी सदाही जीत होती है, ठीक नहीं है। यह एक प्रकारका भ्रम है। सत्यकी हार भी होती है। इस विषयमें प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान् **जॉन स्टुअर्टमिलने** अपनी स्वाधीनता (लिबर्टी) नामक सर्वमान्य ग्रन्थमें बहुत अच्छा विवेचन किया है। उसे मैं यहां प्रकाशित कर देना उचित समझता हूं—

"कुछ बातें ऐसी हैं, जो वास्तवमें हैं झूठ, पर देखनेमें सच मालूम होती हैं। उनको एकने सच कहा, दूसरेने सच कहा, तीसरेने सच कहा, इस तरह धीरे २ बहुत आदमी उन्हें सच मानने लगते हैं। यहां तक कि वे कुछ दिनोंमें सर्वसम्मत हो जाती हैं। परन्तु तजरुबेसे उनकी सचाई नहीं सिद्ध होती। यह सिद्धान्त कि सत्यका प्रचार करने वालोंको सतानेसे सत्यका लोप नहीं होता, इसी तरहका है। अर्थात् लोगोंने उसे सच मान लिया है, पर दरअसलमें है वह झूठ, द्वेष, द्रोह और विरोधके कारण सत्यका उच्छेद हो जानेके अनेक उदाहरण इतिहासमें भरे पड़े हैं। इन उदाहरणोंसे यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि, सत्यका प्रचार करनेवालोंको सतानेसे यदि सत्यका समूल नाश न भी हुआ, तो भी वह सैकड़ों वर्ष पीछे पड़ जाता है। अर्थात् वह सत्य इतना दब जाता है कि सौ सौ दो दो सौ वर्ष तक फिर वह सिर नहीं उठा सकता। यहांपर मैं सिर्फ धर्म सम्बन्धी उदाहरण देना चाहता हूं।"

"जर्मनीमें 'मार्टिन लूथर' नामका एक धार्मिक विद्वान् हो गया है। उसकी गिनती बहुत बड़े सुधारकोंमें है। रोमनकैथलिक सम्प्रदायके धर्माचार्य पोप और उसके अनुयायी धर्मोपाध्यायोंपर उसकी अश्रद्धा होगई। उसने बाइबलका अनुवाद पहलेपहल जर्मन भाषामें किया और यह सिद्धान्त निकाला कि जिस बातको अक्ल कबूल करे, उसीको सच मानना चाहिये। इस सिद्धान्तके प्रचारमें उसे कामयाबी भी हुई, परन्तु लूथरके पहिले इस सुधारके बीजका अंकुर कमसेकम बीस दफा तो ऊगा होगा, पर बीसों दफा रागद्वेषके कारण इन अंकुरोंका उच्छेद ही होता गया। लूथरके बाद भी जहां जहां द्रोह और द्वेषसे काम लिया गया और नये सिद्धान्तके

प्रचारकोंका जोर शोरसे विरोध किया गया, वहां वहां सत्यकी हार ही हुई; जीत नहीं हुई। यह एक प्रकारकी भारी भूल है, यह एक तरहकी झूठी कल्पना है कि, सच होने हीके कारण, सचमें कोई ऐसी विलक्षण शक्ति है कि सच बोलनेवालोंको या सच्चे सिद्धान्तोंको प्रचार करनेवालोंको कालकोठरीमें बन्द करने अथवा सूलीपर चढ़ा-नेसे भी सचकी जरूर ही जीत होती है। आदमी झूठके अकसर जितने अनुरागी या अभिमानी होते हैं उससे अधिक सचके नहीं होते; और कानूनहीको नहीं, किन्तु सामाजिक प्रतिबन्ध या दंडको भी काफी तौरपर काममें लानेसे, झूठ और सच दोनोंका प्रचार बहुत करके रोक दिया जासकता है। हां सचमें एक यह विशेषता है, एक यह प्रधानता है कि कोई एक बार, दो बार, तीन बार या चाहे जितने बार उसका लोप करे, तो भी समय समयपर उसका पुनरुज्जीवन करनेवाले उसका फिरसे पता लगानेवाले बहुत करके पैदा हुआ ही करते हैं। ऐसे पुनरुज्जीवनके समय समाज और देशकी दशाको कुछ अधिक अनुकूल पाकर सच बात या सच सम्मति निर्मूल होनेसे बच जाती है। इस तरह कुछ दिनोंमें वह इतनी प्रबल हो उठती है कि, उसके विरोधी उसका लोप करनेके लिये चाहे जितना सिर उठावें तथापि वे उसका कुछ भी नहीं कर सकते। उसका प्रचार हो ही जाता है।"

इससे जो लोग सत्यके अनुयायी हैं, उन्हें केवल इस विश्वास पर कि सत्यकी सदा जीत होती है, चुप नहीं बैठे रहना चाहिये। यदि वे अपने सत्यका प्रचार करना चाहते हैं सत्य सिद्धान्तको असत्यपर विजयी देखना चाहते हैं, तो उन्हें अदम्य साहससे और अश्रान्त परिश्रमसे आन्दोलन करना चाहिये। सत्य प्रचारके जितने

साधन हैं—व्याख्यान, लेख, शास्त्रार्थ, उपदेश आदि उन सबको काममें लानेका तन मन धनसे प्रयत्न करना चाहिये और अपने विपक्षियोंके प्रयत्नोंसे द्विगुण चतुर्गुण प्रयत्न करना अपना कर्तव्य समझना चाहिये। क्योंकि डा० मिलके कथनानुसार असत्य पक्षके जितने अनुरागी वा अभिमानी होते हैं उतने सत्यपक्षके नहीं होते। यदि सत्यपक्षके अनुयायी यह समझकर बैठे रहेंगे कि, सत्यकी जीत अवश्य होगी, कुछ उद्योग नहीं करेंगे, तो विपक्षियोंका प्रबल आन्दोलन उनके पक्षका गला घोंट डालेगा और इस तरह जब सत्यकी हार होगी, तब उस सत्यके सिरपर गतानुगतिक लोग असत्यकी पगड़ी बांध देंगे अर्थात् सत्यको असत्य ठहरा देंगे।

सत्यशोधक

विविधविषय।

जीवदयाप्रचारक सभा—फीरोजपुर (पंजाब) में इस नामकी एक सभा स्थापित हुई है। वह इस समय जीवदयाके प्रचारके लिये बहुत कुछ उद्योग कर रही है। अंग्रेजी हिन्दी उर्दू आदि भाषाओंमें छोटे २ ट्रेक्ट छपाकर और उन्हें सर्वसाधारणमें वितरण करके तथा समाचारपत्रोंमें मांसभक्षण निषेधादिकके लेख प्रकाशित कराके वह खूब आन्दोलन कर रही है। इस सभाके मंत्री बाबू अमोलकचन्दजी जैन उडेसरनिवासी हैं। जीवदयाके सच्चे अनुयायी जैनियोंको इस प्रकारकी एक नहीं सैकड़ों संस्थाएं स्थापित करके आपने मन्तव्यका प्रचार करना चाहिहे।

पदवीकी खरीद—यह बात प्रायः सबही लोग जानते हैं कि, काशीके पंडित पदवियों और व्यवस्थाओंके दूकानदार हैं। आप

जैसा रुपया खर्च कीजिये वैसीही पदवी और व्यवस्था ले लीजिये! काशीके जैनशासन द्वारा मालूम हुआ कि, एक श्वेताम्बर यति महाशय 'जैनाचार्य' की, पदवी प्राप्त करनेके लिये काशीके ब्राह्मण पंडितोंसे दर ठीक कर रहे हैं। और यति महाराजके भक्त कोई धनिक महाशय अपने गुरुको यह मूर्खोंके रिझानेवाला चमकदार हार खरीद देनेके लिये रुपयोंकी थैली देनेके लिये तयार हैं। धन्य काशीपुरी! और धन्य यतिमहाराज!!

नवीन शिक्षापद्धति—अमेरिकाके विद्वानोंने एक ऐसी शिक्षाप्रणालीका आविष्कार किया है, जिसके द्वारा वयःप्राप्त होनेके पहिले ही बालक बालिकाओंकी बुद्धि आश्चर्यजनक रूपमें विकसित हो इस प्राणलीके द्वारा शिक्षा देनेसे 'लीना राईटवार्ली' नामकी एक लड़की केवल तीनवर्षकी अवस्थामें अंग्रेजी, लाटिन, ग्रीक और हिब्रू इन कई भाषाओंमें प्रार्थनापाठ करना सीख गई थी। 'विनिफ्रेड ष्टोनार' नामकी एक और लड़की तीनवर्षकी अवस्थामें कविता पाठ करने लगी थी, टाइपराइटरका काम सीखने लगी थी और कविताकी तुकें जोड़ने लगी। इस समय उक्त लड़की ९ वर्षकी है। इस अल्पवयमें ही वह पांच भाषाओंमें बातचीत करना सीख गई है। 'एडल्प वार्ली' नामका एक लड़का इस शिक्षाप्रणालीसे १२ वर्षकी अवस्थामें प्रवेशिकोत्तीर्ण होकर 'इयेल विश्वविद्यालय' की प्रसिद्ध तर्कसभाका मेम्बर होगया है, और राष्ट्रनीति तथा इतिहासका अभ्यास करता है। एक और बालक जिसकी अवस्था १४ वर्षकी है, टाफ्टस कालेजसे उपाधि प्राप्त कर चुका है। बालकका नाम नोबार्ट है। इस शिक्षाप्रणालीका मुख्य सिद्धान्त यह है कि, बालकोंकी सोती हुई मानसिक शक्तियोंको कौशल पूर्वक छोटी ही उमरमें विकसित

करना चाहिये। उन्हें अपने विषयमें स्वाधीन भावसे विचार करने देनेका अभ्यास करना चाहिये और इसलिये उन्हें बराबर उत्साहित करते रहना चाहिये। हमारे देशके बालकों की बुद्धि रटा रटाकर नष्ट कर डाली जाती है और लोग उसपर निष्प्रयोजन दबाव डालकर विकासित नहीं होने देते हैं।

ग्रन्थवाचनका महत्व—गिबन नामक ग्रन्थकर्त्ताने अपने इतिहासमें कार्डोबाके खलीफोंका वैभव वर्णन करते हुए लिखा है कि, "**अब्दुलरहमान** नामके एक खलीफाने ५० वर्षतक राज्यैश्वर्यके अनन्त सुख भोगे थे। उसके सांसारिक सुखोंका वर्णन नहीं हो सकता। उसके मरनेके बाद उसके खास सन्दूकमें एक कागज मिला था, जिसमें उसने लिखा था कि, जब मैंने हिसाब लगाया कि, मेरे राज्यैश्वर्यके ५० वर्षोंमेंसे सुखके दिन कितने गये, तब मालूम हुआ कि, जिन २ दिनोंमें मैंने विद्यामृतका पान किया था, वही सच्चे सुखके दिन थे और उनकी संख्या केवल १४ थी।" अभिप्राय यह कि, विद्याध्ययनका सुख ही सच्चा सुख है, विषय-सामग्रियोंकी प्राप्ति और उनका सेवन नहीं।

हिन्दूविश्वविद्यालयका चन्दा—एक स्वतंत्र हिन्दू विश्व विद्यालयके स्थापित करनेके लिये माननीय पं० मदनमोहन मालवीय अविश्रांत परिश्रम कर रहे हैं। उनके उद्योगसे अबतक २६ लाख रुपयेसे उपर चन्दा हो चुका है। विश्वविद्यालयका पूरा खर्च निर्बाह करनेके लिये तीन करोड़ रुपये की जरूरत बतलाई जाती है। इस समय देशमें विद्याके लिये जैसा उत्साह प्रगट हो रहा है, उसे देखते हुए इतना चन्दा होना कोई बड़ी बात नहीं है। उद्योगीके लिये सब कुछ थोड़ा है।

प्राथमिकशिक्षा समिति—लाहोरमें हिन्दुओंकी ओरसे एक सभा स्थापित हुई है, जो उस नगरमें ३० हजार रुपया वार्षिक खर्च करके कई प्रायमरी स्कूल स्थापित करेगी जिनमें फीस न लगेगी और नीच जातिके बालकोंको भी शिक्षा देनेक लिये स्कूल खोले जावेंगे। ऐसी एक समिति बंगालमें पहिलेही स्थापित हो चुकी है।

अमेरिकामें विद्यादान—हिसाब लगाया गया है कि, अमेकाके सर्व साधारण लोगोंने पिछले ३० वर्षोमें ६० करोड रुपये विद्यादान किया है। वहां सब मिलाकर १३४ विश्वविद्यालय हैं। हमारे भारतमें केवल ५ ही हैं।

भारतमें विद्यार्थी—हमारे देशके छोटे बड़े सब स्कूलों और कालेजोंमें ६२ लाख विद्यार्थी विद्याध्ययन कर रहें हैं, जिनमें ५३¾ लाख लड़के और ८½ लाख लड़कियां हैं। दूसरे देशोंसे मिलान करनेसे यह संख्या बहुत ही कम मालूम होती है, तौभी पहिलेकी अपेक्षा अब लोगोंका ध्यान विद्याध्ययन करानेकी ओर विशेष हो जाता है।

साहित्य समृद्धि—धीरे २ भारतमें पुस्तक प्रचारके साधनोंका और पुस्तकोंके प्रकाशनका कार्य बढ़ता जाता है। सन् १८७९-८०में इस देशमें केवल ५५१ छापेखाने थे, परन्तु सन्१९०९-१० में उनकी संख्या बढ़कर २१७३६ पर पहुंच गई है। समाचार पत्रोंकी तथा मासिकपत्रोंकी संख्या ६५६से १५५५ हुई है और देशीभाषाकी पुस्तकोंका प्रकाशन ४,३४६से बढकर ९,९३४की संख्यापर पहुंचा है। आगे यह कार्य बढता ही जायगा और इसीकी वृद्धिके अनुसार देशमें ज्ञानका प्रसार बढ़ेगा।

जैनधर्मकी प्रभावना कैसे हो ?

१ जगह २ पाठशालाएं और स्कूल खोलनेसे तथा उनमें धर्मशिक्षाका प्रबन्ध करनेसे।

२ जैनग्रन्थोंको छपाकर उनका बहुत थोड़े मूल्यमें अथवा मुफ्तमें घर घर प्रचार करनेसे।

३ असमर्थ जैनबालकोंको पारितोषिक वा स्कालर्शिपें देकर पाठशालाओं स्कूलों वा कालेजोंमें पढ़ानेसे।

४ प्रत्येक नगरमें पुस्तकालय वा वाचनालय स्थापित करनेसे।

५ जैनधर्मके जानकर उपदेशक रखकर जगह जगह उपदेश दिलानेसे और हरकिसीको जैनी बनानेका उद्योग करनेसे।

६ विद्वानोंको त्यागी ब्रह्मचारी और साधु बनानेका यत्न करनेसे।

बंगालियोंमें जैनधर्मका परिचय।

यह सबही लोग जानते है कि, इस समय बंगालियोंमें शिक्षाका सबसे अधिक प्रचार है और उनमें निष्पक्ष सत्यशोधक विद्वानोंकी भी अधिकता है। परन्तु जैनधर्मका जो कि संसारका एक सर्वोत्तम धर्म है और जिसका तत्त्वज्ञान सबसे अधिक समीचीन है, बंगालियोंको बिलकुल परिचय नहीं है। क्योंकि उनकी बंगभाषामें जो कि एक बहुत ही प्रौढ भाषा है, अभीतक जैनधर्मका ज्ञान करानेवाला एक भी ग्रन्थ नहीं है। यह देखकर हमने **जेनधर्मेरकिंचित् परिचय** और **जैनसिद्धान्तदिग्दर्शन** नामकी दो पुस्तकें बंगभाषामें बनाकर तयार की हैं। इन्हें हमने कई बंगाली सज्जनोंको दिखलाई तो बहुत पसन्द की है और कहा है कि, इन्हें शीघ्रही छपाकर प्रकाशित करो तो हम लोगोंको जैनधर्मसम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करनेके लिये बहुत सुविधा हो जाय। तदनुसार हम इन दोनों पुस्तकोंको बंगाली विद्वानोंमें मुफ्त बांटनेकेलिये छपानेका प्रयत्न कर रहे हैं। पहिली पुस्तक तीन फार्मकी है, उसकी दो हजार प्रतियोंकी छपवाई १००) लगेगी और दूसरी चार फार्मकी है, उसकी दो हजारकी छपाई १५०) लगेगी। इस तरह दोनों पुस्तकोंमें २५०) खर्च पड़ेगा। यदि जैनधर्मका प्रचार चाहनेवाले केवल २५ सज्जन हमारे पास दश २ रुपया भेज देनेकी कृपा करें, तो यह शास्त्रदानका कार्य शीघ्रही हो जावे। आशा है कि, हमारे भाई इस कार्यमें अवश्यही उदारता दिखलावेंगे।

पन्नालाल बाकलीवाल,
ठि० भेलूपुरा जैनमंदिर—बनारस।

नई छपी पुस्तकें।

भाषानित्यपाठसंग्रह—जिसमें नमस्कारस्तवन, सुप्रभाताष्टक, दर्शनाष्टक, दौलतकृत दर्शनपाठ, भूधरकृत दर्शनपाठ, प्रातःस्मरणीय पद, आदिनाथस्तोत्र नाथूरामप्रेमीकृत, आदिनाथस्तोत्र हेमराजजीकृत, विषापहारस्तोत्र, कल्याणमंदिरस्तोत्र, एकीभावस्तोत्र, भूपालचौबीसी, आलोचनापाठ, सामायिकपाठ, वैराग्यभावना, निर्वाणकाण्ड, गुरुस्तुति, बारह भावना, और सरस्वतीस्तवन इस प्रकार १९ पाठ भाषाके हैं। निर्णयसागर प्रेसमें छपा है। मनोहर रेशमी जिल्दका आठ आना। रेशमी पट्टीवाली जिल्दका मूल्य छह आना है।

सामायिकपाठ—अमितगतिआचार्यकृत मूल और शीतलप्रसादजी ब्रह्मचारीकृत भाषाटीका, प्रथमावृत्ति हाथोंहाथ बिक जानेसे फिरसे छपाया गया है। मूल्य एक आना।

मोक्षशास्त्र—बालबोधिनी भाषाटीका। संशोधन और परिवर्धन करके पहिलेकी अपेक्षा मोटे और पुष्ट कागजपर यह संस्करण छपाया गया है। मूल्य सादी जिल्दका बारह आना, कपड़ेकी जिल्दका चौदह आना।

अनुभवप्रकाश—पं. दीपचंदजीशाहकृत अध्यात्मका वचनिकामय ग्रंथ। खुले १२० पत्रोंपर छपा हुवा। मूल्य सिर्फ छह आना।

ज्ञानदर्पण—यह भी पं. दीपचन्दजीशाहकृत अध्यात्म विषयका छन्दोबद्ध मनोहर ग्रंथ है। मूल्य चार आना।

मुक्तागिरि तीर्थक्षेत्रका रंगीन चित्र—देखने योग्य है। मूल्य पांच आना।

गणरत्नमहोदधि—व्याकरणका अपूर्व ग्रंथ है। इसकी कुछ कापीयें हमने बिक्रियार्थ मंगाई है। मूल्य दो रुपिया।

धन्यकुमारचरित्र—पुष्ट कागजपर बनारसका छपा हुया है। मूल्य बारह आना।

पुस्तकोंका विशेष हाल जानना हो तो बड़ा सूचीपत्र मंगाकर देखिये।

मैनेजर—**श्रीजैनग्रंथरत्नाकर कार्यालय,**

हीराबाग, पो० गिरगांव—बम्बई।

नये वर्षका उपहार ।

पंडित प्रवर टोडरमलजी कृत

मोक्षमार्गप्रकाश ।

जो ग्रन्थ एक बार छपकर तीन रुपयेमें हाथोंहाथ बिक गया है, वही महान् ग्रन्थ बहुत ही शुद्धतापूर्वक छपा हुआ जैनहितैषीके ग्राहकोंको केवल डांक खर्चादिके लिये आठ आना अधिक लेकर उपहारमें दिया जायगा। जैनहितैषी सरीखा एक छोटासा मासिक-पत्र इससे अधिक और क्या साहस कर सकता है?

भाषावचनिकामें अभीतक जैनधर्मके जितने ग्रन्थ बने हैं, मोक्षमार्गप्रकाश उनमें सर्वोपरि है। यह किसी मूलग्रन्थका अनुवाद अथवा टीका नहीं है, किन्तु एक आचार्य तुल्य विद्वानके बहुत बड़े धार्मिक अनुभवोंका स्वतंत्र संग्रह है। गहन से गहन विषयोंका जितनी मार्मिकतासे इस ग्रन्थमें निरूपण किया है, वैसा शायद ही किसी ग्रन्थमें मिलेगा। प्रत्येक घरमें इस ग्रन्थके विराजमान होनेकी जरूरत देखकर हमने इस वर्ष इसे उपहारमें रक्खा है। पहिली बार जब यह लाहोरमें छपा था, तब भाषामें बहुत फेरफार किया गया था, परंतु अबकी बार हमने ग्रन्थकर्त्ताकी खास भाषामें ज्योंका त्यों बहुत ही शुद्धतापूर्वक पुष्ट कागजोंपर छपाया है। सब मिलाकर ५०० पृष्ठका पूरा ग्रंथ है। पिछले वर्षके उपहार ग्रन्थोंसे इस वर्षका ग्रन्थ ढाई गुणा बड़ा है।

ग्रंथ तयार हो गया है।

जिन २ ग्राहकोंकी वी. पी. भेजनेकी मंजूरी आगई है। उन्हें वी. पी. भेजे जा रहे हैं। जिन्होंने अभीतक वी. पी. भेजनेकी मंजूरी नहीं लिखी है, उन्हें शीघ्र लिखना चाहिये। पुराने ग्राहक अपना ग्राहक नम्बर या पुराना ग्राहक, और नये ग्राहक नया ग्राहक इतना शब्द जरूर लिख देवें।

मैनेजर—श्रीजैनग्रंथरत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग, पो० गिरगांव—बम्बई।

Reg. B. N. 719.

ॐ

जैनहितैषी

जैनियोंके साहित्य, इतिहास, समाज और धर्मसम्बन्धी लेखोंसे विभूषित

मासिकपत्र ।

सम्पादक और प्रकाशक—श्रीनाथूराम प्रेमी ।

आठवाँ भाग ।	पौष श्री वीर नि० संवत २४३८	तीसरा अंक

विषयसूची । पृष्ठ

Printed by G. N. Kulkarni at his Karnatak Press, No. 7, Girgaon Back Road, Bombay, for the Proprietors.

जैनहितैषीके नियम।

१. जैनहितैषीका वार्षिक मूल्य डांकखर्च सहित १॥) पेशगी है।

२. प्रतिवर्ष अच्छे २ ग्रन्थ उपहारमें दिये जाते हैं और उनके छोटे बड़ेपनके अनुसार कुछ उपहारी खर्च अधिक भी लिया जाता है। इस सालका उपहारी खर्च ॥) है। कुल मूल्य उपहारी खर्चसहित २) है

३. इसके ग्राहक सालके शुरूसे ही बनाये जाते हैं, बीचमें नहीं, बीचमें ग्राहक बननेवालोंको पिछले सब अंक शुरू सालसे मंगाना पड़ेंगे, साल दिवालीसे शुरू होती है।

४. जिस साल जो ग्रन्थ उपहारके लिये नियत होगा वही दिया जायगा। उसके बदले दूसरा कोई ग्रन्थ नहीं दिया जायगा।

५. प्राप्त अंकसे पहिलेका अंक यदि न मिला होगा, तो भेज दिया जायगा। दो तीन महिने बाद लिखनेवालोंको पहिलेके अंक फी अंक दो आना मूल्यसे प्राप्त हो सकेंगे।

६. बैरंग पत्र नहीं लिये जाते। उत्तरके लिये टिकट भेजना चाहिये।

७. बदलेके पत्र, समालोचनाकी पुस्तकें, लेख वगैरह **"सम्पादक, जैनहितैषी, पो० मोरेना जिला ग्वालियर"**के पतेसे भेजना चाहिये।

८ प्रबंध सम्बंधी सब बातोंका पत्रव्यवहार मैनेजर, **जैनग्रंथरत्नाकरकार्यालय पो० गिरगांव, बम्बईसे** करना चाहिये।

भद्रबाहु चरित्र।

इस ग्रन्थमें अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहुका चरित्र तथा श्वेताम्बर, यापनीय ढूंढक आदि संघोंकी उत्पत्तिका वर्णन है। मूलग्रन्थ आचार्य रत्ननन्दिका बनाया हुआ है, और भाषाटीका पं० उदयलालजी काशलीवालने बनाई है। मूल श्लोक नीचे बारीक टाइपमें दिये हैं और भाषा मोटे टाइपमें ऊपर दी है। प्रारंभमें श्वेताम्बर और दिगम्बरोंकी प्राचीनता अर्वाचीनताके विषयमें लगभग २० पृष्ठका एक निबन्ध है। मूल्य चौदह आना।

नमः सिद्धेभ्यः

जैनहितैषी.

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम् ।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥

आठवाँ भाग] पौष श्रीवीर नि० सं० २४३८ [तीसरा अंक

कर्नाटक-जैन-कवि ।

जैनहितैषीके पाठकोंने कर्नाटकी अथवा कनड़ी भाषाका नाम अवश्य सुना होगा। द्राविड़ीय भाषाओंमें यह एक श्रेष्ठ भाषा समझी जाती है। जिस तरह हिन्दी, गुजराती, मराठी, बंगला आदि भाषाएं संस्कृतजन्य गिनी जाती हैं, उसी तरह कनड़ी भाषा नहीं गिनी जाती। बहुतसे भाषाकोविदोंके मतसे यह द्रविड़ जातिकी भाषाओंमें अन्यतम है। तामिलभाषाके समान यह भी बहुत प्राचीन भाषा है और इसका व्याकरण भी संस्कृतके समान सर्वांग-पूर्ण है। जिस समय हिन्दी, बंगला, मराठी आदि भाषाओंका जन्म भी नहीं हुआ था, उस समय कनड़ी भाषाका साहित्य हजारों ग्रन्थरत्नोंसे परिपूर्ण हो रहा था। ईसाकी नवमी शताब्दिमें इस भाषाका फैलाव उत्तरमें गोदावरीके तीरसे लेकर दक्षिणमें कावेरी नदीतक हो रहा था। अर्थात् उस समय मध्यप्रान्त, बरार, महा-राष्ट्र, उड़ीसा, निजाम, दक्षिण, मैसूर, कुर्ग, कनारा, उत्तरमलेबार

आदि अनेक प्रदेशोंमें इस भाषाका प्रसार और प्राबल्य था। यद्यपि इस समय वह बात नहीं रही है तो भी यह मैसूर, कुर्ग, निजामराज्य, मध्यप्रान्त और बरारके पश्चिमभागमें, बम्बईप्रान्तके दक्षिणी जिलोंमें और मद्रासके उत्तर पश्चिम तथा दक्षिणके अनेक जिलोंमें बोली जाती है।

कनड़ी भाषाको उन्नत प्रौढ़ और परिपूर्ण करनेका प्रथम श्रेय जैनाचार्यों और जैनकावियोंको दिया जाता है। यद्यपि ईसाकी दूसरी तीसरी सदीमें **वनवास** देशके **कदंबवंशीय** राजाओंके दरबारमें बुद्धधर्मके उपदेशक जाया करते थे और उस समय वे कनड़ीभाषाका ज्ञान सम्पादन करके उसमें ग्रन्थ रचना भी करते थे—ऐसा पता लगा है, बल्कि उनके बनाये हुए कई ग्रन्थ भी उपलब्ध हुए हैं। तो भी यह निर्विवाद है कि, जैनियोंके हाथसे ही कनड़ी भाषाका उद्धार हुआ है और उन्हींने इस भाषाके साहित्यको एक उच्चश्रेणीकी भाषाके योग्य बनाया है। ऐसा अनुसंधान किया गया है कि, ईसाकी तेरहवीं सदी तक कनड़ी भाषामें जैनग्रन्थकारोंके सिवाय अन्य धर्मके ग्रन्थकार ही नहीं हुए हैं। अर्थात् तेरहवीं शताब्दि तक कनड़ी भाषाके जितने ग्रन्थकर्त्ता हुए हैं, वे सब जैनी ही हुए हैं। इससे इस बातका भी अनुमान होता है कि, उस समय कनड़ी भाषाभाषी प्रदेशोंमें जैनधर्मका कितना अधिक प्राबल्य था। गंगवंशीय, राष्ट्रकूटवंशीय (राठौर), चालुक्यवंशीय, (सोलंकी), और हयसालवंशीय राजाओंके दरबारोंमें तथा सौदत्ति, विजयनगर, मैसूर और कारकलके राजाओंके यहां जैनकवियोंका बड़ा भारी सन्मान रहा है। उस समय जैनकवियोंके सुयशके गीत सारे कर्नाटक देशमें गाये जाते थे।

परन्तु आगे यह बात न रही। **रामानुजाचार्य**के वैष्णवमतका प्रसार होनेसे और उसके पश्चात् **बसवेश्वर** (बसप्पा) के 'लिंगायत' मतका प्रचार होनेसे तथा कल्चुरि राजवंशके नष्ट होनेसे जैनधर्मका ऱ्हास होने लगा और इसके साथ ही कनड़ीमें जैनकवियोंका होना भी कम होने लगा। तो भी उसके पीछेके कनड़ी साहित्यसे जैनकवियोंका सर्वथा नाम शेष नहीं हो गया। फिर भी सैकड़ों जैनकवि कनड़ी साहित्यकी शोभा बढ़ाते रहे। कनड़ी साहित्यके जितने प्राचीन अर्वाचीन काव्य, उपन्यास, नाटकादि ग्रन्थ इस समय उपलब्ध हैं, उनमेंसे लगभग दो तिहाई ग्रन्थ जैन विद्वानोंके बनाये हुए हैं, यह बात निःशंक होकर कही जा सकती है।

इस बातको सुनकर सब ही आश्चर्य करेंगे कि, दिगम्बरसम्प्रदायके जितने प्रधान २ आचार्य इस समय प्रसिद्ध हैं, वे प्रायः सब ही कर्नाटक देशके निवासी थे और वे न केवल संस्कृत प्राकृतके ही ग्रन्थकर्त्ता थे—जैसा कि उत्तर भारतके जैनी समझते हैं, किन्तु कनड़ीके भी प्रसिद्ध ग्रन्थकार थे। समन्तभद्र, पूज्यपाद, वीरसेन, जिनसेन, गुणभद्र, अकलंकभट्ट, नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती, भूतबलि, पुष्पदन्त, वादीभसिंह, पुष्पदन्त (यशोधरचरितके कर्त्ता), श्रीपाल आदि आचार्य जो दिगम्बर सम्प्रदायके स्तंभ समझे जाते हैं, और जिनके संस्कृत प्राकृत ग्रन्थोंका हमारे उत्तर भारतमें बहुत प्रचार है, प्रायः कर्णाटकी ही थे।

यद्यपि कनड़ी भाषाके जैनकवियों और ग्रन्थकारोंके समयादिका निर्णय करनेके लिये जितने साहित्यकी आवश्यकता है, इस समय उतना साहित्य उपलब्ध नहीं है और यह एक बड़े भारी खेदका

विषय है, तो भी विद्वानोंके प्रयत्नसे जितना साहित्य प्राप्त हुआ है, उसके द्वारा थोड़ेसे कवियोंका परिचय हम इस लेखके द्वारा हिन्दीके पाठकोंको करा देना चाहते हैं।

ईसाकी आठवीं, नवमी और दशवीं सदीके कवियोंने जिन प्राचीन जैनकवियोंकी भूरि भूरि प्रशंसा की है, उनमें **समन्तभद्र कविपरमेष्ठी** और **पूज्यपाद** ये तीन मुख्य हैं। पिछले ग्रन्थकारोंने इनकी जिन शब्दोंमें स्तुति की है, उससे मालूम होता है कि, ये बहुत ही उच्च श्रेणीके विद्वान् थे और इन्हें लोग बहुत ही पूज्यदृष्टिसे देखते थे।

१. [1]**समन्तभद्र**—इनका जीवनकाल निश्चित नहीं है। 'कर्नाटककविचरित्र' नामक कनड़ी ग्रन्थके रचयिताका अनुमान है कि, ये शक संवत् ६० (ईस्वी सन् १३८) के लगभग हो गये हैं, परन्तु महामहोपाध्याय पं० सतीशचन्द्र विद्याभूषण, एम.ए. ने अपने History of the Mediæval School of Indian Logic नामक ग्रन्थमें इन्हें ईसाकी छठी शताब्दिका ग्रन्थकर्ता बतलाया है। हरिवंशपुराणमें जिनसेनाचार्यने इनकी [2]स्तुति की है, इससे यह तो निश्चय है कि, ये जिनसेनस्वामीसे पहिले हो गये हैं (जिनसेनने ईस्वी सन ७८३ में हरिवंशपुराणकी रचना की है।) इनका जन्म[3] **कृष्णा, वेणा** और **भीमा** नदियोंके मध्यवर्ती **उत्कलिका** नामक प्रदेशमें हुआ था।

---

१. जैनहितैषी अंक २-३ भाग ६ में समन्तभद्रस्वामीके विषयमें एक विस्तृत लेख प्रकाशित हो चुका है।

२. जीवसिद्धिविधायीह कृत युक्त्यनुशासनम्।
वचः समन्तभद्रस्य वीरस्येव विजृम्भते ॥२९॥ (हरिवंशका प्रथम सर्ग)

३. श्रुतावतारकथामें शुभनन्दि रविनंदि मुनियोंका स्थान उत्कलिका प्रदेश बतलाया है, समन्तभद्रका कोई दूसरा ग्राम है।

उक्त प्रदेशके **मणुवक** नामक ग्राममें इनका बहुत समय तक निवास रहा था। ये बड़े भारी विद्वान् और सच्चरित्र थे। वृद्धावस्थामें इन्हें पांडुरोग तथा भस्मकरोग हो गया था। इन्होंने जैनधर्मका प्रसार करनेके लिये नाना देशोंमें भ्रमण करके अनन्यसाधारण कीर्ति सम्पादन की थी। गन्धहस्तिमहाभाष्य, जीवसिद्धि, युक्त्यनुशासन, बृहत्स्वयंभूस्तवन, रत्नकरंडश्रावकाचार आदि कई संस्कृत ग्रन्थोंकी इन्होंने रचना की है। सिद्धान्तशास्त्रोंपर भी इन्होंने एक ४८ हजार श्लोक परिमित सरल संस्कृत टीका बनाई है। इनके रत्नकरंडपर कनड़ी भाषाकी एक प्राचीन टीका भी है। परन्तु अभतिक स्वयं इनका बनाया हुआ कोई कनड़ी ग्रन्थ प्राप्त नहीं हुआ है।

२. **कविपरमेष्ठी**—इनका जीवनकाल भी अनिश्चित है। कनड़ीके सुप्रसिद्ध कवि **आदिंपप**ने इनकी बड़ी प्रशंसा की है। आदिपुराणके कर्त्ता **जिनसेन**ने भी इनकी स्तुति की है और इन्हें **वागर्थसंग्रह** नामक पुराणका कर्ता बतलाया है, 'कवि परमेश्वर' वा 'कवीनां परमेश्वरः' भी इनका नामान्तर मालूम पड़ता है। इनके बनाये हुए किसी ग्रन्थके आधारसे जो कि गद्यमय है, जिनसेनस्वामीने आदिपुराण की रचनाकी है।

३. **पूज्यपाद यतीन्द्र**—चामुंडराय, वृत्तविलास, नेमिचन्द्र और पार्श्व पंडित इत्यादि कनड़ी कवियोंके ग्रन्थोंमें और जिनसेन आदि संस्कृत कवियोंके ग्रन्थोंमें इनकी स्तुति की गई है। **देवचन्द्र** कविके **राजावली** नामक ग्रन्थसे और श्रवणबेलगुलके शिलालेखोंसे मालूम होता है कि, ये महात्मा कर्नाटकके **कोलंगाल** नामके ग्राममें एक ब्राह्मण कुलमें शककी चौथी शताब्दिके लगभग उत्पन्न हुए थे। इनके पिताका नाम **माधवभट्ट** और माताका नाम **श्रीदेवी** था।

अनगार—जीवनमें इनका प्रथम नामकरण **देवनन्दी** हुआ था। पीछे जब इन्हें धर्मके विषयमें कुछ शंका हुई और उसका समाधान करनेके लिये जब ये जिनेन्द्रदेवके समवसरणमें (विदेह) गये और वहां बोधको प्राप्त हुए, तब इन्हें लोग **जिनेन्द्रबुद्धि** कहने लगे। समवसरण सभासे लौटकर इन्होंने इतना घोर तपश्चरण किया कि, उसके कारण इनके नेत्र चले गये। **वनवास** देशकी राजधानी **बंकापुरमें** उस समय शान्तीश्वर वा **शांतिनाथका** एक सुप्रसिद्ध मन्दिर था। कहते हैं कि, पूज्यपाद यतीन्द्रने उक्त मंदिरमें जाकर शांतिस्तोत्रको इस तरह तन्मय होकर पढ़ा कि, इनकी दृष्टि फिर पूर्ववत् हो गई। इसके पश्चात् उन्होंने जैन धर्मका प्रसार करनेके लिये नाना स्थानोंमें विहार करना और उपदेश देना प्रारंभ किया। उनके उपदेशके प्रभावसे सैकड़ों प्रसिद्ध पुरुष उनके शिष्य हो गये। गंगकुलका **दुर्विनीत** नामका राजा जिसका शासनकाल ईस्वीसन् ४७८ से ५१३ तक माना जाता है, इनका प्रधान शिष्य था। इनके एक शिष्यका नाम **वज्रनन्दी** था, जिसने **मदुरा** वा 'दक्षिणमथुरा' में ४७० ईस्वीमें [1]**द्राविड़संघकी** स्थापना की थी। कहते हैं कि, तपस्या करते समय वनदेवता इनके चरणोंकी पूजा किया करते थे, इस कारण इनका नाम 'पूज्यपाद' पड़ गया था। एक आख्यायिका ऐसी भी प्रसिद्ध है कि, इनके पादतीर्थस्पर्शसे लोहा भी सोना हो जाता था। राजावली ग्रन्थमें लिखा है कि, **मुंडिगुंड** नामक ग्राम निवासी [2]**पाणिन्याचार्य** इनके मातुल थे। वे अपने व्याकरण

---

१ देवसेनसूरिने अपने दर्शनसारमें द्राविड़संघको पांच जैनाभासोंमें गिनाया है और उसका स्थापक वज्रनंदिको ही बतलाया है।

२ पाणिनि व्याकरण बहुत ही प्राचीन ग्रन्थ समझा जाता है। इतिहासज्ञोंने उसका समय ईस्वी सन्से कई सौ वर्ष पहिले निश्चय किया है, कह नहीं सकते, उसके विषयमें यह आख्यायिका कहां तक सत्य होगी।

ग्रन्थको पूर्ण करनेके पहिले ही कालके ग्रास बन गये थे और इनसे उक्त ग्रन्थको पूर्ण करनेका अनुरोध कर गये थे। तदनुसार इन्होंने उसे पूर्ण करके अपने मातुलकी आज्ञाका पालन किया था। 'गणरत्नमहोदधि'के कर्त्ताने इनका एक नाम 'चन्द्रगोमि' भी लिखा है। इन्होंने पाणिनि सूत्रवृत्ति, जैनेन्द्रव्याकरण सूत्र, सर्वार्थसिद्धि टीका-शब्दावतार, समाधितंत्र, इष्टोपदेश आदि ग्रन्थोंकी रचना की है। कनड़ी भाषामें भी इन्होंने ग्रन्थोंकी रचना की होगी, परन्तु अभी तक इनका कोई भी कनड़ी ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हुआ है। ये बड़े भारी निष्णात वैद्य, सुप्रसिद्ध वैयाकरण, प्रतिभाशाली नैयायिक और पूज्य तपस्वी थे।

४. **श्रीवर्धदेव**—ये तुम्बुलूर नामके ग्राममें उत्पन्न हुए थे, इस कारण इनका एक नाम **तुंबुलूराचार्य** भी है। इनका जीवनकाल ईसाका सातवाँ शतक है। बहुतसे ग्रन्थकारोंके लेखसे मालूम होता है कि, इन्होंने षट्खंड सूत्रोंपर (छठे महाबन्ध खंडको छोड़कर) एक 'चूड़ामणि' नामकी टीका जिसकी श्लोकसंख्या ८४ हजार है, रची है परंतु इस समय इनका कोई भी ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। **चामुंडराय, भट्टाकलंक, दंडी** आदि महाकवियोंने इनकी स्तुति की है, जिससे अनुमान होता है कि, कनड़ीके समान ये संस्कृत ग्रन्थोंके भी कर्त्ता होंगे। इनकी बनाई हुई एक पंजिका टीका भी षट्खंड सूत्रोंपर है, जो सात हजार श्लोक प्रमाण है।

५. **विमलचन्द्र**—दिगम्बरजैन–वादिश्रेष्ठके नामसे इनकी ख्याति है। ये प्रसिद्ध ग्रन्थकर्त्ता हुए हैं। श्रवणबेलगुलके शिलाशासन नं० ५४ में जो कि संवत् ११२८ का लिखा हुआ है, इनकी बहुत प्रशंसा की है।

६. **उदय**—यह चोलदेशके राजा **सोमनाथ**का पुत्र था। इसका **उदयादित्य** नामका ग्रंथ सुप्रसिद्ध है, इसका पूरा नाम उदयादित्य था। ईस्वी सन् ११५० के लगभग इसका अस्तित्व माना जाता है। यह जैनधर्मका उपासक था।

७. [1]**नागार्जुन**—वैद्यकशास्त्रके पारंगत और रसायनशास्त्रके अद्वितीय विद्वान् नागार्जुनका नाम किसने न सुना होगा? ये जैनेन्द्र व्याकरणके कर्त्ता पूज्यपादके भानजे थे। कर्नाटकमें एक किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि, इन्होंने अपने रासायनिक ज्ञानसे बड़े २ पहाड़ोंको सुवर्णमय कर दिये थे! यंत्र, मंत्र, तंत्रादिमें इनकी कीर्ति दिगन्तव्यापिनी हो रही थी। शैलशिखरपर इन्होंने मल्लिकार्जुन (?) प्रतिष्ठा कराई थी। कहते हैं, जब ये उत्तर भारतमें भ्रमण कर रहे थे, तब दो स्त्रियोंने भुलाकर इनके प्राण ले लिये। इन्होंने नागार्जुन कल्पादि अनेक वैद्यक ग्रन्थोंकी रचना की है। नन्दिसूत्र और आवश्यकसूत्रके प्रारंभमें 'नागार्जुनकक्षपुट' नामक वैद्यक ग्रन्थके बनानेवाले नागार्जुनकी बड़ी भारी प्रशंसा और स्तुति की गई है। विद्वानोंका अनुमान है कि, वह स्तुति इन्हीं नागार्जुनकी होगी।

८. **जयबन्धुनन्दन**—यह ग्रन्थकर्त्ता ईस्वीसन् ८०० में हुआ है। मद्रासके प्राच्यकोशालयमें इसका बनाया हुआ एक 'सूपशास्त्र' नामका गद्यपद्यमय ग्रन्थ मौजूद है।

---

१ श्रीयुक्त त्र्यम्बक गुरुनाथकालेने नागार्जुनके विषयमें एक विस्तृत लेख प्रकाशित किया है। वारान्तरमें हम उसका सारभाग प्रकाशित करनेका यत्न करेंगे।

९. **दुर्विनीत**—इस नामके राजाने ईस्वीसन् ४७८ से ५१३ तक राज्य किया है। यह गंगनामके राजवंशमें उत्पन्न हुआ था। 'हेब्बूर'के ताम्रलेखमें इसका वृत्तान्त लिखा है। यह पूज्यपाद यतीन्द्रका शिष्य था। कनड़ी ग्रन्थकारोंमें यह बहुत प्रसिद्ध है। इसने महाकवि **भारवि**के 'किरातार्जुनीय काव्यकी' प्रथम सर्गसे लेकर पन्द्रहवें सर्ग तककी कनड़ी टीका बनाई है।

१०. **श्रीविजय**—इस नामका कवि महाराज नृपतुंग वा अमोघवर्षके समयमें हुआ है। चन्द्रप्रभपुराण, और चम्पुकाव्य नामक ग्रन्थ इसके बनाये हुए हैं। बहुतसे विद्वानोंका कथन है कि नृपतुंगके 'कविराजमार्ग'नामक ग्रन्थको भी इसीने बनाया था। **दुर्गसिंह** (कातंत्रव्याकरणका टीकाकार), **केशिराज** और **मंगरस** आदि विद्वान् कवियोंने इसकी बहुत प्रशंसा की है। श्रवणबेलगुलके शिलाशासनमें भी इसका उल्लेख है।

११. **पंडितार्य**—ईसाकी १४ वीं शताब्दीमें बुक्करायके समयमें हुए हैं। श्रवणबेलगुलके शिलाशासन नं० ८२में इनकी 'वाग्मीश्रेष्ठ' कहकर बड़ी प्रशंसाकी है।

१२. **नृपतुंग**[1]—(ईस्वीसन् ८१४ से ८७७ तक) यह राष्ट्रकूट वा राठौर वंशका राजा था। अमोघवर्ष, अतिशयधवल, शर्वदेव आदि इसके नामान्तर हैं। इसकी राजधानी मान्यखेटपुरमें थी, जिसे कि इस समय मलखेड़ कहते हैं। **प्रश्नोत्तररत्नमाला** संस्कृत और **कविराजमार्ग** कनड़ी ये दो ग्रन्थ इसके बनाये हुए कहे जाते हैं। कविराजमार्गको कोई २ **श्रीविजयका** बनाया हुआ भी बतलाते हैं।

---

१ जैनहितैषीके गतांकमें इनके विषयमें एक विस्तृत लेख प्रकाशित हो चुका है।

१३. **गुणनन्दी**—(ईस्वीसन् ९००) ये बलाकपिच्छके शिष्य थे। तर्क व्याकरण और साहित्य शास्त्रके बहुत बड़े विद्वान् थे। इनके ३०० शिष्य थे। **आदिपंप**के गुरु देवेन्द्र भी इन्हींके एक शिष्य थे। अनेक ग्रन्थकारोंने इन्हें कई काव्योंका रचयिता बतलाया है, परन्तु अभी तक इनका कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हुआ है। श्रवणबेलगुलके ४२–४३ और ४७ नम्बरके शिलालेखोंमें इनका उल्लेख मिलता है।

१४. **आदिपंप**—इसका जन्म ईस्वी सन् ९०२ में ब्राह्मणकुलमें हुआ था। पिताका नाम अभिरामदेवराय था, जो पहिले वेदानुयायी था, परन्तु पीछे जैनधर्मका उपासक हो गया था। यह पुलिगेरीके चालुक्य राजा अरिकेसरीका दरबारी कवि और सेनापति था। कनड़ी भाषाका यह सर्वश्रेष्ठ कवि समझा जाता है। इसके बनाये हुए दो ग्रन्थ उपलब्ध हैं, एक आदिपुराण और दूसरा भारत (चम्पू)। आदिपुराणमें ऋषभदेवकी और भारतमें महाभारतकी कथा वर्णित है। इसने भारतमें अपने आश्रय देनेवाले राजा अरिकेसरीका अर्जुनके साथ जो साम्य दिखलाया है, वह बड़ा ही पांडित्यपूर्ण है। इसने भारतको छह महीनेमें और आदिपुराणको तीन महीनेमें रचकर पूर्ण किया था। उस समय इसकी अवस्था ३९ वर्षकी थी। प्रायः प्रत्येक जैन विद्वानने इसकी प्रशंसा की है। सुनते हैं, इस कविका एक ग्रन्थ मद्रास युनीवर्सिटीके एम. ए. के कोर्समें भरती है। (**अपूर्ण**)

एक प्रस्ताव।

(परवार जातिके विचार करने योग्य)

परवारजातिमें एक बात सबसे अनोखी है। वह यह कि, विवाह-सम्बन्धमें इसे आठ सांकें टालनी पड़ती हैं। दूसरी जातियोंमें जिस तरह **गोत्र** होते हैं, उसी तरहसे परवारोंमें **सांकें** होती हैं। 'सांकें' शब्द 'शाखाओं'का अपभ्रंश है। परवारोंमें कुल १२ गोत्र हैं और प्रत्येक गोत्रके बारह २ अन्तर्गोत्र वा 'मूर' हैं। इस तरह सब मिलाकर १४४ सांकें होती हैं। और जातियोंकी अपेक्षा परवारोंमें यह विशेषता है कि, इसके गोत्रोंके भी और भेद होते हैं। जब किसी लड़का लड़कीका सम्बन्ध होता है, तब लड़केकी ओरकी आठ और लड़कीकी ओरकी आठ सांकें मिलाई जाती हैं। प्रथम कुलका मूर और गोत्र, दूसरे–आजे (पितामह) के मामाका मूर, तीसरे-बापके मामाका मूर, चौथे–आजीके मामाका मूर, पांचवें–लड़का या लड़कीके मामाका मूर, छठे–नाना (मातामह) के मामाका मूर, सातवें–मतारीके मामाका मूर, और आठवें नानी (माता-मही) के मामाका मूर। इन आठ सांकोंमेंसे पहिला मूर और गोत्र तो ऐसा है कि, वह सर्वत्र ही खेद देता है अर्थात् एक पक्षमें जो मूर और गोत्र है, वह दूसरे पक्षकी आठों ही सांकोंमें नहीं होना चाहिये। और शेष मूर विषम विषम अर्थात् तीसरे पांचवें, पाचवें तीसरे, पांचवें सातवें, सातवें तीसरे आदि परस्पर विवाह सम्बन्ध नहीं होने देते हैं। इस तरह एक बड़ेभारी गोरखधंधेके सुलझनेपर परवार जातिका विवाह सम्बन्ध निश्चित होता है।

इस गोरखधंधेके कारण परवारजाति बड़ी बड़ी हानियां सह रही है। उनमेंसे यहांपर हम दो चार बातोंका उल्लेख कर देना उचित समझते हैं;—

१. इच्छानुसार वर और कन्याका सम्बन्ध नहीं मिल सकता है। यदि घर वर आदि अच्छा मिलता है, तो सांकें नहीं मिलती हैं और सांकें मिल जाती हैं, तो योग्य वर नहीं मिलता है। तब लाचार जैसा तैसा सम्बन्ध जोड़कर बालक बालिकाओंको जन्म-भरके लिये, दुःखमें ढकेल देना पड़ता है।

२. सांकें मिलाना सम्बन्ध करनेका सबसे प्रधान कर्तव्य हो जाता है, इसलिये उसके मिलनेपर फिर ज्योतिष आदिकी विधि मिला-नेकी ओर कुछ भी लक्ष्य नहीं दिया जाता है, जो कि भविष्यके ख्यालसे बहुत आवश्यक बात है।

३. सांकें नहीं मिलनेके कारण सैंकड़ों युवाओंको बलात् अवि-वाहित रहना पड़ता है, जिससे कि उनका चरित्र मलीन हो जाता है, और उनमेंसे अधिकांश बिनैकयों वा दस्सोंमें मिलकर अपनी जातिकी संख्याको घटाते हैं।

४. इन सांकोंके मत्कारके कारण परवारजाति विवाहके सम्ब-न्धमें उत्तम सदाचारसंपन्न और नीचको, विद्यावान् और मूर्खको. रूपवान् और कुरूपको, रोगी और निरोगीको सबको बराबर सम-झती है और इसके कारण परवारजातिसे गार्हस्थ्य सुख एक प्रकारसे बिदा ले चुका है।

५. इन आठ सांकोंके कष्टके मारे बाल्यविवाह और वृद्ध विवाह भी बहुतायतसे होते हैं। ज्यों ही कहीं सांकें मिल जाती हैं, त्यों ही लोग अपनी छोटीसे भी छोटी सन्तानका ब्याह कर डालते हैं। इस डरसे कि, आगे फिर कहीं सांकोंका योग नहीं जुड़ा तो मुश्किल होगी। इसी तरहसे किसी २ को इसीके कारण अपनी कन्याओंको

लाचार होकर चालीस २ वर्षके पुरुषोंके साथ व्याह देना पड़ता है।

इन सब हानियोंपर विचार करके इस जातिके वे लोग जिनके चित्तोंपर कुछ शिक्षाका संस्कार हुआ है और जिन्हें जातिकी उन्नति अवनतिकी चिन्ता है, यह प्रस्ताव उपस्थित करते हैं कि, परवारोंमें इस समय जो आठ सांकें मिलाई जाती हैं, उनके स्थानमें चार सांकें मिलाई जाया करें। आजेके मामाकी, आजीके मामाकी, नानाके मामाकी और नानीके मामाकी, इस तरह चार सांकें मिलाना बन्द कर दी जावें। ऐसा करनेसे सम्बन्ध मिलनेमें बड़ा भारी सुभीता हो जायगा और गृहस्थोंके सिर परसे एक असह्य बोझा उतर जायगा।

इस प्रस्तावको सुनते ही बहुतसे लकीरके फकीर आपेसे बाहिर हो जावेंगे और बापदादोंके पांडित्यकी दुहाई देने लगेंगे। परन्तु यदि विचार करके देखा जाय, तो इस प्रस्तावको पास कर देनेसे न तो धर्मकी कोई हानि होवेगी और न लौकिकमें ही कोई इस कार्यको बुरा कहेगा। क्योंकि—

१. परवारोंको छोड़कर खंडेलवाल, अग्रवाल, गोलापूरब, हूमड़ आदि कोई भी जाति ऐसी नहीं है, जिसमें आठ गोत्र टालकर सम्बन्ध किये जाते हों। और तो क्या परवारोंका ही एक भेद ऐसा है, जिसमें चार सांकें मिलाई जाती हैं और इस कारण वे चौसके कहलाते हैं। परवारोंका उनके साथ भोजन व्यवहार भी है। यदि आठ गोत्र मिलाना ही कोई उच्चताका कार्य होता, तो परवारोंका चौसकोंके साथ और गोलापूरब आदि जातियोंके साथ भोजन व्यवहार नहीं होना चाहिये था। और चार गोत्र मिलानेवालों

को लौकिकमें कोई बुरा भी नहीं कहता है। बुरा तो उन्हें भी कोई नहीं कहता है जिनके यहां गोत्रोंका झगड़ा ही नहीं है। परवारोंकी एक शाखामें 'दुसखे' है और एकमें 'पद्मावती पुरवार' हैं। सुनते हैं कि, दुसखोंमें दो ही सांकें मिलाई जाती हैं और पद्मावती पुरवारोंमें तो गोत्रही नहीं हैं। सम्बन्ध मिलाते समय वे केवल रिश्तेदारीका विचार कर लेते हैं।

२. धार्मिक दृष्टिसे तो इस विषयमें कोई आक्षेप ही नहीं आ सकता है। क्योंकि हमारे प्रथमानुयोगके ग्रन्थोंमें दो चार नहीं सैकडों कथाएँ ऐसी हैं, जिनमें चार सांकें और आठ सांकें तो बड़ी बात है, मामाकी बेटीके साथ भी विवाह होनेका जिकर है। और कर्णाटक प्रान्तकी जैन जातियोंमें तो अभी तक यह प्रथा प्रचलित है। वहां मामाकी लड़कीके साथ विवाह करनेका प्रधान अधिकारी भानजा ही समझा जाता है।

३. जितनी लोकरूढ़ियां हैं, वे अपने २ समयकी आवश्यकताओंके कारण जारी हुई हैं। परवार जाति एक समय इतनी बड़ी थी, उसमें इतनी अधिक मनुष्य संख्या थी कि, उसपर विचार करके इस जातिके पूर्वजोंने सोलह सांकोंके मिलानेकी प्रथाका प्रचार किया था। परन्तु आगे जब परवार जातिकी क्षीणता हुई, तब लोगोंको इससे कष्ट होने लगा और एक बार यह कष्ट लोगोंके लिये इतना असह्य हो गया कि, उन्होंने आन्दोलन करके सोलह सांकोंकी जगह आठ सांकोंके मिलानेकी पद्धतिका प्रचार कर दिया। दुराग्रही लोगोंकी कमी कभी किसी समाजमें नहीं रही है, तदनुसार बहुतसे लोगोंने इस नवीन चालको पसन्द नहीं की और उन्होंने अपनी सोलह सांकोंकी लीक पीटनेमें ही धर्मा-

चारताकी शिखा समझी। फल यह हुआ कि, इस दुष्कर पद्धतिके जारी रखनेसे सोलह सांकों वा 'सोरठिया' परवारोंका धीरे २ क्षय होने लगा और इस समय तो शायद उनके दश वीस घर भी शेष नहीं हैं। अब आगे चलिये। एक समय जो आठ सांकें सुभीते-वाली दिखती थीं, कालान्तरमें वे भी कठिन दिखने लगीं। फिर लोगोंको कष्ट होने लगा और उन्होंने आठकी जगह चार सांकोंके जारी रखनेमें अपनी रक्षा समझी। परन्तु इस दूसरी मुहीममें पहिली बारके समान सफलता नहीं हुई। रूढीका सत्कार करनेवाले बहुत हो गये थे, इसलिये बहुत थोड़े लोगोंने चौसका होना अच्छा समझा। यदि उक्त दूसरी मुहीममें सब लोग चौसके हो जाते, तो आज हमको यह प्रस्ताव पेश करनेकी ही आवश्यकता न पड़ती। जिस समय चौसके हुए थे, उस समयकी अपेक्षा इस समय आठ सांकोंके कारण परवारोंको कई गुना कष्ट है, इसलिये अब तो इस पर अवश्य ही विचार करना चाहिये।

४. जितनी लोकरूढियां और जातीय पद्धतियां हैं, उन सबको जारी करनेवाले जातिके ही अगुए होते हैं। अपनी आवश्यकता-ओंको देखकर वे उन्हें धर्मकी अविरुद्धताका विचार करके जारी कर देते हैं और इसी प्रकारसे उन्हें बन्द भी कर देते हैं। परवार जातिकी इन सांकोंको परमेश्वरने नहीं बनाई थीं, जातिके अगुओंने ही बनाई थीं, और उनके मिलानकी न्यूनाधिकता भी समयको देखकर अगुओंने ही की थी। तब यह बात सिद्ध है कि, इस समयके अगुए भी उनमें अपनी आवश्यकतानुसार कुछ घटा बढ़ी कर सकते हैं। जिन्हें खंडेलवाल जातिका इतिहास मालूम है, वे जानते होंगे कि, उस जातिके अगुओंने एक बार बीजावर्गियोंके

१२ गोत्र मिलाकर खंडेलवालोंके ७२ के स्थानमें ८४ गोत्र कायम कर दिये थे! जब जातिके अगुओंको दूसरी जातिके गोत्रोंके मिलानेका भी अधिकार है, तब आठके स्थानमें चार सांकोंकी पद्धतिका प्रचलित करना तो एक जरासी बात है।

हम जैनहितैषीके पाठकोंसे प्रार्थना करते हैं कि, वे इस आवश्यक प्रस्तावको परवार जातिकी प्रत्येक पंचायतीमें उपस्थित करें और पंचायतीकी जो राय विरुद्ध वा अनुकूल हो उसे समाचारपत्रोंमें प्रकाशित करनेके लिये भेजें। पत्रसम्पादकों से भी निवेदन हैं कि, वे भी अपने २ पत्रोंमें इस विषयकी चर्चा करें।

नाथूरामप्रेमी—देवरी
और
मौजीलाल सिंगई—नरसिंहपुर।

जन्महत्या।

"नरजन्म पाके मरण पाया लोकमें जिसने सदा,
सुख शान्तिकी सौहार्द्र छायामें न बैठा जो कदा।
यों ही बिताया जन्म उसने, व्यर्थ ही झगड़ा लिया,
पा जन्म जिसने इस जगतमें 'जन्म-घात' नहीं किया"॥

सिद्धान्त.

शेक्सपीयरके सब नाटकोंमें हेम्लेट उत्तम गिना जाता है इस नाटकी उत्तमता इसकी उत्कृष्ट रचनाके कारण नहीं किन्तु उसके नायकके अनुपमेय औन्नत्यके कारण है। शेक्सपीयरका हरएक नाटक 'दुसरी विश्वामित्रकी मायाविनी सृष्टि है' यह कहनेमें कोई अत्युक्ति न होगी किन्तु उसके और नाटक ऐसे नहीं है, जो कृतिमें हेम्लेट कि बराबरी कर सकें। शेक्सपीयरके और नाटक देखनेसे, यह बोध होता है कि

वह एक उत्तम कवि था; किन्तु हेम्लेटके देखनेके कारण तो उसे एक बड़ाभारी तत्त्वज्ञानी मानना पड़ता है। हेम्लेटको उत्तम कहनेका कारण यह है कि, उसका खेल एक प्राकृतिक जीवके दुःख और निराशाका सच्चा चित्र है। वह जीवनकी तरङ्गमालाओंमें एक वेग आनेके कारण जगतके गूढ़तत्त्वोंकी शोधको उद्यत हुआ था। पर जब उसके प्रयासका परिणाम 'हीरे' की जगह 'पत्थर' निकला; तब वह पश्चात्तापकी प्रज्वलित ज्वालामें रात दिन जलने लगा। यह स्थिति अकेले हेम्लेटकी ही नहीं हुई थी, किन्तु हरएक मनुष्यकी एक बार होती है। जब मनुष्यकी यह हालत होती है, तब वह मुक्तिमार्गके दरवाजेपर होता है। ऐसे समय जो धैर्य रक्खेगा, वह पार होनेका प्रयास कर सकेगा, किन्तु जिसने धैर्यका अवलम्बन छोड़ दिया, वह फिर जगतके दुःखोंमें लिप्त हो जायगा। मनुष्यकी ऐसी स्थिति हो जाने पर वह यह जतलाता है कि, जगतके दुःखसे छुटकारा मिलनेके लिए, और अपनी सच्ची स्वतंत्रता प्राप्त करनेके लिये मुझे तीव्र इच्छा हुई है।

एक फ्रेञ्च तत्त्वज्ञानीका कथन है कि—

"जिस मनुष्यके मस्तिष्कमें मनके द्वारा कभी जन्महत्या करनेका अर्थात् संसारसे मुक्त होनेका विचार न समाया, वह मनुष्य जीवनके लिये अयोग्य है।"

सचमुच इस प्रपञ्चपूर्ण बाजारमें—जहां पहिले सब चीजें उत्तम और सत्य दिखाई देती हैं किन्तु बादमें खराब और झूठी हो जाती हैं सन्तोष मानके बैठ रहना विचारशील मनुष्यका काम नहीं है।

संसारमें चारों ओर फँसानेवाला जाल बिछ रहा है। जिस २ वस्तुके मायापाशमें हम पड़ते हैं, वही वस्तु हमें गिरिफ्तार कर-

लेती है। जिस प्रकार पतङ्ग दीपकके प्रकाशमें भूलके—उसीपर धावा मारता है और उससे खुदको जला मारता है; उसी प्रकार हम लोग सुखकी आशासे नाशवान्, मिथ्या वस्तुओंके पीछे अपनी आयुका हरएक अमूल्य क्षण अपने ही नाशके लिये व्यतीत करते हैं। एक आंग्ल कविका कथन है कि—

"हे सुख! तू सचमुच सत्य है, किन्तु तेरी प्राप्तिके लिये मनुष्य अपने मानवीय जीवनको भ्रष्ट कर देते हैं यह भी सत्य है।"

हम सब इतने स्वार्थी और क्षुद्र हृदयके जीव हैं कि, यदि एक प्रामाणिक और उच्च हृदयके पुरुषकी तलाश की जाय, तो दिनमें ही मशाल जलाके ढूंढ़नेकी नौबत आजाय। दुष्ट, लुच्चे और अभिमानी लोग, सम्पत्ति और ऐशमें अपने दिन गुजारते हैं; पर सच्चे सद्गुणी, सत्यवादी, और सीधे साधे लोग उपवासपर उपवास करके अपने दिन बिताते हैं और दुःखका दुर्दैव उनके पीछे बराबर लगा फिरता है। सत्यके आश्रित लोगों पर एक बार विपत्तिका पहाड़ टूट पड़ता है। दुर्दिन सिर्फ उन्हें ही ढूंढ़ता फिरता है। संसारके असंख्य प्राणियोंका दुःखसे रोना और उनका हताश होना देखके चित्तकी विचित्र दशा हो जाती है। जहां भयंकर लड़ाइयां शुरू हो रही हैं, वहां मनुष्य कहते हैं कि "तू मुझे मारता है या मैं तुझे मारूं?" एककी मौतसे दूसरेका जीवन चल रहा है। संसाररूपी समुद्र नित्य नई २ लहरें लेता है और जन-समाज उनके स्वागतके लिये एक एक पांव आगे बढ़ता है। पर एक लहरसे कुछ परिचित नहीं होने पाता कि, दूसरी लहर आ दबाती है। सचमुच जीवन एक इन्द्रजाल है। एक मार्मिक कवि कहता है कि—

" हम यहीं बावले होके इधर उधर घूमते हैं; और जो कुछ भी नहीं, उसकी खोज करते हैं। बाहरसे हँसते हैं, बोलते हैं, और दूसरोंको चिन्तासे छूटनेका उपदेश देते हैं; किन्तु हमारे हृदयमें एक प्रकारके दुःखका विचार चला ही करता है। जिस समय हम अति ललित स्वरसे मीठा गान गाते हैं; उस समय भी हमारा अन्तःकरण दुःखसे भरा होता है।"

वही कवि आगे चलकर कहता है:—

" हे परमात्मन्! मैं आयुके काँटेपर टिक रहा हूं। रात दिन शरीरसे खूनका सोता जारी है; और कालके बड़े भारी जड़ बोझने मुझे उसपर दबा रक्खा है।"

यह कहना बहुत ही आसान है कि, " हरएक बातमें सन्तोष और सुख मानना; मनुष्यका मुख्य कर्तव्य है।" किन्तु इस नियमका पालन करना सहज नहीं है। अधिक मनुष्योंकी बातके अनुसार यह नियम पेट भरनेके बाद याद आता है। उनके हृदयमे ये प्रश्न कभी नहीं निकलते हैं कि मनुष्यजन्म किस लिये है? इसका मुख्य कर्तव्य क्या है? संकट और दुःख दोनों राक्षस हमारे हर एक मार्गमें टकरा जाते हैं। केवल फँसानेवाला, अस्वस्थ, अनिश्चयी, और सत्यसे दूर ले जानेवाला 'मन' हमारे पास है। हम जिसका बोलना, चलना, आकार, सर्वथा उत्तम और सर्वथा सुन्दर समझते हैं, वह शरीर वास्तवमें नश्वर, ग्लानियुक्त, और हजारों छिद्रोंवाला है। जिस ज्ञानको ज्ञान नहीं कह सकते, ऐसा हमारा ज्ञान है। जो संसार एक बार लुटेरोंके राज्य जैसा लगता है, एक बार भूले हुए कैदियों जैसा भासता है, ऐसे संसारमें हमारा रहना है। ऐसी स्थिति होने पर भी अपनेको संसारका आधारस्तम्भ मान बैठना

कितना अविचारपूर्ण और कितना असमर्थतापूर्ण विचार है। उसमें बैठे २ आनन्द गीत गाना, संसारमें स्वस्ति चाहना, क्या अपनी तरफ आते हुए सांपको पकड़नेवाले बालककी तरह नहीं है? किसी विद्वानके कैसे उद्गार निकल पड़े हैं कि "मैं जन्म ही नहीं पाता, तो कैसा अच्छा होता !"

जैसे शेक्सपियरके उक्त नाटकका पात्र अपने पहिले ही प्रवेशमें अपने स्वभावको जना देता है, उसी तरह मनुष्य प्राणी इस संसारमें रोता आता है। वह जानता है कि, यह संसार नाशवान् शोकोंसे भरा पड़ा है। संसारके सब मनुष्य रोते जान पड़ते हैं। कोई विरले आत्मवादी यह खेल सूक्ष्मदृष्टिसे देखा करते हैं। मनुष्यका क्षुद्रत्व उसके मनोविकारोंकी नीचता, और उसका वृथाभिमान ये सब बातें सूक्ष्मदृष्टिवालोंको कौतूहलित करती हैं।

फोस्ट नामक कविका कथन है, कि—

"जो जो बातें मेरी आत्माको हानि पहुँचानेवाली हैं पर ऊपर से सुन्दर जान पड़ती हैं, उनका नाश होओ ! जिस महत्त्वकी अभिलाषाके कारण मेरा मन फँसता है, उस महत्त्वाभिलाषाका नाश होओ! नाम और कीर्तिके खोटे सपनेका नाश होओ ! जो जो चीजें स्वामित्वका नाम पैदा करती हैं, उनका भी नाश होओ और जो जो चीजें मुझे इस दुनियांमें फिर पैदा होनेका कारण बनती हैं, उन सबका मूलसे नाश होओ !"

जो अज्ञानी हैं, उन्हें इस जगतकी भयंकर स्थिति मालूम नहीं होती और इसी कारण वे सुख या दुःखमें परतन्त्रजीवन व्यतीत करते हैं। पर जो विवेकी हैं, उन्हें यह संसार नरकके समान दिखाई देता है। वे किसी तरह इससे छूटनेकी फिक्रमें रहते हैं। मुक्त

होनेके लिये जन्महत्याको छोड़ और दूसरा रास्ता नहीं है। जितने प्राणी हैं उनमें से जन्महत्याकी ताकत एक मात्र मनुष्यको ही है; और इसी कारण उसे सबसे श्रेष्ठ पद मिला है। इसी कारण स्वर्गके देव-जन्मकी भी अपेक्षा मनुष्यजन्मपाना अधिक पुनीत माना जाता है। यद्यपि देवताओंमें मनुष्योंसे सब बातें श्रेष्ठ हैं, उनकी बुद्धि और विचारशक्ति मनुष्योंसे बहुत कुछ बढ़ी हुई है, पर वे कम इसीलिए हैं कि, जन्महत्या नहीं कर सकते। जन्महत्या करनेका अधिकार केवल मनुष्योंको ही है कि, जिसके लिए प्राणीमात्रको कभी न कभी मनुष्यजन्म धारण करना ही पड़ता है।

यहां बहुतसे भाई कह सकते हैं कि, जब जन्महत्यासे ही बेड़ा पार है, तब तो यह बहुत ही सहज बात है। क्योंकि एक मजबूत रस्सी और हुक यही तो चाहिए। पर मैं कहता हूं कि, भाइयो, यह काम आपके विचारसे भी कहीं सरल है। रस्सी या हुककी कोई जरूरत नहीं है, कष्ट उठानेकी आवश्यकता नहीं है, एक पलकके गिरने और उठनेमें जितनी तकलीफ होती है, उससे भी कहीं कम तकलीफ इसमें है।

"क्या डोर, छुरी या विषकी सहायताके विना, समुद्र, नदी, अथवा कुवेमें गिरे विना, गलेमें फांसी डाले बिना, जन्महत्या हो सकती है? यदि सच मुच ऐसा हो, तो आश्चर्यका विषय है। हमें विश्वास नहीं होता कि, जन्महत्या करनेमें फूल तोड़नेके जितनी आसानी हो।" इस प्रश्नके लिए मेरे पास उत्तर मौजूद है कि, सचमुच यह साधन, यह उपाय बहुत ही सरल है। परन्तु इसकी रीति गुप्त है—अतिशय गुप्त है। यह रीति अनादि कालसे चली आ रही है। ज्यों ही इसके मिलनेकी योग्यता हुई कि, यह मिली। एक

बार इस कठिनतासे बाहिर निकले कि, स्वाधीन हुए। फिर जरा, जन्म, मृत्युका डर नहीं रहता। पाप, पुण्य, व्याधि, दुःख आदि सबसे छुटकारा मिल जाता है। क्योंकि यह जन्महत्या सर्वदा सम्पूर्ण होती है। इस प्रकार जन्महत्या करनेके बाद आनन्द और शोकका डर नहीं रहता; स्वर्ग, नरक और पुनर्जन्मादि सब मिथ्या होजाते हैं। कोई देव फिर उसे शिक्षा नहीं दे सकता है। उसपर शासन करनेकी किसीकी भी ताकत नहीं रहती है। क्योंकि यह जन्महत्या पूरी है।

तो ऐसी उत्तम जन्महत्या किस प्रकार करनी चाहिये? शास्त्रज्ञ कहते हैं कि—"किसी भी प्रकारसे जीव दो, पर कोरी मौतसे छुटकारा नहीं होता। कोरी मौत एक जीवनका परदा है। एक अदृश्य शक्तिके द्वारा दूसरा शरीर मिल जाता है। वर्तमान समयके सुख दुख विस्मरण हो जाते हैं और इनके प्रतिफल नये दुःखोंका सामना करना पड़ता है।" वे ही शास्त्रकार आगे चलके कहते हैं—"कि कोरी मौत करनेवालेको अर्थात् शरीरघातकको उसकी कृतिके लिये बहुत दुःख भोगने पड़ते हैं। वह बहुत काल तक उस प्रदेशमें रहता है, जहां उसका दुःख क्षण २ नया होता रहता है। वहां शान्ति और विश्रामका स्वप्नमें भी नाम नहीं होता। गंधकके पहाड़ रात दिन जला करते हैं, और उसके गलावमें पड़े हुए जीवको कुछ समय भी विश्रामके लिए नहीं मिलता। परन्तु जो जीव जन्महत्या करता है—ऐसी हत्या करता है कि, फिर जन्मधारण नहीं करने पड़ते हैं, उसे अनंत सुखकी प्राप्ति होती है। उसे एक ऐसी चीज मिलती है कि, जिसके मिलनेके बाद उसे और कुछ पानेकी इच्छा नहीं होती। उसमेंसे पैदा होनेवाले अनंत आनन्दमें और आनन्दकी इच्छा उसे नहीं होती। उसे जाननेके बाद फिर कुछ जानना संसारमें शेष नहीं रहता।"

जन्महत्या करनेके बाद क्या होता है, इसके विषयमें एक ऋषिने कहा है कि,–" आत्मस्वरूपकी प्राप्ति होनेपर इतनी शान्ति हो जाती है कि, पहिलेकी चपल सृष्टि कहां गई, इसका कुछ भी पता नहीं रहता है। वह अदृश्य हो जाती है; अशान्ति भाग जाती है। बस केवल आनन्द, शान्ति, सुख है।"

अब यह बात विचारणीय है कि, शास्त्रविशारद जिस घातको भयानक निंद्य कहते हैं; उसमें और जिसे श्रेष्ठ बताते हैं, उसमें क्या फरक है। जो हत्या निंद्य कही गई है, वह जन्महत्या नहीं है वरन् शरीरहत्या वा देहघात है और उसके करनेवाले पापी और मूर्ख हैं। और जिस हत्याको शास्त्रकारोंने श्रेष्ठ कहा है, वह वास्तविक हत्या और कुछ नहीं, आनन्दप्रद मोक्ष है।

जो लोग इस जन्महत्याके–मोक्षके इच्छुक हैं, उनके भाव बड़े ही विशद और पवित्र होते हैं। वे चाहते हैं कि, संसारमें जितने प्राणी हैं, वे सब सुखी रहें–उन्हें कभी दुःख न हो। वे जानते हैं कि, सब जीव मेरे ही समान हैं। वस्तुतः मुझमें और उनमें कोई अंतर नहीं है।

पूर्वकालिक बौद्ध लोग अपने ऐसे ही भावोंसे विश्वमें मित्रता स्थापित करते थे। हम उनके 'अतिधर्मपिटक' नामक ग्रन्थके एक अंशको यहां उद्धृत करते हैं–

" समस्त जीव वैररहित होके, बाधा रहित होके, दुःखरहित होके, सुखी होके, अपनेको अच्छे मार्गमें चलाओ। समस्त जीव, समस्त व्यक्ति, और समस्त जन्म ग्रहण करनेवाले वैर रहित होके, बाधा रहित होके, दुःखरहित होके, सुखी होके अपनेको अच्छे मार्गपर चलाओ। समस्त स्त्री, समस्त पुरुष, समस्त आर्य, समस्त अनार्य, समस्त देव, समस्त मनुष्य, और समस्त नरकादिमें स्थित जीव वैररहित होके,

बाधा रहित होके, दुःख रहित होके, सुखी होके अपनेको सुमार्गपर चलाओ। पूर्व पश्चिम और उत्तर दक्षिण दिशाओंमें जो जीव हैं, वे सब वैररहित होके बाधारहित होके दुःख रहित होके, सुखी होके अपनेको आगे चलाओ।"

जैनी लोग भी सामायिकके समय इसी प्रकारकी भावना किया करते हैं।

विषखाने, और पेटमें छुरी मार लेनेसे जन्महत्या पूरी नहीं होती। इससे हत्यारेकी आत्मा खेद और पापसे खिन्न होती रहती है। उसके कर्मोंकी गठड़ी इतनी बोझल हो जाती है कि, वह जीवन-पथमें आरामसे नहीं चल सकता। वह आत्मा इतना खेदित होता है कि, उसका खेद ही उसके लिए ज्वलन्त ज्वालाका काम देता है। बंगलाके प्रसिद्ध लेखक श्रीमणिलाल गंगोपाध्याय, बी. ए. ने एक मेस्मेरेजिमके विषयमें पुस्तक लिखी है। उसमें उन्होंने एक दिनके वर्णनमें ऐसी ही आत्माका हृदयद्रावक दुःख लिखा है—जिसे पढ़ कलेजा कांपने लगता है। उन्होंने लिखा है कि, एक दिन जब मैंने अपनी सम्मोहनविद्या (मेस्मेरेजिम) के अनुसार एक म्याडम-को अचेत किया, तब मालूम हुआ कि उसके शरीरमें एक दूसरी ही आत्मा आगई है। हमने उससे कुछ पूछनेका प्रयत्न किया। आत्माने कुछ शब्द कहे—पर वह भाषा ऐसी थी, जिसे हम बिलकुल न समझ सकते थे फिर हमने अंग्रेजी भाषामें प्रश्न किया कि, "आप कौन हैं?" उसी भाषामें उत्तर मिला कि,—"एक दग्ध आत्मा।" हमने उत्सुक होके पूछा कि "आप अपनी आत्माको दग्ध क्यों कहते हैं?" उसने कहा, "मैं हर समय अशान्तिकी आगमें जला करता हूं—सदा शून्य आकाशमें चक्कर लगाया करता

हूं—मैं प्यासा हूं, भूखा हूं—मुझे अनन्त दुःख और अनन्त अशान्ति है। हमने कहा—" क्या आप अपना परिचय देना योग्य समझेंगे?" उसने कहा—" हां, मैं भारतमें आया हुआ एक यूरोपियन हूं। मैं रेलका गार्ड था। कई कारणोंसे दुखी होकर मैंने आत्महत्या कर डाली थी, और उसीके कारण अब अनन्त अशान्ति भोगता हूं। मुझे अनन्त दुःख और अनन्त अशान्ति है। " उस समय उसकी चेष्टासे जान पड़ता था कि, वह बहुत दुःख पा रहा है। हमने पूछा " क्या आप इसका कारण भी बतावेंगे? " पर वह अब न था, चला गया था। इससे स्पष्ट विदित है कि, शरीरघातीको कितनी अशान्ति है। इसके कई एक जीवित उदाहरण हैं।

जन्मघातकी पहिली सीढ़ी आत्मजय है। इस पहिली सीढ़ीपर चढ़ते ही मनुष्यकी दृष्टि कुछ दूर पर पड़ने लगती है। संसारके स्वाभाविक दुःख उससे हटने लगते हैं। क्रोध, मान, माया उसका पल्ला छोड़ देते हैं।

एक अत्युन्नत जन्मघाती विश्वको शिक्षा दे रहा है " स्वर्गमें जाके मत भूलो, वह तुम्हारे पदसे बहुत तुच्छ है। सूर्य, चन्द्रमा, ग्रहगणोंसे भी तुम्हारा पद ऊंचा है। अपने अनन्त सुखके बदलेमें तुच्छ विषयोंको मत खरीदो, इसमें तुम इतने ठगे जाते हो, जितना एक बच्चा हीराको देकर और उसके बदलेमें खिलौना पाकर ठगाया जाता है। "

अन्यका कथन है—" पुण्य और पापका मुझे डर नहीं है, मेरा आदि और अन्त नहीं है, जन्म, मरण, कल्पना, और इच्छासे मेरा सम्बन्ध नहीं है। पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाशसे मैं भिन्न हूं। पर मैं सबसे उन्नत हूं। "

मुक्तिसे अन्य मूल्यवान् कोइ वस्तु संसारमें नहीं है। उसके प्राप्त करनेके बाद आत्मा अखिल विश्वका मालिक होजाता है। मुक्ति प्राप्त कर चुकने पर और कुछ करना शेष नहीं रह जाता है।

मनुष्यका मुख्य कर्तव्य है कि, वह आत्महित करे; और आत्म-हितकी सबसे ऊंची चोटी जन्महत्या है। किन्तु जो भोले भाई शरीरहत्या करनेका विचार करते हैं, वे ठहरें और एक बार इसका पूर्ण रीतिसे विचार कर लें कि, क्या करनेमें सुख है। क्यों कि संसारके ज्ञानी और अज्ञानी सभी मनुष्य सुखके लिए सब काम करते हैं।*

शिवनारायण द्विवेदी, जयपुर।

भाषा—मीमांसा।

संसारमें प्रान्त देश द्वीपादिके भेदसे हजारों प्रकारकी भाषाएँ बोली और लिखी पढ़ी जाती हैं। यद्यपि ये सब भाषाएँ एक दूसरीसे भिन्न हैं—एक भाषा दूसरीसे नहीं मिलती है, तो भी जितनी भाषाएँ हैं, उन सबका उद्देश्य एक ही है, उसमें भिन्नता नहीं है। प्रत्येक भाषाका चाहे वह संस्कृत हो, या प्राकृत हिन्दी, अंग्रेजी, ग्रीक, लैटिन आदि और कोई हो, यही उपयोग है कि, मनुष्य उसके द्वारा अपने हृदयके भाव दूसरों पर प्रगट कर सकता है और दूस-रोंके आप जान सकता है।

इस तरह उद्देश्य और उपयोगके विचारसे सब भाषाओंका दर्जा एक ही है। तो भी किसी भाषाका महत्त्व विशेष होता है और किसीका कम होता है। यह महत्त्व और लघुत्व भाषामें जो भाव

* इस लेखके लिखनेमें हमें एक पुराने गुजराती समाचार पत्रसे बहुत सहायता मिली है। अतः उसके सम्पादकके हम कृतज्ञ हैं। लेखक.

प्रगट करनेकी शक्ति होती है, उसकी अधिकता हीनतापर और साहित्यकी कमी ज्यादती पर निर्भर है। जिस भाषाके द्वारा सूक्ष्मसे सूक्ष्म और गूढ़से गूढ़ विचार प्रगट किये जा सकते हैं और जिसका साहित्य बढ़ा चढ़ा होता है अर्थात् जिसमें विविध विषयोंके हजारों लाखों ग्रंथ मिलते हैं, वह उत्कृष्ट भाषा कहलाती है और जिसमें ये बातें नहीं हैं, वह निकृष्ट भाषा कहलाती है।

हमारे देशमें संस्कृत भाषा बहुत पूज्य गिनी जाती है। भाषासंसारमें इसका बहुत बड़ा महत्त्व है। इसका कारण यही है कि, संस्कृतमें हृदयके सूक्ष्मसे सूक्ष्म विचारोंको याथातथ्य प्रगट करनेकी शक्ति है. उसका साहित्य बहुत बड़ा है, और उसके द्वारा हमको तीन चार हजार वर्ष पूर्व तकके विद्वानोंके विचार मालूम हो सकते हैं। इसके सिवाय संस्कृतकी पूज्यताका सबसे बड़ा कारण यह है कि, उसमें धार्मिक ग्रन्थोंकी अन्य सब भाषाओंसे अधिकता है और धर्म इस भारतवर्षकी सबसे पूज्य वस्तु है। परन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि, संस्कृतके सिवाय अन्य किसी भाषाको यह पूज्यत्व और महत्त्व प्राप्त ही नहीं हो सकता है। संस्कृतने किसी परमेश्वरके यहांसे कोई ऐसा पट्टा नहीं लिखवा लिया है कि, उसे छोड़कर और कोई भाषा उन्नति कर ही नहीं सकेगी। जो खूबियां संस्कृतमें है, यदि उन्हें और कोई भाषा प्राप्त कर सके, तो लोग उसके सन्मुख अवश्य मस्तक नवावेंगे। इसमें कोई सन्देह नहीं है।

जैनियोंने मागधी वा प्राकृत भाषाको और बौद्धोंने पाली भाषाको अपनी प्रधान भाषा बनाके सिद्ध कर दिया है कि, प्रत्येक भाषाको महत्त्व प्राप्त हो सकता है, यदि उसका साहित्य बढ़ा-

या जाय और उसमें सूक्ष्म विवेचनशक्ति हो जाय तो। वैदिकमतोंमें जितना आदर तथा महत्त्व संस्कृतका है, उतना ही बल्कि उससे भी अधिक आदर महत्त्व बौद्धोंमें पाली भाषाका और जैनियोंमें मागधीका है। जिस तरह हिन्दू लोग संस्कृतको देववाणी वा देव-भाषा कहते हैं, उसी प्रकार बौद्ध लोग इसी प्रकारके किसी पूज्यता-द्योतक नामसे पालीका उल्लेख करते हैं और जैनियोंमें तो केवली भगवानकी दिव्यध्वनि ही मागधी भाषारूप परिणत होती है। अर्थात् वह एक प्रकारसे तीर्थंकर भगवानकी ही वाणी समझी जाती है। पाली और मागधीको इस प्रकारका पूज्यत्व प्राप्त होनेका भी कारण वही है, जो संस्कृतके विषयमें कहा गया है। इन भाषा-ओंमें भी ऊंचेसे ऊंचे भावोंको प्रगट करनेवाले लाखों ग्रन्थ मौजूद हैं।

अन्यत्र जो 'कर्नाटकजैनकवि' नामक लेख प्रकाशित किया गया है, उससे मालूम होगा कि, कनड़ी भाषाका साहित्य भी बहुत बड़ा है। जैनियोंके उक्त भाषामें हजारों ग्रंथ हैं और इसके कारण कनड़ी भाषा भी जैनियोंकी एक पूज्य भाषा समझी जाती है। पाठकोंको मालूम होगा कि, **गोम्मटसार**की संस्कृत टीकाकी रचना एक कनड़ी टीकाका अनुवाद करके तथा **आदिपुराण**की रचना **कविपरमेष्ठी**के किसी गद्यमय कनड़ी ग्रन्थके आधारसे हुई है। इसके सिवाय और भी बहुतसे संस्कृत ग्रन्थ कनड़ी ग्रन्थोंके आधारसे बनाये गये हैं। यदि कनड़ीका साहित्य उत्कृष्ट और विपुल न होता, तो उसके आश्रयसे संस्कृत साहित्यकी वृद्धि कभी न की जाती। कनड़ीके समान मागधी और पाली भाषाके भी सैकड़ों ग्रन्थोंका अनुवाद संस्कृतमें किया गया है।

इस समय संसारमें जितनी भाषाएं प्रचलित वा जीवित हैं, उनमें सबसे अधिक महत्त्व अंग्रेजी-भाषाको प्राप्त है। इस भाषाका सा-

हित्य यद्यपि प्राचीन नहीं है, परन्तु इतना बड़ा है कि, सुनकर आश्चर्य होता है। प्रत्येक विषयके हजारों ग्रन्थ इस भाषामें मिलते हैं। आज जिसे सर्वोत्कृष्ट पांडित्य प्राप्त करनेकी इच्छा होती है, उसे अंग्रेजी भाषा अवश्य पढ़नी पड़ती है। ऐसा कोई भी विषय नहीं है, जिसका साहित्य इस भाषामें नहीं है। हम इस भाषाको पूज्य भले ही न कहें, क्यों कि इसमें हमारे धर्मके ग्रन्थोंकी विपुलता नहीं है, और हम धर्मप्रिय हैं तथा ऐहिक विषयोंको हम जितना चाहिये उतना महत्व नहीं देते हैं, परन्तु महती भाषा तो अवश्य ही कहेंगे। सत्कारके विषयमें तो कुछ पूछिये नहीं, सर्वत्र इसीकी ही तूती बोलती है। इस भाषाके विना इस समय प्रतिष्ठाकी सम्पत्तिकी और समयोपयोगी विद्याकी प्राप्ति एक प्रकारसे असंभवसी समझी जाने लगी है। एक दिन वह था, जब कहा जाता था कि, **'न पठेद्यावनीं भाषां प्राणैः कण्ठगतैरपि'** परन्तु आज यह दिन है कि, इस 'यावनी' वा 'म्लेच्छभाषा' के पढ़े विना किसीका निस्तार ही नहीं है। तात्पर्य यह है कि, कोई भी भाषा हो, यदि उसका साहित्य बढ़ाया जाय, तो वह महती और पूजनीया अवश्य हो सकती है।

भाषाएं दो तरहकी होती हैं। एक वे **प्राचीन भाषाएं** जो इस समय किसी देश या जातिके मनुष्योंकी बोलचालकी भाषाएं नहीं हैं केवल प्राचीन ग्रन्थोंके अध्ययनसे ही वे समझी जा सकती हैं-- हां, यह अवश्य है कि, वे किसी प्राचीन समयमें बोलचालकी भाषाएं रह चुकी हैं। और दूसरी वे **अर्वाचीन भाषाएं** जो इस समय किसी प्रदेश देश या जातिमें बोली जाती हैं और उन्हें विना पढ़े लिखे मनुष्य भी समझ सकते हैं। संस्कृत, मागधी, पैशाची, पाली, लैटिन, अरबी आदि पहिले प्रकारकी भाषाएं हैं और हिन्दी,

बंगला, गुजराती, मराठी, अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच आदि दूसरे प्रकारकी भाषाएं हैं। यद्यपि प्राचीन सभ्यता साहित्य और इतिहासादिकी दृष्टिसे प्राचीन भाषाओंका महत्त्व कम नहीं है और विद्वानोंको उनका अध्ययन करना भी कम आवश्यक नहीं है; तो भी सुखबोध्यता, सर्वजनोपयोगिता, और प्रचारबहुलताके ख्यालसे वर्तमानमें जो भाषाएं प्रचलित हैं, उनका महत्त्व कुछ निराले ही प्रकारका है। प्रचलित भाषाओंमें सबसे अधिक महत्त्वकी बात यह है कि, उनके द्वारा उन बालक युवा वृद्ध पुरुषों और स्त्रियोंमें जिनकी कि वे मातृभाषाएं हैं मनमाना ज्ञानका विस्तार किया जा सकता है। यह लाभ प्राचीन भाषाओंसे नहीं हो सकता है। संस्कृत प्राकृत आदि भाषाएं कैसी ही उत्कृष्ट और पूज्य क्यों न हों, परन्तु उनके द्वारा बहुत थोड़े लोगोंका उपकार हो सकता है और सो भी जल्दी नहीं हो सकता है—उसके लिये बहुत समय चाहिये। परन्तु मातृभाषाओंके द्वारा करोड़ों मनुष्योंमें मनुष्यता लाई जा सकती है। इंग्लेंड, जर्मनी, फ्रांस, अमेरिका, जापान आदि देशोंने जो अपनी आश्चर्यकारिणी उन्नति की है और अपने यहांसे अज्ञानांधकारको जो एक प्रकारसे विदा ही कर दिया है, इसका कारण मातृभाषाएं ही हैं। यदि उपर्युक्त देश अपनी वर्तमान प्रचलित भाषाओंका अर्थात् अंग्रेजी जर्मन फ्रेंच जापानी आदि भाषाओंका आदर नहीं करते, केवल अपनी प्राचीन भाषाओंके वा विदेशी भाषाओंके ही भक्त बने रहते, तो इसमें कोई भी सन्देह नहीं है कि, आज वे भी हमारे समान परतंत्रताका निर्धनताका और घोर अज्ञानताका दुःख भोगते दिखलाई देते। मातृभाषाओंके इसी महत्त्वको लक्ष्य करके भारतेन्दु **बाबू हरिश्चन्द्रने** कहा है:—

निजभाषा उन्नति अहै, सब उन्नतिको मूल।
विन निजभाषाज्ञानके, मिटत न हियको शूल॥

लगभग आधी शताब्दीसे हमारे देशमें शिक्षाविस्तारके लिये बहुत कुछ यत्न हो रहे हैं। परन्तु उनमें जितनी सफलता होनी चाहिये, उतनी नहीं हुई है। बहुत ही कम—अष्टमांश दशांश भी नहीं हुई है। इसका कारण और कुछ नहीं—मातृभाषाओंके उक्त महत्त्वको न समझना ही है। हमारे देशमें जो लोग शिक्षाविस्तार करनेवाले हैं, उनमें सबसे बड़ा दल उन लोगोंका है, जो अंग्रेजी शिक्षाके प्रचारको ही सारी उन्नतियोंका मूल समझता है। इस दलमें हमारी गवर्नमेंट भी शामिल है। इस दलकी सारी शक्ति उक्त सात समुद्र पारकी विदेशी भाषाके प्रचारमें ही खर्च हो रही है।

इस दलको हम बुरा नहीं समझते हैं। कुछ समयके लिये हमको इसकी आवश्यकता थी, इसमें सन्देह नहीं है। क्यों कि इस समय जो संसारकी सर्वोत्कृष्टसाहित्यसम्पन्न भाषा है, उसके ज्ञानके बिना देशी भाषाओंका साहित्य हमारी आवश्यकताओंको पूर्ण करनेवाला नहीं बनाया जा सकता था। परन्तु इस दलकी कृपासे अब देशमें अंग्रेजी जाननेवालोंकी संख्या यथेष्ट हो गई है। उनके द्वारा अंग्रेजीके सब प्रकारके उपयोगी ग्रन्थ हमारी भाषाओंमें अवतीर्ण किये जा सकते हैं। और धीरे २ वे सब गुण भी हमारी भाषाओंमें लाये जा सकते हैं, जो अंग्रेजी संस्कृत आदि भाषाओंमें हैं। इसलिये अब उक्त दलको अपने प्रयत्नकी गति बदल देना चाहिये। उसे हिन्दी बंगला मराठी गुजराती आदि मुख्य २ भाषाओंमें उन सब ग्रन्थोंकी शिक्षा देनेके लिये उद्योग करना चाहिये, जो अंग्रेजीके उच्चसे उच्च श्रेणीके कालेजोंमें पढ़ाये जाते

हैं। इस प्रयत्नसे दश ही वर्षमें शिक्षाका इतना विस्तार हो जायगा, जितना अंग्रेजीके द्वारा सौ वर्षोंमें भी संभव नहीं है। क्योंकि देश-भाषाओंमें जितने थोड़े व्ययसे, जितने कम परिश्रमसे, और जितने कम समयके व्ययसे शिक्षा दी जा सकती है, उससे कई गुना व्यय बल और समय अंग्रेजीके लिये खर्च करना पड़ता है। इसके सिवाय देशभाषाओंमें उच्च श्रेणीके ग्रन्थ हो जानेसे उनके द्वारा साधारण पढ़े लिखे पुरुषोंमें भी जो कि स्कूलों और कालेजोंमें नहीं पढ़ेंगे, उच्च प्रकारके ज्ञानका जितना अधिक विस्तार होगा, उसका तो अनुमान भी नहीं हो सकता है।

शिक्षाविस्तार करनेवालोंमें एक दल पुराने ढंगके लोगोंका है। उक्त दलका सिद्धांत यह है कि, प्राचीन संस्कृतभाषाके ज्ञानके विस्तारसे ही देशका उद्धार होगा। उसका कथन है कि, जिस दिन न्याय, व्याकरण, काव्य आदि विषयोंके जाननेवाले घर घर हो जावेंगें, उस दिन भारत उन्नतिके शिखर पर जा पहुँचेगा ! इस दलके लोग अपनी सारी शक्ति संस्कृत पाठशालाओंके स्थापित करनेमें व्यय करते हैं। यद्यपि अंग्रेजी दलके समान इस दलमें कर्तृत्व-शक्ति नहीं है और इसलिये इसके द्वारा संस्कृतका ऐसा एक भी विद्यालय प्रतिष्ठित नहीं हो सका है, जो अंग्रेजीके एक साधारण कालेजकी भी बराबरी कर सके, तो भी छोटी छोटी सैकड़ों पाठ-शालाएं इसके द्वारा चल रही हैं और नित्य नई नई खुलती तथा बन्द होती रहती हैं। हम संस्कृत शिक्षाके विरोधी नहीं, परन्तु इस दलकी पाठशालाओंको देखकर हमको दया आती है और दुःख भी होता है। ये लोग पहाड़ खोदकर चूहा निकालनेमें ही आनन्द मानते हैं। कोरी व्याकरण, न्याय और काव्यकी शिक्षा देकर ये

लोग ऐसे 'पंडित' तयार करते हैं, जो सिवाय 'पंडिताई' करनेके और कुछ भी नहीं कर सकते हैं। इनके महत्परिश्रमके ये महाप्रसादस्वरूप पंडित व्यवहारज्ञानसे एक प्रकारसे शून्य ही होते हैं। अंग्रेजीको तो ये म्लेच्छ भाषा कहते ही हैं, किन्तु बेचारी देश भाषाओंके लिये भी इनके मुंहसे कम सुन्दर शब्द नहीं निकलते हैं। कोई इनसे हिन्दीमें बातचीत करना प्रारंभ करे, तो ये डांट करके कहते हैं–**भाषा रण्डायाः किं प्रयोजनम्**। मानो माताके गर्भसे बाहिर होते ही ये संस्कृत बोलने लगे थे। और मातृभाषाने इनपर कुछ उपकार ही नहीं किया है। यदि इस दलके लोग देशभाषाका महत्त्व समझें और कमसे कम इतनी ही कृपा करें कि, संस्कृतके साथ साथ देशभाषाओंमें भी शिक्षा देने लगें तथा व्यवहारोपयोगी विषयोंका ज्ञान भी अपने विद्यार्थियोंको कराने लगें, तो बहुत बड़ा लाभ हो। इस पद्धतिसे संस्कृत जो कि आजकल एक प्रकारसे भिक्षुकोंकी वा पोपलोगोंकी भाषा कहलाने लगी है, नहीं कहलावे और इसके जाननेवाले भी देशका कल्याण साधन करने लगें।

इस दलके लोग हमारे जैनसमाजमें भी बहुत हैं। यद्यपि जैनधर्मका साहित्य संस्कृतमें कम नहीं है, तो भी यह समझना बड़ी भारी भूल है कि, जैनियोंकी प्रधानभाषा संस्कृत ही है। जिस समय देशमें जैनियोंका प्रभाव कम हो गया था, वैदिकमतोंका फिरसे उत्थान हुआ था, और प्राकृतभाषा बोलचालकी भाषा नहीं रही थी–उसके स्थानमें परिवर्तन होते होते नई भाषाएं बन गई थीं, उस समय जैन विद्वानोंने संस्कृतकी अन्यधर्मियोंमें विशेष प्रतिष्ठा देखकर तथा उसे स्थायी और देशव्यापी समझकर उसमें ग्रन्थ रचना करना प्रारंभ किया था। इसके पहिले जैनियोंके ग्रन्थ प्रायः प्राकृत

वा मागधी भाषामें ही थे। फिर यह समझमें नहीं आता है कि, जैनी अपनी सारी शक्ति संस्कृतके ही प्रचारमें क्यों व्यय कर रहे हैं? यदि उन्हें अपनी प्राचीन भाषासे ही मोह है, तो प्राकृत वा मागधीमें शिक्षा देनेका उद्योग क्यों नहीं करते हैं और यदि मोह नहीं है, तो देशभाषाओंने क्या बिगाड़ा है? हमारी समझमें तो जैनियोंमें भाषासम्बन्धी आग्रह होना ही नहीं चाहिये। क्योंकि हमारे पूर्वाचार्योंकी सदासे यह पद्धति रही है कि, वे अपने उपदेशोंको उन्हीं भाषाओंमें लिखते तथा प्रचार करते थे कि, जिन्हें सर्व साधारण लोग समझ सकते थे। उनका ध्यान भाषाओंपर कभी नहीं रहा है—विशेष लाभपर रहा है। जिस समय देशमें प्राकृत बोलचालकी भाषा थी, उस समय उन्होंने प्राकृतमें ग्रन्थ रचना की थी, जिस समय सब जगह संस्कृतकी तूती बोलती थी, उस समय संस्कृतमें रचना की थी और अब जब वर्तमान भाषाओंका प्रचार हुआ, तब **जयपुर आगरा** आदिके विद्वानोंने भाषावचनिकामें सैकड़ों ग्रन्थ बना डाले। इसी लाभकी और उपयोगकी बुद्धिसे प्रेरित होकर पूर्वाचार्योंने कनड़ी तामिल आदि भाषाओंमें भी हजारों ग्रन्थ बनाये थे। यदि उन्हें किसी भाषाका ही आग्रह होता, उपदेशके प्रचारका ख्याल नहीं होता, तो इन नाना भाषाओंमें वे क्यों ग्रन्थ रचना करते? वे यह नहीं चाहते थे कि, हमारे विचारोंको केवल विद्वान् लोग ही समझ सकें—उनका हृदय इतना संकीर्ण नहीं था। उनके विशाल हृदयमें निरन्तर यही वासना रहती थी कि, जिस तरह हो मनुष्यमात्रमें हमारे उदार धर्मज्ञानका विस्तार हो। **श्रीहरिभद्र सूरिने** सिद्धान्त शास्त्रोंको प्राकृतमें बनानेका प्रयोजन देखिये क्या बतलाया है—

बालस्त्रीवृद्धमूर्खाणां नृणां चारित्रकांक्षिणाम्।
अनुग्रहार्थं तत्त्वज्ञैः सिद्धान्तः प्राकृतः स्मृतः ॥

अर्थात्—चारित्र धारण करनेकी इच्छा करनेवाले बाल स्त्री वृद्ध और मूर्ख पुरुषोंके उपकारके लिये तत्त्वज्ञानियोंने सिद्धान्तशास्त्रोंकी रचना प्राकृतमें की। इसीके अनुसार हमें भी चाहिये कि, अपने हृदयमें इस आग्रहको स्थान न दें कि, अमुक भाषा ही अच्छी है, इसलिये उसीके प्रचारका यत्न करना हमारा कर्तव्य है। हमें सदा उपकारकी दृष्टि रखनी चाहिये। जिस भाषासे बहुजनसमाजका अल्पपरिश्रमसे उपकार हो, इस समय हमें उसीकी शरण लेनी चाहिये। उसीमें अपने धर्मग्रन्थोंका अनुवाद करना चाहिये, उसीमें अन्य पुरानी और नई भाषाओंके साहित्यका अवतरण करना चाहिये, उसीको प्रौढ़ पुष्ट और साहित्यसम्पन्न बनानेका यत्न करना चाहिये और उसीके द्वारा अपनी सन्तानको विद्वान् बनाना चाहिये।

मधुकरी।

प्राचीन समयमें विद्याध्ययन तथा ज्ञानलाभ करनेकी जो परिपाटी थी, वह बहुत ही सुलभ और स्वाधीन थी। उस समय छात्रालयोंका, छात्रवृत्तियोंका और स्कालर्शिप देनेवाली संस्थाओंका अभाव था। तो भी लाखों विद्यार्थी ज्ञानसंपादन करके अपने धर्मकी और राष्ट्रकी उन्नति करते थे। वह परिपाटी विद्यार्थियोंकी भिक्षावृत्ति वा मधुकरीवृत्ति थी। जिस प्रकार मधुकर अर्थात् भ्रमर नाना फूलोंसे एक एक बिंदु मधु संग्रह करके मधुचक्रको पूर्ण करता है, उसी प्रकारसे मधुकरीवृत्तिके धारण करनेवाले विद्यार्थी अनेक

गृहस्थोंके घरसे थोड़ी २ भिक्षा लेकर अपना जीवन निर्वाह करते थे। एक बिन्दु मधुके दानसे जिस प्रकार फूलोंको किसी प्रकारका कष्ट नहीं होता है, उसी प्रकारसे गृहस्थोंको अपने भोजनालयमेंसे थोड़ीसी भिक्षा दे देनेमें भी किसी प्रकारका कष्ट अनुभव नहीं करना पड़ता था, बल्कि जब वे देखते थे कि, हमारी थोड़ीसी भिक्षासे अनेक विद्यार्थी अपार ज्ञानसमुद्रमें अवगाहन कर रहे हैं, तब उन्हें बड़ा भारी आनन्द होता था।

सागारधर्मामृत तथा **आदिपुरान** आदि ग्रन्थोंमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य वर्णके विद्यार्थियोंको ब्रह्मचर्य पूर्वक रहकर विद्याध्ययन करनेका तथा भिक्षासे जीविका निर्वाह करनेका विधान मिलता है। राजपुत्रोंको छोड़कर अन्य सम्पूर्ण द्विजजातिके बालकोंको भिक्षा मांगकर उदरपोषण करनेकी उस समयकी सामान्य परिपाटी थी। और खूबी यह कि, इस प्रकारकी भिक्षावृत्ति कोई नीचकर्म नहीं समझा जाता था। भिक्षा मांगनेवाले विद्यार्थियोंको न तो कोई दूसरा अनादरकी दृष्टिसे देखता था और न विद्यार्थी स्वयं ही इसमें अपने गौरवकी हानि समझते थे। उस समय मुनियों तथा आचार्योंके संघके साथमें सैकड़ों विद्यार्थी रहते थे और जिस नगरके समीप मुनियोंका संघ ठहरता था, उसमें जाकर भिक्षासे अपना उदरपोषण करते थे। इस तरह सहज ही हजारों लाखों विद्यार्थी स्कालर्शिप आदिकी चिन्तासे मुक्त रहकर ज्ञानार्जन करते थे।

वैदिकमतोंमें भी विद्यार्थियोंके लिये इसी प्रकारकी भिक्षा परिपाटी प्रचलित थी। वैदिक ऋषि वा गुरु वनोंमें रहते थे। विद्यार्थी उनसे विद्याध्ययन करते थे और भिक्षा मांगकर उससे केवल अपना ही नहीं किन्तु गुरुका भी उदरपोषण करते थे।

• यह प्रथा उस समय भी अच्छी तरह प्रचलित थी, जब भारतमें सब ओर बौद्धधर्मकी विजयपताका फहराती थी। नालन्दा, तक्ष-शिला, आदि स्थानोंके प्राचीन विश्वविद्यालय जिनमें कई २ हजार विद्यार्थी पढ़ते थे, इसी मधुकरीवृत्तिके सहारे चलते थे।

यह परमोत्तम परिपाटी यद्यपि इस समय लुप्तप्राय हो गई है, तो भी यह बड़ी प्रसन्नताका विषय है कि, अभीतक इसका नाम-शेष नहीं हुआ है। दक्षिणके बहुतसे ब्राह्मण विद्यार्थी अब भी इस वृत्तिसे अपना उदर निर्वाह करके विद्याध्ययन करते हैं और अपने पूर्वजोंकी एक अनुकरणीय पद्धतिकी रक्षा कर रहे हैं। पूना शहरमें इस समय सौसे अधिक विद्यार्थी ऐसे हैं, जो इस मधुकरीवृत्तिकी सहायतासे विद्यार्जन कर रहे हैं। ये विद्यार्थी प्रातःस्नान और सन्ध्यान्हिक समाप्त करके हाथमें भिक्षाकी झोली लेकर मधुकरीके लिये निकलते हैं। एक चौखूंटे कपड़ेके चारों खूंट एकत्र बांध लेनेसे झोली बन जाती है। इस झोलीके बीचमें एक गहरी थाली रक्खी जाती है, जिसमें भिक्षा संग्रह की जाती है। विद्यार्थी झोली लेकर गृहस्थोंके घर जाता है और गृहिणीको सम्बोधन करके कहता है, ओं भवति भिक्षां देहि। गृहिणी यह शब्द सुनते ही घरमें जो कुछ रंधा हुआ भोजन होता है, उसमेंसे थोड़ासा लेकर बाहर आती है और विद्यार्थीकी थालीमें रख देती है। गेहूं या ज्वारकी रोटीका आधा चौथाई टुकड़ा, भात, दाल, तरकारी आदि जो कुछ थोड़ा बहुत वह देना चाहे, दे सकती है। यह आवश्यक नहीं है कि, बहुतसा होवे, तब ही देवे। कभी कभी एक ग्रास भात और एक चमची दाल ही एक घरकी यथेष्ट भिक्षा होती है। विद्यार्थी उसके लेनेमें भी किसी प्रकारके खेदका अनुभव नहीं करता है।

एक बात और भी विशेष ध्यान देने योग्य है कि, ये विद्यार्थी उच्च ब्राह्मणकुलके हैं, तो भी अब्राह्मणकुलकी स्त्रीके हाथके पकाये हुए भोजनको ग्रहण करनेमें आनाकानी नहीं करते हैं। वे समझते हैं कि, **छात्रानां अध्ययनं तपः** अर्थात् छात्रोंके लिये विद्याध्ययन ही बड़ाभारी तप है। इस तपस्याके समक्ष जाति भेदको वे अकिंचित्कर समझते हैं।

इस मधुकरीवृत्तिसे विद्यार्थियोंको जो ज्ञानार्जनका सुभीता होता है, वह तो होता ही है, इसके सिवाय एक बड़ा भारी लाभ यह होता है कि, उनके हृदयसे तुच्छ अभिमानका तथा मिथ्या मर्यादागर्वका कुसंस्कार नष्ट हो जाता है और वे विनयशील, सरल, नम्र तथा स्वावलम्बी बन जाते हैं। उन्हें उस स्वाधीन-वृत्तिका अभ्यास भी पहिलेसे हो जाता है, जो आगे क्षुल्लक ऐलक, अवस्थामें तथा अनगारावस्थामें धारण करनी पड़ती है और जिसके धारण करनेकी इच्छा प्रत्येक मुमुक्षुको होना चाहिये।

इस समय हमारी जितनी पाठशालाएं, विद्यालय और बोर्डिंग आदि संस्थाएं हैं, उन सबके प्रबन्धकर्ताओंसे प्रायः यही शिका-यत सुननेमें आती है कि, क्या करें विद्यार्थियोंकी अर्जियां तो बहुत आती हैं, परन्तु स्कालर्शिपोंकी गुंजाइश नहीं होनेसे वे भरती नहीं किये जा सकते हैं। यदि ये सब प्रबन्धकर्ता अपने छात्रोंको मधुकरी-वृत्तिका महत्व समझा देवें और स्थानीय गृहस्थोंको इस सहज आहा-रदानका स्वरूप बतला देवें, तो हमारी समझमें सैकड़ों विद्यार्थि-योंका निर्वाह होने लगे और विद्याप्रचारका एक उत्तम मार्ग फिरसे प्रचलित हो जाय।

यद्यपि हमारे यहां उत्कृष्ट श्रावकों अर्थात् क्षुल्लकोंके लिये अनेक घरोंसे बनाया हुआ भोजन लेकर एक स्थानमें बैठकर

खानेका विधान है, तथा मुनियोंको भी गृहस्थजन अपने घरकी कच्ची रसोई बनमें ले जाकर तथा चौकेसे बाहर लाकर आहार कराते थे। इसलिये वास्तवमें देखा जाय, तो चौका चूल्हेका प्रपंच जो कि आजकल भारतवर्षकी प्रायः प्रत्येक जातिके पीछे संक्रामक रोगकी तरह लग गया है, कोई धर्मका तत्त्व नहीं है। तो भी इस विचारसे कि, अभी हमारे समाजमें अशिक्षितोंकी संख्या बहुत है और अपनी रूढियोंको वे धर्मसूत्रोंसे कम महत्व नहीं देते हैं; हमें वर्तमानमें कुछ समयके लिये अनेक घरोंसे सिद्ध भिक्षा मांगनेकी परिपाटीको तो बन्द रखना चाहिये परन्तु विद्यार्थी किसी श्रावकके घर जाकर भोजन कर आया करे, इस परिपाटीको अवश्य चला देना चाहिये और प्रयत्न करनेसे इसमें सफलता भी अच्छी हो सकती है। एक कुटुम्बमें एक विद्यार्थीका भोजन विना किसी कष्टबोधके सहज ही हो सकता है। शहरोंमें सैकड़ों जैनियोंके कुटुम्ब ऐसे होते हैं, जिनमें एक दो विद्यार्थीयोंका निर्वाह यों ही हो सकता है।

बंगालप्रान्तके शहरोंमें जितने वकील बैरिष्टर जज जमींदार आदि प्रतिष्ठित पुरुष हैं, उन सबके घरोंमें एक एक दो दो विद्यार्थी रहते हैं, और उनकी भोजनशालामें भोजनकरके हाईस्कुलों तथा कालेजोंमें पढ़ते हैं! विद्यार्थियोंको भोजनकी सहायता देना वहां पर एक प्रतिष्ठाका कार्य समझा जाता है। जिस धनी कुटुम्बसे एकाध विद्यार्थीको सहायता नहीं मिलती है, साधारण लोग उसकी निन्दा करते हैं। गरज यह कि, वहांके प्रतिष्ठित पुरुषोंका यह कर्तव्य हो गया है कि, वे एक दो विद्यार्थियोंको अधिक नहीं तो कमसे कम भोजन अवश्य करावें। यही कारण है कि, आज बंगालमें शिक्षाका विस्तार अन्य सब प्रान्तोंकी अपेक्षा बहुत अधिक हो

गया है। बंगाली धनिकोंकी यह प्रथा भी हमारे समाजके धनिकोंके अनुकरण करनेके योग्य है।

इस समय हमारे देशके सैकड़ों विद्यार्थी दूसरे देशोंमें जाकर विद्याध्ययन कर रहे हैं। उनमेंसे अमेरिकामें बीसों विद्यार्थी ऐसे हैं, जो इस भिक्षावृत्तिसे हजारों गुणे कष्टके और अपमानके कार्य करके नाना प्रकारके ज्ञान प्राप्त कर रहे हैं। ये विद्यार्थी सड़कोंपर गिट्टी फोड़ते हैं, होटलोंमें बुहारी लगाते हैं, झूठे वर्तन मांजते हैं, हल जोतते हैं, बच्चोंको खिलाते हैं, मिशीनें चलाते हैं; गरज यह कि छोटेसे छोटे कार्य करनेमें भी वे किसी प्रकारका संकोच नहीं करते हैं, और इन कामोंसे जो रुपया कमाते हैं, उनसे अपना उदर निर्वाह करके कालेजोंमें उच्च श्रेणीकी विद्याएँ पढ़ते हैं। वे समझते हैं कि, न्यायसंगत कर्म करनेमें लज्जाकी आवश्यकता नहीं है और विद्या ऐसा बहुमूल्य पदार्थ है कि, उसके प्राप्त करनेके लिये मरणतुल्य कष्ट भी सहन करना पड़े, तो सहन करना चाहिये। जिस समय हमारे देशके विद्यार्थियोंमें ऐसी बुद्धि उत्पन्न होगी, उस समय वे मधुकरीवृत्तिको धारण करनेमें कभी संकोच नहीं करेंगे और तब देशका उद्धार होनेमें कोई सन्देह नहीं रहेगा। जो छात्र छात्रावस्थामें जातिके झूठे अभिमानसे अभिभूत रहते हैं और यह कार्य छोटा है, हम कैसे करें; इस बातका ख्याल रखते हैं, वे हमारी समझमें विद्याध्ययन करनेके पात्र ही नहीं हैं, उनसे देशका और जातिका कल्याण होनेकी आशा नहीं रखना चाहिये।

बम्बईमें एक ऐसी विद्यार्थी-संस्था है, जो असमर्थ विद्यार्थियोंको सहायता देनेके लिये अन्न संग्रह करती है। उसके मेम्बर (विद्यार्थी प्रत्येक रविवारको झोलियां लेकर निकलते हैं और गृहस्थोंके

रसोई घरोंके द्वारोंपर एक २ झोली टांग आते हैं और गृहस्वामि-नीसे प्रार्थना कर आते हैं—माता, जिस समय रसोईमें चावल ले जाने लगो, उस समय एक मुठी इस झोलीमें भी डाल दिया करो। इसके पश्चात् दूसरे रविवारको जाते हैं और पहिली झोलियां लेकर दूसरी खाली झोलियां टांग आया करते हैं। इस तरह सहज ही उक्त विद्यार्थी प्रति सप्ताह कई मन चावल इकट्ठा कर लेते हैं और उससे लगभग ९० असमर्थ विद्यार्थियोंके उदरपोषणका प्रबन्ध कर लेते हैं। यह भी एक प्रकारकी मधुकरीवृत्ति है। इससे भी हमारे समाजके सैकड़ों असमर्थ विद्यार्थी विद्यालाभ कर सकते हैं।

इस समय जब कि हमारे समाजके धनिक विद्यासंस्थाओंमें सहायता देनेसे प्रायः उदासीन हैं, इस स्वाधीन उपायको काममें लानेकी बड़ी भारी आवश्यकता है। जिन्हें जाति धर्मकी उन्नति करनेकी सच्ची रुचि हुई हो, उन्हें चाहिये कि, इस मधुकरी वृत्तिका अवलम्बन करनेके लिये छात्रोंको उत्साहित करें—गृहस्थोंको उपदेश देवें और इसमें सफल प्राप्त करके धनोमत्त पुरुषोंको बतला देवें कि, तुम्हारे कृपाकटाक्षके विना भी करनेवाले सब कुछ कर सकते हैं।

जयमती।

आसामके इतिहासका अध्ययन करनेसे स्त्रीचारित्रका एक उच्च-आदर्श प्राप्त होता है। शिवसागर जिलाकी प्रातःस्मरणीया रानी जयमती सत्रहवीं शताब्दीमें सहिष्णुताका और पातिव्रत्य धर्मका जो उज्ज्वल दृष्टान्त दिखला गई है, वह जगतके इतिहासमें अतुलनीय है। जयमतीरानीकी अपूर्व कहानी भूतकालकी सीता दमयन्ती राजीमती आदि सतीस्त्रियोंके पतिप्रेमकी कथाओंको स्मृति-पटपर जागरूक कर देती है।

इस्वी सन् १६७९ में 'चामगुरीया' राजवंशका **चुलिकफा** नामक राजा आहोमके राजसिंहासनका अधिकारी हुआ। यह राजा अल्पवयस्क और क्षीण शरीर था, इसलिये लोग इसे लराराजा कहते थे। आसामकी भाषामें लरा शब्दका अर्थ बालक वा शिशु होता है। उमरमें कम होने पर भी लराराजा बुद्धिमान् था। उस समय राज्यकी जैसी दशा थी और मंत्रियोंकी शक्ति जैसी बढ़ी चढ़ी थी, उसका विचार करके इसने राजा होनेके योग्य जो राजकुमार थे, उनको गुप्त घातकोंके द्वारा अंगहीन वा प्राणहीन कर डालनेका निश्चय किया। इसे भय था कि, यदि मंत्रियोंकी मुझसे न बनेगी तो ये मुझे सिंहासनसे च्युत करके किसी दूसरे राजकुमारको राजा बना देंगे। लराराजाका नृशंस कार्य चलने लगा। अनेक वंशोंके अनेक राजकुमारोंको उसने विकलांग वा विकल प्राण करा डाले। दुर्बल राजा स्वभावसे ही भीरु कापुरुष और अत्याचारी होते हैं। लराराजा स्वयं दुर्बल था, इस लिये उसने इस प्रकार कापुरुषता और निर्दयताका आश्रय लेकर अपनी राजभोगकी तृष्णाको पूर्ण करनी चाही।

तुंगखुंगीयवंशके गोवर राजाके **गदापाणि** नामक पुत्रने जो कि देवतुल्य तेजस्वी, असाधारण बलशाली, और असीम साहसी था, लराराजाके हृदयमें भय उत्पन्न किया। गदापाणि ऐसा बली था कि, उसने एक दिन तीन मत्त हाथियोंके दांत पकड़कर उन्हें हिलने चलने नहीं दिया था। दो चार गुप्त घातकोंके द्वारा ऐसे पुरुषसिंहको अंगहीन करना असंभव समझकर लराराजाने उसके वध करनेके लिये विपुल आयोजन किये। किसी तरह यह संवाद गदापाणिको भी मालूम हो गया परन्तु इससे उसका साहसी हृदय

जरा भी विचलित नहीं हुआ। गदापाणिकी स्त्री रानी जयमती बड़ी ही सच्चरित्रा और पतिव्रता थी। वह अपने स्त्री-सुलभ स्वभावसे पतिकी रक्षाके लिये व्याकुल हो कर उससे कहीं भाग जानेके लिये विनय अनुनय करने लगी। गदापाणि पत्नीके प्रस्तावसे किसी प्रकार सहमत नहीं हुए। उन्होंने कहा, "मैं मृत्युसे डरनेवाला मनुष्य नहीं हूं। तुम्हें और अपने दुधमुँहे बच्चोंको छोड़कर मैं यहांसे कभी नहीं भागूंगा।" जयमती कातर होकर बोली "नाथ! आपका वीर हृदय मृत्युभयसे कंपित नहीं हो सकता—आप मृत्युके भयको तुच्छ समझते हैं, यह मैं अच्छी तरहसे जानती हूं, किन्तु यह तो सोचिये कि, राजसेवक आपको पकड़करके ले जावेंगे और वधकर डालेंगे, तो हम लोगोंकी क्या दशा होगी? आपके जीवनप्रदीपके निर्वाण होनेपर आपकी यह दासी तो एक घड़ीभर भी जीती नहीं रह सकती है, तब अपने इन सोनेसरीखे बालकोंकी क्या व्यवस्था होगी; इसलिये मेरी प्रार्थना यह है कि, आप इस पापराज्यको छोड़कर कुछ कालके लिये गुप्त हो जावें। यदि कभी जगदीश्वरके अनुग्रहसे शुभदिन आवेगा और भाग्यचक्रका परिवर्तन होगा, तो आप लोटके आ सकेंगे। आपका जीवन अमूल्य है। उसकी रक्षाके लिये अवश्य ही कोई उपाय करना चाहिये।" निदान गदापाणि पत्नीके कातर अनुरोधके आगे पराजित हो गये। गुप्तवेश धारण करके वे नागापर्वतकी ओर पलायन कर गये।

इधर गदापाणिके पकड़नेके लिये लराराजाने बहुतसी सेना भेजी। सेनाने लोटकर राजासे उसके भागजानेका समाचार सुनाया। दुर्बल और कापुरुष राजा गदापाणिके भागजानेसे शंकित होकर उसका पता लगानेके लिये व्याकुल हो उठा। उसकी पत्नी जय-

मतीके पास दूत भेजकर उसने गदापाणिका पता पुछवाया, परन्तु जयमतीने अपने पतिके सम्बन्धमें कोई भी बात नहीं बतलाई। उसने कहला भेजा कि, स्वामीका पता उसकी स्त्रीके द्वारा कदापि नहीं मिल सकेगा है। दूतके मुंहसे यह बात सुनकर लराराजा क्रोधसे पागल हो गया। उसने आज्ञा दे दी कि, जयमतीको इसी समय कैद करके ले आओ। आज्ञा पाते ही राजसेवक दौड़े गये और जयमतीको कैद करके राजाके समीप ले आये। लराराजाने पूछा "तेरा पति कहां छुप रहा है, शीघ्र बतला दे नहीं तो बेतोंकी मारसे तुझे यमलोकका रास्ता बतला दिया जागया।" जयमतीने दृढताके साथ उत्तर दिया;–

"यह मैं पहिले ही दूतके द्वारा आपसे कहला चुकी हूं कि, अपने स्वामीका पता मैं कभी नहीं बतलाऊंगी, फिर आप मुझसे बार बार क्यों पूछते हैं? मेरी प्रतिज्ञा अटल तथा अचल है। आप मेरे शरीरपर यथेच्छ अत्याचार कर सकते हैं, परन्तु मेरे मनके ऊपर मेरा ही सम्पूर्ण अधिकार है–अन्य किसीका नहीं है। यह नश्वर शरीर चिरस्थायी नहीं है, यह मैं अच्छी तरहसे जानती हूं, इसलिये आप मेरेद्वारा पतिके पता पानेकी आशाको छोड़ दीजिये।" लराराजाने क्रोधसे हिताहित विवेक शून्य होकर आज्ञा दी कि, "जयमतीको ले जाओ, और इसे राजमहलके सम्मुख बांधकरके विना विराम लिये बेतोंकी मार मारो। इतना याद रक्खो कि, यह मरने न पावे, केवल मारसे इसके शरीरको यंत्रणा पहुंचती रहे। जब तक यह अपने पतिका पता नहीं बतलावे, तब तक बराबर इसे इसी प्रकारकी शास्ति देते रहो। जैसे बने तैसे इससे गदापाणिका पता पूछ लेना है।"

मूढ़ राजाने अपने क्षुद्र, दुर्बल और पशुहृदयको आदेश मानकर संसारके समस्त मानवहृदयोंका अनुमान किया था। उसने सोचा था कि, जयमती वेतोंकी मारके कष्टसे अपने पतिका पता बतला देगी। किन्तु दिनपर दिन जाने लगे, जयमतीने असह्य अत्याचारोंको सहन करके भी गदापाणिके सम्बन्धमें एक शब्द भी ओठोंसे बाहिर नहीं निकाला। देशकी सारी प्रजा राजाके पैशाचिक अत्याचारको देखती हुई जयमतीके लिये चुपचाप आँसू बहाने लगी। उस समय देशमें शक्तिशाली पुरुषोंका अभाव था, मंत्रीगण भी अपनी आपसी कलहके कारण दुर्बल हो रहे थे, अतएव राजाके अत्याचारका निवारण नहीं हो सका।

जयमतीके ऊपर जो अत्याचार हो रहा था, उसका समाचार क्रमसे नागापर्वतपर गदापाणिके कानों तक भी पहुंच गया। उसे सुनते ही वे लराराजाकी पापपुरीकी ओर रवाना हो गये और वेष छुपाकर जयमतीके पास आकर बोले;—"राजकुमारी तू व्यर्थ ही क्यों इतना कष्ट सहन कर रही है? स्वामीका पता बतलाकर इस यातनासे अपना पिंड क्यों नहीं छुड़ा लेती है?" जयमती उस समय नेत्र बन्द किये हुए ईश्वर ध्यान और स्वामीके चरणोंका ध्यान करती हुई चुपचाप बेत खा रही थी। इसलिये गदापाणिकी बात उसके कर्णगोचर नहीं हुई। गदापाणि इसके पश्चात् एकवार फिर जयमतीके पास आकर बोले;—"हे देवी, स्वामीका पता बतलाकर अपनी छुट्टी क्यों नहीं करा लेती? व्यर्थ कष्ट पानेसे क्या लाभ है?" अबकी बार जयमतीने गदापाणिको देख लिया और पहिचान भी लिया। वह शंकित-चित्त होकर सोचने लगी, जिसके लिये इतना कष्ट और इतना अपमान सहन कर रही हूं, और जिसकी

रक्षाके लिये मैंने अपना जीवन भी उत्सर्ग कर दिया है, वह यदि यहां स्वयं ही आकर अपनेको पकड़ा देगा, तो सब ही व्यर्थ गया समझना चाहिये। जयमतीको रुलाई आ गई। असहनीय अत्याचार और पीड़नसे जिसकी शान्ति नष्ट नहीं हुई थी, घोरतर वेत्राघातसे जर्जरित होकर भी जो प्रशान्त मूर्ति धारण करके स्वामीके पवित्र चरणोंका ध्यान करती हुई दिन काटती थी, उसका अबकी बार धैर्यच्युत हो गया। मेरा सारा ही उद्देश्य विफल हो गया, यह देखकर वह अस्थिर हो उठी और बोली,—"जब मैं कई बार कह चुकी हूं कि, मैं अपने स्वामीका पता कभी नहीं बतलाऊंगी तब फिर यह पुरुप मुझे बार २ पूछकर क्यों तंग करता है? वह यहांसे चला क्यों नहीं जाता? सती स्त्री अपने स्वामीके लिये सब कुछ सहन कर सकती है। स्वामीके कल्याणके लिये अपना प्राण दान कर देना भी सती नारीका कर्तव्य है।" इन वाक्योंके उच्चारण करते समय जयमती गदापाणिकी ओर अतिशय कातर दृष्टिसे देखकर उन्हें उस स्थानसे शीघ्र चले जानेके लिये सकरुण प्रार्थना करती थी। गदापाणि इस समय भी सतीके सकरुण अनुरोधकी उपेक्षा नहीं कर सके, वहांसे उसी समय चले गये। जयमतीपर बेतोंकी मार बराबर पड़ती रही।

गदापाणिके चले जानेपर लराराजाके निर्दय अनुचर और भी १४–१५ दिन जयमतीपर अत्याचार करते रहे। इस तरह सब मिलाकर २१–२२ दिन दुस्सह अत्याचार सहन करके और उस यंत्रणापर भ्रूक्षेप मात्र भी नहीं करके उस परम साध्वीका प्राणपखेरू अपने लोहूलुहान हुए शरीरको छोड़कर उड़ गया और संसारके इतिहासमें अतुलनीय सहिष्णुता और पातिव्रत्यका एक जाज्वल्यमान उदाहरण अंकित कर गया।

अपनी साध्वी पत्नीका स्वर्गारोहण संवाद पाकर गदापाणिसे फिर स्वस्थ नहीं रहा गया। वह शीघ्रही लराराजाके दुष्कर्मोंका प्रतिफल देनेके लिये कटिबद्ध हो गया और एक बलशालिनी सेनाको एकत्र करके लराराजापर चढ़ गया और उसे राज्यच्युत करके आप सिंहासनका अधिकारी हो गया। इसके पश्चात् उसने लराराजाको मारके उसके पापोंका उपयुक्त प्रायश्चित्त दिया।

गदापाणिने गदाधरसिंह नाम धारण करके इस्वी सन् १६८१ से १६९९ तक राज्य किया। पिताकी मृत्युके अनन्तर उसके पुत्र रुद्रसिंहने राज्यसिंहासनको सुशोभित किया। रुद्रसिंह आसामका एक सुप्रसिद्ध राजा हुआ। उसने अपनी माताकी कीर्तिको चिर-स्मरणीय करनेके लिये जिस स्थानपर जयमतीपर अत्याचार किया गया था, वहीं 'जयसागर' नामका विस्तृत तालाब खुदवाकर और उसीके समीप 'जयदोल' नामका एक देवमन्दिर निर्माण करवाकर निजमातृभक्तिका परिचय दिया। शिवसागर जिलेको जयसागर तालाबका निर्मल जल आज भी वायुके झकोरोंसे नृत्य करता हुआ जयमतीकी किर्तिकहानी, रुद्रसिंहकी मातृभक्ति और आसामके गतगौरवका प्रचार करता दिखलाई देता है। *

विविध विषय।

शाही दरबार—अबकी बारका दिल्लीदरबार अभूतपूर्व हुआ जबसे अंग्रेजी राज्य भारतमें स्थापित हुआ, तबसे यहांकी प्रजाने अपने राजराजेश्वरके दर्शन नहीं किये थे। प्रजाकी यह कामना अबके दरबारमें पूर्ण हो गई। कहते हैं, महाराज युधिष्टरके पश्चात् कई हजार

* बंगला प्रवासीमें प्रकाशित हुए श्रीरजनीकान्तरायके एक लेखका संक्षिप्त अनुवाद।

वर्षोंमें प्राचीन इन्द्रप्रस्थ वा वर्तमान दिल्ली राजधानीको यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है। बीचमें यद्यपि अनेक सम्राट् और बादशाह देहलीके सिंहासनपर आरूढ़ होते रहे हैं, परन्तु उनमेंसे किसीको भी चक्रवर्ती नहीं कह सकते हैं। वास्तवमें पूछा जाय, तो धर्मराजके पश्चात् महाराज पंचमजार्ज ही इस महान् पदके अधिकारी हुए हैं। आज हमारे महाराज पंचमजार्जका राज्यविस्तार इतना बड़ा है कि, उसमें सूर्यका उदय कहीं न कहीं बना ही रहता है। उनके राज्यकी शीतल छायामें इस समय लगभग ४० करोड़ प्रजा रहती है। १२ दिसम्बरके चिरस्मरणीय दिन महाराजका राज्याभिषेक समारंभ हुआ। उस समय महाराजने भारतीय प्रजाके लिये जो सहानुभूति सूचक शब्द सुनाये वे बड़े ही महत्त्वके थे। उनसे भारतको बहुत बड़ा आश्वासन मिला है। उसे आशा हो चुकी है कि, अब मैं जैसा हूं वैसा ही न रहूंगा। महाराजके सुशासनमें मैं उन्नतिकी परमसीमापर पहुंच जाऊंगा। भारतीय प्रजा इस राज्याभिषेकके उपलक्षमें जो बहुतसी बातें चाहती थी, उनमेंसे कई बातें उसे मिली हैं। एक तो महाराजने भारतकी आमदनीपर सार्वजनिक शिक्षा विस्तारका अधिक सत्व स्वीकार किया है, और शिक्षाके लिये ५० लाख रुपया अधिक देना मंजूर किया है। आगामी वर्षोंमें इससे भी अधिक दिया जायगा। दूसरे वंगभंग रद्द कर दिया गया है, जिसके कारण एक बंगालकी ही प्रजाको नहीं सारी भारतीय प्रजाको मर्मभेदी कष्ट हुआ था। इसके सिवाय और भी कई छोटी २ दया दिखलाई गई हैं। एक भारी परिवर्तन यह हुआ है कि, भारत साम्राज्यकी राजधानी कलकत्तासे उठाकर दिल्लीमें स्थापित की जायगी। बंगालमें एक गवर्नर रहेगा। विहार उड़ीसा और छोटा नागपुरको मिलाकर एक चीफ कमिश्नरी बना दी जायगी। दरबार

बड़े ठाटवाटसे हुआ। भारतके प्रायः सभी राजा महाराजा इस समय दरबारमें उपस्थित हुए थे। कुछ दिनोंके लिये देहली स्वर्ग-पुरी बन गई थी। सारे देश भरमें इस महोत्सवका आनन्द स्रोत वह रहा है। प्रत्येक भारतवासीके मुंहसे यही शब्द निकलते हैं कि, राजराजेश्वर पंचम जार्ज और महाराणी मेरीकी जय हो।

जैनसिद्धान्तपाठशाला, मोरेना—इस पाठशालाका विशेष परिचय देनेकी आवश्यकता नहीं है। क्यों कि प्रायः सबही धर्मात्मा इससे परिचित हैं। इस समय इसका कार्य बड़ी खूबीके साथ चल रहा है। १४–१५ विद्यार्थी गोमट्टसारसिद्धान्त, पंचाध्यायी, प्रमेय-कमलमार्तंड, परीक्षामुख, आदि महान् महान् ग्रन्थोंका अध्ययन कर रहे हैं। जैनसिद्धान्तकी सूक्ष्मसे सूक्ष्म बातें यहांके विद्यार्थि-योंको बतलाई जाती हैं। विद्यार्थियोंके लिये स्थान भोजनादिका भी उत्तम प्रबन्ध है। धार्मिकतत्त्वोंके सिवाय लोकोपयोगी ज्ञान प्राप्त करानेकी भी यहां कोशिश की जा रही है। गणित, अंग्रेजी, मुनीमी आदिकी शिक्षाका भी प्रबन्ध किया जा रहा है। प्रति अष्टमी चतुर्दशीको सभा की जाती है और उसमें विद्यार्थियोंको व्याख्यान देनेका अभ्यास कराया जाता है। ब्रह्मचारी मोतीलाल-जीने इस पाठशालाकी उन्नतिके लिये अपना जीवन दान कर दिया है। वे इस समय बड़े उत्साहके साथ पाठशालाकी उन्नति करनेका यत्न कर रहे हैं। गतवर्ष पाठशालाने जो कार्य किया है, उसकी रिपोर्ट छपकर प्रकाशित हो चुकी है। जिन भाइयोंको देखनेकी इच्छा हो वे पाठशालाके मंत्रीसे मंगा लेवें। पाठशालाकी उत्तम पढ़ाईकी कीर्ति सुनकर जैनसिद्धान्त पढ़नेकी इच्छा रखनेवाले कई विद्यार्थियोंके प्रार्थनापत्र आये हैं, परन्तु धनाभावके कारण लाचार हो कर उन्हें आनेकी स्वीकारता नहीं दी जा सकती है। जैनधर्मकी

उन्नति चाहनेवालोंको इस ओर अवश्य ध्यान देना चाहिये। जिन स्थानोंमें जैनधर्मके जाननेवाले विद्वानोंका अभाव है, उन्हें चाहिये कि, अपने यहांके एक २ दो २ सुबोध विद्यार्थियोंको स्कालर्शिप देकर यहां भेज देवें और अपनी इच्छा पूर्ण करे। ऐसा अच्छा अवसर फिर नहीं मिलेगा। स्याद्वादवारिधि पं० गोपालदासजी सरीखे विद्वान् सब जगह नहीं मिल सकते हैं। गत अगहन सुदी १४ को पाठशालाका वार्षिकोत्सव किया गया। जिसमें पाठशालाकी रिपोर्ट सुनाई गई और अनेक विद्यार्थियोंके व्याख्यान हुए। नाथूराम प्रेमी, सम्पादक जैनहितैषीने 'विद्यार्थियोंका कर्तव्य क्या है, इस विषयमें व्याख्यान देकर विद्यार्थियोंको स्वावलम्बन, स्वार्थत्यागादिकी आवश्यकता बतलाई। मधुकरीवृत्तिका प्रचार करनेके लिये भी उन्होंने जोर दिया।

एक स्वार्थत्यागीकी जरूरत।

जैनसिद्धान्त पाठशाला मोरेनाके लिये एक ऐसे सज्जनकी जरूरत है, जो कमसे कम एण्ट्रेंसतक अंग्रेजी पढ़े हों और जैनसिद्धान्तके अध्ययन करनेकी इच्छा रखते हों। उन्हें स्वयं जैनसिद्धान्तका अध्ययन करना पड़ेगा और पाठशालाके विद्यार्थियोंको अंग्रेजी तथा गणितकी शिक्षा देनी पड़ेगी। पाठशाला उनको पूरा वेतन तो नहीं दे सकती है, केवल उनके निर्वाहके योग्य (१०) मासिककी एक वृत्ति देगी। आशा है कि, इस स्वपरोपकार कार्यके लिये कोई न कोई महाशय अवश्य तयार होंगे। इस पाठशालाकी इसी प्रकार निःस्वार्थवृत्तिसे कई सज्जन सेवा कर रहे हैं।

मंत्री जैनसिद्धान्तपाठशाला,

मोरेना, (ग्वालियर)

नई छपी पुस्तकें।

भाषानित्यपाठसंग्रह—जिसमें नमस्कारस्तवन, सुप्रभाताष्टक, दर्शनाष्टक, दौलतकृत दर्शनपाठ, भूधरकृत दर्शनपाठ, प्रातःस्मरणीय पद, आदिनाथस्तोत्र नाथूरामप्रेमीकृत, आदिनाथस्तोत्र हेमराजजीकृत, विषापहारस्तोत्र, कल्याणमंदिरस्तोत्र, एकीभावस्तोत्र, भूपालचौबीसी, आलोचनापाठ, सामायिकपाठ, वैराग्यभावना, निर्वाणकाण्ड, गुरुस्तुति, बारह भावना, और सरस्वतीस्तवन इस प्रकार १९ पाठ भाषाके हैं। निर्णयसागर प्रेसमें छपा है। मनोहर रेशमी जिल्दका आठ आना। रेशमी पट्ठेवाली जिल्दका मूल्य छह आना है।

सामायिकपाठ—अमितगतिआचार्यकृत मूल और शीतलप्रसादजी ब्रह्मचारीकृत भाषाटीका, प्रथमावृत्ति हाथोंहाथ बिक जानेसे फिरसे छपाया गया है। मूल्य एक आना।

मोक्षशास्त्र—बालबोधिनी भाषाटीका। संशोधन और परिवर्धन करके पाठकोंकी [illegible] मोटे और पुष्ट कागजपर यह संस्करण छपाया गया है। मूल्य सादी जिल्दका बारह आना, कपड़ेकी जिल्दका चौदह आना।

अनुभवप्रकाश—पं. दीपचन्दजीशाहकृत अध्यात्मका वचनिकामय ग्रंथ। सुन्दर १२० पत्रोंपर छपा हुआ। मूल्य सि. छह आना।

ज्ञानदर्पण—यह भी पं. दीपचन्दजीशाहकृत अध्यात्म विषयका छन्दोबद्ध मनोहर ग्रंथ है। मूल्य चार आना।

मुक्तागिरि तीर्थक्षेत्रका रंगीन चित्र—देखने योग्य है। मूल्य पांच आना।

गणरत्नमहोदधि—व्याकरणका अपूर्व ग्रंथ है। इसकी कुछ कापीयें हमने बिक्रियार्थ मँगाई हैं। मूल्य दो रुपिया।

धन्यकुमारचरित्र—पुष्ट कागजपर बनारसका छपा हुआ है। मूल्य बारह आना।

पुस्तकोंका विशेष हाल जानना हो तो बड़ा सूचीपत्र मंगाकर देखिये।

मैनेजर—**श्रीजैनग्रंथरत्नाकर कार्यालय,**
हीराबाग, पो० गिरगांव—बम्बई।

नये वर्षका उपहार ।

पंडित प्रवर टोडरमलजी कृत

मोक्षमार्गप्रकाश ।

जो ग्रन्थ एक बार छपकर तीन रुपयेमें हाथोंहाथ बिक गया है, वही महान् ग्रन्थ बहुत ही शुद्धतापूर्वक छपा हुआ जैनहितैषीके ग्राहकोंको केवल डांक खर्चादिके लिये आठ आना अधिक लेकर उपहारमें दिया जायगा । जैनहितैषी सरीखा एक छोटासा मासिक-पत्र इससे अधिक और क्या साहस कर सकता है ?

भाषावचनिकामें अभीतक जैनधर्मके जितने ग्रन्थ बने हैं, मोक्ष-मार्गप्रकाश उनमें सर्वोपरि है । यह किसी मूलग्रन्थका अनुवाद अथवा टीका नहीं है, किन्तु एक आचार्य तुल्य विद्वानके बहुत बड़े धार्मिक अनुभवोंका स्वतंत्र संग्रह है । गहनसे गहन विषयोंका जितनी मार्मिकतासे इस ग्रन्थमें निरूपण किया है, वैसा शायद ही किसी ग्रन्थमें मिलेगा । प्रत्येक घरमें इस ग्रन्थके विराजमान होनेकी जरूरत देखकर हमने इस वर्ष इसे उपहारमें रक्खा है । पहिली बार जब यह लाहोरमें छपा था, तब भाषामें बहुत फेरफार किया गया था, परंतु अबकी बार हमने ग्रन्थकर्त्ताकी खास भाषामें ज्योंका त्यों बहुत ही शुद्धतापूर्वक पुष्ट कागजोंपर छपाया है । सब मिला-कर ५०० पृष्ठका पूरा ग्रंथ है । पिछले वर्षोंके उपहार ग्रन्थोंसे इस वर्षका ग्रन्थ ढाई गुणा बड़ा है ।

ग्रंथ तयार हो गया है।

जिन २ ग्राहकोंकी वी. पी. भेजनेकी मंजूरी आगई है । उन सबको वी. पी. भेज जा चुके हैं । जिन्होंने अभीतक वी. पी. भेजनेकी मंजूरी नहीं लिखी है, उन्हें शीघ्र लिखना चाहिये । पुराने ग्राहक अपना ग्राहक नम्बर या पुराना ग्राहक, और नये ग्राहक नया ग्राहक इतना शब्द जरूर लिख देवें ।

ॐ

जैनहितैषी

जैनियोंके साहित्य, इतिहास, समाज और
धर्मसम्बन्धी लेखोंसे विभूषित

मासिकपत्र।

सम्पादक और प्रकाशक—श्रीनाथूराम प्रेमी।

आठवाँ भाग।	माघ श्रीवीर नि० संवत् २४३८	चौथा अंक

विषयसूची।

पत्रव्यवहार करनेका पता—

मैनेजर—श्रीजैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग, पो० गिरगांव-बम्बई।

Printed by G. N. Kulkarni at his Karnatak Press, No. 7, Girgaon Back Road, Bombay, for the Proprietors.

जैनहितैषीके नियम।

१. जैनहितैषीका वार्षिक मूल्य डांकखर्च सहित १॥) पेशगी है।

२. प्रतिवर्ष अच्छे २ ग्रन्थ उपहारमें दिये जाते हैं और उनके छोटे बड़ेपनके अनुसार कुछ उपहारी खर्च अधिक भी लिया जाता है। इस सालका उपहारी खर्च ॥) है। कुल मूल्य उपहारी खर्चसहित २) है।

३. इसके ग्राहक सालके शुरूसे ही बनाये जाते हैं, बीचमें नहीं, बीचमें ग्राहक बननेवालोंको पिछले सब अंक शुरू सालसे मंगाना पड़ेंगे, साल दिवालीसे शुरू होती है।

४. जिस साल जो ग्रन्थ उपहारके लिये नियत होगा वही दिया जायगा। उसके बदले दूसरा कोई ग्रन्थ नहीं दिया जायगा।

५. प्राप्त अंकसे पहिलेका अंक यदि न मिला होगा, तो भेज दिया जायगा। दो तीन महिने बाद लिखनेवालोंको पहिलेके अंक फी अंक दो आना मूल्यसे प्राप्त हो सकेंगे।

६. बैरंग पत्र नहीं लिये जाते। उत्तरके लिये टिकट भेजना चाहिये।

७. बदलेके पत्र, समालोचनाकी पुस्तकें, लेख वगैरह "**सम्पादक, जैनहितैषी, पो० मोरेना जिला ग्वालियर**"के पतेसे भेजना चाहिये।

८ प्रबंध सम्बंधी सब बातोंका पत्रव्यवहार मैनेजर, **जैनग्रंथरत्नाकर कार्यालय पो० गिरगांव, बम्बईसे** करना चाहिये।

श्रीसम्मेद शिखरपर बंगले।

ता. १६ जनवरीके इंग्लिशमैनमें प्रकाशित हुआ कि—बिहारके नये लेफ्टेनेंट गवर्नरका गर्मीको दिनोंमें अपने रहनेका स्थान पारसनाथ पहाड़ रखना होगा।

जैनी भाईयो जागो और पूज्य सम्मेदशिखरको इस अपवित्रतासे बचानेका उपाय करो।

नई पुस्तकें ।

प्राणप्रिय काव्य.

यह सुन्दर और सरस काव्य दो वर्ष पहिले जैनहितैषीमें प्रकाशित हुआ था । अब जुदा पुस्तकाकार हिंदी अनुवाद सहित छपाया गया है । प्रत्येक सहृदयको इसे पढ़ना चाहिये । भक्तामरके चौथे चरणोंकी समस्या पूर्ति की गई है और उसमें नेमिनाथ और राजीमतीका सरस चरित्र निबद्ध किया गया है । मूल्य दो आना.

क्रियामंजरी.

इस पुस्तककी कई वर्षोंसे मांग थी । श्रावकोंके करने योग्य नित्य क्रियाओंकी इसमें हिंदीमें विधि लिखी है । सन्ध्या वंदन, यज्ञोपवीत धारण, आदि सब विधियोंका तथा मंत्रोंका इसमें संग्रह है । मूल्य दो आना ।

इन्द्रियपराजयशतक.

मूल प्राकृत गाथायें और उसके नीचे भाषा कविता है । बड़ा ही उपदेश पूर्ण और वैराग्यमय ग्रन्थ है । इंद्रियोंपर विजय प्राप्त करनेकेलिये प्रत्येक जीवको पढ़ना चाहिये । हिन्दी कविता कंठ करने योग्य है । मूल्य दो आना ।

दियातलेअंधेरा यह छोटासा शिक्षा सम्बंधी उपन्यास दूसरीबार फिर छपाया गया है । बड़ा ही दिलचस्प है । मूल्य डेढ़ आना ।

एकसामाजिकचित्र यह छोटासा उपन्यास जैनहितैषीमें निकल चुका है । अब फिर छपाया है । इसमें जयपुरके एक सेठजी की चटपटी कहानी है । मूल्य एक आना.

ज्ञानदर्पण.

पं० दीपचन्दजी शाह एक अच्छे आध्यात्मिक पंडित और कवि हो गये हैं। यह ग्रन्थ उन्हींका बनाया हुआ है। कविता बनारसीदासजीके नाटक समयसारके ढंगकी है। शुद्धनयका कथन है। प्रत्येक अध्यात्मप्रेमीको मंगाना चाहिये अबतक यह ग्रन्थ बिलकुल अप्रसिद्ध था। मूल्य चार आना।

अनुभवप्रकाश.

यह उक्त पंडितजीका ही बनाया हुआ ग्रन्थ है। यह वचनिकामय है। इसमें शुद्धात्मानुभवका विवेचन है। इसके स्वाध्यायसे आत्माको बड़ी ही शान्ति मिलती है। एक दक्षिणी धर्मात्माने प्रकाशित कराया है। मूल्य प्रायः लागतके लगभगका अर्थात् छह आना है।

आर्यमतलीला.

जैनगजटके भूत पूर्व सम्पादक बाबू जुगलकिशोरजीकी लिखी हुई यह पुस्तक बहुत ही अच्छी बनी है। इसमें आर्यसमाजमें और उसके महामान्य ग्रन्थ वेदोंमें क्या २ लीलायें हैं, सो दिखलाई हैं। जहां आर्यसमाजका जोर है, वहांके जैनियोंको यह पुस्तक जरूर मंगाना चाहिये। समाजियोंके पांच मतकी इसमें खूब खबर ली गई है। मूल्य ।=.

नित्य नियम पूजा तीसरी आवृत्ति छपकर तयार हुई है। मूल्य ।

रविव्रत कथा.

भाऊ कविकृत चौपाई बद्ध हाल ही छपकर तयार हुई है मूल्य

खंडेलवाल इतिहास श्रीयुक्त राजमलजी बड़जात्या कृत — इसमें खंडेलवाल जातिकी उत्पत्तिका वर्णन लिखा है। मूल्य अढ़ाई आना.

धन्यकुमारचरित्र.

श्रीसकलकीर्ति आचार्यके बनाये हुए संस्कृत धन्यकुमारचरित्र-का यह हिन्दी अनुवाद पं० उदयलालजी काशलीवालने किया है। कथा बहुत रोचक है। इसमें दानकी महिमा दिखलाई है। भाषा सबकी समझमें आने योग्य है। मूल्य बारह आना।

भद्रबाहुचरित्र इस ग्रन्थमें अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहुका चरित्र तथा श्वेताम्बर, यापनीय ढूंढक आदि संघोंकी उत्पत्तिका वर्णन है। मूल ग्रन्थ आचार्य रत्ननन्दिका बनाया हुआ है और भाषाटीका पं० उदयलालजी काशलीवालने बनाई है। मूलश्लोक नीचे बारीक टाइपमें दिये हैं और भाषा मोटे टाइपमें ऊपर दी है। प्रारंभमें श्वेताम्बर और दिगम्बरोंकी प्राचीनता अर्वाचीनताके विषयमें लगभग [illegible] पृष्ठका एक निबन्ध है। मूल्य चौदह आना।

बाल आरब्योपन्यास. सचित्र

आरेबियन नाइट्स अलिफलैलाकी कहानियां कैसी दिलचस्प हैं, सो सभी जानते हैं. उनमेंसे कुछ अयोग्य कहानियोंको निकाल कर यह उत्तम पुस्तक तयार की गई है अब स्त्री पुरुष सब इसे पढ़ सकते हैं। बंगालके एक नामी लेखकने इसे लिखा है. उसपरसे हिन्दी अनुवाद की गई है। बड़ी ही मनोरंजक पुस्तक है। मूल्य चारों भागका दो रुपया प्रत्येकका भागका आठ आना।

बालभोजप्रबंध संस्कृत भोजप्रबंधके आधारसे यह पुस्तक सरल भाषामें लिखी गई है। राजा भोजकी दानशीलता और विद्या रुचि कैसी थी यह जाननेके लिये इसे जरूर पढ़ना चाहिये मूल्य आठ आना।

गारफील्ड.

अमेरिकाके एक प्रसिद्ध प्रेसिडेंटका जीवन चरित। गारफील्डने

एक साधारण किसानके घर जन्म लेकर अपने उत्साह साहस और संकल्पके कारण अमेरिकाके प्रेसिडेंटका पद पाया था। नवयुवकोंके लिये यह ग्रंथ एक अच्छे शिक्षकका काम देगा। मूल्य आठ आना।

इन्साफसंग्रह—इसमें प्राचीनराजाओं बादशाहों और सरदारोंके किये हुये अद्भुत न्यायोंका ऐतिहासिक संग्रह है। प्रत्येक इन्साफ बड़ी बड़ी चतुराइयोंसे भरा है, पढ़ने लायक है। मूल्य छह आना।

पार्वती और यशोदा.

स्त्री शिक्षाका बिल्कुल नया और सुन्दर उपन्यास। हिन्दीके नामी लेखक पं० कामताप्रसाद गुरुका लिखा हुआ। प्रत्येक स्त्रीको यह उपन्यास पढ़कर शिक्षा प्राप्त करनी चाहिये। मूल्य छह आना।

हिन्दी मेघदूत मेघदूतका समश्लोकी खड़ी हिन्दीका अनुवाद सचित्र हाल ही छपकर तयार हुआ है। पढ़ने योग्य है। मूल्य छह आना।

सम्राट पंचमजार्जका जीवन चरित्र.

इस ग्रन्थको बनारसकी ना० प्रचारिणी सभाने हाल ही छपाकर प्रकाशित किया है। प्रत्येक भारतवासीका धर्म है कि, वह अपने सार्वभौम महाराजका चरित्र बांचे. इस ग्रन्थसे सैकड़ों शिक्षायें मिल सकती हैं। पढ़नेवालोंको इसके पाठसे यह मालूम होगा कि, हमारे देशके राजाओंके लड़के आलसी आरामतलब और नालायक क्यों हो जाते हैं. और इंग्लेंडमें ऐसा नहीं होनेका कारण क्या है। मूल्य आठ आना.

नमः सिद्धेभ्यः

जैनहितैषी.

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम् ।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥

आठवाँ भाग] माघ श्रीवीर नि० सं० २४३८ [तीसरा अंक

अपराजिता ।

(१)

कुछ दिनोंसे काशीराजके अन्तःपुरके उद्यानमें एक नवीन माली आया है । वह अपना नाम वसन्त बतलाता है । सचमुच ही वह रूप और गुणोंमें ऋतुराज वसन्तसे किसी प्रकार कम नहीं है ।

एक दिन वसन्तऋतुके प्रभातमें जब एक बेजान पहिचानका तरुण पुरुष राजाकी सभामें नौकरीकी इच्छासे आकर खड़ा हुआ, तब उसे देखकर सभासदोंका ईर्षाकुटिल मन प्रीतिरससे अभिषिक्त हो गया । वृद्ध मंत्रीका संदिग्ध पर गंभीर चित्त स्नेह–स्पर्शसे चंचल हो उठा । राजाके नेत्र प्रशंसापुलकसे विस्फारित हो गये और राजसभाकी एक ओर चमकीली चिकोंकी आड़में बैठी हुई युवतियोंके चंचल चक्षु स्थिर हो रहे ।

राजाने उसे आदरपूर्वक सभामें बिठा कर पूछा हे युवक, तुम कौन हो ? तुमने किस देशके किस परिवारको अपने जन्मसे सुखी

किया है ? तुम्हारा शरीर कुसुमके समान सुकुमार और सुन्दर है, तुम क्या काम करोगे ? तुम्हें कोई भी काम न करना होगा, तुम हमारी राजसभाको ही निरन्तर आनन्दित किया करो।

वसन्तने मूर्तिमान् विनयके समान मस्तक नवाकर धीरता और दृढ़तासे कहा--महाराज, जिस पुरुषको कोई काम नहीं है, उसके क्लेशका ठिकाना नहीं है। कृपा करके उस क्लेशसे आप मेरी रक्षा करें। मेरी सामान्य शक्तिको आप अपनी ही किसी सेवामें लगावें।

राजाने प्रसन्न होकर कहा--अच्छा युवक, कहो तुम्हें कौनसा काम अच्छा लगता है ? मंत्री, सेनापति, सभाकवि, आदि जो कोई तुम सरीखा सहकारी पायगा, सुखी होगा। बतलाओ, तुम्हें कौन काम पसन्द है ?

वसन्तने हाथ जोड़कर कहा--महाराज, मैं असमर्थ हूं। किसी बड़े कार्यके भारको मैं नहीं उठा सकूंगा। मेरी इच्छा है कि, मैं महाराजके खास बगीचेका माली होऊं, नित्य नई नई फूलोंकी मालासे महाराजकी पूजा करूं, और शाम सवेरे वीणाके स्वरसे स्वर मिलाकर महाराजकी विरद गाऊं। और मैं कुछ नहीं चाहता हूं।

सबोंने समझा कि, इसका रूप तो सुन्दर है, परन्तु यह पागल मालूम होता है। राजाने दया करके पागलकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। वह उसी दिनसे राजाके खास बगीचेका माली हो गया।

(२)

बगीचेके एक कोनेमें वसन्तकी झोपड़ी है। वह लताओंसे घिरी हुई है, और पत्तोंसे ढकी हुई है। उसके भीतर फूलोंका फर्श बिछा रहता है। वहांकी मूक वृक्षश्रेणी फूलोंके मनोहारी दर्शनसे वाचाल होकर मानो कोकिल कंठसे बातें करती है। वसन्त सांझ सवेरे

वीणाके सुरसे सुर मिलाकर जो गाना गाता है, उसके सुरसे वायु उन्मत्त हो जाता है और वह राजमहलके प्रत्येक कमरमें जाकर आनन्दका स्रोत बहा देता है। सबेरे और संध्याको वसन्त नाना प्रकारके फूल चुनकर जो सुन्दर सुन्दर हार बनाता है, वे हृदयको पुलकित करते हैं, दम्पतियोंके मिलनको मधुर तथा दृढ़ करते हैं। और जो युवक युवती अविवाहित हैं, उनके प्राणोंको अपने अपरिचित प्यारोंकी प्रणय-वेदनासे पीड़ित और विरह-व्यथासे व्याकुल करते हैं।

सांझ सबेरे नवीन मालीका भक्तिपूर्ण उपहार पानेके लिये जब राजकुमारियां गुलाबकी क्यारियोंके किनारे, बकुलवीथियोंके नीचे और मणिशिलाओंके ऊपर अपने अरुण-वरण चरण रखती हुई मालीकी झोपड़ीके पास एकत्र खड़ी होती थीं, तब सारा उद्यान प्रसन्न हो उठता था, वृक्षोंके पुष्पमुखोंमें हास्य प्रस्फुटित होता था और कोकिलों तथा पपीहाओंके कंठ खुल जाते थे। उस समय वसन्त हरे पत्तोंके दोनोंमें ओससे भीगे हुए ताजे फूलोंकी मालाओंकी भेंट लाकर अपनी सेवावृत्तिको सार्थक करता था।

वसन्त जो मालाएं गूंथता था, वे अनेक प्रकारके फूलोंकी होती थीं। वह कुमारी इन्दिराके लिये उज्ज्वल इन्दीवरों (कमलों) की, कुमारी शुक्लाके लिये विकसित गुलाबोंकी, और कुमारी आनन्दिताके लिये अनिन्दित बेलाकी माला अर्पण करता था।

इन सबके पीछे एक और युवती आती थी। वह काली और कुरूपा थी और तदनुसार उसका नाम भी राजकन्या यमुना था। सब ही जानते हैं कि, यमुनाका जल काला है।

चन्द्रमाके शरीरमें जैसे कलंक होता है, उसी प्रकार उन सुन्दरियोंमें यमुनाकी रूपहीनता थी। कलंक होकर भी चन्द्रमाका कलंक

भला जान पड़ता है, तदनुसार यमुनाका कुरूप भी उन रूपवती ललनाओंमें बुरा नहीं जँचता था। यमुना जानती थी कि, मैं कुरूप हूं, इसलिये मलमलकी गुलाबी साड़ीके अंचलको निविड़ करके वह आपको छुपाना चाहती थी और सबकी दृष्टिसे बचनेके लिये सबसे पीछे रहती थी। उसके नेत्रोंके पलक सदा ही लज्जित और चरण कुंठित रहते थे। कंठ उसका मृदु और हृदय भीरु था। वह रूपहीना थी, इसलिये लज्जा उसका पदपदपर गला दबाती थी। विधाताने उसके अंगअंगमें दुर्निवार पराभव अंकित कर दिया था। उसको छुपानेका उसमें सामर्थ्य नहीं था। अन्य सब राजकुमारियां अपने रूपगर्वसे उन्मत्त होकर हँसती, गाती और नाचती थीं। उनकी गति अकुंठित थी, और व्यवहार स्वाधीन था। वे वसन्तके सम्मुख हँसती थीं, बोलती थीं, माला पहिनती थीं, फूल उछालती थीं, और एक दूसरीसे उलझती थीं। वसन्त प्रसन्न चित्तसे उनके चरणोंमें फूलोंकी अंजलि क्षेपण करता था, वीणाका मधुर नाद करता था और सुललित छन्दोंमें उनके रूपका स्तवन करता था। और यमुना क्या करती थी? यमुना उस समय लज्जा और भयके मारे एक ओर चुपचाप खड़ी रहकर अपनेको छुपाना चाहती थी परन्तु कोई उसकी ओर भूलकर भी नहीं झांकता था।

उसे इतनी अधिक लज्जा थी और उसकी इतनी अवहेलना होती थी, तो भी वह आती थी। वसन्तने अपने पुष्पहारोंमें, गीतोंमें, वीणामें, बातोंमें, हास्यमें, रूपमें और यौवनमें मिलाकर जो विचित्र रागिनी उसके चारों ओर व्याप्त कर दी थी, उसके अदृश्य स्पर्शने उस रूपहीनाके अन्तःकरणमें एक ऐसा भुलानेवाला सुर भर दिया था कि, उसकी मादकता भारी लज्जा और दारुण अवहेलनासे भी

दमन नहीं हो सकती थी। अन्य सब युवतियां तो हंसने गाने और खेलनेको आती थीं, परन्तु यमुना केवल अपनी प्यास बुझानेके लिये आती थी। सब आती थीं, वसन्तकी सेवा, स्तुति और मालाएँ प्राप्त करनेके लिये; पर यमुना आती थी अपने यमुनाके समान श्याम, सजल और उज्ज्वल नेत्रोंकी तरल दृष्टिमें भक्तिभाव भरकर वसन्तके रूपकी पूजा करनेके लिये।

यद्यपि उस रूपहीना, संकुचिता और शब्दशक्तिविरहितापर दृष्टि डालनेको वसन्तको अवकाश नहीं था, तो भी वह उसकी दृष्टिमें इसलिये पड़ गई थी कि, वह अन्य सब युवतियोंके साथ अपने जीवनके तारको बजा नहीं सकती थी। अर्थात् उसकी यह विषमता ही वसन्तके दृष्टिनिक्षेपका कारण थी। अन्यथा वसन्त अपने रूपके प्यासे नेत्रोंको उसपर क्यों डालता? उस समय उसके यौवनका तप्त रक्त रूपके नशेमें चूर हो रहा था।

रूपहीनाको उस रूपकी हाटसे निकाल देनेका उपाय नहीं था, इसलिये वसन्त केवल सभ्यताके नियमका पालन करनेके ख्यालसे अन्य राजकुमारियोंके लिये माला गूंथकर उनसे बचे हुए जैसे तैसे गंधहीन फूलोंकी एक माला बना रखता था और उसे यमुनाको इस तरह अवहेलनाके साथ देता था जैसे राजाओंके द्वारपर भिखारीको भिक्षा दी जाती है। परन्तु यमुना उस मालाको देवताके प्रसादके समान बड़ी श्रद्धाके साथ अपने गलेमें पहिन लेती थी। जिस दिन कुमारी इन्दिरा एक विशेष प्रकारकी ग्रीवाभंगी करके लीलायुक्त कटाक्षसे मुसकुरा जाती थी, कुमारी शुक्ला जाते जाते एक आध बार दयापूर्वक लौटकर देख लेती थी। कुमारी आनन्दिता प्राणोंको उन्मत्त कर देनेवाला मधुर परिहास कर जाती थी; उसी दिन

बसन्त यमुनाके लिये भी गंधहीन और काले रंगके अपराजिता नामक फूलोंकी एक माला बना देता था। वसन्तका यह अपूर्व प्रसाद पाकर यमुनाका मन आनन्द और कृतज्ञतासे इतना भर जाता था कि, उसमें उसे अपनी लज्जाको रखनेका स्थान नहीं रहता था।

वसन्तका बगीचा घरके फूलोंसे और वनके फूलोंसे शोभित रहता था, चन्द्रमाकी चांदनी और रूपकी चांदनीसे प्लावित रहता था, पक्षियोंके कलकूजनसे और युवतियोंके कलहास्यकौतुकसे ध्वनित रहता था, फव्वारोंकी अजस्र धाराओंसे और हृदयकी अजस्र प्रीतिसे सींचा जाता था, मणिदीपोंके प्रकाशसे और बड़ी बड़ी आंखोंकी चितवनसे उज्वल रहता था। दिनके बाद दिन, रातके बाद रात, सबेरेके बाद संध्या, और संध्याके बाद सबेरा इस प्रकार धीरे धीरे एक सुखके सोतेके समान समय बहा चला जाता था। उसमें वह युवतियोंका झुंड वसन्तको घेरे हुए आनन्दमग्न और प्रणयोन्मत्त रहता था। वसन्त कुसुमके फूलोंके गाढ़े रंगसे उनकी ओढ़नी रंग देता था, रुखमंडलीके फूलोंको मसलकर चरण रंग देता था—में, हदीके पत्तोंके रससे हाथ रंग देता था और मधुर हास्य, प्रियवचन तथा चाह भरी चितवनसे उनके हृदयको रंगनेकी चेष्टा करता था। उन सुन्दरियोंका हृदय उससे रंगता था कि नहीं, कौन जाने। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि, उन युवतियोंके अफीमके फूलके समान लाल मादक दोनों ओंठ दाड़िमके फूल सदृश गाल कुसुमरंगके वस्त्र, और मेंहदीरंजित चरण अपनी सारी लालिमा एकत्र करके वसन्तके कोमल हृदयको रुधिरके रंगसे रंग देते थे। तरुणियां वसन्तसे जितनी अन्तरंगता बढ़ाती थीं, वसन्त अपने अन्तरके मध्यमें उतनी ही शून्यता अनुभव करता था। और धीरे धीरे उस सारी शून्य-

ताको पूर्ण करके वह किसी एकको अपने जीवनमन्दिरमें आव्हान करनेके लिये अधीर हो जाता था।

(३)

एक दिन जब संध्याके समय प्रत्येक वृक्षपर फूलोंके चंदोवे तन रहे थे, दक्षिण वायु विरहमूर्छितोंकी निश्वासके समान रह रह कर फूलोंके वनमें शिहरन उत्पन्न करती थी, फूलोंकी गंधसे मत्त, होकर कोकिल और पपीहा प्रलाप करते थे, हजारों दीपोंकी शिखाओंके बीच फव्वारोंका जल हीरेकी मालाओंके समान पड़ता था, तब वसन्तके प्रेमसंगीतको बन्द करके राजकुमारी इन्दिरा साक्षात् लक्ष्मीके समान उसकी झोपड़ीके द्वारपर आकर खड़ी हुई। वसन्त तत्काल उठ खड़ा हुआ और फूलोंसे भरे हुए एक दौनेको उसके चरणोंके आगे लौटाकर बोला—इन्दिरा, तुम बाहिरके फूलोंको ही नित्य ले जाती हो, मेरे अन्तरका अतुलनीय फूल क्या तुम्हारे चरणोंमें स्थान नहीं पायगा? यह फूलोंका वन विवाहोत्सवमें क्या और विशेषरूपसे प्रफुल्लित नहीं होगा?

कुमारी इन्दिरा भौंहें चढ़ाकर और फूलोंको घृणापूर्वक पैरोंसे ठुकराकर बिजलीके समान कड़ककर बोली—एक नीच मालीका इतना बड़ा साहस! क्यों रे, अनुग्रहको तू प्रणय समझता है? तुझे एक राजकन्याको झोपड़ीमें रखनेका शौक चर्राया है। क्या तू नहीं जानता है कि, कर्णाटकाधिपति स्वयं मेरे पाणिग्रहणके लिये याचक हुए हैं? तेरा यह सब साहस कल उस समय नष्ट होगा, जब राजाकी आज्ञासे तू शूलीपर चढ़ाया जायगा।

वसन्तके हृदयमें इससे जो अपमानजन्य वेदना हुई, वह शूलके आधातसे किसी प्रकार कम नहीं थी। जिस इन्दिराके श्रीचरणोंमें

वह अपने हृदयभांडारके श्रेष्ठसे श्रेष्ठ बहुमूल्य अर्घ एकके बाद एक अर्पण करके खाली हो गया था, आज उसीने उसे तुच्छसे तुच्छ समझकर पैरोंसे ठुकरा दिया ! संसारमें क्या प्रेम और भक्तिका बदला इसी प्रकार दिया जाता है ?

वसन्तने इन्दिराके पैरोंमें पड़कर कहा—शूलीपर चढ़ाना हो, तो चढ़वा देना, मैं रोकता नहीं हूं। परन्तु राजकुमारी, विचारके देखो, बाहिर दीन होकर मैं अन्तरमें दीन नहीं हूं। जो ऐश्वर्य मैं-ने तुम्हारे चरणोंपर निछावर कर दिया है, उसे तुम किसी महारा-जाके भांडारमें भी खोजनेसे नहीं पाओगी। कंगालको सब प्रकारसे कंगाल करके मत मारो।

इन्दिरा हँस पड़ी। उसका वह उपहास करोंतके समान करकर करता हुआ वसन्तके हृदयको इस पारसे उस पार तक चीर कर चला गया।

वसन्तने विनतीके स्वरसे कहा—मेरी इतने दिनोंकी व्यर्थ पूजा-के उपहारस्वरूप मेरा एक अन्तिम अनुरोध मान लो, तो अच्छा हो। कल सबेरेसे पहिले यह बात तुम किसीके आगे प्रकाशित नहीं करना। मैं एकबार कुमारी शुक्ला और आनन्दिनाके साथ और भी अपने भाग्यकी परीक्षा करना चाहता हूं।

इन्दिराने गर्वसे कहा—अच्छा, तुम्हारी प्रार्थना मंजूर है। मैं स्वयं ही उन्हें बुलाये देती हूं। पर मैं यह भी कह देती हूं कि, तुम्हारी यह केवल दुराशा है। विश्वास रक्खो, कोई भी राजकुमारी मालीके गलेमें प्रणयकी माला नहीं डालेगी और तो क्या काली यमुना भी नहीं डालेगी, माली चाहे जितना सुन्दर और मनो-हर क्यों न हो।

इन्दिराने आकर शुक्लाको भेज दिया। शुक्ला भी उसी प्रकारसे वसन्तके प्रणयनिवेदनका तिरस्कार करके लौट आई। उसके पीछे आनन्दिता गई और वह भी व्यथित मालीको ज्वालामय शब्दोंसे और भी दुखी करके चली आई। आनन्दिताने यमुनासे हँसकर कहा---अरी यमुना, जा तुझे वसन्त बुलाता है।

वसन्त बुलाता है! मुझे? आनन्दसे उल्लाससे, लज्जासे, संकोचसे, आशासे और आशंकासे यमुनाका हृदय धकधक करने लगा। वह अपनी बहिनोंकी ओर नहीं देख सकी। उसने उनके क्रूर परिहासपर ध्यान नहीं दिया। वह तीर्थयात्री भक्तके समान परम आनन्दसे, प्रथममिलनभीता नवोढ़ाके समान कम्पित हृदयसे, लज्जासे, संकोचसे धीरे २ जाकर वसन्तके सम्मुख चुपचाप मस्तक झुकाये जा खड़ी हुई। वसन्त उस समय जमीनपर पड़ा हुआ रो रहा था। उसने यमुनाकी ओर देखा भी नहीं।

वसन्तको रोते देखकर यमुनाका हृदय फटने लगा। वह नहीं समझ सकी कि, मेरी निर्मोही बहिनें वसन्तको कौनसी दारुण व्यथा दे गई हैं। यमुना अपने उस व्यथित बन्धुकी ओर सजल और दयापूर्ण दृष्टिसे देखते देखते कांपते हुए कंठसे सान्त्वना करनेके लिये बोली---वसन्त!

वसन्त उच्छ्वासित गर्जनसे बोला---दूर हो, जा जल्लादको बुला ला! वह मुझे अभी शूलीपर चढ़ा दे।

लज्जिता, व्यथिता और मितभाषिणी यमुना सजल नेत्रोंसे अपनी व्यर्थ सान्त्वनाको लेकर वहांसे धीरे धीरे चली गई। उसे वसन्तकी वेदना वसन्तसे भी द्विगुणित व्यथित करने लगी। यदि वह अपनी सारी शक्तिके, सारी शान्तिके, सारे भाग्यके और सारे सुखके बदले

संसारको छानकर वसन्तको सान्त्वना दे सकती, तो देनेको तयार थी। परन्तु उसका कहीं सम्मान नहीं था। वह कुरूपा थी। अपनी असमर्थतासे वह आप ही पीड़ित होने लगी।

सुन्दरी कुमारियोंने हँसकर पूछा—क्यों री यमुना, मालीने तुझसे क्या कहा?

इस बातका उत्तर वह रूपहीना क्या दे सकती थी? उसने नीचेको सिर किये हुए केवल यह कहा कि—कुछ नहीं।

सुन्दरियां अपने अट्टहाससे वृक्षोंपरके पक्षियोंको भयभीत करती हुई बोलीं—वाह रे शौकीन माली, तुझे काली कुरूपा पसन्द न आई? यमुना, तू हमारी बहिन है, इस बातका विचार करनेसे भी हमको लज्जा आती है। सामान्य माली भी तुझसे घृणा करता है। हमारे पीछे पीछे छायाके समान लगे रहनेसे तुझे लज्जा नहीं आती है?

इस अपमानने यमुनाको स्पर्श भी नहीं किया। क्योंकि यह तो उसको प्रतिदिन मिलनेवाला पदार्थ था—उसका आभरण था, किन्तु उसकी बहिनें जो वसन्तके दुःखमें हँसती थीं, और उसको पीड़ा देनेका परामर्श करती थीं, उससे यमुनाके हृदयमें हजारों कांटोंके छिदनेके समान पीड़ा होने लगी। वह उनके अमानुषिक आनन्दको देखकर जीते रहनेकी अपेक्षा मर जाना बहुत अच्छा समझती थी। यमुना यदि अपने शोणिताश्रुओंसे भीगे हुए हृदयमें ढँककर वसन्तको इस महती निष्ठुरतासे बचा सकती, तो बचा लेती। परन्तु क्या करे, बेचारी असमर्थ थी।

उस पुष्पवनकी मन्दमन्द पवनसे भी यमुनाके हृदयसरोवरमें आज जो ऊंची २ लहरें उठती थीं, वे बड़ी ही दुःखमय थीं। आज इस बगीचेके जीवनस्वरूप मालीकी वेदना देखकर फूलोंका विक-

सित होना, पक्षियोंका कलरव करना, भ्रमरोंका गुंजन करना, चाँद-नीका खिलना और पवनका पत्तेपत्तेके साथ अठखेलियां करना बड़ा बुरा मालूम होता था। यमुना बगीचेके इस निष्ठुर और निर्लज्ज व्यव-हारको यदि अंधकारका काला पर्दा डाल कर ढँक सकती, तो अवश्य ढँक देती। उसे ऐसा भास होता था कि, यह सारा बगीचा मेरी बहिनोंके षड्यंत्रमें शामिल होकर वसन्तकी वेदनासे आनन्दित हो रहा है। आज यमुनाकी लज्जा उसीके वेदनाहत हृदयमें तीक्ष्ण छुरीके समान लगती थी।

(८)

दूसरे दिन सवेरे राजकुमारियोंने राजाके निकट जाकर वसन्तकी अवज्ञाका वर्णन किया और निवेदन किया कि, इस असभ्य माली-को शूलीपर चढ़ाना चाहिये। राजकुमारियोंने बहुत दिनोंसे नरह-त्याका दृश्य नहीं देखा था।

राजाकी आज्ञासे वसन्त राजसभामें कैद करके लाया गया। उसने बिना किसी प्रकारकी आनाकानी किये अपना अपराध स्वीकार कर लिया। यदि वह झूठ बोलकर भी अपराध अस्वीकार करता, तो राजसभा सुखी होती। परन्तु नहीं, वसन्त अपने उस निराशाके जीवनसे मरना अच्छा समझता था—इसलिये उसने किसी भी तरहसे अपने अपराधको अस्वीकार नहीं किया। वसन्त-को देखकर कठोर कवचको धारण करनेवाले पहरेदारके भी नेत्रोंमें आंसू आ गये। वाह! कैसा सुकुमार रूप है। इस कोमल और मधुरस्वभावी वसन्तको क्या शूलीपर चढ़कर प्राण देने होंगे!

राजाने राजकन्याओंसे अनुनयके स्वरसे कहा—बेटियो, यह तो पागल है। इसको न हो, तो राजधानीसे निकाल दो। बस, इतने-हीसे सब बखेड़ा मिट जायगा।

परन्तु राजकुमारियां अपनी प्रतिज्ञासे नहीं हटीं। सेवकके रक्तसे वे अपने नेत्रोंमें आनन्दका अंजन अवश्य लगावेंगीं। उसके हृदयको दलित करके वे अपने पैरोंको रंगे विना न मानेंगीं।

अन्तमें राजाने बड़े कष्टसे आज्ञा दी कि—वसन्त जीवन भर कैद-में रक्खा जाय।

कुमारियोंने कहा—अच्छा, यदि कैद ही की आज्ञा है, तो यह अन्तःपुरके कारागारमें रक्खा जाय। वहां रखनेसे इसके कारण हमारा कुछ समय आनन्दसे कटेगा।

राजाने कहा—तथास्तु।

अन्तःपुरकी दयामयी देवियोंका जिनपर कोप होता था, उन अभागियोंके लिये यह अन्ध कारागार बनाया गया था। यह कारागृह अपने लोह कपाटरूपी दन्त मिलाकर जिसे ग्रास बनाता था, उसे जीर्ण वा सत्त्वहीन किये विना बाहर नहीं निकालता था। इन कपाटोंमें कहीं थोड़ीसी भी संधि नहीं थी, जिसमेंसे बाहरका थोड़ा बहुत प्रकाश भीतर आ जाय। केवल थोड़ी हवा आनेके लिये दीवाल और छतकी जोड़में दो चार छोटे छोटे छिद्र थे। और भोजन देनेके लिये एक पात्र जाने योग्य छोटासा ताख था। मरण जल्दी नहीं हो जाय, इसके लिये यह थोड़ासा सुभीता था, रोगी-को आराम देनेके लिये नहीं। दयामयी देवियोंकी आज्ञा थी कि, प्रकाश, हवा, भोजन जितना जा सके, इन सब द्वारोंसे बेखटके चला जाय। परन्तु आज्ञा होनेपर भी उक्त द्वारोंसे प्रकाश और हवा असं-कोच भावसे नहीं जा सकती थी। क्योंकि जिस स्थानमें छिद्र थे, उसके आगे एक और पत्थरकी ऊंची दीवाल खड़ी थी और जो भोजन देनेका द्वार था, उसमें एक साधारण कटोरेसे बड़ी कोई चीज जा नहीं

सकती थी। इसके भीतर जो अभागी पहुंच जाता था, उसे धैर्यके साथ मरनेकी प्रतीक्षा करते रहनेके सिवाय और कोई शान्तिका उपाय नहीं था। खानेको देनेका द्वार इतनी ऊंचाईपर था कि, उसमेंसे बाहिरका मनुष्य भीतर और भीतरका मनुष्य बाहिर नहीं देख सकता था। केवल हाथ डालकर भोजन देना और लेना बन सकता था। भोजनका पात्र खाली करके ताखके ऊपर रख देनेकी व्यवस्था थी। जिस दिन पात्र खाली नहीं होता था, उस दिन समझ लिया जाता था कि, कैदी पीड़ित है। और सात दिन बराबर इसी तरह पात्र खाली नहीं होनेसे विश्वास कर लिया जाता था कि, कैदी भवयंत्र-त्रणासे मुक्त हो चुका है।

वसन्त इसी भीषण कारागारमें रक्खा गया। उसकी सारी आशा आकांक्षाओंकी जननी पृथ्वी, उसके प्रेमके स्थान सारे सुन्दर मुख और उसके चन्द्र, सूर्य, प्रकाश, आकाश, पुष्प, पवन आदि संपूर्ण प्यारे पदार्थ सदाके लिये लोहकपाटोंकी आड़में लुप्त हो गये। बाहिरका हर्षकोलाहल अवश्य ही उसके कानोंतक पहुँचता था, परन्तु उसकी ओर उसका उपयोग नहीं रहता था। वह अपने निष्फल प्रणयके शोकमें इस प्रकार मग्न रहता था कि, उसका उक्त कोलाहलकी ओर लक्ष्य ही नहीं जाता था।

सुन्दरी राजकुमारियां कारागारके समीप आकर ताखके पाससे हँस हँसकर कहती थीं,—क्यों जी वर महाराज, ससुरालमें आज कैसा आनन्द आ रहा है? रसिक मालाकर, हम तुम्हारे लिये वरमाला लेकर आई हैं, लो इसे ग्रहण करो। इसके पश्चात् वे कांटोंकी मालाको वसन्तके आगे फेंककर खूब खिल खिलाकर हँसती थीं। उनकी वह कांटोंसे भी अधिक तीखी और निठुर हँसी उनके पीछे रहनेवाली यमुनाके हृदयमें शूलसी चुभती थी।

परन्तु राजकुमारियोंका यह दुर्व्यवहार वसन्तको अधिक पीड़ा नहीं दे सकता था। क्योंकि उनका प्रथम व्यवहार ही ऐसा मर्म-भेदी हुआ था कि, उसके पीछेकी इस नूतन वेदनाका उसे अनुभव ही नहीं होता था।

वसन्त बहुत कुछ विनय अनुनय करके कारागारमें अपनी वीणा को भी ले आया था। अंधकारमें बैठकर जब वह अपनी उस एक मात्र प्रणयिनीको हृदयसे लगाकर उसके प्रत्येक तारसे अपनी हार्दिक वेदना व्यक्त करता था, तब सारी राजपुरी विषादससागरमें मग्न हो जाती थी। उस राजमहलमें एक राजकुमारियां ही ऐसी थीं, जो उस समय हंस हंस करके वसन्तसे कहती थीं कि देखो, वर महाराज आज ससुरालमें गाना गा रहे हैं।

राजकुमारियोंका आनन्द और उत्साह दो ही दिनमें थक गया। वसन्तके साथ एक ही प्रकारके आमोद प्रमोदसे अब उनका जी ऊब उठा। उन्होंने नूतन आमोदका अनुसंधान करनेके लिये कर्नाट कलिंगादि देशोंके राजाओंकी ओर अपने चित्तकी वृत्तिको बदली।

(५)

राजकुमारियोंके नहीं आनेसे वसन्त अपने जीवनके चारों ओर कुछ प्रसन्नताका अनुभव करने लगा। उसने देखा कि, राजकुमा-रियां तो अब नहीं आती हैं, परन्तु उसके भोजनका पात्र दोनों वक्त नियमित रूपसे तारमें आ कर उपस्थित हो जाता है। जो उसके लिये आहार लाती है, उसके हाथ सुकुमार तथा कोमल हैं। वह कोई करुणामयी रमणी है। यह अब एक कटोरा भर सत्तू लाती है और गुलाब जल तथा दूधमें साने हुए उस सत्तूके नीचे नाना प्रकारके व्यंजन छुपे रहते हैं। कटोरा एक सुगन्धित फूलोंकी माला-

से लिपटा हुआ रहता है। इससे वसन्तने समझा कि, इस पाषाण-हृदय राजमहलके भीतर भी एक आध कोमल हृदय व्यक्ति है। उसके हृदयमें प्रश्न उठने लगा कि यह करुणामयी कौन होगी ?

क्रम क्रमसे वसन्तका हृदय इस करुणामयी सेविकाकी ओर आकर्षित होने लगा। वसन्त भोजन आनेके द्वारकी ओर टक लगाये रहता था कि, कब उस करुणामयीके कोमल हाथ भोजन पात्रको रखनेके लिये आते हैं। देखते देखते वसन्तको उन हाथोंके दर्शन करनेका समय एक प्रकारसे निश्चित हो गया। जिस समय ताखके मुंहपर दीवालकी छाया कुछ फीकी पड़ती थी, घरका अन्धकार कुछ कम होता था और हवा आनेके छिद्रोंमें जब सूर्यकी थोड़ीसी किरणें भीतर आती थीं, उसी समय उस करुणामूर्तिका आविर्भाव होता था। उस समय बाहिरकी हवाकी सरसराहट, पत्तोंकी खरखराहट, और आने जानेवालोंके पैरोंकी आहट वसन्तको क्षणक्षणमें आतुर करती थी। उस समय वह अपने सारे मनोयोगका केन्द्र कानों और नेत्रोंको बना कर बैठा रहता था। इसके पश्चात् जब वह रमणी अन्नपूर्णाके समान भोजनके कटोरेको ताखमें रखकर मृदु मधुर कंठसे पुकारती थी—"वसन्त!" उस समय वसन्त प्रफुल्लित होकर एक ही छलांगमें निकट पहुंचकर दोनों हाथोंसे उस कटोरेको पकड़ लेता था, किन्तु अपने उस अपरिचित और अदर्शित प्रेमीके हाथोंसे कटोरा लेनेमें उसे बहुत समय लगता था।

वे हाथ वसन्तके जीवन सर्वस्व थे। उन्हें वह अपनी सारी आशाओं और आकांक्षाओंका अवलम्बन समझता था और नेत्रभरकर उन्हें ही देखता था। उन हाथोंके विशेष आकारको, अंगुलियोंकी विशेष भंगीको, नखोंकी विशेष गठनको, हथेलियोंकी रेखाओंकी

रचनाको और दाहिने हाथकी पहुंचीपरके एक छोटेसे काले तिलको निरन्तर देखते देखते वसन्त इस तरह परिचित हो गया था। हजारोंमें भी वह उन हाथोंको ढूंढ़के निकाल सकता था। उन हाथोंकी अंगुलियोंके स्पर्शमात्रसे वसन्तके शरीरमें जो रसरोमांचका ज्वार आ जाता था, वह स्पष्ट कह देता था कि, जिसकी ये अंगुलियां हैं, वह तरुण लज्जालु और दयालु है। वसन्त सोचता था कि, ये हाथ जिस शरीरको अलंकृत करते हैं, यह मन जिस शरीरका संचालक है, और यह दयार्द्र कंठस्वर जिस शरीरका श्रृंगार है, वह शरीर न जाने कितना सुन्दर, कितना दिव्य और कितना प्रशंसनीय होगा।

एक दिन वसन्तसे न रहा गया। उसने उक्त दोनों हाथोंको दबा कर कहा—देवी, मेरे ऊपर यह ऋणका बोझा किसकी ओरसे बढ़ाया जा रहा है? तुम कौन हो, जो इस बंधुएको और भी गाढ़े बन्धनोंसे कस रही हो? क्या मैं ऋणी ही होता जाऊंगा? यहां चुकानेका तो कोई उपाय नहीं दिखलाई देता है।

युवतीने स्नेहपूर्ण स्वरसे कहा—मालाकार, तुम डरो मत। जो तुम्हारे बड़े भारी ऋणसे दब रही है, वही इस समय अपनी कृतज्ञताका एक अंश मात्र प्रकाश करनेकी चेष्टा कर रही है।

वसन्तने विस्मित होकर पूछा—मेरे ऋणसे दब रही हो! तुम कौन हो।

तरुणीने कहा—मेरा नाम सुभद्रा है।

वसन्त नम्र स्वरसे बोला—भद्रे, तुम कौन हो, यह तो मैं नहीं जानता हूं। परन्तु तुम्हारी दयाको देखकर मुझे अब फिर नरलोकमें आनेकी इच्छा होती है। (अपूर्ण।)

निष्काम कर्म ।

[स्व० स्वामी विवेकानन्दजीके एक व्याख्यानका सारांश ।]

आज तक मैंने जितनी सर्वोत्तम शिक्षाएँ प्राप्त की हैं, उनमें एक यह भी है कि, कार्यकी ओर जितना लक्ष्य देना चाहिये। उतना ही कारणकी ओर भी देना चाहिये। यह शिक्षा मैंने एक महात्मासे पाई थी। उक्त महात्माका जीवनक्रम मानो उसकी इस शिक्षाका उदाहरण वा स्पष्टीकरण था। सारी अच्छी बातें मैं इसी शिक्षासे सीखता आया हूं। और मेरा विश्वास हो गया है कि, यशःप्राप्तिका यही मूलमंत्र है कि, फलकी ओर जितना लक्ष्य देना अवश्य है, उतना ही उसके साधनोंकी ओर वा उपायोंकी ओर देना चाहिये।

हम सदा अपनी कल्पनाओंमें वा अपने मनोराज्यमें मस्त रहा करते हैं, यह हमारी बड़ी भूल है। हमें अपना ध्येय इतना मोहक मालूम होता है अपने अन्तिम साध्यकी ओर हमारा चित्त इतना गड़ जाता है कि, हम उसके साधनोंकी ओर लक्ष्य देकर कार्यकी पूरी पूरी तयारी करना एक प्रकारसे भूल ही जाते हैं।

जब जब हमारा कोई कार्य बिगड़ता है अथवा किसी कार्यमें हमें सफलता प्राप्त नहीं होती है, तब तब 'सफलता क्यों प्राप्त नहीं हुई' इसका बारीकीसे विचार करनेसे उन्नीस विस्वे यही प्रतीत होता है कि, उस कार्यकी तयारी ही हमने ठीक नहीं की थी। सब ओरसे पूरी पूरी तयारी करना--सारे जोड़ तोड़ मिलाना यही बड़े भारी महत्त्वकी बात है। यदि पहिलेकी तयारी ठीक होगी, तो कभी संभव नहीं कि, कार्य बिगड़ जायगा। उसमें सफलता होनी ही चाहिये। कारणसे ही कार्य होता है, यह बात हम भूल

जाते हैं। अकारण ही कोई बात हो जायगी, यह संभव नहीं। जैसा साध्य हो, वैसा ही साधन होना चाहिये। साध्य यदि बड़ा हो, तो उसके साधन भी बड़े होने चाहिये। जाना तो हो पूर्वको और चलने लगे पश्चिमको, तो सफलता कैसे मिल सकती है ? साध्यके लिये साधन उचित प्रकारके होने चाहिये, अन्यथा उन साधनोंका कुछ फल नहीं होगा। एकबार साध्य निश्चय कर लिया और विचार करके उसके साधन वा उपाय भी निश्चय कर लिये, फिर यदि हम साध्यकी ओर लक्ष्य भी न रक्खें, तो भी चल जायगा। क्योंकि योजित किये हुए उपाय जैसे जैसे पूर्णताको प्राप्त होंगे, तैसे तैसे कार्य भी सिद्ध होता जायगा, इस विषयमें कोई शंका नहीं हो सकती। साधन यथायोग्य जहांके तहां मिलाये जावेंगे, तो साध्यसिद्ध होनेमें कोई बाधा उपस्थित नहीं हो सकती। हमारा काम केवल प्रयत्न करना, उद्योग करके साधनोंका जोड़ तोड़ मिला देना; इतना ही है। फलका वा इष्टसिद्धिका विचार हम करें ही क्यों ? इष्टसिद्धि यह कार्य है और पूर्वकी तयारी कारण। इसीलिये पूर्वतयारी जैसी चाहिये तैसी करना, योग्य उपायोंकी योजना करना, साधनोंकी ओर ही विशेष लक्ष्य रखना यही यशःप्राप्तिका मूलमंत्र है। भगवद्गीतामें भी यही तत्त्व सिखलाया गया है। "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।" हमें अपना कार्य शक्तिके अनुसार निरन्तर करते रहना चाहिये, वह कार्य चाहे जो हो, हमें अपना सर्वस्व उसीके लिये अर्पण कर देना चाहिये और इतना करके भी उससे अलिप्त रहना चाहिये। फलकी आशा रखना अच्छा नहीं है। अपने कर्तव्यसे कभी पराङ्मुख नहीं होना चाहिये। इसके सिवाय, यदि कभी काम छोड़नेका मोका

आ पड़े तो एक क्षणभरमें उसे छोड़ देनेके लिये तयार हो जाना चाहिये।

आप यदि थोड़ी देरके लिये स्वस्थ होकर विचार करेंगे, तो दुःखका यथार्थ कारण आपके ध्यानमें तत्काल ही आ जावेगा। आप जिस कामको अपने हाथमें लेते हैं, और उसके लिये जी तोड़ परिश्रम करते हैं; यदि दुर्भाग्यसे उसमें सफलता प्राप्त नहीं हुई, तो उसे छोड़ देनेके लिये आपकी इच्छा नहीं होती है। यह आप जानते हैं कि, इस मार्गसे जानेमें हानि है और इससे अधिक मोह करेंगे, तो परिणाममें उलटा दुःख होगा; तो भी आप उससे परावृत्त नहीं हो सकते हैं। मधुमक्खी आई तो थी मधुका स्वाद लेनेके लिये, परन्तु बेचारीके पैरमें फूल उलझ गये और उसे वहांसे अपना पिंड छुटाना कठिन हो गया। पद पदपर हमारी मधुमक्खी सरीखी ही दशा होती है। वास्तवमें देखा जाय, तो हम यहां मधुका आस्वाद लेनेके लिये आये थे, परन्तु उलटे हमारे हाथ पैर उलझ गये। हम पकड़नेके लिये आये थे, परन्तु उलटे स्वयं ही पकड़े गये। सुख भोगनेके लिये अथवा सुख भोक्ताके नातेसे यहां आये थे, परन्तु उलटे स्वयं भोग्य वस्तु बन गये। स्वामी बनकर आये थे, परन्तु अपने पैर अपने ही गलेमें आ पड़े। घोड़ेपर सवारी करनेके लिये चले थे, परन्तु यहां घोड़ाही लौटकर सवार बन बैठा। यह हमारा आपका सदाका अनुभव है। व्यवहारमें पद पदपर इस बातका विश्वास होता है। अपनी पगड़ी दूसरोंपर जमानेका निरन्तर प्रयत्न किया करते हैं, तो भी अपने पर ही दूसरोंकी पगड़ी आ जमती है। संसारमें सुख भोगनेकी हमारी इच्छा रहती है, परन्तु वही लौटकर हमारा नाश करती है। सृष्टिपर अपना अधिकार चलाकर हम उसे अपनी सेविका बनाना

चाहते हैं, परन्तु हम ही उसके पंजेमें फँस जाते हैं, नहीं हमारा सर्वस्व हरण करके हमारी धज्जियां उड़ा देती है। यदि संसारमें ऐसी घटनाएँ न होती, तो यह दूसरा स्वर्ग ही बन जाता । परन्तु इससे हमें हताश नहीं होना चाहिये। यद्यपि यश अपयश सुख-दुःख आदिके द्वन्द्व जाल सारे जगमें बिछ रहे हैं, तोभी हम उनसे बच सकते हैं और यदि हम ऐसा कर सकें अर्थात् इन जालोंमें नहीं फँसें, तो फिर हमें और कुछ नहीं चाहिये। हम स्वर्गके नन्दनवनमें ही आ पहुंचे हैं, ऐसा समझेंगे।

हम जो विषयोंमें आसक्त हो जाते हैं-विषयाधीन हो जाते हैं, यही दुःखका मूल है। और इसी लिये भगवद्गीतामें कहा है कि, अपने कर्म बराबर करते रहो, न फलकी आशा रक्खो और न विषयासक्त होओ। कोई भी विषय हो, उससे अलिप्त रहनेकी शक्ति प्रत्येक मनुष्यको रखना चाहिये। प्रत्येक वस्तुको, चाहे वह कितनी ही प्यारी क्यों न हो, उसके विषयमें हृदयकी उत्कंठा चाहे जितनी प्रबल क्यों न हो, और उससे सम्बन्ध छूटनेपर चाहे जितना दुःख होनेकी संभावना क्यों न हो--चाहे जब पैरोंसे ठुकरा देनेके लिये हमें तयार रहना चाहिये। इस जगतमें अथवा अन्यत्र कहीं भी आसक्तोंके रहनेके लिये स्थान नहीं है। यदि कोई मनुष्य अशक्त है; तो समझो कि उसके भाग्यमें दासत्व लिखा ही है! शारीरिक और मानसिक दोनों ही प्रकारके दुःखोंका कारण अशक्तपना है। बल्कि यदि ऐसा कहा जाय कि अशक्तता ही मृत्यु है, तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। हमारे चारों ओर हवामें अगणित रोगोत्पादक जीव भरे हुए हैं, परन्तु जब तक हम अशक्त नहीं होते हैं हमारा शरीर शक्तिहीन होकर जबतक उन्हें अपने भीतर प्रवेश

नहीं करने देता है, तब तक उनकी मजाल नहीं कि, वे हमें कुछ हानि पहुँचावें। इस संसारमें चाहे जितने दुःख क्यों न हों, जब तक हमारा हृदय दुर्बल नहीं होता है, तबतक वे हम पर अपना शासन नहीं चला सकते हैं। शरीरमें सामर्थ्यका होना ही जीवितताका लक्षण है और उसका चला जाना—दुर्बलताका होना ही मरण है। जिसमें शक्ति है, उसे सर्वत्र आनन्द है—उसे कहीं भी मरण नहीं है, परन्तु अशक्त पुरुषको सब जगह दुःख ही दुःख है उसे एक प्रकारसे मरा हुआ ही समझना चाहिये।

मनमें आसक्ति अथवा प्रेम होना, यही सर्व सांसारिक सुखोंका साधन है। हमें मित्रोंसे, सम्बन्धियोंसे, धार्मिक कर्मोंसे, बाह्य सृष्टिके विषयोंसे अथवा इसी प्रकारके और भी कार्योंमें जो सुख होता है, वह इसी लिये होता है कि, हमारा उनपर प्रेम रहता है, आसक्ति रहती है। इसी प्रकार दुःखोंका कारण भी यही प्रेम वा आसक्ति है। जिन्हें वास्तविक आनन्द चाहिये, उन्हें प्रत्येक विषयसे अलिप्त रहना चाहिये अथवा अलिप्त रहनेकी शक्ति रखनी चाहिये। यदि हममें चाहे जिस विषयसे अलिप्त रहनेकी शक्ति है, तो निश्चय समझिये कि, हमें इस संसारमें कहीं भी दुःख नहीं है। जिस पुरुषमें यह सामर्थ्य है कि, विषयोंपर अपरिमित आसक्ति होनेपर भी, जब जी चाहे तब उनसे विरक्त होकर अलिप्त हो सकता है, उसे एक अलौकिक पुरुष समझना चाहिये। परन्तु इसमें शर्त यह है कि, आसक्ति और विरक्ति दोनों ही अतिशय तीव्र परन्तु समान होनी चाहिये। संसारमें ऐसे भी कुछ लोग हैं, जिनकी किसी भी विषयपर किसी भी पदार्थपर आसक्ति नहीं होती है। प्रेम क्या पदार्थ है, यह वे जानते ही नहीं हैं। वे निठुर और

निरुत्साह होते हैं। उन्हें जगतमें दुःखकी बहुधा कल्पना ही नहीं होती है। परन्तु इसी प्रकारसे हमारे मकानकी एक भींतको भी दुःख क्या पदार्थ है, इसका अनुभव नहीं है। वह भी न कभी किसीसे प्रेम करती है और न किसीके लिये शोक करती है। परन्तु भींत तो भींत ही है जड़ ही है। संसारमार्गमें विषयासक्त होना एक प्रकारसे अच्छा है, परन्तु भींत सरीखे निर्जीव जड़ हो जाना कदापि अच्छा नहीं है। चूल्हेके पास छुपकर बैठे रहनेकी अपेक्षा अंधावस्थामें भी झाड़पर चढ़ना हजार गुणा अच्छा है। ऐसे मनुष्यको जिस प्रकारं दुःखका ज्ञान नहीं होता है, उसी प्रकार सुख भी कभी प्राप्त नहीं होता है। इस स्थितिकी हमें आवश्यकता नहीं है। इसे ही अशक्तपना कहते हैं। मृत्यु भी यही है। जिसे दौर्बल्यकी दुःख-की कल्पना ही नहीं होती है, उसे जीवित कैसे कह सकते हैं? यह एक प्रकारकी जड़ावस्था है। इसे हम दूरहीसे नमस्कार करते हैं।

यह बलवती आसक्ति, कि जिसके योगसे मन एक ही विषयमें तल्लीन होकर निजत्वको भूल जाता है और यह विषयोंपरका प्रेम जो देवादिकोंका गुण है, हममें होना ही चाहिये। परन्तु केवल इतनेहीसे संतुष्ट होकर बैठे रहनेसे काम नहीं चलेगा। हमें देवोंसे भी श्रेष्ठ बनना है—हमें देवोंपर भी ताना मारना है। जो जीवन्मुक्त हैं, वे विषयोंपर अपरिमित प्रेम करके भी उनसे अलिप्त रहते हैं और इसीमें उनकी विशेषता है। यह बात देवोंमें नहीं है।

सुख क्या चीज है, इसका भिखारीको कभी स्वप्नमें भी अनुभव नहीं होता है। उसे जब मुट्ठीभर भिक्षा मिलती है, तब देनेवालेके मनमें उसके विषयमें घृणा और तिरस्काररूप विकार उत्पन्न होते हैं। और नहीं तो, इतना विचार तो उसके जीमें अवश्य आता है

कि, भिखारी एक क्षुद्र प्राणी है। इससे भिखारीको जो मिलता है, वह उसके अंग कभी नहीं लगता है। हम सब ऐसे ही भिखारी हैं। हमने कुछ भी किया कि, उसका बदला चाहते हैं। हम सब व्यापारी हैं। प्रतिदिनके काम काजोंके विषयमें कहिये, सद्गुणोंके विषयमें कहिये अथवा धर्मके विषयमें कहिये, हम सदा ही लेन देनका तत्त्व अपने साम्हने रखते हैं। और तो क्या प्रेमके विषयमें भी हम इस तत्त्वको नहीं भूलते हैं। अर्थात् प्रेम भी हम मतलबके लिये करते हैं। यह व्यापारका—खरीद बिक्रीका—लेन देनका तत्त्व हमने एकबार स्वीकार किया कि, फिर हमें बराबर इसी तत्त्वके अनुसार चलना पड़ता है। कभी समय अच्छा होता है, कभी बुरा होता है। कभी भाव तेज होता है और कभी मंदा हो जाता है। व्यापारमें घाटा लगनेका डर भी हमेशा रखना पड़ता है। यह दर्पणमें मुंह देखनेके समान है। आपने मुंह मरोड़ा कि, दर्पणमें उसका प्रतिबिम्ब तयार है। आप हँसे कि, दर्पण भी हँसता है। यह सब लेनदेनका परिणाम है। जैसा दिया, वैसा लिया।

हम जो उलझते हैं, सो काहेसे? हम जो देते हैं, उससे नहीं उलझते हैं किन्तु जो फलकी आशा करते हैं, उससे उलझते हैं। हम प्रेम करते हैं, तो भी उसका परिणाम दुःखकारक होता है। यह क्यों? हम प्रीति करते हैं, इसलिये दुखी नहीं होते हैं, किन्तु अपनी प्रीतिके बदलेमें प्रीतिकी आशा करते हैं। इसलिये दुखी होते हैं। यदि हम दूसरोंसे प्रेमकी आशा नहीं रक्खें, तो फिर दुःख क्यों होगा? आशाकी प्रतीक्षा करते रहना ही दुःखका मूल है। **आशाया: परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्।** आशा की, कि दुःख आया ही समझिये।

वास्तविक यश—वास्तविक सुख प्राप्त करनेका मूलमंत्र भी यही है। जो मनुष्य अपने कृत्योंका बदला नहीं चाहता है, और जिसके हृदयमें स्वार्थकी वासना नहीं है, वही मनुष्य संसारमें यशस्वी हो सकता है। ऊपरा ऊपरी देखनेसे यद्यपि यह बात ठीक नहीं मालूम होती है। क्योंकि हम देखते हैं कि, जो मनुष्य अपनी चिन्ता नहीं करता है स्वार्थदृष्टि नहीं रखता है, उसे लोग फँसा लेते हैं और उसको बहुत हानि पहुंचाते हैं। यीशू ख्रिष्टने स्वार्थत्याग किया, इसी लिये वह शूलीपर चढ़ाया गया। परन्तु विचारपूर्वक देखा जाय, तो स्वार्थत्याग ही यशःप्राप्तिका कारण है। ख्रीष्ट शूलीपर चढ़ाया गया, यह सच है; परन्तु यह भी तो सुप्रसिद्ध है कि, स्वार्थत्यागके कारण ही आज पृथ्वीमें उसका यशोगान होता है। अपना निःस्वार्थ चरित्र ही वह लाखों मनुष्योंको वास्तविक यशःप्राप्तिका मार्ग बतला गया है।

न किसी वस्तुकी याचना करो और न फलकी अपेक्षा रक्खो। शक्तिके अनुसार जो धर्म करना हो, करो। उसका फल तुम्हें मिलेगा ही। परन्तु तुम्हें उसके मिलने न मिलनेकी झंझटमें पड़नेकी आवश्यकता नहीं है। दिये हुए का फल तुम्हें हजार गुणा मिलेगा परन्तु तुम्हें उसपर लक्ष्य नहीं रखना चाहिये। तुम तो देते जाओ। जब तक जीओ, तब तक तुम्हें देते रहना चाहिये। यह स्मरण रक्खो कि, यदि तुम स्वयं नहीं दोगे, तो तुमसे जबर्दस्ती वसूल किया जायगा। इससे तो अच्छा यही है कि, सुखसमाधानसे स्वयं देते जाओ। आज दो या कल दो, पर तुम्हें सर्वस्व दे डालना चाहिये। तुम संसारमें आये हो संचय करनेकी बुद्धिसे, इसलिये तुम्हें सदा अपनी मुट्ठी गरम करनेकी ही पड़ी रहती है, परन्तु

काल कलाई पकड़कर तुम्हारी मुट्ठी खोल देगा। तुम्हारे मनमें हो चाहे न हो, परन्तु तुम्हें त्याग करना ही पड़ेगा। तुमने 'न' कहा कि, प्रहार हुआ। कोई भी हो, उसे इस संसारमें एकके बाद एक सर्व वस्तुओंका त्याग करना ही पड़ता है। लोग यत्न करनेके लिये जितने तड़फड़ाते हैं, उतने ही दुखी होते हैं। सृष्टिनियमके प्रतिकूल चलनेका प्रयत्न ही दुःखदायक है। जंगल जलकर खाक हो जाता है, पर हमें उससे उष्णता मिलती है। सूर्य समुद्रका पानी सोख लेता है, परन्तु हमें उससे पानी मिलता है। इसी प्रकार तुम भी एक लेनदेनके यंत्र हो। दे सको, इसी लिये तुम लेते हो इस लिये कुछ वापिस मत मांगो। जितना जितना तुम देते जाओगे, उतना उतना तुम्हें ही अधिक वापिस मिलता जायगा। कोठरीकी हवा तुम जितनी जल्दी निकालोगे, उतनी ही जल्दी बाहिरकी स्वच्छ हवा भीतर आवेगी। यदि तुम उसके झरोखे और खिड़कियां बन्द कर दोगे, तो फिर बाहिरकी हवा भीतर नहीं आवेगी और भीतरकी हवा इकट्ठी होकर दूषित हो जायगी। नदीका पानी समुद्रकी ओर बराबर बहता जाता है, तो भी नदी भरी ही रहती है। बंधान बांध कर उसके पानीको रोकना नहीं चाहिये। यदि उसके प्रवाहको रोकोगे तो समझ लो कि, अनिष्ट हुए विना नहीं रहेगा।

इसी लिये कहता हूं कि, भिखारीकी वृत्तिको छोड़ दो और फलासक्ति मत रक्खो। यह बात बहुत ही कठिन है। इस मार्गपर जो कठिनाइयां हैं, उनका अनुमान सहजही नहीं हो सकता है और प्रत्यक्ष अनुभव किये विना उन कठिनाइयोंका वास्तविक महत्त्व भी नहीं समझा जा सकता है। यद्यपि इस मार्गमें कठिना-

इयां बहुत हैं, तोभी हताश नहीं होना चाहिये। चाहे जितनी बार असफलता हो, और चाहे जितना शारीरिक कष्ट उठाना पड़े, पर उत्साहको नहीं गिरने देना चाहिये। हमें संकटोंमें पड़नेपर अपने शरीरका दिव्य तेज प्रगट करना चाहिये। पुरुषार्थी संकटोंको बहुत ही तुच्छ समझते हैं।

विषयोंपरकी आसक्ति छोड़कर उनसे अलिप्त रहनेके लिये हम प्रतिदिन नये नये नियम करते हैं। जिन पदार्थोंपर हम पहिले प्रेम करते थे और जिनपर हमारी भक्ति थी, उनकी ओर देखा कि, प्रत्येकसे हमें कितना दुःख हुआ है, इसका स्मरण आता है। यह भी याद आता है कि, उस प्रेमसे हम कितनी बार निराशाके समुद्रमें गोते खाते थे, कितने पराधीन होकर नीचे नीचे गिरते जाते थे। फिर एक बार नवीन निश्चय करते थे कि, आजसे किसीके भी आधीन न होकर आत्मसंयमन करते रहेंगे, परन्तु ज्यों ही मौका आता था फिर वही पहिला पहाड़ा पढ़ना शुरू कर देते थे। और फिर उससे बाहर निकलना कठिन हो जाता था। जालमें फँसकर तड़फड़ानेवाले पक्षीसरीखी दशा हो जाती थी।

यह मैं जानता हूं कि, कठिनाइयां बहुत हैं और ऐसे मौकोंपर सौमेंसे नव्वै लोग निराश हो जाते हैं और फिर दुःखैकवादी होकर वे यह समझने लगते हैं कि, सत्य प्रेम आदि उच्च गुण संसारमें हैं ही नहीं। इसी लिये वे जो अपनी पूर्व वयमें क्षमाशील दयालु सरल और साधे थे, आगे ऐसे हो जाते हैं कि, उन्हें मनुष्य कहनेमें भी संकोच होता है। वे क्रोधित नहीं होते हैं, किसीको गाली गलौज नहीं देते हैं, परन्तु इसकी अपेक्षा यदि वे क्रोधित होकर गाली गलौज करते होते, तो अच्छा था। निर्जीव होनेकी

अपेक्षा गालियां देना अच्छा। परन्तु उनका अन्तःकरण मृत हो जाता है, ऐसा कि मानों ठंडसे जमकर पत्थर हो गया है। उन बेचारोंमें गालियां देने योग्य भी चेतना नहीं रहती है।

परन्तु हमें इन सब बातोंको टालना चाहिये। और इसी लिये मैं कहता हूं कि, हममें ईश्वरसे भी अधिक शक्ति होना चाहिये। केवल अमानुषिक शक्तिसे काम नहीं चलेगा; अतिदैविक शक्तिकी आवश्यकता है। इन सब दुःखोंसे छूटनेका यही एक मार्ग है। इस अलौकिक सामर्थ्यके योगसे ही हम इस दुःखसागरसे पार हो सकेंगे। हम पर चाहे जितने शारीरिक संकट आवें, परन्तु हमें अपने मन अपने अन्तःकरणको बराबर उदार और उदात्त बनाते जाना चाहिये।

यह बात कठिन अवश्य है, परन्तु यदि बराबर प्रयत्न करते जावेंगे, तो इसमें सफलता मिल सकती है। विना हमारे तयार हुए हमारे लिये कुछ नहीं होगा। रोगोंको प्रवेश करने देनेके लिये जब तक हमारे शरीरकी तयारी नहीं होगी, तब तक रोग हमारे पास फटक भी नहीं सकते। रोगोंका होना न होना केवल रोगोत्पादक जन्तुओंपर ही अवलम्बित नहीं है, शरीरपर भी है। अपनी योग्यताके अनुसार ही फल मिलता है। इसलिये अहंपनाको छोड़कर स्मरण रक्खो कि, अपात्रके पास दुःख कभी नहीं आते हैं। मनुष्यको देखकर संकट आते हैं। अपने कर्मोंसे ही मनुष्य अपनेपर संकटोंको लाता है। अचानक विना जाने हुए कभी संकट नहीं आता है। यह हमें अच्छी तरह स्मरण रखना चाहिये कि, उसकी पूर्व तयारी अपने द्वारा ही होती है। आप स्वयं विचार करके देखेंगे, तो आपको निश्चय हो जायगा कि, हमारी तयारी हुए विना

संकट कभी आते ही नहीं हैं। जब दुःखका प्रारंभ होता है, तब आधी तयारी हमारी होती है और आधी बाहिरकी होती है। उसी समय दुःखका अचूक निशाना लगता है। इस प्रकारके विचारोंसे बुद्धि ठिकानेपर आ जायगी और कुछ कुछ आशाके चिन्ह दिखाई देने लगेंगे। वे इस प्रकार कि—"यद्यपि परस्थिति मेरे हाथकी नहीं है; परस्थितिपर मेरा कुछ जोर नहीं चलता है। परन्तु अपने आपपर मेरा पूर्ण अधिकार है। कोई भी कार्य हो, उसके लिये अपनी स्थिति और बाह्य परास्थिति दोनोंकी आवश्यकता रहती है। और जब ऐसा है, तब मैं अपने अधिकारकी बातको तो जाने नहीं दूंगा। फिर देखूंगा कि, संकट कैसे आते हैं? यदि मेरा अपने आपपर पूर्ण अधिकार है, तो फिर संकट कभी नहीं आ सकते।"

प्रत्येक बातका दोष दूसरोंपर टालनेकी छोटेपनसे ही हमारी आदत पड़ जाती है और हम निरन्तर अपने सुधारनेके बदले लोगोंको सुधारनेका प्रयत्न किया करते हैं। अपनेपर यदि कोई दुःख आता है, तो हम कहते हैं—"हाय! जगत् कितना बुरा है।" और दूसरोंको ही गालियां देकर उन्हें मूर्ख तथा बुद्धिभ्रष्ट कहने लगते हैं। परन्तु यह नहीं सोचते हैं कि, यदि हम अच्छे हैं तो इस जगतमें आये ही क्यों? यह जगत यदि भ्रष्ट लोगोंका है, तो समझना चाहिये कि तुम भी भ्रष्ट होगे, नहीं तो यहां आते ही नहीं। तुम कहते हो—"हाय! हाय! जगत्में लोग कितने स्वार्थसाधु है।" ठीक है। परंतु यदि तुम अच्छे थे, तो इस जगतमें कैसे राह भूल पड़े? इन बातोंका प्रत्येक पुरुषको विचार करना चाहिये। हर किसीको उसकी योग्यताके अनुसार ही पुरस्कार

मिलता है। हम जो यह कहा करते हैं कि, "जगत बुरा है, केवल हम ही अच्छे हैं" सो हमारी भूल है। ऐसा कभी नहीं है। यह विचार बहुत हानिकारक है। हमें सीखना चाहिये कि लोगोंको कभी नाम न रक्खें। उन्हें दोष न देकर वीरोंके समान स्वयं आगे आना चाहिये और दोषोंका खप्पर अपने ही सिरपर फोड़ लेना चाहिये। क्योंकि सदा अपनी ही गलती होती है। हमें स्वतः चाहिये कि, सर्वदा सावधान रहें—खबरदार रहें।

हम अकसर घमंडकी बातें किया करते हैं कि, हम सरीखे शूर हम ही हैं, प्रत्यक्ष देव और सर्वज्ञ भी हम ही हैं, हम चाहे जो कर सकते हैं, हम निष्कलंक चन्द्र हैं, संसारमें यदि किसीने स्वार्थ-पर लात मारी है, तो केवल हमने! हम इस तरह अकड़बेगों जैसी बातें करते अवश्य हैं; परन्तु यह कितनी लज्जाकी बात है कि, एक जरासा पत्थर ही हमारी खोपड़ीपर आकर पड़ता है, तो हम चिल्ला उठते हैं, एक क्षुद्र आदमी हमपर क्रोधित होता है, तो हमारी मान-हानि हो जाती है, और एक रास्ता चलता हुआ साधारण आदमी भी हमारा नाकों दम कर डालता है। यदि हम वास्तवमें अपनेको जैसा कहते हैं, वैसे होते, तो उक्त जरा जरासे कारणोंसे कभी अधीर नहीं होते। इन लक्षणोंसे साफ मालूम होता है कि, हमपर बाह्यवस्तुओंका बड़ाभारी परिणाम होता है। और जब बाह्यसृष्टिका हमपर इतना असर होता है, तब स्पष्ट ही है कि, हम अपनेको जैसा बतलाते हैं, वास्तवमें वैसे नहीं हैं। एक तो यों ही हमारे दुःख बहुत हैं, और फिर ऊपरसे बाह्यसृष्टि भी हमें त्रास देती है। फिर दुःखोंका क्या ठिकाना है! यह रोना रोकर कि, 'जगत कितना बुरा है, अमुक हमें दुख देता है, और अमुक त्रास

देता है' हम अपने पहिले दुःखोंमें नये दुःख और भी शामिल कर लेते हैं।

प्रत्येक पुरुषको अपनी ही चिन्ता करनी चाहिये। दूसरोंकी चिन्ता करनेकी अभी जल्दी नहीं है। हमने यदि अपने साधनोंकी ही पूरी पूरी तयारी कर ली, तो बस है। कार्य आप ही आप सिद्ध हो जायगा। हमें उसकी चिन्तासे मतलब नहीं। यदि हमारा वर्ताव अच्छा और शुद्ध होगा तो हमें जगत भी अच्छा और शुद्ध दिखेगा। जगतका अच्छा होना कार्य है और स्वयंका अच्छा होना कारण वा साधन है। इसलिये आओ, हम सब अपनी शुद्धिकी ओर ध्यान दें और अपनेको पूर्णत्व प्राप्त करनेका प्रयत्न करें।

नोट—यह लेख मराठी मासिक मनोरंजनमें प्रकाशित हुए एक लेख का अनुवाद है। इसके सब सिद्धान्त जैनधर्मके अनुकूल नहीं हैं, तो भी उपयोगी और शिक्षाप्रद समझकर यह प्रकाशित कर दिया जाता है। **सम्पादक।**

पुस्तकावलोकन और पुस्तकालय।

(स्वदेशबान्धवसे उद्धृत)

संसारमें आकर ज्ञान बढ़ाना मनुष्य मात्रका धर्म्म है। क्योंकि ज्ञानसे ही मनुष्य अपना कल्याण और दूसरोंका भला करनेमें सामर्थ्यवान् होता है। ज्ञान बढ़ानेके दो ही मुख्य उपाय है—प्रथम सत्संगति दूसरा पुस्तक अध्ययन। सत्संगति प्रतिस्थान और प्रति समय मिलनी कठिन है, परन्तु पुस्तकाध्ययनका अवसर सत्संगतिकी अपेक्षा सुगमतासे प्राप्त हो सकता है। अच्छे पुस्तकोंका अध्ययन करना भी एक तरह सत्संगति करनेके समान ही है। कवि **मिल्टन** कहता है कि,

“ पुस्तकोंमें एक विशेष शक्ति है जो कि ठीक उसी शक्तिके समान होती है, जैसी कि ग्रन्थकर्त्तामें होती है।” किसी विद्वान्ने सच कहा है कि, पुस्तकोंकी संगति ही मनुष्योंमें मनुष्यत्व लाया करती है।

हमारा स्कूलमें पढ़ना केवल इसी लिये नहीं है कि, हम वहां जाकर किसी भाषामें या व्याकरणमें पारंगत हो जांय और फिर कुछ न करें। हमारा पढ़नेका उद्देश्य यही होना चाहिये कि, हममें लिखने पढ़नेका शोक पैदा हो जाय। और जन्मभर हम संसारके और २ कामोंमें लगे हुए भी अपने ज्ञान भाण्डारको बढ़ाते रहें। चाहे कोई धनाढ्य हो वा दरिद्र, एक मनुष्य बहुतसे विषयोंके ग्रन्थोंका संग्रह नहीं कर सकता। क्योंकि किसी भी व्यक्तिके पास न इतना समय है और न इतना द्रव्य। इसी लिये सर्व साधारणके लाभके लिये विद्वानोंने पुस्तकालयकी स्थापना करनेकी प्रणाली चलाई है। सब सभ्य देशोंमें इस प्रणालीसे बड़ा लाभ उठाया जा रहा है। यूरोपके एक २ देशमें कितने ही बड़े २ पुस्तकालय हैं। यदि भारतवासी चाहें, तो भारतमें बड़े २ पुस्तकालय बनाकर बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं। हम सूदके लाभके लिये लोगोंको रुपया ऋण देते हैं, लेन देनका व्यवहार करते हैं; परन्तु याद रखिये जो रुपया हम पाठशाला, पुस्तकालय, प्रदर्शनी इत्यादिमें लगाते हैं, उससे मामूली सूद ही नहीं मिलता, सूद दरसूद ही नहीं मिलता, किन्तु मूल धनसे अगणित अधिक लाभ होता है। किसी विद्वान्ने कहा है कि “ जो पुरुष एक स्कूलका द्वार खोलता है, वह जेलखानेका फाटक बन्द करता है।” किन्तु हम कहते हैं, जैसे क्षत्रिय-कुल-भूषण राजा भगीरथ अपनी सन्तान और प्रजाके कल्याणार्थ गंगाजीके प्रवाहको लाये थे, उसी प्रकार जो मनुष्य एक पुस्तकालय खोलता है।

वह अपनी सन्तानको, अपने देशवासियोंको सरस्वती स्नान कराकर विद्वान् और भाग्यशाली बना देता है। दृष्टान्तके लिये पश्चिमकी ओर देखिये। विद्वान्प्रवर **सर जोन लवन,** मेम्बर पार्लीमेंट अपनी एक पुस्तकमें लिखते हैं:—"हम सभ्य जातिओंके विषयमें सुनते हैं और निस्सन्देह कुछ जातियां और जातिओंको देखते सभ्य हैं भी, किन्तु अभी तक कोई देश इस दशाको नहीं पहुंचा है कि, उसको ठीक २ सभ्य कहा जाय। हमको सच्ची सभ्यता प्राप्त करनेके लिये यत्न करना चाहिये और निस्सन्देह पुस्त-कालयोंकी स्थापनाकी उन्नति इसकी ओर बढ़नेका एक उपाय है।" **अकबर** एक बड़ा प्रतापी बादशाह हुआ है। हिन्दू मुसल-मान सबही उसको बड़ा बताते हैं। उसके बड़े होनेमें भी पुस्तक-श्रवण और पुस्तकालय ही कारण है। **आईने अकबरीमें** लिखा है कि, अकबरके यहां एक बडा पुस्तकालय था और वह दूसरोंसे पढ़वा २ कर किताबोंको बड़े ध्यानसे सुना करता था। पुस्तक-प्रेमी होनेके कारण ही उसने महाभारत, वाल्मीक रामायण, अथर्व-वेदका फारसीमें उल्था कराया था। अकबर इतिहासका बड़ा प्रेमी था। इतिहासकी पुस्तकोंको बड़े ध्यानसे सुना करता था, उसने 'तारीख अलफी' नामका एक इतिहास भी बनवाया था।

विशप **रिचर्ड डी बरी** पुस्तकोंकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं। ग्रन्थ उस गुरुके समान हैं, जो बिनाकड़े शब्द कहे और क्रोध दिखाये बिना मारे पीटे बिना कुछ लिये दिये हमें शिक्षा देते हैं। यदि तुम उनके समीप जाओगे तो तुम उन्हें सोता हुआ नहीं पाओगे। यदि तुम उनसे कुछ पूछोगे, वे तुमसे कुछ भी नहीं छिपावेंगे। यदि तुम उनका कुछ अपराध भी करोगे तो वे कुछ

न कहेंगे। यदि तुम अज्ञानी हो तो वे तुम्हें देखकर नहीं हंसेंगे। सद्ग्रन्थोंका पुस्तकालय ही दुनियांकी धन सम्पत्तिसे अधिक मूल्यवान् है। और हमारे संसारके अभिलषित पदार्थोंमें पुस्तकालय ही सर्व श्रेष्ठ है। इसी कारण जो कोई अपनेको सत्यानुगामी, सुखी, विद्वान्, बुद्धिमान् और धार्म्मिक बनाना चाहे वह अवश्य ही अपनेको पुस्तकका प्रेमी बनावे।

पुस्तकालय हमारे पुरुषाओंके छोड़े हुए खजानेके समान है। उनको काममें लाना हमारा धर्म्म है। यदि हम उससे लाभ नहीं उठाते, तो हम अयोग्य सन्तान हैं। यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो हमारा पुस्तकाध्ययन और संग्रह करनेमें जितना खर्च होता है, उससे कहीं अधिक मादक द्रव्योंके सेवनमें खर्च होता है। यदि हमारे देशवासी अपने नशेपानीकी चीजें और चिलम तमाखूके खर्चका आधा हिस्सा भी पुस्तकोंके लिये खर्च करें, तो उनको बड़ा लाभ हो। आज कल यूरोप अमेरिकामें पुस्तकालयके लाभोंको लोगोंने समझा है। वहांपर बड़े २ पुस्तकालय हैं और पुस्तकालय सम्बन्धी कितने ही सामायिकपत्र निकलते हैं।

ऐसी कोई गली या मुहल्ला नहीं है, जहां कोई रीडिंग रूम (वाचनालय) न हो। कैसे आश्चर्य की बात है कि, जब इंग्लैंडमें कारखानोंमें काम करनेवाले कुली मजदूर तक और साधारण गाड़ी हांकनेवाले तक अवकाश मिलनेपर समाचारपत्र पढ़ते हैं, तब भारतके अच्छे २ अमीर अपने समयको व्यर्थ नष्ट करते हैं। निस्सन्देह भारतमें पुस्तकालयोंकी बड़ी आवश्यकता है। बड़े २ शहरतक उनसे खाली हैं। पुस्तकालयोंमें जाकर पुस्तकोंके पढ़नेसे लोगोंमें विद्या और बुद्धि बढ़ती है, और धनाढ्य व गरीब सबका आप-

समें मेल जोल बढ़ता है। एक अंग्रेज विद्वान्का कथन है कि, यदि मनुष्यको कोई शौक लगाना हो, तो वह शौक लिखने पढ़नेका होना चाहिये। उससे अधिक आनन्ददायक और कोई शौक नहीं है। इस शौकके कारण पुरुष भाग्यवान् और सुखी हो जाता है और उसे ऐसा आनन्द प्राप्त होता है कि, संसार मेरे लिये ही है। भारतवासी भी पुस्तकालयके लाभोंको समझें और पुस्तकाध्ययनसे लाभ उठावें, यही हमारी मनोकामना है।

पुस्तक प्रेमियोंका दास—
पूर्णचन्द्र बजाज, सागर

हृदयोद्गार * ।

(१)

आनन्द आज मनका, मनमें न माता।
स्वच्छंद गोनपथमे, सब ओर जाता॥
देखो, यहां विचरना, सुखही बही है।
स्वर्गीय भूमि उससे, यह हो रही है॥

(२)

इच्छा अपूर्व उत्साह अपूर्व ही है।
उद्योग और शुभ भाव अपूर्व ही है॥
प्रत्येक सभ्यजनके, मनमें समाये।
ये भाव ही दिख रहे, न छुपे छुपाये॥

---

* सम्पादकने यह कविता मोरेनाके सरस्वती भवनकी स्थापनाके समय रचकर पढ़ी थी।

(३)

जो जीर्ण शीर्ण अतिदीन मलीन होके ।
सुख्याति और बहुमान—निधान खोके ॥
माता सरस्वति पड़ी, चिरकालसे थी ।
अत्यन्त ही व्यथित जो निज हालसे थी ॥

(४)

हस्तावलम्ब उसको, सब दे रहे हैं ।
हो नम्र आज उसके पद से रहे हैं ॥
सद्भक्ति पूर्ण शुचि अर्घ चढ़ा रहे हैं ।
उत्साह और नव चाह बढ़ा रहे हैं ॥

(५)

आलोच्य दोष पहिले, पछता रहे हैं ।
खोये 'सुपुत्र' पदको, अकुला रहे हैं ॥
सेवा सदा करहिंगे, प्रण ले रहे हैं ।
सर्वस्व और निज जीवन दे रहे हैं ॥

(६)

सन्मान मंगलमयी यह शारदाका ।
आदर्श उत्तम उदार उदारताका ॥
गंभीर नींव यह, उन्नति—हर्म्यकी है ।
चेष्टा सुचारुफलदा, शुभकर्मकी है ॥

(७)

श्रीजी सुबुद्धि सबके, मनमें जगावें ।
सेवा सुमातु निजकी, सब सीख जावें ॥
इससे समुन्नत स्वदेश जरूर होगा ।
अज्ञानभाव हमसे, हट दूर होगा ॥

(८)

ये पुस्तकालय, दिनों दिन वृद्धि पावे।
निस्स्वार्थ पंडित बनाय, सुकीर्ति छावे॥
कल्पान्तलों थिर रहै, यह ज्ञान दाता।
आशीष मंगलमयी, कवि है सुनाता॥

मेघान्योक्ति अष्टक

[१]

को नहीं जानत मेघ! एक अवलम्ब तिहारे।
धार रहे हैं जीवन ये चातक बेचारे॥
इतने पर भी चाह दीन वचनोंकी भाई।
करता है तू इनमे, है इसमें कौन बड़ाई॥

[२]

ले लेकर जल अंश, हुआ जिसमे तू भारी।
औ होकर मदमत्त, चपल चपला उर धारी॥
उसी जलधि पर, जा जाकर गर्जन तर्जन है।
रे रे काले मेघ, तुझे क्या यही उचित है?

[३]

गिरि ऊसर मूगर्त[१], गुहादिकपर मन मानी।
हे जलधर, कर वृष्टि, किया है पानी पानी॥
पर खेतोंपर एक, बूंद भी नहीं बरसाया।
यह तूने कुछ न्याय, अनौखा ही दरशाया॥

[४]

[१]जलद, तुम्हारी अनुकम्पासे, सब [२]तरु-राजी।
रंग विरंगे नव पल्लव,-दलसे है साजी ॥
पर बेचारे [३]आक, इसीको तरस रहे हैं।
बने रहें पहिलेके ही, जो पत्र रहे हैं ॥

[५]

हे जलधर नहिं स्वयं इसे तू भोग सकेगा।
कहीं व्यर्थ ही बिना विचारे, बरसा देगा ॥
तब इसको फिर वहां, नहीं तू क्यों बरसाता।
[४]मुक्त किया जल [५]जहां, रूप [६]मुक्ताका पाता।

[६]

जग है अति बेचैन, ग्रीष्म आतपसे जो यह।
जल बरसा हे मेघ, उसे कर शांत सुयश लह ॥
नाहिं तो हो जा दूर, व्यर्थ क्यों तपा रहा है।
होने दे शशि दरश उसे क्यों छुपा रहा है ॥

[७]

दावानलसे दग्ध, तृषित चातक चिर दिनके।
दे कर जल हे जलद, करहु शीतल हिय उनके ॥
नहीं तो यदि चल पड़ा पवनका प्रबल झकोरा।
तो कहँ तुम, कहँ नीर कहाँ यह दान निहोरा ॥

[८]

सुन करके हे पथिक भयंकर इस गर्जनको।
मत विह्वल हो नेक, देहु धीरज निज मनको ॥

---

१ बादल। २ वृक्षोंकी राजी अर्थात् पंक्ति। ३ आकके वृक्ष। ४ मुक्त किया हुआ अर्थात् छोड़ा हुआ। ५ जहां अर्थात् जिस सीपमें। ६ मोतीका।

नहीं सुना है सुयश विमल, क्या सखे जलद्का ।
जो निज जीवन देय, हरत संताप जगतका ॥

शिवसहाय चौबे—
देवरी (सागर)

मोरेनामें सरस्वती भवनकी स्थापना।

गत पौषसुदी १०को जैनसिद्धान्तपाठशालाके कार्य्यकर्ताओंने यहांके स्थानीय लोगोंके और विद्यार्थियोंके लाभके लिये एक सार्वजनिक सरस्वती भवनकी स्थापना की है । इस सरस्वती भवनमें ऐहिक और पारलौकिक उन्नति ज्ञान करानेवाले सब प्रकारके हिन्दी संस्कृत आदि भाषाओंके ग्रन्थ और मासिकपत्र तथा अन्य समाचारपत्र संग्रह किये जांयगे और उन्हें जैन और जैनेतर सब लोग सुभीतेके साथ पढ़ सकें, ऐसी व्यवस्था की जायगी । प्रारंभमें श्रीयुक्त **वासुदेवजी** उपाध्यायने विधिपूर्वक सरस्वतीदेवीकी पूजा की, और फिर स्थानीय म्यूनीसिपालिटीके चेअरमैन श्रीयुक्त लाला आत्माराम जीवनजीने अपने करकमलोंसे प्रसन्नताके साथ सरस्वतीभवनको खोला । इसके पश्चात् एक सभा की गई, जिसके सभापतिका आसन उक्त लाला साहबको दिया गया । प्रारंभमें मंगलाचरण और उत्साहवर्धक भजन गाये गये, पश्चात् श्रीदेवकीनन्दन विद्यार्थीका लगभग १॥ घण्टे तक व्याख्यान हुआ, जिसमें भारतकी वर्तमान दशाका खाका खींचा गया और देशके कल्याणके लिये शिक्षाप्रचारकी आवश्यकता बतलाई गई । इसके बाद श्रीयुक्त **नाथूरामजी प्रेमी** सम्पादक जैनहितैषीने एक सारगर्भित व्याख्यान देकर पुस्तकालयकी आवश्यकता दिखलाई और एक स्वरचित कविता पढ़कर

इस सरस्वतीभवनकी स्थापनासे जो उन्हें हार्दिक आनन्द हुआ था, उसे प्रगट किया तदनन्तर पूज्यवर पं० गोपालदासजी स्याद्वादवारिधिने थोड़ेसे शब्दोंमें पूर्व व्याख्यानोंका सारांश कहकर उनका अनुमोदन किया। यद्यपि इस समय सरस्वतीभवनके लिये कुछ अपील नहीं की थी, तौभी व्याख्यानोंका इतना अच्छा असर हुआ कि, उपस्थित सज्जनोंने उसी समय अनुमान ७९) के चन्दा लिख दिया और पीछे यह रकम लगभग १२०) के हो गई। * इस विषयमें द्रव्यदाताओंको जितना धन्यवाद दिया जाय उतना थोड़ा है। बहुतसे सज्जनोंने सरस्वतीभवनके लिये पुस्तकें देनेकी भी कृपा दिखाई। जैनसिद्धान्त पाठशालामें जो पहिले लगभग २०० पुस्तकोंका संग्रह था, वह भी इस सरस्वतीभवनमें शामिल कर दिया गया है।

अन्तमें सम्पूर्ण विद्योत्साही धर्मात्मा भाइयोंसे प्रार्थना है कि, वे नगद द्रव्य भेज कर तथा पुस्तकादि भेंट करके इस सरस्वतीभवनको सहायता पहुंचावें और ज्ञानवृद्धिके इस परमोपयोगी साधनको विशाल बनानेकी कृपा दिखावें।

मोतीलाल ब्रह्मचारी—
मोरेना (ग्वालियर)

एक और सरस्वती मन्दिर।

पाठक! आराके देवकुमार सरस्वती भवनके स्थापित होनेका समाचार बहुत पहिले पढ़ चुके हैं। आज हम जैनसमाजद्वारा स्थापित किये हुए एक और सरस्वती मन्दिरकी स्थापनाका समाचार सुनाते

* स्थानाभावके कारण चन्देकी सूची प्रकाशित नहीं हो सकी। सम्पादक.

हैं। इसे जानकर पाठक यह अवश्य समझेंगे कि, जिन बातोंके लिये अविराम आन्दोलन किया जाता है, उनकी आवश्यकता लोगोंपर अवश्य विदित हो जाती है और समय पर उन आवश्यकताओंकी पूर्ति करना भी लोग प्रारंभ कर देते हैं। जो लोग पहिले केवल मन्दिरोंके बनवाने और प्रतिष्ठाओंके करानेमें ही अपने कर्तव्यकी इति श्री समझते थे, उन्हे अब विद्या मन्दिरोंकी प्रतिष्ठा करनेकी ओर प्रवृत्त देखकर वचनातीत आनन्द होता है।

इस सागर शहरमें एक बालबोध जैनपाठशाला तो पहिलेसे ही थी। दूसरी संस्कृतकी पाठशाला तथा भोजनशाला लगभग तीन वर्षसे चल रही है। जिसका कि, ढाइसौ रुपया मासिकका खर्च है और जिसमें लगभग पच्चीस विद्यार्थी संस्कृतका अध्ययन करते हैं। अब यहांके समस्त भाइयोंने जिनमें श्रीयुक्त जवाहरलाल जी बजाज. नन्हूलालजी सराफ, कालूरामजी दलाल, आदि मुख्य हैं, विद्वद्वर्य पंडित गणेशप्रसादजी तथा गजाधरजी तामियाके उत्साह दिलानेसे और श्रीयुक्त नाथूरामजी प्रेमी सम्पादक 'जैनहितैषी' के उपस्थित होकर प्रेरणा करनेसे अगहन शुक्ल सतमीको एक सरस्वती-मन्दिरकी स्थापना करनेका दृढनिश्चय किया है। आगामी अक्षय तृतीयाको उसका शुभ मुहूर्त किया जायगा। लगभग पांच हजार रुपया दान किया गया है, जिनमें तीन या चार हजार रुपयोंके लगभगका मन्दिर बनाया जाय॥ और १२७२॥।) की छपी तथा हस्तलिखित पुस्तकें मंगाई जावेंगी, इसके सिवाय श्रीचैत्यालयजीकी औरसे प्रतिवर्ष दोसौ रुपयोंके ग्रन्थ और भी मंगाये जाया करेंगे। इसके अतिरिक्त जो दानी महाशय इस फंडमें दान करेंगे उन रुपयोंके भी ग्रन्थ मंगाये जावेंगे। जिन सज्जनोंने इस कार्यके लिये

उद्योग करके यह सफलता प्राप्त की है, उनके उत्साहको देखकर यह भी आशा होती है कि आगे यह कार्य बहुत विशाल हो जायगा, और ऐसे कई पांच हजार रुपये इसमें दान किये जावेंगे। श्रीजिनेन्द्रदेव इन महाशयोंकी इच्छा शीघ्र पूर्ण करें। यहांके समैया भाई बड़े उत्साही और धर्मात्मा हैं। उनके चैत्यालयमें लगभग हजार रुपया सालकी आमदनी है। और खर्च बहुत ही मामूली है। ये लोग जिनवाणीके उपासक हैं। इस लिये ऐसा मालूम होता है कि, प्रयत्न होता रहेगा, तो उक्त सारी रकम सरस्वतीमन्दिरमें ही व्यय होने लगेगी और उस समय यहां एक भारी सरस्वती भंडार हो जावेगा।

अन्य स्थानोंके समैया तथा चरनागर आदि भाईयोंको भी इसमें सहायता देकर अपनी सरस्वती भक्तिको प्रगट करना चाहिये। जैनधर्मकी उन्नतिके लिये सरस्वती भंडार बड़े भारी साधन हैं। इस भंडारमें जो धर्मात्मा भाई नगदसे अथवा पुस्तकादिसे सहायता करेंगे वह सहर्ष स्वीकार की जावेगी।

यदि कहीं कोई प्राचीन ग्रन्थ बिक्रीके लिये हों अथवा प्रयत्न करनेसे मिल सक्ते हों तो उनकी सूचना सरस्वती मन्दिरके प्रबन्धक श्रीयुक्त नन्नूलालजी सराफ सराफा बजार सागरको करना चाहिये।

पूर्णचन्द्र बजाज—सागर।

---

* इस लेखमें जो चन्देकी सूची थी, वह स्थानाभावसे प्रकाशित नहीं की जा सकी। सम्पादक।

कर्नाटक-जैन-कवि ।

(२)

पंपकविका **आदिपुराण** गद्यपद्यमय (चम्पू) है । कनड़ीमें काव्य रचनाका यह लक्ष्य ग्रन्थ है । इसमें १६ परिच्छेद हैं। कर्नाटककविचरित्रके कर्त्ताका कथन है कि, " इसका गद्य ललित, हृदयंगम, गंभीराशय और भावपूर्ण है और पद्य तो मोतीकी लड़ियोंके समान है । भाषाशैली सर्वोत्कृष्ट है इस कविको कन्नड कवियोंका राजा कहनेमें कोई अत्युक्ति नहीं होगी ।" इस ग्रन्थके आदिमें **समन्तभद्र ,कविपरमेष्ठी, पूज्यपाद, गृद्धपिच्छाचार्य, जटाचार्य**, **श्रुतकीर्ति, मलधारिसिद्धान्तमुनीश्वर**, **देवेन्द्रमुनि, जयनंदिमुनि** और **अकलंकदेव**की स्तुति की गई है ।

पंपका भारत अथवा विक्रमार्जुनविजय भी कनड़ी साहित्यमें अपनी शानी नहीं रखता । यह भी चम्पू ग्रन्थ है । इसमें १४ आश्वास हैं । इसमें पांडवोंके जन्मसे लेकर कौरवोंके वध तककी कथा है । अन्तमें राज्याभिषेक हो चुकनेपर ग्रन्थ समाप्त किया गया है । इस ग्रन्थकी रचनासे प्रसन्न होकर अरिकेशरीने कविको ' बन्नेसासिर' प्रान्तका एक धर्मपुर नामका ग्राम पुरस्कारमें दिया था ।

पंपके गुरुका नाम देवेन्द्रमुनि था । वे बड़े भारी विद्वान् थे । श्रवणबेलगुलके ४२ वें शिलालेखमें उनका ' भारतीय भालपट्ट' कहकर उल्लेख किया है। कवितागुणार्णव, पुराणकवि, सुकविजनमनोमानसोत्तंसहंस, सरस्वतीमणिहार, संसारसारोदय आदि पंपकविके उपनाम थे, जिनसे उसके एक अद्वितीय कवि होनेका अनुमान किया जा सकता है ।

१९ पोन्न—यह भी कनड़ी भाषाका एक अतिशय प्रसिद्ध कवि है। पोन्निग, पोन्नमय्य, सवण, आदि इसके नामान्तर हैं और कविचक्रवर्ती, उभयकविचक्रवर्ती, सर्वदेवकवीन्द्र, सौजन्यकन्दांकुर आदि इसकी पदवियां हैं। इसके गुरुका नाम इन्द्रनन्दि था। यह राष्ट्रकूटवंशीय राजा **कृष्णराजके** समयमें (ईस्वी सन ९५०) हुआ है। कृष्णराजने इसे 'उभयकविचक्रवर्ती' का सम्मान सूचक पद दिया था, ऐसा **जन्न**कविके यशोधर चरित्रसे जो कि ईस्वी सन् १२०९ में बना है मालूम होता है। **दुर्गसिंह** (सन ११४५)के एक पद्यसे भी इस बातकी साक्षी मिलती है। इसके बनाये हुए **शान्तिपुराण और जिनाक्षरमाला** नामक दो ग्रन्थ उपलब्ध हैं। शान्तिपुराण चम्पू रूप काव्य है। इसके १२ आश्वास हैं। इस ग्रन्थको कविपुराणचुडामणि भी कहते हैं। इसकी कविता बहुत ही सुन्दर है। वेंगी देशके **कम्मेनाडिकापुंगनूर** नामक ग्रामके रहनेवाले कौंडिन्यगोत्रोद्भव **नागमय्य** नामक जैन ब्राह्मणके **मल्लप** और **पुन्निमय्य**ने जो कि पीछे **तैलिपदेव**के सेनापति हो गये थे। अपने गुरु **जिनचन्द्रदेव**को परोक्षविनय प्रगट करनेके लिये कवि **पोन्न**से शान्तिनाथपुराणके रचनेका अनुरोध किया था, ऐसा ग्रन्थकी प्रशस्तिसे विदित होता है। जिनाक्षरमाला छोटीसी स्तवनात्मक कविता है, जो वर्णानुक्रमसे बनाई गई है।

शान्तिनाथपुराणके अन्तके एक पद्यसे मालूम होता है कि, इस कविके बनाये हुए दो ग्रन्थ और हैं—एक **रामकथा** वा **भुवनैकरामाभ्युदय** और दूसरा **गतप्रत्यागतवाद**। दूसरा ग्रन्थ संस्कृतमें है। कोई २ विद्वान् इनका बनाया हुआ एक अलंकारका ग्रन्थ और भी बतलाते हैं। परन्तु इस समय ये तीनों ही ग्रन्थ प्राप्त नहीं है।

अजितपुराणके एक पद्यसे मालूम होता है कि, **पंप**, **पौन्न** और **रन्न** ये तीन कवि कनड़ी साहित्यके रत्नत्रय हैं।

पौन्नकी **पार्श्वपंडित** (ईस्वी सन् १२०६), **नयसेन** (१११२) **नागवर्म** (११४५), **उद्भट** (११८०) **केशिराज** (१२६०) **मधुर** (१३८०) आदि जैन और जैनेतर कवियोंने बहुत प्रशंसा की है। और **केशिराज** आदि लक्षणग्रन्थकर्त्ताओंने इसके ग्रन्थोंसे उदाहरण उद्धृत किये हैं।

१६ **रन्न**—यह कवि वैश्य वर्णका था। इसके पिताका नाम **जिनवल्लभेन्द्र** और माताका **अब्बलब्बे** था। इसका जन्म ईस्वी सन् ९४९ में मुदुबोल नामक ग्राममें हुआ था। कविरत्न कवि-चक्रवर्ती, कविकुंजरांकुश, उभयभाषाकवि आदि इसकी पदवियां थीं। यह राजमान्य कवि था; राजाकी ओरसे सुवर्णदंड, चँवर, छत्र, हाथी आदि इसके साथ चलते थे। इसके गुरुका नाम अजित-सेनाचार्य था। सुप्रसिद्ध जैन मंत्री **चामुंडराय** इसके पोषक थे। इस समय इसके दो ग्रन्थ उपलब्ध हैं, एक **अजितपुराण** और दूसरा साहसभीमविजय वा गदायुद्ध। पहिले ग्रन्थमें दूसरे तीर्थंकर अजितनाथका चरित्र १२ आश्वासोंमें वर्णन किया है। यह चम्पूग्रन्थ है। इसे काव्यरत्न और पुराणतिलक भी कहते हैं यह शक संवत् ९१५ (ई० सन् ९९३) में रचा गया था। इस ग्रन्थके विषयमें कवि कहता है कि, जिस तरह इस ग्रन्थसे **रन्न** (अर्थात् मैं) 'वैश्य वंशध्वज' कहलाया गया।

[अपूर्ण]

पुस्तक समालोचन ।

कमलाकान्तका इजहार—लेखक बाबू ब्रजनन्दनसहाय वकील, आरा और प्रकाशक हिन्दी ट्रैन्सलटिंग कम्पनी बड़ाबाजार कलकत्ता। मूल्य दो आना। बंगलाके सुप्रसिद्ध लेखक बाबू बंकिमचन्द्रने 'कमलाकान्तेर दफ्तर, नामका एक अपूर्व निबन्ध लिखा है, जिसमें हास्यरसको प्रधान करके सामाजिक धार्मिक और तात्त्विक विषयोंकी मर्मस्पर्शी आलोचना की है। यह पुस्तक उसी निबन्धके एक अंशका अनुवाद है। इसमें अदालतमें जो हलफ दिलाया जाता है उसकी, और वकीलों तथा जजोंका मीठा उपहास किया गया है। अनुवाद अच्छा हुआ है। कहीं २ गोम्, साथ, आदि बंगलाके शब्द ज्योंके त्यों रह गये हैं। अंग्रेजी वाक्योंका अनुवाद भी हिन्दीमें कर दिया जाता तो अच्छा होता। पुस्तक पढने योग्य है।

इन्द्रियपराजयशतक—अनुवादक और प्रकाशक श्रीयुक्त बुद्धलाल श्रावक, देवरी (सागर) मूल्य दो आना। मूल ग्रन्थ प्राकृत भाषामें है और अनुवाद हिन्दी पद्यमें किया गया है। यद्यपि इसके मूलकर्ता कोई श्वेताम्बराचार्य है परन्तु प्रायः विषय ऐसा है कि, उसे प्रत्येक मतका अनुयायी प्रेमसे पढ़ सकता है और अपनी आत्माका कल्याण कर सकता है। इन्द्रियोंपर आत्मा कैसे विजय प्राप्त कर सकता है, यही इस वैराग्यपूर्ण ग्रन्थमें बतलाया गया है। कविता सरल और अच्छी है। यदि प्राकृतकी छाया और हिन्दी भावार्थ और भी इसमें लिख दिया जाता और अनुवाद एक ही छन्दमें किया जाता तो पुस्तक और भी लाभदायक हो जाती। छपाई और कागज दोनों उत्तम हैं। पुस्तक **जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय** तथा **मेघजी हीरजी** कम्पनी बम्बई से मिल सकती है।

शिवप्रबोध प्रथम भाग—लेखक श्रीयुत शिवजी देवशी और प्रकाशक मेसर्स मेघजी हीरजी कंपनी, बम्बई। मूल्य आठ आना। इस गुजराती भाषाकी पुस्तकमें सत्पुरुषार्थ, मिताहार, मितभाषण, आदि ६ निबन्धोंका और विद्यावृद्धिकी आवश्यकता, सुखका वास्तविक स्वरूप आदि १५ व्याख्यानोंका संग्रह है। निबन्ध और व्याख्यान प्रायः सब ही शिक्षाप्रद हैं। प्रत्येक गुजराती जाननेवालेको चाहिये कि, इस पुस्तकको पढे। पुस्तकके आकार और परिमाणसे मूल्य बहुत ही कम है। छपाई भी अच्छी है।

वैश्य–यह मासिक पत्र अभी हाल ही इलाहाबादसे निकला है। इसका पहिला अंक हमारे साम्हने है। जैनहितैषीके आकारमें ३२ पृष्ठोंपर निकलता है। वार्षिक मूल्य सवा रुपया है। संपादक हैं इसके लाला संगमलालजी अग्रवाल। वैश्य जातिकी उन्नति करनेके लिये यह पत्र निकला है। लेख लाभ दायक और उपयोगी हैं। भाषा भी अच्छी है। पत्र होनहार मालूम होता है। पृष्ठसंख्या कुछ और बढ़ानी चाहिये। वैश्य भाइयोंको चाहिये कि, इसपत्रको आश्रय देवें।

पंचम वार्षिक रिपोर्ट–दिगम्बर जैन बोर्डिंग हाउस जबलपुरकी यह पांचवें वर्षकी रिपोर्ट है। इसके पढ़नेसे मालूम होता है कि, सन् १९१०–११ में इस बोर्डिंगसे १८ विद्यार्थियोंने लाभ उठाया जिनमें दो कालेजके, ७ हाई-स्कूलके और शेष मिडिलस्कूलके थे। परीक्षामें १५ विद्यार्थी उत्तीर्ण हुए। धार्मिक शिक्षा बहुत ही मामूली न होनेके बराबर दी जाती है। यह बड़ी कमी है। लगभग १६००रुपये इस सालमें खर्च हुए हैं, पर आमदनी बहुत ही कम हुई है। यह बड़े खेदकी बात है कि, जबलपुर जैसे धनी जैनियोंके शहरमें होनेपर भी इस संस्थाकी आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं है। लोगोंका ध्यान भी इसकी ओर बहुत कम दिखता है। वर्षोंका चन्दा बकाया पड़ा है। लज्जा-की बात है।

पंचम वार्षिक विवरण–जैनशिक्षाप्रचारक समिति जयपुरकी यह सन् १९१० की रिपोर्ट है। समितिका परिचय प्रायः सब ही भाइयोंको है। कार्य पूर्ववत् उत्तमतासे चल रहा है। १९१० में लगभग ६५००) की आमदनी हुई और इतना ही खर्च हुआ। समितिके श्रीवर्धमान विद्यालयमें विद्यार्थियोंकी संख्या १९०९ की अपेक्षा ४८ अधिक होकर १९७ हो गई। जिनकी औसत हाजिरी ९१ रही। छात्रालयमें विद्यार्थियोंकी संख्या ३० हो गई। जयपुरमें समितिके अधीन जो तीन कन्याशालाएं हैं। उनमें १२८ बालिकाओंने शिक्षा पाई। परीक्षाफल विद्यालय और कन्याशालाओंका संतोषजनक रहा।

वन्देजिनवरम्–इस मराठी मासिकपत्रका सम्पादन अब श्रीयुक्त आर-आर. बांवडे करने लगे हैं। नये वर्षसे इसमें चित्र निकालनेका भी प्रबन्ध किया गया है। पहिले अंकमें तीर्थराज सम्मेदशिखरका चित्र और उसका वर्णन है। लेख और कविताएँ अच्छी रहती हैं। मराठी जाननेवाले भाइयोंको चाहिये कि इसके ग्राहक बनें। श्रीयुक्त कृष्णाजी रामचन्द लाटकर, पो०निपाणी, जिला बेल-गांव इसके प्रकाशक हैं।

सामायिकपाठ-श्रीयुक्त ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीके बनाये हुए सामायिकपाठका यह गुजराती अनुवाद है। अन्तमें पं० महाचंद्रजी कृत सामायिक पाठ और आलोचनापाठ भी छपा है। इसके प्रकाशक शा० मूलचन्द कशनदासजी कापड़िया सूरत हैं। मूल्य डेढ़ आना।

विविध विषय।

आठ लाखका दान—महाराज पंचम जार्जके भारतागमनके स्मरणार्थ बम्बईके प्रसिद्ध धनी सर सासुन डेबिडने आठ लाख एक हजार रुपयोंका महान् विद्यादान किया है। इस रकमके ब्याजसे देहातोंमें खेतीकी शिक्षा देनेवाली पाठशालाएं खोली जावेंगी। खेतीमें सुधार करनेके प्रयोग किये जावेंगे और खेतीके नये नये उपयोगी ओजारोंका प्रचार किया जायगा और विद्यार्थियोंके रहनेके लिये बोर्डिंग हाउस बनाये जावेंगे। इसमें जातिधर्मका भेद नहीं रक्खा जायगा। प्रत्येक भारतवासी इससे लाभ उठा सकेगा। ऐसे दानोंमें परोपकार पुण्य और राष्ट्रहित तीनोंका समावेश होता है। भारतमें ऐसे दानोंकी प्रवृत्तियें होती देखकर बड़ी प्रसन्नता होती है।

झगड़ेका अन्त--दस्सों और बीसोंके मामले परसे समाजमें जो अशान्ति हो रही थी वह शान्त हो गई। रानीवालोंकी ओरसे इस विषयमें जो एक लेख प्रकाशित हुआ है, यद्यपि उसमें भी दूसरे पक्षवालोंको थोड़ा बहुत प्रसाद देनेकी कृपा दिखलाई गई है-जिसकी कि जरूरत नहीं थी, तो भी मालूम होता है कि, अब यह झगड़ा तय हो गया। और यह एक तरहसे अच्छा ही हुआ। इस झगड़ेका प्रारंभसे अन्ततकका इतिहास यदि कोई लिखे तो वह नवयुवकोंके लिये जिन्हें कि आगे ऐसे बहुतसे प्रवाह पारकरके उन्नतिके मैदानमें पहुंचना है, बहुत ही लाभदायक होगा।

क्रोधका शरीरपर प्रभाव—डाक्टर मारिस डीफ्लूरीनें डाक्टरी तहकीकात और तजरुवेसे दरयाफ्त किया है कि, क्रोध करनेसे दिमागकी ऐसी हालत हो जाती है, जैसी आँधी आनेपर समुद्रकी। क्रोध जितना तीव्र होता है और जितने अधिक समय तक रहता है, उतनी ही शरीरशक्ति कम हो जाती है। यदि कोई व्यक्ति क्रोधको प्रगट न होने दे-मन ही मनमें घुटता रहे, तो और भी अधिक हानि होती है। शरीरशक्ति कम होती जाती है और क्रमक्रमसे मृत्यु हो जाती है। क्रोधके परमाणु प्रति समय आयुको क्षीण करते हैं। क्रोध

करना वैसा ही बुरा है, जैसा कि आत्मघात। अन्तर केवल इतना ही है कि, आत्मघातके कारणोंसे तो मृत्यु जल्दी हो जाती है, परन्तु क्रोधसे देरमें होती है। क्रोध उस विषके समान है, जिसका असर अदृश्य और धीरे धीरे होता है। किन्तु उसके विषके समान आत्मघाती होनेमें सन्देह नहीं है। *

बंगीय सार्वधर्म परिषद्।—बनारसमें जैनसमाजके सुपरिचित श्रीयुक्त पंडित पन्नालालजीके उद्योगसे इस नामकी एक संस्था स्थापित हुई है। इसके सभापति लखनौके बाबू अजितप्रसादजी, एम्. ए., मंत्री बाबू देवेन्द्रप्रसादजी, आरा और सहायक मंत्री उक्त पंडितजी हैं। इस संस्थाका उद्देश्य बंगालमें और बंगाली विद्वानोंमें लेखों पुस्तकों और ट्रैक्टोंद्वारा जैनधर्मके तत्त्वोंका परिचय कराना है। हर्षका विषय है कि, संस्थाके द्वारा 'जैनधर्म' नामका एक बंगला ट्रैक्ट भी जो कि लोकमान्य पं० बाल गंगाधर तिलकके एक व्याख्यानका अनुवाद है, प्रकाशित हो गया है। भट्टाकलंक चरित्र साहित्य मासिकपत्रकी वर्तमान-संख्यामें छप चुका है। जैनधर्मेर किंचित् परिचय, जैनतत्त्वज्ञान चारित्र, और अठारहनातेकी कथा, नामक लेख बंगलाके उद्बोधन, प्रवासी, भारती आदि प्रसिद्ध पत्रोंमें भेजे जा चुके हैं, जो शीघ्र ही छपकर प्रकाशित हो जावेंगे। जैनसिद्धान्त प्रवेशिकाका बंगानुवाद हो चुका है और तत्त्वार्थसूत्रके अनुवादका प्रयत्न हो रहा है। गत पौष सुदी प्रतिपदाको परिषद्का एक अधिवेशन भी हुआ था, जिसमें उक्त सब बातोंपर विचार किया गया। परिषद् बनारसमें एक पुस्तकालय भी खोलना चाहता है, जिसमें जैनधर्मके ग्रन्थ और सर्वसाधारण बंगला आदि भाषाओंकी पुस्तकें और समाचारपत्र रक्खे जावेंगे। इसमें जो बंगाली सज्जन आवेंगे उन्हें व्याख्यानादिके द्वारा जैनधर्मका परिचय कराया जायगा। इन सब कामोंके लिये धनकी बहुत आवश्यकता है, इस लिये संस्थाके संचालक अपील करते हैं कि, प्रत्येक जैनीको इस धर्मप्रचारके काममें अपनी २ शक्ति अनुसार सहायता देना चाहिये। हमको आशा है कि, जो भाई अपने प्यारे धर्मको प्रत्येक जीवका कल्याण करनेवाला उदार, पवित्र और सर्वोपरि समझते हैं, वे इस पुण्यकार्यमें अवश्य ही सहायता देंगे। बंगालियोंमें निष्पक्ष विद्वानोंका बाहुल्य है। यदि जैनी उद्योग करेंगे, तो एक बार बंगालप्रान्तमें जैनधर्मका डंका बज जावेगा।

---

* यह नोट श्रीयुक्त बाबू अजितप्रसादजी एम्. ए. एल. एल. बी. लखनौने भेजनेकी कृपाकी है। सम्पादक

आवश्यकता है।

वेतन

१ शिक्षा प्रणालीसे परिचित ग्रेजूवेटकी. ६०) से १००) तक
१ ,, अंडर ,,की. ४०) से ७०) तक
१ ,, अंट्रेंस पासकी. ३०) से ४०) तक
१ न्याय व्याकरणसे परिचित धर्म शिक्षककी ३०)से ७०) तक
२ रक्षकोंकी जो ब्रह्मचारियोंके साथ रहकर पइत्रिक कार्य कर सकें २०) से ३०) तक

प्रार्थना पत्र निम्न पतेपर आना चाहिये:—

अधिष्ठाता—श्रीऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम, हस्तनापुर,
पोष्ट—बहसुमा—जिला—मेरठ।

दक्षिणमहाराष्ट्र जैनसभाका अधिवेशन।

इस सभाका १४ वाँ वार्षिक अधिवेशन ता. १ मार्च शुक्रवारसे ता० ५ मार्च मंगलवार तक बेलगांवमें होगा। सभापतिका आसन श्रीयुक्त स्याद्वादवारिधि पंडित गोपालदासजी बरैया सुशोभित करेंगे। बेलगांव M. S. M रेलवेका ष्टेसन है। पण्डितजीके अपूर्व व्याख्यानामृत पान करनेको सब भाईयोंको जरूर पधारना चाहिये।

सभाका कार्यक्रम इस प्रकार है।

ता० १ मार्च शुक्रवार—दुपहरको सभाका प्रारंभ—स्वागतकमिटीके चेअरमैनका भाषण, सभापतिका चुनाव, सभापतिका व्याख्यान, रिपोर्टवाचन आदि।

ता० २ ,, शनिवार—दुपहरको सभाके प्रस्ताव। रात्रिमें विद्वानोंके धार्मिक विषयोंपर व्याख्यान।

ता० ३ ,, रविवार—दुपहरको सभाके प्रस्ताव। रात्रिमें धर्मोपदेश।

ता० ४ ,, सोमवार—दुपहरको सभाके प्रस्ताव। रात्रिमें जैनमहिला-परिषद्।

ता० ५ ,, मंगलवार—दुपहरको सभाके प्रस्ताव और अंतमें सभाका उपसंहार।

नई पुस्तकें।

पुरुषार्थसिद्ध्युपाय।

श्रीअमृतचन्द्रसूरिकृत मूल श्लोक, और नाथूरामप्रेमीकृत अन्वयार्थ भावार्थ सहित। यह ग्रन्थ एकबार छपकर बिक गया था, कई वर्षोंसे यह ग्रन्थ नहीं मिलता था। इस कारण फिरसे संशोधन कराकर छपाया गया है। यह ग्रन्थ जैनतत्त्वोंका भण्डार है। इसकी प्रशंसा लिखकर ग्रन्थका महत्त्व घटाना है। कागज छपाई साईज पूर्ववत् है। न्यो० सवा रुपिया।

ज्ञानार्णव।

श्रीशुभचन्द्राचार्यकृत मूल और पं० पन्नालालजी वाकलीवाल कृत हिन्दी भाषावचनिका सहित। यह ग्रन्थ भी कई वर्षोंसे नहीं मिलता था. इस कारण फिरसे छपाया गया है। न्यो० चार रुपिया।

सृष्टिकर्तृत्वमीमांसा।

पं. गोपालदासजी स्याद्वाद वारिधिका सृष्टि कर्त्ता खण्डन विषयक लेख। न्यो. एक आना।

सब प्रकारकी पुस्तकें मिलनेका पता—

श्रीजैनग्रंथरत्नाकर कार्यालय,

हीराबागं, पो० गिरगांव—बम्बई।

ॐ

जैनहितैषी ।

जैनियोंके साहित्य, इतिहास, समाज और
धर्मसम्बन्धी लेखोंसे विभूषित

मासिकपत्र ।

सम्पादक और प्रकाशक—श्रीनाथूराम प्रेमी ।

आठवाँ भाग ।	फाल्गुन श्रीवीर नि० संवत् २४३८	पाँचवाँ अंक

विषयसूची । पृष्ठ

पत्रव्यवहार करनेका पता—

मैनेजर—श्रीजैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगांव-बम्बई ।

Printed by G. N. Kulkarni at his Karnatak Press, No. 7, Girgaon Back Road, Bombay, for the Proprietors.

जैनहितैषीके नियम।

१. जैनहितैषीका वार्षिक मूल्य डांकखर्च सहित १॥) पेशगी है।

२. प्रतिवर्ष अच्छे २ ग्रन्थ उपहारमें दिये जाते हैं और उनके छोटे बड़ेपनके अनुसार कुछ उपहारी खर्च अधिक भी लिया जाता है। इस सालका उपहारी खर्च ॥) है। कुल मूल्य उपहारी खर्चसहित २) है।

३. इसके ग्राहक सालके शुरूसे ही बनाये जाते हैं, बीचमें नहीं, बीचमें ग्राहक बननेवालोंको पिछले सब अंक शुरू सालसे मंगाना पड़ेंगे, साल दिवालीसे शुरू होती है।

४. जिस साल जो ग्रन्थ उपहारके लिये नियत होगा वही दिया जायगा। उसके बदले दूसरा कोई ग्रन्थ नहीं दिया जायगा।

५. प्राप्त अंकसे पहिलेका अंक यदि न मिला होगा, तो भेज दिया जायगा। दो तीन महिने बाद लिखनेवालोंको पहिलेके अंक दो आना मूल्यसे प्राप्त हो सकेंगे।

६. बैरंग पत्र नहीं लिये जाते। उत्तरके लिये टिकट भेजना चाहिये।

७. बदलेके पत्र, समालोचनाकी पुस्तकें, लेख वगैरह **"सम्पादक, जैनहितैषी, पो० मोरेना, जिला ग्वालियर"** के पतेसे भेजना चाहिये।

८ प्रबंध सम्बंधी सब बातोंका पत्रव्यवहार मैनेजर, **जैनग्रंथरत्नाकर कार्यालय पो० गिरगांव, बम्बई**से करना चाहिये।

दश छात्रोंकी जरूरत।

जो हिन्दीमें अच्छी योग्यता रखते हैं। और जिनकी उमर १२ वर्षसे कम और १४से ज्यादा न हो। उनको निम्न लिखित पतेसे पत्र व्यवहार करके निश्चय कर लेना चाहिये, विद्यार्थियोंके लिये सब प्रकार सुभीता रहेगा।

दौलतराम कठरया,

मंत्री जैन पाठशाला

पो० बीनाइटावा (सागर)

जैनहितैषी.

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम् ।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥

आठवां भाग] फाल्गुन श्रीवीर नि० सं० २४३८ [पांचवां अंक

अपराजिता।

(गतांकसे आगे)

तरुणीने कातर होकर कहा—मैं अपने प्राण देकर भी यदि तुम्हें सुखी कर सकती, तो करनेमें आनाकानी नहीं करती। तरुणीका यह वाक्य आँसुओंसे भीगा हुआ था। वसन्तने अपने हृदयमें उसका आर्द्र कम्पमान स्पर्श किया। उसने क्षुब्ध होकर कहा—राजकुमारियाँ क्या इस अभागीका कभी एक बार भी स्मरण नहीं करती हैं?

"नहीं वसन्त, उन्हें ऐसी तुच्छ बातोंके विचार करनेके लिये कहां अवकाश है? इन्दिरा, शुक्ला और आनन्दिता तीनों कर्नाटक कलिंग और मद्रदेशके सिंहासनको भाग्यशाली बनानेकी चिन्तामें व्यग्र हो रही हैं।"

"और राजकुमारी यमुना?"

"वह बेचारी साहसहीन शक्तिहीन और रूपहीन है। उसके बहिरंगको तो विधाताने ढँक रक्खा है और अन्तरंगको उसने स्वयं ढँक

रक्खा है। फिर उसका कहां ऐसा भाग्य है, जो तुम्हारी कुछ चिन्ता कर सके। और जिस अन्तःपुरमें एक निरपराधी पुरुष पल-पलमें मृत्युके मुखकी ओर जा रहा है, उसको छोड़कर तो वह जा ही नहीं सकती है। उसकी बहिनोंने जो पाप किया है, उसका प्रायश्चित्त उसे भोगना पड़ेगा।"

वसन्तने विस्मित होकर कहा—तो यमुना मेरा स्मरण करती है?

"बसन्त, वह स्मरण ही क्या करती है, रातदिन तुम्हारे ही नामकी माला जपा करती है। तुमने उसे जो इतने दिन पुष्पमालाएँ भेंट करके, गायन सुनाकरके और प्रेमका पाठ पढ़ाकरके संतुष्ट किया है, सो आज क्या वह तुम्हें विपत्तिके मुंहमें डालकर भूल जायगी? इतना बड़ा साहस करनेकी तो उसमें योग्यता नहीं है।"

वसन्त लज्जित होकर बोला—मैंने तो उसे किसी दिन संतुष्ट नहीं किया है। मैं तो उसे बचे खुचे गंधहीन फूलोंकी एकाध बेडौल माला बनाकर अनादरपूर्वक दे दिया करता था।

सुभद्राने विनयपूर्ण कंठसे कहा—वह तो उसीको बड़े भारी आदरसे अपने मस्तक पर चढ़ाती थी। उसने अपने जीवनमें और अधिक कभी पाया ही नहीं था, इसलिये तुम्हारे द्वारा वह जो कुछ अल्प स्वल्प पाती थी, उसीको बड़ी प्रसन्नतासे ग्रहण करती थी।

"यदि ऐसा है, तो उसने मेरा प्रणयदान क्यों स्वीकार नहीं किया?"

"इसलिये कि, वह हतभागिनी है। जिस समय वह आपके पास गई थी, उस समय आपने उससे कुछ भी नहीं कहा था। केवल अपनी व्यथासे व्यथित करके उसे आपने बिदा कर दी थी।"

वसन्तका मन सुख और दुःखमें डूबने उतराने लगा। उसने उत्तेजित स्वरसे कहा—तो वह इस समय मुझे देखनेके लिये क्यों नहीं आई?

सुभद्राने कुछ ऊंचे उठकर अपनी स्वच्छ और सुन्दर दृष्टिको ताखमेंसे डालते हुए कहा—वह आपके देखनेके लिये, बराबर आती है। परन्तु बेचारी बड़ी ही लज्जालु और साहसहीन है। इसलिये अपनेको आपके साम्हने प्रकाशित नहीं कर सकती है। मैं उसीकी इच्छासे आपकी सेवा करती हूं।

वसन्तने प्रफुल्लित होकर सुभद्राके हाथोंको और भी गाढतासे पकड़कर कहा—भद्रे, तुम्हारी बातें सुनकर मुझे अब फिर जीनेकी लालसा होती है। क्योंकि संसारकी सारी स्त्रियां इन्दिरा, शुक्ला, आनन्दिता ही नहीं हैं; उनमें यमुना और सुभद्रा जैसी भी हैं। भद्रे, मैंने यमुनाको देखी तो थी, परन्तु यह नहीं समझा था कि, वह ऐसे उत्तम स्वभावकी होगी। तुम्हें देखा नहीं है, तो भी समझ लिया है कि, तुम्हारा अन्तरंग कितना सुन्दर है। यमुनाको कुरूप देखकर मैंने जो उसका अनादर किया था, मुझे उसकी लज्जा आज उसकी दयाके कारण असह्य हो गई है। तुम उससे इस रूपलोलुपकी अविनय क्षमा करनेके लिये प्रार्थना करना। और भद्रे, तुम यदि मुझे ग्रहण करनेकी कृपा करो, तो मैं बच सकता हूं। इस अन्ध कारागृहसे मैं सहज ही बाहिर हो सकता हूं।

सुभद्रा बोली—मैं भी तो यमुनाहीके समान कुरूपा और श्रीविहीना हूं।

वसन्तने उत्तेजित स्वरसे कहा—हो, तुम्हारा रूप काला और शोभाहीन हो, तो भी वह मेरे लिये नयनाभिराम होगा। जिसके

ऐसे दुःखापहारी हाथ हैं, ऐसा सदय हृदय है, और ऐसा विनयनम्र मधुर कंठ है, उसके सौन्दर्यकी सीमा नहीं है—उसकी तुलना सारे जगतमें नहीं मिल सकती।

सुभद्राने कहा—तुमने मेरा कुछ परिचय तो पूछा ही नहीं।

वसन्त बोला—मैं कुछ भी परिचय नहीं चाहता हूं। एक बार इस बाहिरी परिचयके प्रपंचमें पड़कर मैं यमुनाका अपराधी बन चुका हूं। तुम्हारा अन्तरंग परिचय ही मेरे लिये यथेष्ट है। इतना ही जानना बस है कि, तुम सुभद्रा हो, तुम मुझपर प्यार करती हो और मैं तुमपर प्यार करता हूं। यह अन्तिम परिचय ही तुम मुझे दो। कहो, भद्रे, यदि मैं यहांसे छूटकर बाहिर हो सकूं, तो क्या तुम राजकुमारियोंका संग और राजमहलका ऐश्वर्य त्यागकर मेरी झोपड़ीमें रहनेके लिये चल सकोगी? एक साधारण मालीका हाथ तुम पकड़ सकोगी?

सुभद्राको बड़ी लज्जा लगी। वह अपने मुंहसे कैसे कह दे कि, मैं तुम्हें प्राणपणसे चाहती हूं? उसका हृदय बाहिर आकर कहना चाहता था कि, हां, मैं तुमपर प्यार करती हूं—तुम्हें चाहती हूं सब कुछ छोड़कर मैं तुम्हारी झोपड़ीमें सुखसे रहूंगी। तुम्हें सुखी करना ही मेरा श्रेष्ठ ऐश्वर्य और अन्तिम आकांक्षा है! परन्तु लज्जा उसको बोलने नहीं देती थी। वह अभीतक जो इतनी बातचीत कर रही थी, सो इस कारण कि एक तो वसन्तके और उसके बीचमें आड़ थी और दूसरे वसन्त उससे परिचित नहीं था। परन्तु अपरिचिता और ओटमें होनेपर भी वह अपने मुंहसे किसी तरह प्रणय-निवेदन नहीं कर सकती थी।

उत्तर न पाकर वसन्तने फिर कहा—कहो सुभद्रा, कहो। इस हतभागीका सुखदुःख जीवन मरण तुम्हारे ही उत्तरपर निर्भर है। क्या तुम इस सामान्य मालीको ग्रहण कर सकती हो ?

सुभद्रा लज्जासे सकुचकर बड़ी कठिनाईसे मृदु स्वरसे बोली—वसन्त, यदि तुम सामान्य हो, तो मैं भी तो असामान्या नहीं हूं। तुम यदि मुझे काली कुरूपा जानकर भी ग्रहण करोगे, तो तुम्हारी झोपड़ी मेरे लिये अट्टालिकासे भी बढ़ कर होगी।

इन थोड़ेसे वाक्योंको कहकर सुभद्रा अपने आप मानो लाजके मारे मर गई।

वसन्तने उसके हाथ दबा कर कहा—सुभद्रा, मैं जीऊंगा—तुम्हारे लिये ही जीऊंगा ! मेरे लिये कुछ लिखनेका सामान ला दो, मैं अपने मुक्त होनेकी तजवीज कर दूं।

"रात होनेपर ला दूंगी," ऐसा कह कर सुभद्रा अपने प्रेमीकी व्यग्र मुट्ठीको शिथिल कर उसमेंसे अपने हाथ छुड़ाकर चली गई।

कैदीकी आनन्दरागिनीसे आज सारा राजमहल एकाएक चकित स्तंभित हो गया। उस मोहिनीध्वनिसे प्रत्येक श्रोताके हृदयमें आनन्दकी लहरें उठने लगीं। परन्तु यमुना एकान्तमें जाकर रोदन करने लगी !

वसन्तका हृदय आज प्रेमके प्रतिदानसे आनन्दित हो रहा है। प्यारीके कोमल करस्पर्शने उसके सारे शरीरको पुलकित कर दिया है। वह व्याकुलतासे रातकी प्रतीक्षा कर रहा है। उसे ऐसा भास होने लगा कि, इस अंधकारागृहके लोहेके कठिन किवाड़ बिलकुल खुल गये हैं और मैं चांदनीके प्रकाशमें पुष्पशय्यापर बैठा हुआ सुभद्राको फूलोंसे मना रहा हूं।

अंधकारागारके अंधकारको सघन करती हुई रात आ गई। इसके पश्चात् सघन अंधकारको एकाएक प्रसन्न करके प्रकाशमान दीपोंकी सुवर्ण किरणोंने काले रेशमकी जरी बुनना शुरू कर दी। बाहिरसे सुभद्राने धीरेसे कहा—वसन्त !

वसन्तने रोमाञ्चित होकर कहा—सुभद्रा !

सुभद्राने कागज कलम दावातको ताखमेंसे आगे करके कहा—यह लो।

आनन्दित वसन्तने ताखके मार्गसे आनेवाले नाम मात्र प्रकाशके सहारे आंखें फाड़ फाड़ कर बड़ी कठिनाईसे एक पत्र लिखा और फिर कहा—भद्रे, प्रतिज्ञा करो कि, यह चिट्ठी तुम नहीं पढ़ोगी और यमुनाको भी नहीं दिखलाओगी। यदि दया करके इसे तुम अवन्ती राज्यके मंत्रीके पास भेज दोगी, तो मैं इस कारागृहसे सहज ही मुक्त हो जाऊंगा।

सुभद्राने कहा—मैं शपथ करती हूं, तुम्हारी आज्ञाकी अक्षरशः पालना करूंगी।

उसी रातको एक दूत चिट्ठी लेकर अवन्तीको रवाना हो गया।

(९)

दूतके अवन्ती जाकर वापिस आनेमें जितने दिन लगना चाहिये, वसन्तने उनका मन ही मनमें अनुमान कर लिया। और फिर वह अपने अंधकारागारमें जहां कि अंधकारके कारण रात और दिनका भेद ही नहीं मालूम होता था, छतके सुराखोंमेंसे जो सूर्यकी इनी गिनी किरणें आती थीं, उनकी घड़ी देख देखकर तथा सुभद्रासे पूछ पूछ कर दिन गिनने लगा।

एक दिन सुभद्राने आकर कहा—वसन्त, आज अवन्ती राज्यका मंत्री सेनासहित आकर उपस्थित हो गया है। परन्तु वह तो तुम्हारे उद्धार करनेकी कोई भी चेष्टा नहीं करता है।

वसन्तने हँसकर पूछा—तो वह किस अभिप्रायसे आया है?

"वह तो विवाहसम्बन्ध जोड़नेके लिये आया है।"

"किसका?"

"राजकुमारी यमुनाके साथ अवन्तीके महाराजके भाईका और महाराजके साथ........"

सुभद्रासे इससे आगे और कुछ नहीं कहा गया। लज्जासे उसके मुंहकी बात ओठोंमें अटक रही।

सुभद्राको लज्जाके कारण चुप देखकर वसन्तने हँसकर पूछा—और अवन्तीके महाराजके साथ किसका विवाहसम्बन्ध?

सुभद्राके मुंहपर लज्जाकी ललाई झलक आई। उसने नीचा सिर करके धीरेसे कहा, इस अभागिनी सुभद्राका।

वसन्तने उत्साह दिखलाकर कहा—अच्छा! तब तो बड़ी खुशीकी बात है।

सुभद्रा वसन्तके उत्साहप्रकाशसे खिन्न होकर बोली—वसन्त, यह खुशीकी बात नहीं है!

वसन्त विस्मित होकर बोला—सो क्यों? अवन्तीके राजा तो सार्वभौम राजा हैं, फिर खुशीकी बात क्यों नहीं है?

सुभद्राने दृढ़तापूर्वक कहा—अवन्तीनरेश सार्वभौम राजा हैं, परन्तु सार्वमानस तो नहीं हैं!

"तब क्या सम्राटकी प्रार्थना व्यर्थ होगी?"

"व्यर्थ तो वैसे ही होती। यदि सम्राटके भाई यमुनाको स्वयं देखते, तो उनका आग्रह उसके लिये कदापि स्थिर नहीं रहता और सुभद्रा तो इस राजमहलमें ऐसी अपदार्थ है कि, उसे कोई पहिचानता भी नहीं है। सम्राटके चतुरसे चतुर जासूस भी उसको ढूंढ़कर नहीं निकाल सकते हैं। और इस अन्तःपुरमें राज्यलोलुप राजकुमारियोंका भी तो अभाव नहीं है। वे राजाकी प्रार्थनाको क्यों व्यर्थ होने देंगी!"

वसन्तने मुसकुराते हुए कहा—सुभद्रा, अब मेरा छुटकारा बहुत शीघ्र होनेवाला है। आज इस अंधकारमें हमारा तुम्हारा यह अन्तिम मीलन है। कल हजारों स्त्रियोंमेंसे तुम्हारे जिन हाथोंको देखकर मैं तुम्हें पहिचान सकूंगा, आज उन हाथोंसे तुम मुझे बाहिर आनेके लिये निमंत्रण कर जाओ।

सुभद्राने अपने कांपते हुए हाथोंको वातायनमेंसे आगे बढ़ा दिये। वसन्तने उन्हें अपने आतुर हाथोंसे कसकर जकड़ लिये, परन्तु उसके आकुल ओष्ठ उतनी दूर नहीं जा सके।

(५)

दूसरे दिन सबेरे ही वसन्तकी निश्छिन्न निद्रामें व्याघात डालकर कारागारके किवाड़ आर्त्तनाद करते हुए खुल गये। स्वयं काशिराजने अवन्तीके मंत्रीके सहित कारागारमें प्रवेश किया।

काशीराजने वसन्तके चरणोंमें पड़कर हाथ जोड़ प्रार्थना की कि, महाराज, मेरे अज्ञान अपराधोंको क्षमा कीजिये।

मंत्रीने अभिवादन करके कहा—चक्रवर्ती महाराजकी जय हो।

वसन्त राजाको अभयप्रदान करके कारागारसे बाहिर हुआ और स्नानादि करके उसने निर्मल वेष धारण किया।

काशीराजने अपनी भयभीत और लज्जित कन्याओंको वसन्तके सम्मुख बुलवाई। वे सब एक एक आई और दूरसे प्रणाम करके एक ओर सिर नीचा किये हुए खड़ी हो गई। सबके पीछे यमुना आई। उसने लज्जासे सकुचते हुए समीप जाकर प्रणाम किया। उसकी सद्यःस्नाता केशराशिने बिखर कर वसन्तके दोनों पैरोंको ढँक लिया। केशोंकी कोमलता और आर्द्रताने वसन्तके हृदयको पानी कर दिया। उस समय उसने यमुनाका मस्तक स्पर्श करके मानों यह चाहा कि, मैं हृदयकी गहरी प्रीतिके जलसे अपने पिछले अन्याय्य आचरणोंको धो डालूं।

काशीराजने कहा—महाराज, इन अबोध बालिकाओंका अपराध आपको क्षमा करना पड़ेगा।

वसन्तने कहा—मैंने इन्हें आपकी इस उपेक्षिता तिरस्कृता कन्याके गुणोंसे प्रसन्न हो कर क्षमा कर दिया है। और मुझे स्वयं इससे क्षमा मांगना है।

यह कहकर वसन्तने अन्य राजकुमारियोंकी ओर न देखकर केवल यमुनाको लक्ष्य करके कहा—यमुना तुम मेरे पिछले अपराधोंको क्षमा कर दो।

यमुना नीचा सिर किये हुए नखोंसे जमीनपर कुछ लिखने लगी। अपनी गर्विता बहिनोंके और स्नेहहीन पिताके समक्ष उसे यह लांछना और लज्जा असह्य हो गई।

वसन्त यद्यपि उस समय सबसे वार्तालाप कर रहा था, परन्तु उसके नेत्र व्याकुल होकर अन्तःपुरके चारों ओर प्रत्येक किवाड़की ओटमें किसीको खोजते फिरते थे। उसकी सुभद्रा कहां है? उसकी सेविका कहां है? उसकी प्यारी कहां है? वह तो उसके

मुंहको पहिचानता नहीं है। पहिचानता है, उसके हाथोंको, उसके कंठस्वरको और उसके सदय हृदयको।

अपनी याचनाका उत्तर न पाकर वसन्तके नेत्र यमुनाकी ओर फिर आये। यमुनाके हाथ देखकर उसके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा। ये वे ही हाथ थे, जो उस कारागारके अंधःकारमें प्रकाश करके उसे धीरज बँधाते थे। वे ही अंगुलियां, वे ही हथेलीकी रेखाएँ और वही पहुँचीपरका तिल; सब कुछ वही था।

वसन्तका मुख आनन्दसे खिल उठा। प्रणयकृतज्ञताके मोहन स्पर्शसे यमुनाकी मूर्ति वसन्तकी दृष्टिमें अतुलनीय रूपवती झलकने लगी। एक अतिशय सुन्दर, चिरकिशोर और अशरीरी देवताके वरसे वसन्तकी दृष्टिमें जो प्रेमका अंजन अँज गया था, उसके कारण वसन्तको दिखने लगा कि, यमुना अनुपम यौवनसे, आनन्दसे, माधुर्यसे, सौन्दर्यसे और कल्याणसे जगमगा रही है। वसन्तने उस समय काशीराजकी ओर फिर कर कहा—आपसे मैं एक भिक्षा चाहता हूं।

"भिक्षा? महाराज, आप यह क्या कह रहे हैं? ऐसे शब्द कहकर अपराधीके अपराधको और मत बढ़ाइये। मुझे तो आदेश कीजिये—आज्ञा दीजिये।"

"अच्छा, आपने जो मेरा अपराध किया है, उसके दंडस्वरूप मैं आपके भांडारका एक बहुमूल्य रत्न लेना चाहता हूं।"

"यह तो आपकी कृपा है, और मेरा सौभाग्य है! कोषाध्यक्ष आपकी आज्ञाकी बाट देख रहा है।"

वसन्तने हँसकरके कहा—मैं जिस रत्नकी बात कहता हूं, उस रत्नको आपका कोषाध्यक्ष नहीं पहिचान सकेगा। मैंने उसका

बड़ी कठिनाईसे पता लगाया है। वह दूर भी नहीं है। देखिये, यह है—

ऐसा कहकर वसन्तने कुछ आगे झुककर यमुनाके दोनों हाथ थाम लिये। और लोगोंके विस्मयकी परवा न करके उससे हँसकर कहा—क्यों सुभद्रा, क्यों यमुना, चक्रवर्ती नरेशके साथ ऐसी ठगाई! ठहरो तुम्हें इसका दंड देता हूं। काशीसे अवन्तीके राजमहलमें तुम्हारा निर्वासन (देश निकाला) किया जाता है? क्यों, यह दंड स्वीकार है? मालूम होता है, आज अवन्तीकी प्रार्थना व्यर्थ नहीं जाने पावेगी। यदि अवन्तीके राजप्रासादमें तुम्हें अच्छा नहीं लगेगा, तो वहां फूलोंके वनोंकी भी कमी नहीं है, और अवन्तीके महाराजको उसी वसन्त मालीकी जगह दे दी जायगी। फिर तो प्रसन्न रहोगी? उसकी वीणा तुम्हारी विरद गाया करेगी और वह तुम्हारे गलेमें डहडहे फूलोंकी माला पहिनाया करेगा। तुम्हारे दिये विना वह बाहर जानेके लिये छुट्टी नहीं पा सकेगा!

इस समय यमुनाकी दशा बड़ी ही विलक्षण थी। उसके हृदयमें आनन्दका और लज्जाका द्वन्द्वयुद्ध मच रहा था। लज्जाका बल ज्यादा होनेके कारण आनन्द अपने साथ शरीरको भी लेकर गिरना चाहता था।

काशीराजने इस विश्वासके अयोग्य घटनासे विस्मित होकर कहा—महाराज, मेरी ये समस्त सुन्दरी कन्याएं इस समय अविवाहित हैं।

वसन्त अपने हास्यसे उन समस्त सुन्दरियोंको अतिशय लज्जित करता हुआ बोला—नहीं, राजन्, मैंने तो सुना है कि, ये कर्नाटक कलिंगादि देशोंके सिंहासनोंको उज्ज्वल करेंगी।

"किन्तु महाराज, इन्हें आपके श्रीचरणोंके समीप स्थान दिया जाय, तो ये प्रसन्नतासे कर्नाटक कलिंगादिके सिंहासनोंके त्याग करनेके लिये प्रस्तुत हैं।"

वसन्तने मुसकुराके कहा—काशीराज, मेरा रूपका नशा अब उतर गया है। राजाओंके महलोंमें हृदय खरीदकर पाया जा सकता है, जय करके नहीं। यह जान करके ही मैं दीनवेषको धारण करके हृदय जय करनेके लिये निकला था। सो अब मैंने एक हृदयको पा लिया है, जो हृदयका प्रेमी है, राज्यका नहीं। इस तरह जय करनेके लिये आकर मैं बड़े आनन्दसे हार गया। मेरी यह काली बधू ही मेरे राज्यको उज्ज्वल करेगी। यह कौन नहीं जानता कि, यमुना (नदी) काली है, इसीलिये उसका हृदय गंभीर और शीतल है। यामिनी काली है, इसीलिये उसके शरीरमें अगणित तारागणोंकी मालाएँ चमकती हैं और इसी तरह काले कोयलेके भीतर प्रकाशमान हीरा छुपा रहता है। यमुना, मैं अनादर करके तुम्हें अपराजिताके फूलोंकी माला दिया करता था। दुःखसे अब फिर सुखमें आकर मैंने समझा है कि, तुम वास्तवमें अपराजिता हो, तुम्हारी तुलना किसीमे नहीं हो सकती।

कर्नाटक जैन कवि।

(२)

उसी तरहसे आदि पुराणके कारण पंप 'ब्राह्मणवंशाध्वज' कहलाया था। **तैलिपदेव** (९७३–९९७) के **मल्लप** और **पुण्णमय्य** नामके दो सेनापति थे। इनमेंसे पुण्यमय्य तो अपने शत्रु **गोविन्द**के साथ लड़कर कावेरीनदीके तटपर मारा गया। मल्लय तैलिपदेवके मरनेके

बाद **आहवमल्लके** राजा होनेपर (ई० स० ९९७ से १००८) मुख्याधिकारी हुआ। इसकी एक **अत्तिमव्वे** नामकी सुन्दर कन्या थी। उसका ब्याह चालुक्यचक्रवर्तीके महामंत्री **दल्लिपके** पुत्र **नागदेवके** साथ हुआ। नागदेव बालकपनसे ही बड़ा साहसी और पराक्रमी हुआ। इसलिये चालुक्यनरेश आहवमल्लने प्रसन्न होकर इसे अपना प्रधान सेनापति बनाया। यह अनेक युद्धोंमें प्रबलपराक्रम दिखला कर विजयी हुआ और अन्तको मारा गया। इसकी छोटी स्त्री **गुंडमव्वे** तो इसके साथ सती हो गई परन्तु **अत्तिमव्वे** अपने पुत्र **अन्नगदेवकी** रक्षा करती हुई व्रतनिष्ठ होकर रहने लगी। जैनधर्मपर इसको अगाध श्रद्धा थी। इसने सुवर्णमय और रत्नजड़ित एक हजार जिनप्रतिमाएं बनवाकर स्थापित की और लाखों रुपयोंका दान किया। दानमें यह इतनी प्रसिद्ध हुई कि, लोग इसे 'दानचिन्तामणि' कहते हैं। इसी दानशीला स्त्रीरत्नके संतोषके लिये रन्नने अजितपुराणकी रचना की थी, ऐसा ग्रन्थकी प्रशस्तिसे पता लगता है। दूसरा ग्रन्थ साहसभीमविजय अथवा गदायुद्ध, १० आश्वासका है। यह भी गद्यपद्यमय है। इसमें महाभारत कथाका सिंहावलोकन करके चालुक्यनरेश **आहवमल्लका** चरित्र लिखा है। अपने पोषक आहवमल्लदेवका भीमसेनसे मिलान किया है। बड़ा ही विलक्षण ग्रन्थ है।

कर्नाटक कविचरित्रके लेखक इस कविके विषयमें लिखते हैं कि **"रन्नकविके ग्रन्थ सरस और प्रौढ़ रचनायुक्त हैं। उसकी पदसामग्री, रचनाशक्ति और बन्धगौरव आश्चर्यजनक है। पद्य प्रवाहरूप और हृदयंगम है। साहसभीमविजयको पढ़ना शुरू करके फिर छोड़नेको जी नहीं चाहता है।"**

इस कविकी अभिनवपंप, नयसेन, पार्श्व, मधुर, मंगरस, आदि कवियोंने बहुत प्रशंसा की है।

एक "रत्नकन्द" नामका छोटासा कविता ग्रन्थ भी इस कविका बनाया हुआ है।

१७. **चामुंडराय**—ये गंगकुलचूडामणि जगदेकवीर नोलंबकुलान्तक आदि अनेक पदोंको धारण करनेवाले महाराजा **राचमल्ल**के मंत्री और सेनापति थे। ब्रह्मक्षत्रिय कुलमें शक संवत् ९०० (ईस्वीसन् ९७८) में इनका जन्म हुआ था। श्रवणबेलगुलकी सुप्रसिद्ध बाहुबलि वा **गोमट्टस्वामी**की प्रतिमा इनहीने अपरिमित द्रव्य व्यय करके प्रतिष्ठित कराई थी। ये बड़े उदार थे। इनकी उदारतासे प्रसन्न होकर राचमल्लने इन्हें **'राय'**की पदवी प्रदान की थी। इनका एक नाम **अण्ण** भी है। ये बड़े शूर और पराक्रमी थे। **गोविन्दराज, वेंकोंडुराज** आदि अनेक राजाओंको इन्होंने पराजित किया था, इसलिये इन्हें समरधुरन्धर, वीरमार्तण्ड, रणरंगसिंह, वैरिकुलकालदण्ड, भगरपरशुराम, प्रतिपक्षराक्षस आदि अनेक उपनाम प्राप्त हुए थे। जैनधर्मके ये अन्यतम श्रद्धालु थे, इसलिये जैनविद्वानोंने इन्हें सम्यक्त्वरत्नाकर, शौचाभरण, सत्ययुधिष्ठिर आदि अनेक प्रशंसावाचक पद दिये थे। महाराजा **राचमल्ल** और ये दोनों ही **अजितसेनाचार्य**के शिष्य थे। आचार्य **नेमिचन्द्र** सिद्धान्तचक्रवर्तीने सुप्रसिद्ध गोम्मटसार ग्रन्थकी रचना इन्हींकी प्रेरणासे की थी।

इनका बनाया हुआ प्रसिद्ध ग्रन्थ **त्रिषष्टिलक्षणमहापुराण** वा **चामुण्डरायपुराण** है। इसमें चौबीसों तीर्थंकरोंका चरित्र है। इसके प्रारंभमें लिखा है कि, इस चरित्रको पहिले **कूचिभट्टारक,**

तदनन्तर **नन्दिमुनीश्वर**, तत्पश्चात् **कविपरमेश्वर** और तत्पश्चात् **जिनसेन गुणभद्र** स्वामी, इस प्रकार परम्परासे कहते आये हैं, और उन्हीके अनुसार मैं भी कहता हूं। मंगलाचरणमें **गृद्धपिच्छाचार्य**से लेकर **अजितसेन** पर्यन्त आचार्योंकी स्तुति की है और अन्तमें श्रुतकेवली, दशपूर्वधर, एकादशांगधर, आचारांगधर, पूर्वांगदेशधरके नाम कहकर **अर्हद्बलि, माघनन्दि, भूतबलि, पुष्पदन्त, श्यामकुण्डाचार्य, तुम्बुलूराचार्य, समन्तभद्र, शुभनन्दि, रविनन्दि, एलाचार्य, वीरसेन, जिनसेनादि**का उल्लेख किया है और फिर अपने गुरुकी स्तुति की है। यह पुराण प्रायः गद्यमय है। पद्य बहुत ही कम है। कनड़ीके उपलब्ध गद्यग्रन्थोंमें चामुण्डरायपुराण ही सबसे पुराना गिना जाता है।

गोमट्टसारकी प्रसिद्ध कनड़ी टीका (कर्नाटकवृत्ति) भी चामुंडारायहीकी बनाई हुई है, जिसपरसे **केशववर्णी**ने संस्कृत टीका बनाई है। इससे मालूम होता है कि, चामुंडराय केवल शूरवीर राजनीतिज्ञ और कवि ही नहीं थे, किन्तु जैनसिद्धान्तके भी बड़े भारी पण्डित थे।

१८. **नागवर्म**—इस नामके दो कवि हो गये हैं—एक तो छन्दोम्बुधि और कादम्बरीका रचयिता और दूसरा काव्यावलोकन, वस्तुकोश, कर्नाटकभाषाभूषणादि ग्रन्थोंका कर्त्ता। **पहिला नागवर्म वेंगी देशके वेंगीपुर** नगरके रहनेवाले **वेण्णमय्य** ब्राह्मण (कौंडिन्यगोत्र) का पुत्र था। इसकी माताका नाम **पोल्लकब्बे** था। **नाकी** और **सय्यडीयात** ये दो इसके नामान्तर थे। यह अपने गुरुका नाम **अजितसेनाचार्य** बतलाता है। **रक्कसगंगराज** जिसने कि ईस्वी सन् ९८४ से ९९९ तक राज्य किया है

और जो गंगवंशीय महाराज **राचमल्लका** भाई था, इसका पोषक राजा था। **चामुंडराय**की भी इसपर कृपा रहती थी। कवि होकर भी यह बड़ा वीर और युद्ध विद्यामें चतुर था। कनड़ीमें इस समय छन्दशास्त्रके जितने ग्रन्थ प्राप्य हैं, उनमें इसका छन्दोम्बुधि सबसे प्राचीन गिना जाता है। यह इसने अपनी स्त्रीको उद्देश्य करके लिखा है। इसका दूसरा ग्रन्थ **बाणभट्ट**के सुप्रसिद्ध गद्यग्रन्थ **कादम्बरीका** सुन्दर गद्यपद्यमय अनुवाद है। यह कवि अपने गुरु तो अजितसेनाचार्यको बतलाता है, परन्तु ग्रन्थोंके मंगलाचरणमें न जाने क्यों शिव आदिकी स्तुति करता है।

१९. **दूसरा नागवर्म**—चालुक्यवंशी, **जगदेकमल्ल** (११३९–११४९) के समयमें हुआ है। इसके पिताका नाम **दामोदर** था। यह **जन्न** कविका गुरु था। कनड़ी साहित्यमें इसकी 'कविता-गुणोदय' के नामसे ख्याति है। इसके ग्रन्थोंके मंगलाचरणमें जिन-देवोंका ही स्तवन है।

जलके जीवधारी।

किसके विचारमें आएगा कि, किसी ताल या झीलके स्वच्छ जलका एक बिन्दु स्वयं वनस्पति और सूक्ष्म जीवोंका एक पूर्ण कुंड है? किन्तु यह सत्य बात है और विज्ञानवेत्ता सूक्ष्म वस्तुओंको देखनेके बलिष्ट यंत्र (खुर्दबीन)से इसको प्रत्यक्ष देखते हैं। जलकी बिन्दु जो सामान्य नेत्रोंसे देखनेसे मोतीसी निर्मल दिखाई देती है, परीक्षा करनेसे वनस्पति और त्रसकायिक जीवोंसे भरी हुई सिद्ध होती है।

समस्त सूक्ष्म वनस्पतियोंमें जो स्वच्छ जलमें पाई जाती हैं, **डेसमिड और डायटम्स** जातिकी वनस्पतिका हाल विशेष रुचिकर है। डेसमिड जातिकी वनस्पतिमें सबसे अधिक रोचक **यूसट्रम** नामका पौधा होता है। इसमें चमकीले हरेरंगके दो कटे हुए टुकड़े होते हैं और उनपर गहरे हरेरंगके धब्बे होते हैं। यह हरी वस्तु एक प्रकारके मोमी पदार्थसे जिसको '**क्लोरोफाइल**' कहते हैं, बनी हुई होती है और यह वही वस्तु है, जो पत्तोंमें हरियाली पैदा करती है। दूसरी प्रकारकी डेसमिड वनस्पति जो जलमें पाई जाती है अर्धचन्द्राकार होती है और '**क्लोसटेरियम**' कहलाती है। कभी २ लंबी पंक्तिमें कई मिले हुए पौधे होते हैं।

एक अन्य प्रकारकी डेसमिडमें जिसको **सेनी डेसमिस** कहते हैं, जब इन सूक्ष्म पौधोंके कई २ खिले मिल जाते हैं तब अंतके दो टुकड़ोंमें सींग निकल आते हैं। इस समय पौधोंके खिले एक गोलरूप धारण करते हैं। इस दशामें प्रत्येक पौधेके खिलेमें दो छज्जे निकलते हैं, जो देखनेमें अति सुन्दर होते हैं।

डायटम्स जातिके पौधे डेसमिड जातिके पौधोंकी अपेक्षा जिनके विषयमें ऊपर लिख चुके हैं अधिक होते हैं। डायटम्स जातिके कुछ पौधे बिलकुल गोल दिखाई देते हैं, कुछ त्रिकोण होते हैं, कुछ चौकोर होते हैं किन्तु प्रायःकरके अंडे या नावके आकारके अधिक प्रसिद्ध हैं। इस जातिके पौधोंपर जो रेखाएं होती हैं, वे भिन्न २ प्रकारकी होती हैं। कुछ ऐसी बारीक होती हैं कि इस बातकी परीक्षा करनेके लिए कि सूक्ष्म वस्तुओंका यंत्र कितनी बारीकको देख सकता है वे काममें लाई जाती हैं। जीवित अवस्थामें डायटम जातिके पौधोंमें हलन चलनकी शक्ति

होती है। वे प्रायःकरके भूरे या भूरे पीले रंगके होते हैं। इस रंगके कारण वे डेसमिड पौधोंसे जिनका रंग हरा होता है, पृथक् पहिचाने जा सकते हैं।

दुसरी प्रकारका अति अद्भुत और सूक्ष्म पौधा जो पानीमें पाया जाता है **'बोल्वक्स ग्लोबेटर'** होता है। इस पौधेकी शक्ति ऐसी अद्भुत और आश्चर्यजनक होती है कि, एक समय इसके विषयमें ऐसा विचार हुआ था कि, यह एक सूक्ष्म जन्तु है। यह बहुतसे बिलोंसे बना हुआ होता है जो एक दूसरेसे तारोंकी कोमल जालीसे जुड़े हुए होते हैं। प्रत्येक बिलेमें दो छोटी २ इन्द्रियां होती हैं। जिनसे यह चलनेके योग्य होता है।

यदि स्वच्छ जलमें रहनेवाली वनस्पतिका विवरण सुहावना है, तो जलमें रहनेवाले जन्तुओंका हाल भी कुछ कम मन भावना नहीं हैं। ये जीव उन पौधोंको जिनका हम ऊपर वर्णन कर आए हैं खाते हैं और वे पौधे जड़ वस्तुको खाकर फलते फूलते हैं।

इन जन्तुओंमें कुछ ऐसे सादे होते हैं कि, उनके न तो मुंह मालूम होता है और न पेट। जब वे वनस्पतिके किसी सूक्ष्म भाग-की ओर या कभी २ डायटमकी ओर जाते हैं, तो ऐसा ज्ञात होता है कि, उनमें मिल जाते हैं। बिले उनके अन्दर बनते रहते हैं जो प्राथमिक बिलोंसे निकलते हैं और वे उसी प्रकारका जीवन व्यतीत करते हैं। इन असाधारण जीवोंको **एमेबस** कहते हैं। यदि हम अनुमान करें कि, इस जातिका एक जीव मंडलका आकार धारण करे, और चारों ओरसे बारीक २ लम्बे बालसे निकाले तो ऐसा हो जावे जैसा सूर्य्यका आकार किरणों सहित होता है।

इस अद्भुत जीवमें यह शक्ति होती है कि, अकस्मात् उक्त बालोंको सिकोड़ लेता है और जलकी बूंदमें इधर उधर फिरने लगता है। यह इन बालोंको अन्य निकट रहनेवाले कीड़ोंपर खेंच लेता है और उनको दबाकर अपने बीचके मांसमें ले आता है। एक दूसरा प्रसिद्ध कीड़ा जो स्वच्छ जलमें पाया गया है, और जिसकी सत्ता एक पानीके गिलासमें घासके कुछ तिनके डालनेसे आसानीसे जानी जा सकती है, घंटेके आकारका होता है और वह 'वरटीसैल्लो' कहलाता है। ये कीड़े भिन्न भिन्न कदके होते हैं। कुछ अति सूक्ष्म होते हैं। उनका रूप ऐसा होता है, जैसा कि एक लंबी डंटलपर एक छोटे प्यालेकी शक्ल। उस डंटलमें यह शक्ति होती है कि, जब कीड़ेकी गतिमें किसी प्रकारका विघ्न होता है, तो वह दोहरी पेंचदार हो जाती है।

कुलमें यह डंटल ऐसी शाखाओंवाली होती है कि सैंकड़ों कीड़े एक ही डंटलपर पाए जाते हैं। इन मिले हुए कीड़ोंकी डंठलें आपसमें ऐसी मिल जाती हैं कि, यंत्रको देखने २ उनका बड़ा झुंड शीघ्र अदृष्टि होता ज्ञात होता है। 'वरटीसैल्लाके' छोटे प्याले-का मुंह इन्द्रियोंसे घिरा हुआ होता है जो सदा चलती रहती है और जब दीर्घ दृष्टिसे उनकी परीक्षा की जाती है, तो दो सूराख पाए जाते हैं एकसे पानीकी लहरें शरीरमें प्रवेश करती हैं और दूसरेसे बाहर निकलती हैं।

बहुधा प्याला डंठल परसे टूट जाता है, तब यह अपने मुंहको सिकोड़ लेता है और पानीमें स्वतंत्रतासे फिरता है। इस बातको प्रगट करनेके लिये कि बड़ी २ झीलों और बंदोंमें जो पानी पाया जाता है वह वनस्पति और कीड़ोंसे भरा हुआ है बहुत कुछ कहा जा चुका है।

इसमें संदेह नहीं कि पानी स्थानीय जलप्रबंध कमेटियों द्वारा प्रशंसनीय रीतिसे छाना जाता है परन्तु इस बातका स्मरण रखते हुए कि इन सूक्ष्म पौधों और कीड़ोंसे कितनी हानि होती है। बुद्धिमान गृहस्थोंको चाहिये कि वे स्थानीय जलप्रबन्ध कमेटियोंपर ही अंध विश्वास नहीं करें किन्तु अपने और अपने कुटुम्बियोंके लिए जल छाननेका कुछ न कुछ अन्य उपाय काममें लावें। *

दयाचन्द्र जैन बी. ए.

ललितपुर।

नोट—अंग्रेजीमें यह पीयरसन्स नामके साप्ताहिक पत्रमें प्रकाशित हुआ था। जयपुरके बाबू चन्द्रलालजीने इसे पढ़कर हमको सूचना दी कि, यह लेख जैनहितैषीमें प्रकाशित करने योग्य है। तदनुसार हमने अपने मित्र बाबू दयाचन्द्रजी, बी. ए. को लिखा और उन्होंने इसे हिन्दीमें अनुवाद करके भेज दिया। इस लेखके पढनेसे पाठकोंको मालूम होगा कि, जलके एक बिन्दुमें अनन्त जीवोंकी राशिका अस्तित्व जिस प्रकार जैनशास्त्र बतलाते हैं। उसी प्रकारसे पाश्चात्य प्राणिशास्त्रज्ञ तथा वनस्पतिशास्त्रवित् भी सूक्ष्मदर्शकादि यंत्रोंकी सहायतासे बतलाते हैं। ऐसे प्रत्यक्ष प्रमाणोंसे हमें विश्वास होता जाता है कि, हमारे पूर्वाचार्य अपने ज्ञाननेत्रोंसे प्रत्यक्ष करके जिन सूक्ष्म बातोंको लिख गये हैं, वे वास्तवमें वैसी ही हैं। वर्तमानयुगका वृद्धिगत होता हुआ पदार्थविज्ञान उन्हें अवश्य सिद्ध करेगा। यह बात दूसरी है कि, उन्हें सिद्ध हुआ देखनेके लिये थोड़ा समय नहीं लगेगा। जैनियोंको

* पीयरसन्स वीकली, (१ जुलाई सन् १९०९) के अंग्रेजी लेखका अनुवाद।

चाहिये कि, वे वर्तमानके पदार्थविज्ञान तथा जन्तु वनस्पतिविज्ञानादि विषयोंको पढ़ें और उसमें इतनी योग्यता प्राप्त करें जिससे वे अपनी परीक्षाओंके द्वारा संसारको बतला सकें कि, जैनशास्त्रोंमें बतलाया हुआ 'सूक्ष्म प्राणीविज्ञान' कितना उच्च कोटिका और यथार्थ है। सम्पादक।

नवयुवक–कर्तव्य।

समस्त युवको ! स्वमातृ–भुविके, विषाद–आपद–कलंक हर्त्ता।
सहिष्णु नायक सुपूज्य-महिके, समस्त गौरव-सुकीर्ति भर्त्ता ॥ १ ॥
तुम्हीं हो रक्षक तुम्हीं सहायक, तुम्हीं सुधारक स्वदेश भरके।
करूं निवेदन, बनो विधायक, समृद्धिकारक स्वदेश भरके ॥ २ ॥
बड़ा किया है तुम्हें पिलाकर, सुदुग्ध मांने विपत्ति सहकर।
बना दिया है सुनय सिखाकर, सुधी * पिता ने समीप रहकर॥३॥
हुए अगर हो प्रवीण पढ़कर, इसे कृपा गुरु अशेष समझो।
ऋणी हो इनके, चुकाव बढ़कर, सुकर्म इसको विशेष समझो ॥४॥
इसी तरहसे शरीर जिसके, सुतत्त्व मिलकर गठन हुआ है।
रहो हृदयसे कृतज्ञ उसके, जहां तुम्हारा पठन हुआ है ॥ ५ ॥
हवा जहांकी जिला रही है, सुमंद–शीतल–सुगन्ध दायक।
धरा जहांकी खिला रही है, सुशस्य आदिक सुपुष्टि कारक॥ ६ ॥
जहां भरे हैं नदी–सरोवर, विशुद्ध पानी पिला रहे हैं।
जहां खड़े हैं अचल मनोहर, तुम्हें सदा सुधि दिला रहे हैं ॥ ७ ॥
जहां जन्म है हुआ तुम्हारा, जहां पले हो, जहां बढ़े हो।
जहां मिला है तुम्हें सहारा, अकार आदिक, जहां पढ़े हो॥ ८ ॥

* समझदार।

सुपूज्य माँ–भू पुकार कहती,–" तरुण सुपूतो उठो सम्हलकर ।
करो समुज्वल–विशाल–महती, सुकीर्ति मेरी, कलंक दलकर ॥ ९ ॥
बता चुके हैं सुचाल चलकर, तुम्हें सुपथ जो सभी महज्जन ।
चलो उसीपर सदैव बल भर, मिले तुम्हें भी उपाधि 'सज्जन'॥ १० ॥
विचार करके कुलीन वंशज, वरो सुशीला गुणग्र नारी ।
विधान संयुत सुयोग्य देहज,* प्रसव कराके बनो सुखारी ॥ ११ ॥
पढा–लिखा कर उन्हें सिखाओ, विशिष्ट गुणमय स्वतंत्र–उद्यम ।
सदाचरण भी उन्हें बताओ, बनो निदर्शन विशेष सक्षम ॥ १२ ॥
बढ़ाव खेती–कला–कुशलता, करो वणिज भी सुदूर जाकर ।
सुधान्य–धनकी करो बहुलता, भरो सदनको सुवर्ण लाकर ॥ १३ ॥
करो प्रतिष्ठित उदार बन कर, अनेक गुणकी अनेक शाला ।
सहाय पाकर पढ़ें जहांपर, अनाथ बालक अनाथ बाला ॥ १४ ॥
दिला सिखापन करो सुशिक्षित, भविष्य माताएँ, अद्य कन्या ।
प्रसव करें जो सुयोग्य–इच्छित,–बलिष्ट संतति विशेष धन्या ॥ १५ ॥
स्वजाति सेवा स्वधर्म सेवा, स्वदेश सेवा स्वभूप सेवा ।
सुराज सेवा सुकर्म सेवा, करो तनयके स्वरूप सेवा ॥ १६ ॥
स्वदेश भाई मिले जहांतक, मिलो हृदयसे गले लगाकर ।
मिले विदेशी तुम्हें जहांतक, सुमित्र रक्खो उन्हें बनाकर ॥ १७ ॥
अगर सुपथमें चलो कहींपर, सफल हुएतक उसे न छोड़ो ।
रहो परायण स्वदारहींपर, सुनीति निष्ठा कभी न तोड़ो ॥ १८ ॥
विदेश जाकर मनोभिलाषित, अनेक विद्या पढ़ो–पढ़ाओ ।
विनम्र होकर रहो प्रसादित, गुरुत्व मेरा सदा बढ़ाओ ॥ १९ ॥

*पुत्र ।

अगर भिखारी बढ़ें, यत्न भर, उन्हें कृत्य कुछ भले सिखाओ।
अशांतिकारक उठें कहीं पर, विरोध उनको त्वरित मिटाओ ॥२०॥
कहूं कहां तक सुपुत्र ! गाथा, तुम्हीं समय पर विचार लेना।
बना रहे चिर सुउच्च माथा, विनष्ट कृतकी सुधार लेना ॥ २१ ॥
सुवीर युवको ! उचित सिखापन, स्वमातृ महिके न भूल जाना।
अमीर हो या गरीब पालन, करो, बहाना नहीं बनाना ॥ २२ ॥

'शांतिसेवी।'

नैतिक धैर्य।

धैर्यवान् किसको कहना चाहिये और डरपोंक किसको कहना चाहिये व्यावहारिक विचारसे इसका निर्णय करना कुछ कठिन नहीं है। संकट पड़नेपर जो घबड़ाता नहीं है, उसे हम धैर्यवान् कहते हैं। ऐसा नहीं है कि, धैर्य सब जगह एक ही परिमाणमें होता है—नहीं उसमें बहुत अन्तर होता है और एक ही प्रकारके संकटोंको टक्कर देनेवाले दो पुरुषोंमें भी जमीन आसमानका फर्क होता है; तो भी दोनोंको धैर्यवान् ही विशेषण लगाया जाता है। साधारणतः दोनोंको धैर्यशाली ही कहते हैं। यह व्यवहार है।

धैर्यकी गिनती सर्वदा सद्गुणोंमें ही नहीं होती है। उसे कभी २ अविचार वा दुर्गुणका रूप भी प्राप्त हो जाता है। एक योद्धा है वह शत्रुके साथ दो हाथ करनेके लिये कभी आगा पीछा नहीं सोचता है। इस विषयमें घबड़ाना क्या है वह जानता ही नहीं है। उसके इस गुणके कारण जिससे पूछो, वही कहेगा कि वह धैर्यशील योद्धा है। परन्तु यही वह परिस्थितिका विचार किये बिना

ही दीपकपर पड़नेवाले पतंगके समान अपने प्रतिपक्षीपर टूट पड़ेगा तो हम उसे धैर्यवान् न कहकर 'अविचारी' वा 'बेसमझ' कहेंगे। **शिवाजी** शूर था। संकटके समयोंमें उसने अतुलनीय धैर्य प्रकट किया था। परन्तु परिस्थितिका विचार करके एक बार वह चुपचाप **औरंगजेबकी** शरणमें चला गया था। यह बात इतिहास-प्रसिद्ध है। इससे यह स्पष्ट होता है कि, धैर्यकी मर्यादा युक्तिपूर्ण हेतुओंसे निश्चित होना चाहिये।

यहां तक धैर्यके सम्बन्धमें जो विचार किया गया उसमें कुछ विशेष कठिनता उपस्थित नहीं हुई। परन्तु धैर्यका जो नैतिकधैर्य नामका एक भेद है। उसका विचार प्रारम्भ करते ही बहुतसे कठिन प्रश्न उत्पन्न होने लगते हैं। "याती शत्रुको जीतेंगे या समरभूमिमें प्राण अर्पण कर देंगे" इस प्रतिज्ञामें प्रदर्शित किया हुआ धैर्य यद्यपि आश्चर्यकारक है, तो भी संसारमें वह दुर्मिल नहीं है। धर्मोन्मत्त मुसल्मानोंमें उनके अन्याचारोंसे चिढ़े हुए राजपूतोंमें और नवीन धर्मके जोशसे उत्तेजित हुए सिक्खोंमें ऐसे हजारों वीर हो गये हैं। जिन्होंने उक्त मनोवृत्तिके वशवर्ती होकर अपने प्राणोंको कुछ भी नहीं समझा है और विलक्षण धैर्य प्रगट किया है। परन्तु नैतिक-धैर्यके उदाहरण संसारके इतिहासमें बहुत ही थोड़े मिलते हैं। यह क्यों? नैतिकधैर्यमें ऐसी क्या कठिनाई है? इस प्रश्नका उत्तर देने-के पहिले हम नैतिक धैर्य क्या है, इसका थोड़ासा विचार करेंगे।

बहुतसे लोग नैतिक धैर्यके समकक्षी धैर्यके लिये—'शारीरिक धैर्य' शब्दका प्रयोग करते हैं। परन्तु हमारी समझमें यह शब्द कुछ विशेष सयुक्तिक नहीं है। जिसे 'शारीरिक धैर्य' नाम दिया जाता है, वह वास्तवमें 'मानसिक' ही है क्यों कि 'धैर्य' यह

गुण मानसिक ही है। वास्तवमें धैर्यके दो ही भेद करना चाहिये। एक वह जिसमें शारीरिक शक्तियोंसे साम्हना करना पड़ता है और एक वह जिसमें मनोवृत्तियोंसे युद्ध करना पड़ता है। इस दूसरे प्रकारके धैर्यको ही नैतिक धैर्य कहते हैं। पहिले प्रकारके धैर्यको यदि हम **सिपाहीका धैर्य** कहें और दूसरेको **सुधारकका धैर्य** कहें, तो इनका स्वरूप समझनेमें बहुत सुभिता होगा।

नैतिक धैर्यके दो अन्तर्भेद हो सक्ते हैं। हमारी मनोवृत्ति जब किसी पवित्र कर्तव्यके करनेमें बाधक होती है—उसको नहीं करने देती है, तब उसका दमन करनेके लिये एक प्रकारके नैतिक धैर्यकी आवश्यकता होती है। इसे साधारणतः **मनोनिग्रह** अथवा **मनोबल** कह सकते हैं। परन्तु सुधारकोंके लिये जो मनोवृत्तियां बाधक होती हैं, उनमें स्वतःकी उपेक्षा दूसरोंकी ही बहुत प्रबल होती हैं। उनका दमन करना बहुत कठिन होता है। इस विषयको दूसरी तरहसे यों कह सकते है कि, दूसरोंकी मनोवृत्ति विषयक प्रेमभाव आदरभाव अथवा भीतिभाव जो हममें होता है, उसका निराकरण करना यह इस दूसरे प्रकारके नैतिक धैर्यका कार्य है। इसमें भी देखो, तो अप्रत्यक्ष रूपसे अपनी ही मनोवृत्तियोंको जीतना पड़ता है। क्योंकि जिस समाजमें हम रहते हैं, उस समाजका मत यह एक प्रकारका अहंकार (अपनपा) ही है, इस तरह विचार करनेसे ये दोनों ही भेद एक ही नैतिक धैर्यमें गर्भित किये जा सकते हैं।

अब यह अच्छी तरहसे समझमें आ जायगा कि, बाह्य शत्रुको जीतनेकी अपेक्षा मनोवृत्तियोंका जीतना अधिक कठिन क्यों है? इसके लिये अर्थात् मनोवृत्तियोंको जीतनेके लिये जो गुण आव-

श्यक हैं, उसीको नैतिक धैर्य कहते हैं और इसी लिये अन्य धैर्योंकी अपेक्षा इस धैर्यके उदाहरण बहुत कम मिलते हैं। इसका एक कारण यह है कि, बहुधा मनुष्योंकी बुद्धि हीमें यह बात नहीं आती है कि, ये मनोवृत्तियां हमारी शत्रु हैं। लोग जानते हैं कि, इस नवीन मार्गके अनुसार चलना हितकारी है, परन्तु उसके अनुसार चलते नहीं हैं। उन्हें इस नये मार्गपर चलनेकी अपेक्षा पुरानेपर रेंगते रहनेमें ही आराम मालूम होता है। "हम क्यों खड़े बैठे आफत मोल ले लेवें? जाने भी दो। जो दश भाई करेंगे, उसीमें हम भी शामिल हैं।" ऐसा कहकर अपनी सुधारणेच्छाको दबा देनेकी आदत एक दोको छोड़कर प्रायः सब ही की होती है। पर क्या इस प्रकारके प्रमादका कारण केवल 'दश भाई' ही हैं? हम इस कारणका निषेध नहीं करते हैं, परन्तु यह अवश्य कहेंगे कि, इसके साथ एक दूसरी भावना और भी है। दश भाई हमसे क्या कहेंगे, यह विचार जो सुधारमें विघ्न उपस्थित करता है सो इसका कारण केवल यह 'दश भाईयों' का भय ही नहीं है। यह भय किसी जमानेमें सुधारकोंको तंग करता था, यह ठीक है। बहिष्कृत कर देना, जीता हुआ जला देना, कारागृहमें डाल देना, इत्यादि दंड सुधारकोंके लिये प्रायः प्रत्येक देशमें दिये जाते थे। परन्तु वर्तमान राजकीय स्थितिमें यह बात नहीं रही है। अब तो 'समाजकी वाहवाही' का जो प्रेम है, और जिसका प्रत्येक मनुष्य दास बना हुआ है, वह सुधारकार्यमें अड़चन उपस्थित कर रहा है। इस प्रश्नकी तो अब कुछ कीमत ही नहीं रही है कि, समाज हमको क्या दंड देगा? समाजके हाथमें अब ऐसी भयंकर शक्तियां भी नहीं रही हैं। अब तो सुधारकोंके

हृदयमें इस प्रकारके विचारोंका तूफान जोर शोरसे उठता है कि, यदि हम यह वास्तवमें पवित्र परन्तु लोकदृष्टिसे अपवित्र कार्य करेंगे, तो दश भाई हमसे क्या कहेंगे? जातिमें जो हमारा बड़प्पन है, वह कितना कम हो जायगा? समाज हमारी ओर तथा हमारे बन्धुओंकी ओर किस दृष्टिसे देखेगा? इत्यादि। इस तूफानको शान्त करना बड़े भारी मनोधैर्यका कार्य है। हमारे इस वर्तावसे कुटुम्बकी इज्जतमें बट्टा लग जावेगा, हमारे इष्ट मित्र ठट्ठा करेंगे, हमारा बड़प्पन नहीं रहेगा, इत्यादि विचारोंसे सुधारकोंके पैर क्षणक्षणमें फिसला करते हैं। हमारी समझमें यह विचार समाजकी भीतिसे नहीं, किन्तु बड़प्पनके वा झूठे लौकिकके मोहसे उत्पन्न होता है।

गार्गी, मैत्रेयी आदि ब्रह्मज्ञानी स्त्रियोंका चरित्र किस हिन्दूने नहीं सुना है? श्री ऋषभदेव तीर्थंकरने अपनी ब्राह्मी और सुन्दरी नामक कन्याओंको काव्य व्याकरणादि ग्रन्थोंकी शिक्षा दी थी, यह कौन जैनी अस्वीकार करेगा। यह सब जानते हैं, तो भी बतलाइये अपनी लड़कियों तथा स्त्रियोंको शिक्षा देनेके लिये तयार होनेवाले कितने लोग हैं? ऐसा भी नहीं है कि, स्त्रीशिक्षा देनेवाले पर कोई आपत्ति आती हो, उसे कोई दंड दिया जाता हो, तो भी लोग अपने लौकिकके लिये डरते हैं। यह लौकिककी प्रीति यह झूठी भलमनसाहतका मोह जिस गुणसे विजय किया जाता है, वह नैतिक धैर्य सचमुच ही बड़ा दुर्लभ है।

यह हम जानते हैं कि, बालकपनमें लड़के लड़कियोंके विवाह कर देनेसे अकाल वैधव्यादि नानाप्रकारके दुःख उत्पन्न होते हैं। परन्तु लड़की बड़ी हो जायगी, तो लोक नाम रक्खेंगे, इस दुर्वि-

चारसे हम अपनी प्राणोंसे भी प्यारी सन्तानको दुःखके गढेमें ढकेल देते हैं। जिन जातियोंकी गृहसंख्या थोड़ी हैं, उनमें विवाहके लिये लड़कियां नहीं मिलती हैं—लड़के भी नहीं मिलते हैं। इससे उक्त जातियोंका दिनपर दिन क्षय हो रहा है, यह सब जानते हैं और यह भी उनसे छुपा नहीं है कि, अन्तर्जातियोंमें विवाह-सम्बन्ध शुरू कर देनेसे यह विपत्ति टल सकती है और इस प्रकारके विवाह शास्त्रसे भी निषिद्ध नहीं हैं—शास्त्र तो एक वर्णकी सैकड़ों जातियोंमें भी विवाहसम्बन्ध करनेका निषेध नहीं करता है, तो भी लोग अन्तर्जातियोंमें विवाह करनेके लिये उद्यत नहीं होते हैं, उद्यत होना दूर रहा, इस विषयकी चर्चा करनेमें भी डरते हैं। संपूर्ण जैनियोंमें भोजन व्यवहार जारी करनेका विषय भी ऐसा ही है। इसकी भी कम जरूरत नहीं है, परन्तु किया क्या जाय? झूठी भलमनसाहतका मोह हमारा पीछा छोड़े तब न!

मृत्युके पीछे जो नुक्ता वा दिन होता है, उसके खर्चके मारे हम बरबाद हुए जाते हैं। ब्याह शादियोंके खर्चोंने भी हमको खोकला कर डाला है, इत्यादि और भी बहुतसी कुरीतियां हैं, जिन्हें हम सर्वथा सत्यनाशिनी समझ रहे हैं। परन्तु हमारा धैर्य नहीं होता है कि हम इनसे अपना पिंड छुड़ा लेवें। ज्यों ही उक्त प्रसंग हम पर आते हैं, अपने बड़प्पनको बनाये रखनेकी चिन्तामें अपना धैर्य खो बैठते हैं। इस तरह सुधारणाके सैकड़ों कार्य नैतिक धैर्यके अभावसे अड़ रहे हैं। और यह अभाव हमारी भयंकर हानि कर रहा है।

यह हम मानते हैं कि, लौकिकके मोहके कारण बहुतसे अच्छे काम भी होते हैं। परन्तु इससे अच्छे कामोंमें जितनी सहायता

पहुंचती है, उतनी ही बल्कि उससे अधिक हानि भी पहुंचती है। अच्छे कामोंमें इससे बड़ी २ अड़चनें उपस्थित होती हैं। पुराणोंमें रामचंद्रको अतिशय कर्त्तव्यदक्ष राजा बतलाया है। महा कवि भवभूतिने रामचन्द्रकी प्रजावत्सलताकी प्रशंसा करते हुए उनसे कहलाया है कि—

> **स्नेहं दयां तथा शोकं यदि वा जानकीमपि।**
> **लोकस्य पारितोषाय मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा॥**

अर्थात् स्नेह, दया, शोक और तो क्या पतिव्रता जानकीको भी लोगोंको संतुष्ट करनेके लिये छोड़ देनेमें मुझे कष्ट नहीं होगा।

श्रीरामचन्द्रजी अच्छी तरहसे जानते थे कि, सीताके विषयमें लोगोंको जो सन्देह हुआ है, वह निराधार है—झूठा है। सीताका रामचंद्रपर अपरिमित प्रेम था। गर्भके भारसे वह अतिशय थक गई थी। विश्रामसे पतिकी गोदमें मस्तक रखके वह सो रही थी। तो भी इस चाण्डाल लौकिकके लिये उन पुण्यश्लोक रामचन्द्रने उसे वनमें भेज दी। भवभूति भले ही इस कार्यको रामचन्द्रजीकी प्रशंसाका कारण समझे, परन्तु हम तो इसे उनकी नैतिक दुर्बलता ही समझते हैं। धिक्कार है उस नैतिक दुर्बलताको और वारंवार धिक्कार है नीच लौकिकको जिसके लिये ऐसे २ कृत्य किये जाते हैं। नैतिक धैर्य एक तरहसे और भी कसोटीपर कसा जा सकता है। जो लोक नैतिक दृष्टिसे डरपोक हैं, वे वास्तवमें पवित्र परन्तु लोकविरुद्ध कार्य करनेमें किस तरह फिसल जाते हैं; यह तो बतलाया जा चुका। परन्तु जो लोग अशुद्धकृत्य कर चुकते हैं, उन्हें भी पश्चात्तापके अनन्तर बड़े भारी नैतिक धैर्यके प्रकाशित करनेका मौका मिलता है। कोई अपवित्र अयोग्य कार्य

करनेके पश्चात् उसका पश्चात्ताप हुआ, अथवा कोई विना जाने की हुई भूल पीछेसे समझमें आई, ऐसी अवस्थामें उस भूलको स्वीकार कर लेना, या पानीका घूंट लेकर रह जाना (चुप हो रहना), अथवा पहिलेके ही माफिक भूलका समर्थन करते जाना ? मनुष्यसे भूल होना एक साधारण बात है। दोषपूर्ण मनुष्यसे अपराध बनते ही रहते हैं। परन्तु अपराध करके और उसको बुरा समझके भी बहुत लोग उसे छुपानेका प्रयत्न करते हैं। इससे जो उनके पश्चात्तापमें कमी आती है, सो तो आती ही है। इसके सिवाय अनुतापजन्य सुधारणा भी उनके पास नहीं फटकने पाती है। यह बहुत बड़ी हानि है। जिसे भूल स्वीकार करनेमें लज्जा आती है, वह निश्चय समझो कि, उस भूलको कभी न कभी फिर करेगा। केवल उसका छुपाना उसे आ जाना चाहिये ! अपनी भूलको साफ तौरसे स्वीकार कर लेना ही सच्चा नैतिक धैर्य है। अपराध करके उसे छुपानेका अथवा उसके समर्थन करनेका प्रयत्न वास्तवमें विचारा जाय, तो बड़े भारी डरपोंकपनका कार्य है। जो मनुष्य अपनी भूल स्वीकार नहीं करता है अथवा उसका समर्थन करता है, वह लौकिकके कल्पित पिशाचसे डरता है।

इसके विरुद्ध जो भूलको स्वीकार कर लेता है, वह मानो प्रगट करता है कि, मेरा मनोधैर्य इस झूटे बड़प्पनके साम्हने डिगनेवाला नहीं है। ऐसे धैर्यवान् लोग बहुत कम दिखलाई देते हैं।

इस नैतिक धैर्यकी कमीके कारण समाजकी कितनी हानि हो रही है, इसका वर्णन नहीं किया जा सकता है। जिस समाजमें नैतिक धैर्यशील पुरुष नहीं हों, उसे सड़े हुए पानीसे भरे हुए गढेके समान समझना चाहिये। हमारे पूर्व पुरुष बहुतसे रीतिरिवाज प्रच-

लित कर गये हैं। उन रीतिरिवाजोंको इसमें सन्देह नहीं कि, उन्होंने बहुत विचारपूर्वक चलाये होंगे और उस समय जब कि वे चलाये गये थे, उनसे लाभ भी होता होगा, परन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि, वे रीतिरिवाज 'यावच्चन्द्रादिवाकर' वैसेके वैसे बने रहेंगे। और समाजमें सौमेंसे ९९ लोग अज्ञानी और अंधपरम्पराके दास होते हैं। सो उनके सपाटेमें पड़कर रीतिरिवाजोंका मूल उद्देश वा वास्तविक अर्थ बना रहना भी अशक्य है। शब्दोंके जैसे अपभ्रंश हुआ करते हैं, उसी प्रकारसे अज्ञानी लोगोंके द्वारा रीतिरिवाजोंके भी विपर्यास होते रहते हैं। इसके सिवाय जो समाजव्यवस्थाएं एक कालके अनुरूप बनाई जाती हैं, वे चाहे जितनी चतुराईसे क्यों न बनाई गई हों, सदाके लिये सुभीतेकी नहीं हो सकती हैं। ज्यों २ काल बदलता है, त्यों २ मनुष्योंकी आवश्यकताएं, उनके कर्तव्य, और उनके ध्येय आदि सब बदलते जाते हैं। इस लिये भी पूर्वके रीतिरिवाजोंके बदलनेकी आवश्यकता होती है। परन्तु समाजमें बहुधा लोग गतानुगतिक ही होते हैं। समयके परिवर्तनके अनुरूप जिन सुधारणाओंकी आवश्यकता होती है, उनके मस्तकमें वे प्रवेश नहीं कर सकती हैं। बल्कि प्रत्येक सुधारणाका प्रयत्न उन्हें 'उतावलेपनका' 'अविचारका' तथा 'लड़कपनका' मालूम होता है। बस, यहीं सुधारकोंका और इन रूढ़िके दासोंका युद्ध शुरू हो जाता है। ये रूढ़ि-दास पुराने रीतिरिवाजोंके इतने भक्त होते हैं कि, उस भक्तिके कारण इनके हृदयमें विचारशक्तिके लिये अवकाश ही नहीं रहता है। अन्याय और जुल्मोंके अतिशय परिचयके कारण इनकी विवेकशक्ति जड़वत् हो जाती है। इन्हें इस विषयका विचार तो

स्वप्नमें भी नहीं होता है कि, हम जिस कुरीतिके विषयमें आग्रह कर रहे हैं, उससे कितने निरपराधी प्राणियोंको दुःख भोगना पड़ता है। परन्तु स्वयं अंधपरम्पराकी गुलामगीरीमें फँसे हुए ये महात्मा सुधारकोंको बड़ी घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं। यदि सुधारक अपनी सुधारणाओंको कार्यमें परिणत करते हैं, तो उनके लिये इन की ओरसे 'धर्मभ्रष्ट' का तगमा तयार रहता है और यदि वे 'लोगोंकी समझ' का ख्याल करके फिसल जाते हैं, तो उन्हें 'डरपोंक' पद देनेमें भी ये नहीं चूकते हैं। इसी लिये **स्कॉट** कविने जनसमूहको 'हजार मुखके राक्षस' की उपमा दी है। **शेक्सपियरके** कथनानुसार इस राक्षसकी वासना रोगीकी भूख सरीखी होती है। जिस पदार्थसे रोग बढ़ता है, उसीकी इसे भूख लगती है! इसी प्रकारसे यह राक्षस जिसे एक क्षणमें स्तुतिकी नसैनीपर चढ़ाकर आकाशमें पहुंचा देता है उसीको दूसरे क्षणमें तिर-स्कारके धक्केसे नीचे गिरा देता है। जिस समाजमें इस जनसमूहरूपी पिशाचकी प्रबलता होती है, उसमें पुरानी अन्यायपूर्ण तथा दुष्परि-णामी रूढ़ियोंका खूब दौर दौरा रहता है। वहां समाजके पैर निरन्तर पीछे ही को फिसलते रहते हैं।

ऐसा न होने देनेके लिये केवल एक ही मार्ग है एक ही उपाय है। जिन्हें यह विश्वास हो गया है कि, यह नई पद्धति हितकारी है—धर्मसे इसका कोई विरोध नहीं है, उन्हें न तो लौकिकके पोच-डरसे डरना चाहिये और न झूठे बड़प्पनके सौन्दर्यमें भूलना चाहिये। न्यायबुद्धि ही समाजकी वास्तविक वा सुदृढ़ नींव है, ऐसा निश्चय करके सुधारकोंको चाहिये कि लोगोंकी धमकियोंकी तथा आक्रम-णोंकी जरा भी परवाह न करके नवीन पद्धतियोंका जोर शोरसे

प्रतिपादन करें और उन्हें स्वयं धैर्यपूर्वक अमलमें लाने लगें। ऐसा करनेसे सामाजिक अत्याचार, वैषम्य, सुधारमें बाधा डालनेवाली अड़चनें और इन सबके योगसे जो दुख होते हैं, वे नष्ट हो जावेंगे, रूढ़ियोंके गढ़ेका घिनौना पानी निकलकर उसके स्थानमें सुधारणाका स्वच्छ जल बहने लगेगा, मनुष्योंकी नाना शक्तियोंका लोप करनेवाले कारण नष्ट हो जावेंगे, और उर्वरा भूमिमें लगाये हुए पौधोंके समान उक्त शक्तियां फिर वृद्धिंगत होने लगेंगी।

सत्पुरुषोंको चाहिये कि, वे इस नैतिक धैर्यके कंटकाकीर्ण मार्गमें साहसपूर्वक आगे बढ़ें। यद्यपि यह मार्ग कंटकोंसे विषम है, परन्तु इसके दूसरे पार जो वैभवका ऊंचा शिखर और वास्तविक सुखका निधान है, उसको देखते हुए इसपर चलनेका कष्ट किसी गिनतीका नहीं है।

जो लोग चंचल लोकमतके झूलेके साथ आपको भी झुलाते हैं— लोकमतका पूरा पूरा अनुसरण करते हैं। निश्चय समझो कि, वे कभी न कभी अवश्य धोखा खावेंगे। क्यों कि लोकमतका झूला और वारांगनाका अभिनय मिलता जुलता हुआ ही है। परन्तु जो लोग अन्यायोंको दूर करना चाहते हैं, समता या साम्यभावकी पताका उड़ाना चाहते हैं, तथा प्राणीमात्रके दुःख दूर करना चाहते हैं, उनकी विजय अवश्य होगी। उनकी कोई निन्दा करो, बुराई करो, हँसी करो, वे अपने मार्गसे कभी च्युत नहीं होंगे।

यह हम मानते हैं कि, इस मार्गमें संकट बहुत हैं, परन्तु जब न्यायप्रियताका हथियार हाथमें लिया जायगा, तब वे आप ही आप हतवीर्य हो जावेंगे वे हमारे लिये कोई रुकावट न कर सकेंगे। इस साहसपूर्ण विचारसे सबको सुधारके मार्गमें लग जाना चाहिये।

'प्रगति आणि जिनविजय' में प्रकाशित मराठी लेखका आशयानुवाद।

जैनमहाकोष।

वर्तमान समयमें जब प्रत्येक देश और समाजके सभ्य शिक्षित-गण पक्षपात रहित होकर सत्य धर्मकी खोज करनेके लिये भिन्न २ मतमतान्तरोंके सिद्धान्तोंका अवलोकन कर रहे हैं और तदनुसार अपने विचारोंको स्थिर कर रहे हैं, यह अति सम्भव है कि जैन मतके सिद्धान्त भी इन निष्पक्ष विद्वानोंकी दृष्टिगोचर हों। अतएव जैनमतकी उन्नति चाहनेवालोंका यह मुख्य कर्तव्य है कि, जैनधर्मके ग्रन्थ अति उत्तम रीतिसे शीघ्र प्रकाशित कराके तैयार रक्खें। परन्तु अकेले शास्त्रोंको प्रकाशित कर देनेसे ही पूर्ण साफल्यकी आशा नहीं हो सकती है। कारण कि जैन ग्रन्थ ऐसे सरल नहीं हैं, जो शीघ्र समझमें आ जावें। प्रायःकरके समस्त जैन ग्रन्थ पारिभाषिक शब्दोंसे भरे हुए हैं, जिनके अर्थ वर्तमानमें किसी भी हिन्दी या संस्कृत कोषमें यथार्थ नहीं मिलते और जबतक अर्थ समझमें नहीं आता, तबतक उनका कुछ भी प्रभाव पाठकोंपर नहीं पड़ सकता है। यथार्थ अर्थ जाननेके लिए एक ऐसे महाकोषकी आवश्यकता है जिसमें समस्त पारिभाषिक शब्द क्रमसे दिए हुए हों और प्रत्येक शब्दके पूरे २ अर्थ लिखे हों। ऐसे कोषकी आवश्यकता देखकर भारत जैनमहामण्डलकी प्रबंधकारिणी सभाने गत दिसम्बरमें अपने लखनऊके अधिवेशनमें ऐसे कोषके तयार करनेका प्रस्ताव पास किया है और इस कार्यका भार मुझे सौंपा है। अतएव मैं जैन जातिके समस्त स्वाध्याय करनेवाले महाशयोंसे नम्रतापूर्वक प्रार्थना करता हूं कि, वे जिस ग्रन्थकी स्वाध्याय करते हों उसमें जितने पारिभाषिक शब्द आए हों उन सबकी एक २ सूची

बनाकर मेरे पास भेजें और सूची बनानेसे पूर्व मुझे लिख भेजें कि, वे किस ग्रंथकी स्वाध्याय करते हैं।

कमसेकम ५० शास्त्रोंके पारिभाषिक शब्दोंकी सूची आजाने पर अकारादि अक्षरोंकी क्रमसे एक सूची बनाई जावेगी और तत्पश्चात विद्वान् पंडितोंद्वारा उनके अर्थ लिखनेका कार्य प्रारम्भ किया जायगा।

मैं पूर्ण रूपसे आशा दिलाता हूं कि, यदि शब्दोंकी सूची शीघ्र आ गई, तो कोष शीघ्र तयार हो जायगा।

मैं सहर्ष प्रगट करता हूं कि, निम्नलिखित महानुभावोंने निम्न लिखित शास्त्रोंके शब्दोंकी सूची बनानेका वचन दिया है, जिनके लिए हार्दिक धन्यवाद भेट है—

१. लाला अजितप्रसादजी, एम्. ए., एल. एल. बी., लखनऊ पुरुषार्थसिद्ध्युपाय।

२. लाला जुगमंदिरलालजी, एम्. ए., बेरिष्टर-एट-ला, सहारनपुर—आत्मानुशासन।

३. लाला चैतन्यदासजी, बी. ए., एस. सी. ललितपुर—ज्ञानार्णव।

४. ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी बंबई, सर्वार्थसिद्धि, समयसार।

५. लाला देवेंद्रप्रसादजी, काशी, आदिपुराण।

६. पं. अर्जुनलालजी सेठी, बी. ए., जयपुर—बृहद्द्रव्यसंग्रह।

७. पं. पन्नालालजी बाकलीवाल, काशी— मोक्षमार्ग प्रकाश।

८. पं. घनश्यामदासजी, ललितपुर—पार्श्वपुराण।

आशा है कि, अन्य विद्वान् महाशय भी इस परमपवित्र कार्यमें अवश्य सहायता देंगें और उक्त सज्जनोंका अनुकरण करेंगे जिससे जिनवाणी माताका उद्धार हो और जैनसिद्धांतका समस्त भूमंडलमें प्रकाश हो।

दयाचंद्र गोयलीय, जैन, बी. ए.

ललितपुर।

एक बोधप्रद आख्यायिका।

एक परोपकाररत साधु दुखियोंके दुःख दूर करता हुआ और धर्मोपदेश देता हुआ पृथ्वीपर यथेच्छ विचरण किया करता था। एक स्थानमें उसने देखा कि, एक सिपाही घायल हो कर अब तबकी हालतमें पड़ा है। मरते समय यदि यह धर्मका स्वरूप समझ लेगा, तो इसे उत्तम गति प्राप्त हो जायगी; इस विचारसे उस महात्माने सिपाहीसे पूछा,—" तुझे धर्मशास्त्रका एकाध अध्याय पढ़के सुनाऊं क्या ?"

सिपाहीने क्लेशित हो कर कहा,—" मुझे तुम्हारा धर्मशास्त्र नहीं चाहिये, मुझे पानी चाहिये।"

सिपाहीके उक्त शब्द यद्यपि कड़े थे, परन्तु महात्माने उनकी ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया और तत्काल ही उसे पानी लाकर पिला दिया। पानी पी चुकनेपर सिपाहीने कहा, " मेरे सिरको क्या आप कुछ ऊंचा कर सकते हैं ?" साधुने अपने शरीरपरसे उत्तरीय वस्त्र निकाल कर उसकी घड़ी बनाई और उसके सिराने रख दी। सिपाही बोला, अब मुझे कुछ स्वस्थता मालूम होती है। परन्तु ठंडके मारे मेरे हाथ पैर अकड़े जाते हैं। यह सुनकर उस

पुण्यपुरुषने चारों ओर देखा, परन्तु उसे ऐसा कोइ पदार्थ नहीं दिखा जिससे सिपाहीका शीत निवारण होता। तब उसने अपने शरीरपरकी कफनी निकाली और उसे उढ़ा दी। उसी समय मरणोन्मुख सिपाहीके नेत्रोंमें आसुओंकी बूंदे झलकने लगी। उसने गद्गदस्वरसे कहा साधु महाराज मैंने अब तक किसी भी धर्मग्रन्थको नहीं पढ़ा है, परन्तु जिस तरह आज आप मेरे काम आये उसी प्रकार प्राणीमात्रकी रक्षा वा सेवा करनेकी बुद्धि यदि उसके पढ़ने सुननेसे उत्पन्न हो सकती है, तो आप मुझे अपने धर्मग्रन्थका एक अध्याय अवश्य ही पढ़के सुनानेकी कृपा कीजिये।

तात्पर्य यह है कि, केवल धर्माभिमानके बातौनी जमाखर्चसे धर्मसाधन नहीं होता है। उसके लिये समाजसेवा और स्वार्थत्यागकी बड़ी भारी आवश्यकता है। जिस मनुष्यके जीवनक्रममें दो बातें कार्यरूपमें परिणत दिखलाई देती हैं, वही धर्माधिकारी हो सकता है और वही अपने पड़ौसियोंके मनको सच्चे धर्मकी ओर आकर्षित कर सकता है। उपदेश देनेवालोंको इस बातका चिन्तवन निरन्तर करते रहना चाहिये कि, जो उपदेश मैं दूसरोंको देना चाहता हूं उसके ज्ञानसे मेरे चरित्रपर भी कुछ असर हुआ है या नहीं?

पर उपदेश कुशल बहुतेरे। जे आचरहिंते नरन घनेरे।

पुस्तक-समालोचन।

गद्यमाला—प्रकाशक, हिन्दी ट्रैन्सलेटिंग कम्पनी, लोअर चितपुर रोड, कलकत्ता। इस छोटे साइजके १९२ पृष्ठोंकी पुस्तकमें हिन्दी जाननेवालोंके सुपरिचित पं० जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदीके ३३

छोटे बड़े फुटकर लेखोंका संग्रह है। कोई २ लेख विशेष करके वे जो मारवाड़ियोंको लक्ष्य करके लिखे गये हैं, अच्छे हैं। भाषा मार्जित और सुन्दर है। हमारी समझमें 'अनस्थिरता' आदिके झगड़ेवाले लेख इस संग्रहमें प्रकाशित न किये जाते, तो अच्छा होता। मूल्य दश आना कुछ अधिक जान पड़ता है।

दिगम्बरजैनके उपहार ग्रन्थ—सूरतसे निकलनेवाले गुजराती मासिकपत्रके उपहारमें इस वर्ष पांच ग्रन्थ दिये गये हैं, १ मोक्षमार्गप्रकाश पं. टोडरमल्लजीकृत, २ जैनधर्मनी माहिती, ३ ईश्वर कर्त्ताखंडन, ४ शीलसुन्दरी रास, और पंचेंद्रिय संवाद। इनमेंसे पहिला ग्रन्थ तो वही है, जो इस वर्ष जैनहितैषीके उपहारमें दिया गया है, और शेष चार गुजराती भाषामें हैं। दूसरा ग्रन्थ शेठ हीराचन्द नेमीचन्दजीके मराठी लेखका अनुवाद है, जो हिन्दीमें 'जैन धर्मका परिचय' नामसे प्रकाशित हो चुका है। तीसरे ग्रन्थका विषय नामसे ही स्पष्ट है। चौथा ग्रन्थ एक प्राचीन गुजराती कविकी कविता है, जिसमें एक सुन्दर कथा निबद्ध की गई है। पांचवां ग्रन्थ भैया भगवतीदासजीके पंचेन्द्रिय संवादका गुजराती गद्यानुवाद है। इन सबका मूल्य लगभग ढाई रुपयाके है इससे स्पष्ट मालूम होता है कि, दिगम्बर जैनके सम्पादक अपने पत्रके ग्राहक बढ़ानेके लिये तथा जैनसाहित्यका प्रचार करनेके लिये असीम परिश्रम कर रहे हैं। पत्रका मूल्य केवल सवा रुपया है। उपहारका पोस्टेज केवल आठ आना अधिक लेकर उक्त सब ग्रन्थ दिये जाते हैं। यह बात ध्यान देनेके योग्य है कि, उपहारके जितने ग्रन्थ हैं, प्रायः वे सब गुजरातके धर्मात्मा धनिकोंकी ओरसे उनके इष्ट जनोंके स्मरणार्थ वितरण किये गये हैं। गुजरातकी यह पद्धति अनुकरण

करनेके योग्य है। इसमें दानका दान हो जाता है और एक पत्रके ग्राहकोंकी वृद्धि हो जाती है।

उन्नतिशिक्षक—रचयिता, लाला छोटेलालजी अजमेरा, साबिक डिपुटी इन्स्पेक्टर मदारिस, जयपुर और प्रकाशक, छोटेलाल एण्ड फ्रेण्ड्स, त्रिपोलिया बाजार, जयपुर। मूल्य आठ आना। इस पुस्तकमें, विद्या, कलाचातुरी, स्त्रीशिक्षा, बालविवाह, लाड़, धन, फूट, समय, स्वास्थ्यरक्षा, धर्म, जिव्हाका स्वाद, मुकद्दमाबाजी आदि १७–१८ विषयोंपर निबन्ध लिखे गये हैं और वे प्रायः सब अच्छे हैं। प्रत्येक स्त्रीपुरुषके विचार करने योग्य हैं। एक जैनी सज्जनके द्वारा ऐसी अच्छी पुस्तक लिखि गई देखकर हमको प्रसन्नता हुई है। भाषा अच्छी है, कहीं संशोधनकी जरूरत है। विराम द्विविराम आदि चिन्होंपर सर्वत्र एकसा ध्यान नहीं दिया गया है।

गृहस्थ शिक्षासार—इस पुस्तकके रचयिता और प्रकाशक वे ही हैं, जो उन्नति शिक्षकके हैं। मूल्य इसका तीन आना है। इसमें एक कथाके द्वारा गृहस्थोपयोगी सारी शिक्षाएँ दे डाली हैं। बच्चोंको प्रारंभिक शिक्षासे लेकर उच्च शिक्षा तकका ज्ञान करना, उनका पालन पोषण करना, उनकी कुटेवे छुड़ाना, उन्हें उत्साहित करना आदि बातें इसमें बतलाई गई हैं। पुस्तककी छपाई अच्छी नहीं है। कागज तो बहुत ही हलका लगाया है। प्रूफ सावधानीसे नहीं देखा गया, इस लिये अशुद्धियोंकी भरमार है। तो भी पुस्तक पढ़ने योग्य है।

सत्यासत्य निर्णय—लेखक और प्रकाशक, लाला मुसद्दीलालजी जमींदार, मु० निरपुड़ा, जिला मेरठ। मूल्य छह आना। इस पुस्तकमें १ शूद्र संस्कारकेद्वारा उच्च वर्णके नहीं हो सकते हैं।

२ मुक्त हुए जीव फिर संसारमें नहीं आते हैं। ३ वृक्षोंमें जीव है, और ४ स्त्रीको ग्यारह पती करनेकी वा नियोग करनेकी आज्ञा अधर्म मूलक है, इन चार बातोंको आर्यसमाजी विद्वानोंकी बनाई हुई ऋग्वेदादिकी टीकाओंके प्रमाण देकर सिद्ध की है। जिन भाई-योंको इन बातोंके पढनेका शोक हो, वे इस पुस्तकको मंगाकर देखें। लेखक जैनी मालूम होतें हैं, परंतु उन्होंने प्रत्यक्ष रूपसे अपने मतको पुस्तक भरमें प्रकाशित नहीं किया है।

दीक्षाकुमारीप्रवास—प्रकाशक श्रीजैनधर्म विद्याप्रसारक वर्ग, पालीताणा। श्वेतांबर संप्रदायमें उक्त मंडली ग्रन्थप्रकाशनका कार्य बहुत प्रयत्नसे कर रही है। सैंकड़ो पुस्तकें इस मंडलीकी ओरसे प्रकाशित हो चुकी हैं। बहुत थोड़ा लगभग लागतके बराबर ही मूल्य रखकर यह ग्रंथोंका प्रचार करती है। उक्त ग्रन्थके दो बड़े २ भाग पक्की जिल्द सहित हमारे पास समालोचनार्थ आये हैं। प्रथम भागका मूल्य एक रुपया और दूसरेका डेढ रुपया है। श्वेतांबर सम्प्रदायके यतियों तथा साधुओंका चरित्र इस समय कुछ आक्षेप योग्य हो रहा है। उसीको लक्ष करके यह पुस्तक लिखी गई है। 'दीक्षाकुमारी' नामकी एक स्त्री कल्पित करके ग्रन्थकर्त्ताने उसका प्रवास कराया है। वह जगह २ भ्रमण करती है और देखती है कि, जैन शास्त्रोक्त साधु कहां हैं। आचारांग सूत्र और दश वैकालिक सूत्रमें जो यत्याचार वर्णन किया है, प्रायः वह सबका सब दीक्षाकुमारीकी आलोचना और उपदेशोंमें आ गया है। सामाजिक सुधार करनेके लिये पुस्तक लिखनेका यह ढंग अच्छा है। पुस्तककी भाषा गुजराती है। जो भाई गुजराती जानते हैं, उन्हें यह ग्रन्थ मंगाकर अवश्य पढना चाहिये।

हिन्दी व्याकरणसार—प्रणेता, साहित्याचार्य पं० रामावतार शर्मा, एम.,ए. और प्रकाशक, हिन्दी ट्रेन्सलैटिंग कम्पनी, लोअर चितपुररोड कलकत्ता। यह छोटीसी व्याकरणकी पुस्तक है। पंडितजी हिन्दीका एक विस्तृत व्याकरण लिखना चाहते हैं। वह कैसा लिखा जायगा, इसका अनुमान इस पुस्तकसे हो सकता है। हमारी समझमें पुस्तक अच्छी बनी है। थोड़ेमेंमें हिन्दी व्याकरणकी बहुतसी सार बातें कह दी गई हैं। मूल्य आठ आना बहुत ज्यादा मालूम होता है।

उपदेशरत्नावली—लेखक और प्रकाशक, पन्नालाल जैन मास्टर, बी. सी. हाईस्कुल लश्कर। मूल्य दो आना। इस छोटीसी पुस्तकमें फुटकर कविताओंका संग्रह है। कई कविताओंमें ईश्वर प्रार्थना है, और कईमें विविध उपदेश हैं, लश्करकी हिन्दी साहित्य सभाने पुस्तकका संशोधन किया है; पर हमारी समझमें संशोधन ठीक नहीं हुआ। दो तीन कविताओंके ऊपर लिखा है छन्द। पर यह नहीं लिखा है कि कौन छन्द। छन्दकी मात्राएँ भी न्यूनाधिक हैं। "असत भाषणमें कोई भलाई नहीं। है झूठोंकी कहीं भी सुनाई नहीं।" इस तर्जके एक पदको 'लावनी' लिखा है! 'तोता मैना विलाप' आदि दो एक कविताएँ अच्छी हैं। लेखकका पहिला प्रयत्न मालूम होता है। पुस्तक मंगाकर उत्साह बढ़ाना चाहिये।

Perpetual Calendar—अंग्रेजीका यह स्थायी क्यालेण्डर बाबू निहालकरनजी सेठी सेकिंड इयर क्लास, ग० कालेज अजमेरने आविष्कार करके छपाया है। इसके जरियेसे यह मालूम हो सकता है कि, अमुक सनकी अमुक तारीखको कौनसा दिन (वार) था। चाहे जिस सन्की तारीखके वारका आप पता लगा

सकते हैं। वह सन् चाहे हजार दो हजार वर्ष पीछे क्यों न हो। इस एक ही क्यालेण्डरसे हमेशा काम निकल सकता है। मूल्य चार आना बहुत ज्यादा मालूम होता है।

भारतका प्राचीन विद्यागौरव।

कुछ दिन पहिले पूनामें एक मराठी ग्रन्थसंग्रहालयकी स्थापना हुई थी। स्थापनाके समय जो जल्सा किया गया था, उसके सभापति श्रीयुक्त नारायणराव बी. पावगी नामक प्रसिद्ध ग्रन्थकार और ऐतिहासिक विद्वान् हुए थे। उन्होंने अपने व्याख्यानमें इस देशकी प्राचीन विद्यासंस्थाओंका तथा पुस्तकालयोंका जो वर्णन किया था, वह प्रत्येक देशाभिमानीके जानने योग्य है। हम यहांपर उसका सारांश प्रगट करते हैं:—

इस्वी सन्के लगभग ६२२ वर्ष पहिले **तक्षशिलामें** एक बड़ा भारी विद्यामन्दिर था। जिसमें जुदे २ अठारह विषयोंकी शिक्षा दी जाती थी। सुप्रसिद्ध वैयाकरण **पाणिनि** इसी विद्यालयके छात्र थे। चन्द्रगुप्तको साम्राज्य प्राप्त करा देनेवाला कूट राजनीतिज्ञ **चाणक्य**, वैद्यशिरोमणि **आत्रेयी** व **जीवक**, और अनेक शास्त्रोंका रचयिता **कुमारलब्ध** जो कि प्रति दिन ३२ हजार शब्दोंका पाठ करता था और इतने ही शब्द लिखता था, ये सब विद्वान् तक्षशिलाहीके विद्यालयमें पढ़े थे। **उदन्तपुरीके** विद्यालयमें ६ हजार विद्यार्थी अध्ययन करते थे। यह विद्यालय ईस्वीसन् १२०३ में नष्ट हो गया। **विक्रमशीलके** विश्वविद्यालयमें जो कि ईस्वीसन् ७०९ के लगभग स्थापित हुआ था, ६ पाठालय, ६ अन्न-

सत्र, १०८ अध्यापक और बहुतसे मन्दिर थे। **नालन्दा**के विश्व-विद्यालयमें जिसका कि ईसाकी सातवीं सदीमें अस्तित्व था, १० हजार विद्यार्थी, १५ सौ अध्यापक और एक नौ मंजिलका 'रत्नोदधि' नामक पुस्तकालय था। इस पुस्तकालयसे चीनका प्रसिद्ध यात्री **हुएनसंग** ग्रन्थोंके ६५७ गट्ठे २० घोड़ोंपर लादके ले गया था। इससे पाठक कल्पना कर सकते हैं कि, उक्त पुस्तकालयमें कितने ग्रन्थ होंगे, जिसमेंसे ६५७ गट्ठे तो एक यात्रीकी प्रार्थनापर उसे दे दिये गये थे! दक्षिण महाराष्ट्रके **धन्यकटक** स्थानमें भी एक बड़ा भारी पुस्तकालय था, जिसके अस्तित्वका ईस्वीसन् ४०० तक पता लगता है। **तातार**में भी एक विशाल ग्रन्थालय था, जिसमेंसे ४ हजार ग्रन्थ एक मुसलमान बादशाह देहलीमें ले आया था। काश्मीर, नेपाल, जयपुर, जोधपुर, अलवर, अहमदाबाद, बड़वाण, सिद्धपुर, महसूर, तंजावर, आदि स्थानोंके पुस्तकालय अब रक्षित हैं। इनमें अपूर्व २ ग्रन्थरत्न संग्रहित हैं।

विविध विषय।

महासभाका अधिवेशन—महासभाका अधिवेशन सम्मेदशिखरपर दो वर्ष हुए हुआ था। उसके बाद पारसाल एक अधिवेशन मुजफ्फरनगरमें हुआ, जिसमें कोई भी कार्यवाही ठीक नहीं हुई। लोगोंने अपने एक देशीय झगड़ोंका फैसला अपनी इच्छानुसार करानेके लिये महासभाको भी कीचड़में घसीटना चाहा। किन्तु जब मैलके छींटे बहुत पड़ने लगे, तब सभापति साहब हट गये और उन्होंने सभाको बचा लिया। उक्त अधिवेशनपर यह

ज्ञान हुआ था कि, सभासदोंका कोरम (जघन्य संख्या) भी पूरा नहीं हुआ था और यदि ज्यों त्यों करके नियमकी पूर्ति न की जाती, तो अधिवेशन ही न हो पाता। प्रस्ताव कोई महत्त्वके न हुए और न कोई प्रभावशाली व्याख्यान हुए। यदि उस समय जैन महामंडलका अधिवेशन न होता, तो यह भी न मालूम होता कि, जैनियोंमें भी कोई पढ़े लिखे लोग हैं। बस अब यह आवश्यक है कि, महासभाका अधिवेशन किसी अच्छे स्थानपर किया जावे और उसका प्रत्येक कार्य नियमवद्ध किया जाय।

मुसलमानों द्वारा गोवध निषेध—विहार प्रान्तमें जहां कि, किसी समय जैनमुनि और बौद्धभिक्षु विहार किया करते थे, गोवध रोकनेके लिये स्थान २ पर सभाएं की जा रही हैं। पर ये सभाएं जैन या बौद्धों द्वारा नहीं, मुसलमान सज्जनोंद्वारा हो रही हैं। मुसल्मानभाई कहते हैं, गोवध कुरानसे विरुद्ध है।

निकलके वरक—एडीसन साहबने जो कि फोनोग्राफके आविष्कारक हैं, निकल धातुके वरक इतने पतले बनाये हैं कि, २०,००० बीस हजार वरक सिर्फ एक इंच मोटे होते हैं। पतलेसे पतले कागजके ३ वरक इसके ४ वरकके बराबर होते हैं। ये वरक कागजके तौरपर काममें लाये जावेंगे। कागजसे सस्ते भी पड़ेंगे।

दो छात्रवृत्तियां—राजकोटके रईस अमृतलाल भीमजी कोठारीने अपने स्वर्गीय पिताकी यादगारमें २५०००) पच्चीस हजार रुपयेका दान किया है। इस द्रव्यसे डाक्टरी और इंजीनियरी पढ़नेवाले दो विद्यार्थियोंको ३५०) और ४५०) वार्षिक छात्र

वृत्तियां दी जाया करेंगी। काठियावाड़के छात्रोंका इन वृत्तियोंपर विशेष अधिकार होगा।

राजधानीका नकशा—पाठकोंको मालूम होगा कि, भारतकी राजधानी अब कलकत्तेसे उठकर देहली लाई जायगी। इस नई राजधानीके बनानेके लिये विलायतसे नकशा बनानेवाले बुलवाये जावेंगे! विलायतमें हरएक कामको एक विशेष विज्ञानका रूप दे दिया गया है और वहांके लोग प्रत्येक विषयमें अपनी सारी शक्तियोंको लगा कर असाधारण योग्यता प्राप्त करते हैं। *

पारसीका विद्यादान—बड़ोदाके डाक्टर माणिकशाजी मरते समय एक लाख दश हजार रुपये दान कर गये हैं। इन रुपयोंके व्याजसे उन पारसी विद्यार्थियोंको छात्रवृत्तियां दी जावेंगी, जो विलायत जाकर विज्ञान और साहित्यका अध्ययन करेंगे अथवा टाटा इनष्टीट्यूटमें शिल्पकार्य सीखेंगे। इन वृत्तियोंकी सहायतासे जो छात्र अपनी विद्याध्ययन समाप्त करके अर्थोपार्जन करने लगेंगे, वे ली हुई वृत्तिको पर चार रुपये सैकड़े सूदके धीरे धीरे उक्त फंडमें जमा करा देंगे। इससे विद्यार्थियोंको समयपर सहायता भी मिलेगी और उक्त विद्याप्रचारक फंडकी वृद्धि भी होती जायगी। दानकी कैसी अच्छी विचारपूर्ण पद्धति है। ऐसे दानोंकी जैनसमाजमें बहुत बड़ी जरूरत है। परन्तु इस समाजके धनिकोंको ऐसी बातें कहांसे सूझें! उनकी तिजोरियोंमें व्याह शादियों, ज्योनारों, नुक्तों, और रथप्रतिष्ठाओंके खर्चोंसे जब रुपये बचें, तब न ऐसे कामोंमें लगानेके लिये वे तयार होवें।

पिछले ५ नोट श्रीयुत बाबू अजितप्रसादजी, एम. ए. वकील, लखनऊने भेजनेकी कृपा की है।

करहलका मेला—माघसुदी ३ से ८ तक करहल (मैनपुरी)में विम्बप्रतिष्ठाका उत्सव था। इस मेलेमें स्याद्वादवारिधि पं० गोपालदासजी, न्यायाचार्य पं० माणिकचन्द्रजी, कुँवर दिग्विजयसिंहजी, पं० धर्मसहायजी, बावू चन्द्रसेनजी, बाबा ठाकुरदासजी, ब्र० मोतीलालजी, पं० उदयलालजी काशलीवाल, और नाथूराम प्रेमी आदि अनेक व्याख्याताओं तथा प्रचारकोंका समागम हुआ था। चार पांच दिन दोपहर और संध्याको अच्छे २ प्रभावशाली व्याख्यान हुए जिनसे जैनधर्मका महत्त्व प्रगट हुआ और उपस्थित भाइयोंके हृदयमें जैनधर्मकी तथा जैनजातिकी उन्नति करनेका जोश भर गया। पिछले दिन जैनसिद्धान्तपाठशाला मोरेनाके लिये अपील की गई और उपस्थित भाइयोंने २०८॥) की नगद सहायता दी। द्रव्य दाताओंको धन्यवाद है।

शास्त्रीय चर्चा,-हरीका त्याग—बाबू सूरजमलजी निगोतिया, मास्टर दरबार हाईस्कूल बीकानेरने इस विषयमें एक लेख भेजा है, जिसका सारांश यह है कि:—"दो वर्ष पहिले जैनहितैषीमें इस विषयपर कई लेख लिखे गये थे परन्तु अभी तक किसी पंडित महाशयने यह निर्णय नहीं किया कि, 'सुक्कं पक्कं तत्तं' इत्यादि गाथानुसार प्रासुक की हुई हरी चीजको हरीका त्यागि खा सकता है या नहीं। क्या जैनियोंमें कोई इस विषयके निर्णय करनेवाले पंडित नहीं रहे? मेरी समझमें पंडित तो बहुत बड़े २ हैं, परन्तु उन्होंने इस विषयमें अभी तक कुछ ध्यान नहीं दिया है। मेरी प्रार्थना है कि, पंडितमंडली इस विषयमें जो कुछ शास्त्रोक्त समझे, उसका निर्णय करके प्रकाशित करनेकी कृपा करें। मेरी बुद्धिके अनुसार हरीका त्याग सचित्त त्याग प्रतिमा और भोगोपभोग परिमाण इन

दो प्रतिमाओंमें होता है। सचित्तत्यागमें सचित्त वस्तुका त्याग किया जाता है, इसलिये इस व्रतका पालन करनेवाला अचित्त की हुई वस्तु खा सकता है। जिस तरह मुनिराज अचित्त किया हुआ जल वा भोजन ग्रहण करते हैं। परन्तु भोगोपभोग परिमाण व्रतमें हरियों-की गिनती कर ली जाती है और उस गिनतीसे ज्यादा कोई हरी नहीं खाई जाती है, चाहे वह अचित्त वा प्रासुक ही क्यों न हो। जैसे कोई पुरुष दिनमें पांच वार भोजन करता हो और परिमाण कर ले कि अष्टमी वा चतुर्दशीको एकबार भोजन करूंगा, तो फिर वह उक्त दिनोंमें एक बारसे अधिक भोजन नहीं कर सकता, चाहे भोजन कैसा ही शुद्ध क्यों न हो। इसी तरह जिसने प्रतिज्ञा कर ली कि, अष्टमी चतुर्दशीको हरी नहीं खाऊंगा, तो वह उस दिन हरी कदापि नहीं खायगा—चाहे वह अचित्त ही हो। बल्कि जिस पात्रमें हरीका कुछ संसर्ग होगा, उस पात्रमें भी भोजन नहीं करे-गा। यदि यह पूछा जावे कि, जो हरी सुखा ली जाती है, उसका साग क्यों खाया जाता है? तो उत्तर यह है कि, हरीके सागमें और सूखीके सागमें बड़ा ही अन्तर है। अचित्तकी अपेक्षा तो दोनों एक हैं, परन्तु भोगाभिलापसे निवृत्ति करनेकी अपेक्षा जुदी २ हैं। सूखीके खानेसे भोगाभिलाषकी निवृत्ति ज्यादा है—उतनी हरीके अचित्त करके खानेसे नहीं है। दूसरे सुखाकर साग बनाकर खाना दुःसाध्य है—देर लगती है। पर हरीको अचित्त बनाकर खाना सुख-साध्य है—उसी वक्त अचित्त हो सकती है। सिवाय इसके हम जितनी वस्तुएँ खाने पीनेके काममें लाते हैं, वे प्रायः सूखी ही होती हैं। अब यदि हरीका त्यागी सूखी नहीं खावे, तो उसे इन सब सूखी वस्तुओंकी गिनती करनी पड़े। इसलिये इस व्रतवालेके सूखी

खानेका प्रचार हो गया है।" इस विषयमें हमारा वक्तव्य यह है कि, भोगोपभोग परिमाणमें यदि कोई इस तरह त्याग करे कि, मैं भिंडी, तोरई, करेला आदि अमुक २ वस्तुएँ नहीं खाऊंगा; तो अवश्य ही वह उक्त वस्तुओंको हरी, सूखी वा पकी आदि किसी भी अवस्थामें नहीं खायगा। क्योंकि उसने उन वस्तुओंको उद्देश्य करके त्याग किया है। परन्तु यदि वह इस प्रकार त्याग करता है कि, मैं अमुक २ हरीयें नहीं खाऊंगा, तो उनको वह हरी अवस्थामें ही नहीं खायगा। क्योंकि उसने हरी अर्थात् सचित्तका त्याग किया है। पकी सूखी आदि अचित्त अवस्थाओंमें खानेसे उसके व्रतमें दोष नहीं लग सकता है। हरितके त्यागमें अचित्तके भी त्याग का विधान लेखक महाशय क्यों करते हैं। यह समझमें नहीं आता है। जैनसिद्धान्तके अनुसार तो हरी वा हरितका अर्थ सचित्त वनस्पति ही होता है। हरे रंगसे अथवा पकी सूखी आदि अवस्थाओंसे हरित शब्दका कोई सम्बन्ध नहीं है। इसी तरह हरीके सुखानेमें और पकानेमें भले ही अन्तर हो अर्थात् उसमें आरंभादिका भले ही तारतम्य हो। परन्तु भोगोपभोग परिमाणव्रतसे उस तारतम्यका कोई सम्बन्ध नहीं है। पिछले लेखोंमें इन बातोंका अच्छी तरहसे विचार किया जा चुका है।

नई पुस्तकें।

पुरुषार्थसिद्ध्युपाय।

श्रीअमृतचन्द्रसूरिकृत मूल श्लोक, और नाथूरामप्रेमीकृत अन्वयार्थ भावार्थ सहित। यह ग्रन्थ एकबार छपकर बिक गया था, कई वर्षोंसे यह ग्रन्थ नहीं मिलता था। इस कारण फिरसे संशोधन कराकर छपाया गया है। यह ग्रन्थ जैनतत्त्वोंका भाण्डार है। इसकी प्रशंसा लिखकर ग्रन्थका महत्त्व घटाना है। कागज छपाई साइज पूर्ववत् है। न्यो० एक रुपिया।

ज्ञानार्णव।

श्रीशुभचन्द्राचार्यकृत मूल और पं० पन्नालालजी बाकलीवाल कृत हिन्दी भाषावचनिका सहित। यह ग्रन्थ भी कई वर्षोंसे नहीं मिलता था, इस कारण फिरसे छपाया गया है। न्यो० चार रुपिया।

सृष्टिकर्तृत्वमीमांसा।

पं. गोपालदासजी स्याद्वाद वारिधिका सृष्टि कर्त्ता खण्डन विषयक लेख। न्यो. एक आना।

सज्जनचित्त वल्लभ।

यह ग्रन्थ कई वर्ष पहिले छपा था, किन्तु अब कई वर्षोंसे नहीं मिलनेके कारण फिरसे छपाया गया है। इसमें मूल पद्य उसके नीचे स्वर्गीय पं० मिहरचन्दजीका पद्यानुवाद, और सरल अर्थ है। अन्तमें यती नयनसुखजीका बनाया हुवा पद्यानुवाद भी लगाया गया है। वैराग्यका मनोहर ग्रन्थ है। मूल्य दो आना मात्र है।

सब प्रकारकी पुस्तकें मिलनेका पता—

श्रीजैनग्रंथरत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग, पो० गिरगांव–बम्बई

जैनहितैषीके नियम।

१. जैनहितैषीका वार्षिक मूल्य डांकखर्च सहित १।।) पेशगी है।

२. प्रतिवर्ष अच्छे २ ग्रन्थ उपहारमें दिये जाते हैं और उनके छोटे बड़ेपनके अनुसार कुछ उपहारी खर्च अधिक भी लिया जाता है। इस सालका उपहारी खर्च ।।) है। कुल मूल्य उपहारी खर्चसहित २) है।

३. इसके ग्राहक सालके शुरूसे ही बनाये जाते हैं, बीचमें नहीं, बीचमें ग्राहक बननेवालोंको पिछले सब अंक शुरू सालसे मंगाना पड़ेंगे, साल दिवालीसे शुरू होती है।

४. जिस साल जो ग्रन्थ उपहारके लिये नियत होगा वही दिया जायगा उसके बदले दूसरा कोई ग्रन्थ नहीं दिया जायगा।

५. प्राप्त अंकसे पहिलेका अंक यदि न मिला हो, तो भेज दिया जायगा। दो तीन महिने बाद लिखनेवालोंको पहिलेके अंक दो आना मूल्यसे प्राप्त हो सकेंगे।

६. बैरंग पत्र नहीं लिये जाते। उत्तरके लिये टिकट भेजना चाहिये।

७. बदलेके पत्र, समालोचनाकी पुस्तकें, लेख वगैरह **"सम्पादक, जैन हितैषी, पो० मोरेना, जिला ग्वालियर"** के पतेसे भेजना चाहिये।

८ प्रबंध सम्बंधी सब बातोंका पत्रव्यवहार मैनेजर, **जैनग्रंथरत्नाकर कार्यालय पो० गिरगांव, बम्बई** से करना चाहिये।

लक्ष्मी.

सचित्र मासिक पत्रिका।

आज नौ वर्षसे यह पत्रिका हिन्दी-साहित्यकी कैसी और कितनी सेवा कर रही है सो हिन्दी-जगतमें भली भांति प्रकटित है। इसके ऐतिहासिक लेखोंकी उत्तमताको अच्छे २ पत्रोंने मुक्तकंठसे स्वीकार किया है। इसकी कविताओंकी सरसता और भावपूर्णता पाठकोंके हृदयको बलात् मोह लेती है। रायल आठ-पेजीके ४० पृष्ठोंमें निकलती है। वार्षिक मूल्य सर्वसाधारणसे २), विद्यार्थियोंसे १।।), नमूनेका अंक ≈)

जैनहितैषी ।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम् ।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥

आठवां भाग] चैत्र श्रीवीर नि० सं० २४३८ [छठा अंक

कर्नाटक-जैन-कवि ।

२० **गुणवर्म**—इस नामके दो जैनकवि हो गये हैं, एक हरिवंशपुराणका कर्ता और दूसरा पुष्पदन्तपुराणका कर्ता । पहिला गुणवर्म ईस्वी सन् [illegible] के लगभग हुआ है । **अभिनव विद्यानन्दिने** अपने **काव्यसार** नामके ग्रन्थमें गुणवर्माके **शूद्रक** नामक ग्रन्थके कुछ पद्य उद्धृत किये हैं, जिससे मालूम होता है कि, उसने कोई शूद्रक नामक ग्रन्थ भी रचा था, जो अभी तक कहीं देखनेमें नहीं आया । इस ग्रन्थमें किसी **गंग** नामके राजाका जिसके कि **गंगार्जुन**, **गंगचक्रायुधांक**, **रूपकन्दर्प** आदि नामान्तर व विशेषण थे चरित्र और स्तवन है । **नागवर्म** कविने गुणवर्मको 'लक्षण ग्रन्थकर्ता' बतलाया है। इससे इसका बनाया हुआ कोई **व्याकरणग्रन्थ** भी होना चाहिये । इसके पीछेके **नागवर्म**, **नयसेन**, **रुद्रभट्ट** आदि कवियोंने अपने ग्रन्थोंमें गुणवर्मके कविता चातुर्यकी बहुत प्रशंसा की है, जिससे मालूम होता है कि, यह एक सुप्रसिद्ध

कवि हो गया है। दूसरे गुणवर्मका समय ईस्वी सन् १२३५ के लगभग निश्चित हुवा है।

२१ **गजांकुश**—**मल्लिकार्जुन**, **नयसेन** आदि कवियोंके पद्योंसे विदित होता है कि. **गज** अथवा **गजांकुश** नामका एक जैनकवि ईस्वी सन् ११९० के पहिले हो गया है। **दुर्गसिंहने** इसका 'विजितारिदंड नायक' कह कर उल्लेख किया है. जिससे मालूम होता है कि. यह कवि होनेपर भी एक शूर सेनापति था। इसका एक नाम **गजग** भी था। **रुद्रभट्ट**, **अंडय्य**, **काशिराज**. **कुमुदेन्दु** **वाणिवल्लभ** आदि कवियोंने इसकी स्तुति की है. परन्तु इसका अभी तक कोई भी ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हुआ है।

२२ **कविमल्ल**—**राजेन्द्रचूडके** राज्य कालमें (ईस्वी सन् १०५७) जो अठारहवां शिलाशासन लिखा गया है और जो **हेग्गडदेवके कोटि** नामक स्थानमें है, उससे ऐसा मालूम होता है कि. नुगुनाडके अधिपति चोलनरेशकी देकब्बे नामकी लड़की थी। यह नविलेनाडके स्वामी **एचन**को व्याही थी। इस एचनने अपने दायादोंको मार डाला था. इस अपराधमें उसका सार्वभौम नरेशकी आज्ञासे शिरच्छेद किया गया था। देकब्बे अपने पतिके इस विरहको सहन न कर सकी, इसलिये उसके साथ ही सती हो गई—चितामें जल गई। इस पतिव्रताके स्मरणार्थ जो शिलालेख लिखा गया है, उसका पद्य बहुत ही भावपूर्ण और सुन्दर है। कविमल्ल इसी लेखका रचयिता है। और इससे वह एक उत्तम कवि मालूम होता है। उसका कोई स्वतंत्र ग्रन्थ प्राप्य नहीं है।

२३ **नागवर्माचार्य**—यह **उदयादित्य** राजाका 'सेना नायक' और 'सान्धि वैग्रहिक मंत्री' था। यह ईस्वी सन् १०७०

के लगभग हुआ है। यह बड़ा धर्मात्मा और परमार्थी था। **बलिपुर** नामके स्थानमें इसने बहुतसे मन्दिर बनवाये थे और **कुप्पु-रेड्डे** नामके स्थानमें सिद्धतीर्थ स्थापित किया था। अपने भास्क-रादि भाइयोंको उद्देश करके इसने एक **चन्द्रचूड़ामणि शतक** नामक ग्रन्थकी रचना की थी। इस ग्रन्थका दूसरा नाम **ज्ञानसार** भी है। इसमें वैराग्यको जागृत करनेवाले बहुत ही सुन्दर पद्य हैं।

२४ **दामराज**—सार्वभौम **त्रिभुवनमल्ल** नरेश (राज्यकाल ई० सन् १०७६ से ११२६) का **गंगपेरमानडीदेव** नामक सा-मन्त राजा था। और उसका **नोक्कय हेग्गडे** नामका मंत्री था। पहिले यह कवि इसी मंत्रीका आश्रित था। परन्तु **शिवमोग्ग** तह-सीलमें जो दशवां शिलालेख है, उसमें इसने अपनेको 'सान्धिवैग्रहिक मंत्री' लिखा है। इससे मालूम होता है कि, पीछेसे इसने उक्त पद पा लिया होगा। गंगपेरमानडीदेवने बहुतसे जिनमन्दिरोंको ग्रामादि दान किये थे, और उनके शासन **दामराज**से लिखवाये थे। उक्त शासन लेखोंके पद्योंसे यह बात निःसंकोच कही जा सकती है कि, वह एक उच्च श्रेणीका कवि था। मालूम नहीं, इस कविने किसी स्वतंत्र ग्रन्थकी भी रचना की है, या नहीं। इसका समय ईस्वी सन् १०८९ के लगभग मालूम होता है।

२५ **शंखवर्म**—इसकी 'अलंकार शास्त्रकार' के नामसे ख्याति है। परन्तु इसका कोई ग्रन्थ अब तक उपलब्ध नहीं हुआ। द्वितीय **नागवर्म**ने अपने **काव्यावलोकन** ग्रन्थमें इसकी प्रशंसा की है। **रुद्रभट्ट**ने भी इसकी स्तुति की है।

२६ **नागचन्द्र**—इसका दूसरा नाम **अभिनवपंप** है। कन-ड़ीका यह वैसा ही कवि समझा जाता है, जैसे हिन्दीके **तुलसीदास**।

कर्नाटक प्रान्तमें नागचन्द्रकी **रामायण** वा **पंपरामायणका** प्रचार है। यह ग्रन्थ ऐसा सुन्दर और सरस है कि, इसे प्रत्येक धर्मका अनुयायी पढ़ता है। कोई इस बातका ख्याल नहीं करता है कि, इसकी कथा जैनधर्मके अनुसार है। यह ग्रन्थ गद्य पद्यमय है। इसमें छह आश्वास है। इस कविका दूसरा ग्रन्थ **मल्लिनाथ पुराण** है, जिसमें १९ वें तीर्थंकर **मल्लिनाथका** चरित्र १४ आश्वासोंमें वर्णित है। यह भी गद्य पद्यमय है। इसकी वर्णन शैली बड़ी ही हृदयग्राहिणी है। **जिनमुनितनय** और **जिनाक्षरमाला** ये दो ग्रन्थ भी इसी कविके बनाये हुए प्रसिद्ध हैं। परन्तु हमको इस विषयमें संदेह है। क्योंकि इन ग्रन्थोंकी रचना बहुत ही सादी और महत्त्वहीन है। यह कवि ईस्वी सन् ११०२ के लगभग हुआ है। भारतीकर्णपूर, कविता मनोहर, साहित्य विद्याधर, साहित्य सर्वज्ञ, सूक्ति मुक्तावतंस, आदि इस कविके उपनाम थे। यह जैसा विद्वान् था, वैसा ही धनवान् भी था। मल्लिनाथ पुराणकी प्रशस्तिसे ज्ञात होता है कि, इसने **बीजापुरमें** विपुल धन लगाकर मल्लिनाथ भगवान्का एक विशाल मन्दिर बनवाया था और उसी समय मल्लिनाथ पुराणकी रचना की थी। इसका निवासस्थान बीजापुर ही जान पड़ता है। इसके गुरुका नाम **बालचन्द्र** मुनि था। बालचन्द्र नामके दो मुनि हो गये हैं, जिनमेंसे एक **पुस्तकगच्छ** भुक्त **नयकीर्तिके** शिष्य थे और प्राभृत ग्रन्थोंके टीकाकार (कनड़ी) होनेसे 'आध्यात्मिक बालचन्द्र' कहलाते हैं। ये सन् ११९२ तक जीवित थे। दूसरे बालचन्द्र **वक्रगच्छके** थे और **वीरनन्दि** सिद्धान्त **चक्रवर्तीके गुरु मेघचन्द्र** (पूज्यपाद कृत समाधि शतकके टीकाकार) के सहाध्यायी थे। यही दूसरे बालचन्द्र **नागचन्द्रके** गुरु थे।

नागचन्द्र नामके एक और विद्वान् हो गये हैं, परन्तु वे गृहस्थ नहीं थे मुनि थे। **तत्त्वानुशासन, लब्धिसार टीका** और **विषापहार टीका** आदि कई संस्कृत ग्रन्थ उनके बनाये हुए हैं।

२७. **कन्ति**—यह स्त्री कवि थी और इसकी कविता बहुत ही मनोहारिणी होती थी। कनड़ी साहित्यमें शायद इसके पहिले और कोई स्त्री कवि नहीं हुई। **देवचंद्र** कविके एक लेखसे मालूम होता है कि यह छन्द, अलंकार, काव्य, कोष, व्याकरणादि नाना ग्रन्थोंमें कुशल थी। **बाहूबलि** नामक कविने अपने **नागकुमारचरि**-तके एक पद्यमें इसकी बहुत प्रशंसा की है और इसे 'अभिनववा-ग्देवी' विशेषण दिया है। **द्वारसमुद्रके** बल्लालराजा विष्णुवर्धनकी सभामें अभिनव **पंप** और **कन्तिसे** विवाद हुआ था। अभिनव-पंपकी दी हुई समस्याकी उसने पूर्ति की थी। अभिनवपंप चाहता था कि कन्ति मेरी प्रशंसा करे—उसकी की हुई प्रशंसाको वह अपने गौरवका कारण समझता था। परन्तु कन्ति पंपकी प्रशंसा नहीं करती थी। कहते हैं कि कन्तिने अन्तमें पंपकी कविताकी प्रशंसा करके उसको सन्तुष्ट कर दिया था—परन्तु सहज ही नहीं। पंपको इसके लिये एक ढोंग बनाना पड़ा था। यह राजमंत्रीके **धर्मचन्द्र** नामक पुत्रकी लड़की थी। इसका समय पंपके समयके लगभग समझना चाहिये। इस समय इसका बनाया हुआ कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है।

२८. **नयसेन**—यह कवि ईस्वी सन् ११११२के लगभग **मुळगुन्द** नामक तीर्थस्थानमें हुआ है। यह त्रैविद्य चक्रवर्ती **नरेन्द्रसेन सूरिका** शिष्य था। नरेन्द्रसेन बहुत प्रभावशाली विद्वान् हुए हैं। चालुक्यवंशीय **भूवनैकमल्ल** (सन् १०६९ से १०७६) उनकी

सेवा करते थे। नयसेनके बनाये हुए दो ग्रन्थ उपलब्ध हैं, एक तो कर्नाटक भाषाका **व्याकरण** और दूसरा **धर्मामृत**। धर्मामृतको **काव्यरत्न** भी कहते हैं। इसमें १४ आश्वास हैं। इसकी कनड़ी भाषा बहुत ही मधुर, ललित तथा शुद्ध है। नीति ग्रन्थोंकी पद्धतिसे इसमें श्रावकाचारका विस्तृत स्वरूप कहा है। इस कविकी भी कनड़ीके नामी कवियोंमें गणना है। इसके पीछेके कवियोंने इसे 'सुकवि निकर पिक माकन्द,' 'सुकविजनमनः पद्मानि राजहंस' आदि विशेषणोंसे भूषित किया है।

[असमाप्त]

श्रीसोनागिर सिद्धक्षेत्र

और

हमारे विचार।

बहुत कम जैनी भाई ऐसे होंगे, जो इस सिद्धक्षेत्रसे परिचित न हों यह तीर्थ बुन्देलखंडके **दतिया** राज्यके अन्तर्गत है। जी. आई. पी. रेलवेके सोनागिर स्टेशनसे लगभग दो ढाई मील दूरीपर सोनागिर पर्वत है। इसका प्राचीन नाम श्रमणगिरि वा श्रमणाचल है। 'श्रमण' शब्दका अर्थ जैन मुनि होता है। इस पर्वतपर पूर्वकालमें जैन मुनि निवास करते थे और अनेक जैन मुनियोंने यहांसे मोक्ष प्राप्त किया था, इसलिये इसका श्रमणगिरि नाम अन्वर्थक मालूम होता है। श्रमणगिरि, श्रवनगिर, सवनगिर, और सोनगिरि इस तरह क्रमसे अपभ्रंश होते होते सोनागिर शब्द बना है। इस पर्वतपर जो चन्द्रप्रभ

भगवानका मुख्य मन्दिर है, उसके शिलालेखसे[1] मालूम होता है कि, विक्रमसंवत् ३३५ में **श्रमणसेन** और **कनकसेन** नामके मुनियोंने जो कि **मूलसंघ** और **बलात्कारगण**के थे, इस मन्दिरकी प्रतिष्ठा करवाई थी और सोनागिरके मंदिरोंमें यही मन्दिर सबसे प्राचीन है। आश्चर्य नहीं कि, इन्हीं श्रमणसेन मुनिके नामसे इस पर्वतका नामकरण हुआ हो । 'श्रमण' का अपभ्रंश जिस तरह 'सोन' होता है, उसी तरह 'कनक' (कनकसेनका संक्षिप्तनाम) के पर्यायवाची 'स्वर्ण' का अपभ्रंश भी 'सोन' ही होता है। बहुत लोगोंकी राय है कि, सोनागिर उस सुवर्णगिरि शब्दका अपभ्रंश है, जिसका कनकसेनसे कोई सम्बन्ध नहीं है। परन्तु यह सुवर्णगिरि क्यों कहलाया इसका वे कोई बलवान् प्रमाण नहीं दे सकते हैं। प्रत्यक्षमें वहां कोई ऐसे सुवर्ण पाये जाने आदिके चिन्ह नहीं हैं, जिनसे इस नामकी सार्थकता सिद्ध की जा सके। विरुद्ध इसके श्रमणाचल वा श्रमणगिरि नाम वहां जो कई मन्दिरोंमें शिलालेख हैं, उनमें लिखे हुए मिलते हैं और अर्थमें भी ये नाम ठीक मालूम होते हैं अस्तु ।

इस पवित्र तीर्थपर प्रतिवर्ष चैत्रमासके प्रारंभमें मेला लगता है और उसमें दूर दूरके कई हजार यात्री एकत्र होते हैं। यद्यपि इस वर्ष झांसी आदि कई स्थानोंमें प्लेग हो रहा था, इस लिये उस ओरके बहुत कम लोग आये थे और कुछ आये भी थे, सो

१ वर्त्तमानमें जो चन्द्रप्रभका मन्दिर है, वह सम्बत् १८८३में मथुरा निवासी शेठ लक्ष्मीचन्दजीका जीर्णोद्धार कराया हुआ है। संवत् ३३५के पुराने लेखका सारांश हिन्दीमें उक्त जीर्णोद्धार करनेवालोंने जुदे शिलालेखपर लिखकर लगा दिया है। वह मौजूद है, परन्तु मालूम होता है पुराने लेखका पता नहीं है।

राज्यके प्लेग प्रबन्धकर्त्ताओंद्वारा लौटा दिये गये थे, तो भी लगभग डेढ़ दो हजार भाइयोंका समूह हो गया था। अपने चिरकालके मनोरथको पूर्ण करनेके लिये द्वितीयाकी संध्याको हम भी इस समूहमें जाकर शामिल हो गये थे और पंचमीकी संध्यातक रहे थे। इस बीचमें बन्दना करते समय, जलेब निकलते समय और दूसरे मौकोंपर हमारे हृदयमें जो विचार उत्पन्न हुए, उन्हें हम वर्त्तमान जैन समाजके उपयोगी समझकर इस लेखमें प्रकाशित करना चाहते हैं। आशा है, उनसे हमारे पाठक कुछ न कुछ लाभ अवश्य उठावेंगे।

सोनागिरका पर्वत गिरनार आदि पर्वतोंके समान ऊंचा तथा विस्तृत नहीं है-बहुत ही मामूली है। विना किसी विशेष कष्टके दो ढाई घंटेमें अच्छी तरहसे इसकी बन्दना हो सकती है और पर्वतका घेर तो इतना कम है कि, परिक्रमा करनेमें पूरा घंटा भर भी नहीं लगता है। इतना छोटा होनेपर भी इस पर्वतपर जैनियोंकी विलक्षण उदारताने ६७ मन्दिर बनवा दिये हैं और यदि यह मन्दिर बनवानेकी उदारताका संक्रामक रोग बराबर इसी तरह जोर पकड़े रहा, जैसा कि वर्त्तमानमें है तो बहुत ही थोड़े दिनोंमें सारा-कासारा पर्वत मन्दिरोंसे ढक जायगा और फिर यह जानना कठिन हो जायगा कि, वास्तवमें यह कोई पर्वत है। केवल मन्दिरोंका एक स्तूपसा दीखेगा।

बन्दना करते समय हमने जब इस बातपर गौर किया कि, ये मन्दिर कितने पुराने हैं, तो मालूम हुआ दो चार मन्दिरोंको छोड़कर पर्वतके प्रायः सब ही मन्दिर ऐसे हैं, जो विक्रम संवत् १८०० के पीछेके हैं अर्थात् केवल १५० वर्षके भीतर इन सबकी रचना हुई है। प्राचीन मन्दिरोंमें या तो चन्द्रप्रभुका मन्दिर है, या एक

मन्दिरमें संवत् १२७२ की धर्मचन्द भट्टारकके उपदेशसे प्रतिष्ठा की हुई प्रतिमा है। इसके सिवाय और कोई प्रतिबिम्ब या मन्दिर प्राचीन नहीं मालूम हुए। और यदि हमारे दृष्टिदोषसे कोई रह भी गये हों, तो उनकी संख्या दो चारसे अधिक नहीं होगी। इन सब मन्दिरोंमें जो प्रतिमाएँ हैं, यदि सत्य और स्पष्ट कहनेमें कोई पाप न हो, तो हम कहेंगे कि उनमें कोई भी ऐसी नहीं है जो शिल्पशास्त्रके नियमानुसार बनाई गई हो और उनसे प्रतिमापूजनका जैनियोंका जो मुख्य उद्देश है, उसकी पूर्ति होती हो। शिल्पशास्त्र वा मूर्तिनिर्माण विद्याकी सूक्ष्म बातोंपर ध्यान रखना तो दूर किनार रहा, इन मूर्तियोंके बनानेमें इतने भी कौशल्य पर ख्याल नहीं रक्खा गया, जितना वर्त्तमानमें जयपुर आदिके मूर्ति बनानेवाले रखते हैं। एक या दो प्रतिमाएँ अवश्य ही संगमर्मरकी बनी हुई ऐसी हैं, जिन्हें बुरी नहीं कह सकते हैं तो भी वे ऐसी नहीं हैं कि हमारे हृदयपर वैराग्यका कुछ गहरा असर डाल सकें। इनको छोड़कर प्रायः जितनी प्रतिमा हैं, वे सब बेडौल, बेढंगी, अस्वभाविक और गिरी हुई शिल्पकलाकी दृष्टान्त स्वरूप हैं। दृष्टि, मुखमुद्रा आदि सूक्ष्म भाव जो चतुर कारीगरकी रचनामें दृष्टिगोचर होते हैं उनकी तो बात ही निराली है पर इनके बनानेवाले कारीगर और बनवाने वाले धनिक तो मालूम होता है, यह भी नहीं जानते थे कि ऊपरके धड़से पैर बड़े होना चाहिये या छोटे शिर और धड़के मापमें कितना तारतम्य होना चाहिये। पैरोंमें घुटनोंके स्थानपर अथवा नीचे ऊपर कुछ चढ़ाव उतारकी जरूरत है या नहीं ऐसी प्रतिमाएँ तो हमने ५०—६० से कम न देखी होंगी, जिनके पैरोंके पंजोंकी लम्बाई प्रतिमाके परिमाणसे जितनी होनी चाहिये,

उससे आधी या तिहाई भी नहीं थी। जब हमने इन बातोंका विचार किया कि, ऐसी प्रतिमाओंकी स्थापना क्यों की गई—इतने अधिक मन्दिर क्यों बन गये और ये सब लगभग डेड़ सौ वर्ष ही में क्यों बने, तो हमारी दृष्टिके सामने पिछली दो सौ वर्षोंकी अंध-श्रद्धा तथा अज्ञानताका और भट्टारकोंके विवेकशून्य शासनका चित्र खिंच गया। जब भट्टारक गण स्वयं विद्याहीन होने लगे समीचीन विद्या तथा चारित्रसे रहित होने लगे और साथ ही साथ उनमें स्वार्थकी मात्रा बढ़ने लगी, तब उन्होंने जैनधर्मकी रक्षाका केवल यही उपाय तजवीज किया कि, खूब मन्दिर बनवाये जावें और प्रतिष्ठाएँ करवाई जावें। इन कामोंसे उनके स्वार्थकी साधना भी होती थी। सुतरां इस ओर उन्होंने अपनी शक्तिका भी उपयोग विशेष रूपसे किया। जैन समाजमें अज्ञानका साम्राज्य था ही फिर क्या था धड़ाधड़ मन्दिर बनने लगे! एकको सिंगईकी पगड़ी बँधवाई गई, तो दूसरा सवाई सिंगई बननेको तयार हो गया। और एकने पांच हजार लगाकर मन्दिर बनवाया, तो दूसरा दश हजार लगानेकी प्रतिज्ञा करने लगा। इस तरह देखादेखीसे बराबर मन्दिर बनते गये और उनकी संख्या सैकड़ोंपर पहुंच गई। जो लोग भट्टारकोंके शासनसे जुदे हो गये थे जिनपर तेरहपंथकी मुद्रा लग चुकी थी। उन्होंने भी इस कार्यमें योग दिया, वे भी मन्दिर बनवानेमें बीसपंथियोंसे पीछे न रहे। प्रभावनाका मन्दिर बनवानेके अतिरिक्त और भी कोई अच्छा मार्ग है—इसका ज्ञान उन्हें भी नहीं हुआ। हम यह नहीं कहते हैं कि, इन मन्दिरोंके बनवानेवालोंमें धर्मबुद्धि बिलकुल ही नहीं थी, अथवा इन्होंने कुछ पुण्योपार्जन नहीं किया होगा। नहीं, हमारा अभिप्राय केवल यह है कि, वे अंधश्रद्धालु और

गतानुगतिक होंगे। उनमें धर्मके स्वरूपका ज्ञान बहुत ही कम होगा। जिसमें भट्टारकजीने धर्म कह दिया उसमें धर्म और जिसमें अधर्म कह दिया उसीमें अधर्म समझते होंगे। यदि वे कमसे कम इतना भी समझते कि, जैनियोंके यहां जो मूर्तिपूजा है। वह केवल वैराग्य भावोंकी वृद्धिके लिये तथा अपने पूर्व महात्माओंके उत्कृष्ट चरित्रका स्मरण करनेके लिये है। एकपर एक मन्दिर बनाकर भगवानको राजी करनेके लिये नहीं है, तो उनके द्वारा ऐसी बेडौल प्रतिमाओंकी स्थापना न होती। यदि वे जानते कि, प्रतिमाओंकी सौम्यता तथा शान्तिताके अनुसार भावोंमें भी कुछ तारतम्य होता है, तो जिन मन्दिरोंमें बीस २ हजार रुपया लगाये हैं, उनमें प्रतिमाओंके लिये भी दो २ चार २ हजार रुपये खर्च करते। जिन दिनोंमें ये मन्दिर बने, उन दिनों यदि जैनसमाजमें अज्ञान अंधकार नहीं होता, तो अवश्य है कि, मंदिरोंके साथ २ चार छह पाठशाला, पुस्तकालय और दानालय आदि संस्थाएं भी स्थापित होतीं। प्रभावनाके लिये ये काम भी कुछ कम महत्त्वके नहीं हैं। पर इनका महत्त्व उस समयका समाज नहीं समझ सकता है, जब चारों ओर अज्ञान अंधकार छाया हुआ था। आज चारों ओर ज्ञान सूर्यका प्रकाश फैल रहा है और जहां तहां विद्याको ही सबसे अधिक महत्त्व दिया जा रहा है। परन्तु ऐसे समयमें भी जैनसमाज जब मन्दिर बनवाने और प्रतिष्ठा करवानेमें ही सबसे अधिक दत्तचित्त है, तब उस समयमें जब कि विद्यादेवी केवल धर्मगुरुओंकी अथवा इनेगिने दश पांच पंडितोंकी ही गृहदासी हो रही थी, पुस्तकालय पाठालयादिकों को कौन पूछता था।

जिन बिढंगी प्रतिमाओंका हमने ऊपर जिक्र किया है, उनके विषयमें दूसरे लोगोंके मत कैसे हैं, यह जाननेके लिये जब हमने

दो चार सज्जनोंसे जिनमें एक दो शिक्षित भी थे, पूछा तो उन्होंने शिरःसंचालन और ईषन्नेत्र मुकुलित करते हुए कहा—आहा! कैसी दिव्य मूर्तियां हैं। अमुक मन्दिरकी मनोज्ञ प्रतिमाके समक्ष कैसी शान्ति मिलती है। यह सुनकर मैंने अपने मनमें कहा,—"हे अन्धश्रद्धे, तुझे नमस्कार है। तेरे प्रचंड शासनने लोगोंकी सत्य-निष्ठा और सदसद्विवेक बुद्धिको तो मानो देश निकाला ही दे दिया है। तू लोगोंको जबर्दस्ती धर्मात्मा बननेके लिये लाचार करती है। जो तेरी आज्ञासे जरा भी विरुद्ध हुआ कि, उसकी मिट्टी खराब होती है। आज '**देवागमनभोयानादि**' कारिकाएँ कहकर भग वानकी परीक्षा करनेवाले **भगवत्समन्तभद्र** जैसे आचार्य भी होते, तो उनपर भी आपत्ति आये विना न रहती। उनका उपदेश सुनना भी बन्द कर दिया जाता। देखना है कि, हमारे समाजमें अब तेरी तूती और कितने दिन बोलती है।"

पर्वतके ऊपर पहुंच कर जब हमने एकबार सब ओर दृष्टि डाली तब हमारे मनमें एक अपूर्व भावका उदय हुआ। अहा! यह वही पवित्र भूमि है, जहां किसी समय सैकड़ों मुनि संसारकी विषय-वासनाओंसे विरक्त हो कर आत्माका चिन्तवन करते थे। जगतके सूक्ष्मसे सूक्ष्म पदार्थोंका अपनी विशदबुद्धिसे विचार करते थे, और निरन्तर, प्राणीमात्रके हितके लिये प्रयत्नशील रहते थे। यह वही विद्याभूमि है, जहां वृक्षोंके नीचे बैठे हुए मुनियोंके पास हजारों ब्रह्मचारी विद्याध्ययन करते थे और अपने आगामी जीवनको परार्थ-तत्पर संयमी और धर्म प्रचारक बनानेकी सामग्री एकत्र करते थे। यह वही विजयभूमि है, जहां बड़े २ दिग्गज वादी जैनधर्मपर विजय प्राप्त करनेके लिये आते थे, परन्तु स्याद्वादकी सत्य युक्ति-

योंके सामने गलितमद हो कर चुपचाप चले जाते थे, या सब कुछ छोड़ छाड़कर आप भी इस सत्य धर्मकी छायामें बैठनेका सौभाग्य प्राप्त करते थे। आज यद्यपि यह भूमि पहलेकी अपेक्षा अधिक समृद्ध-शाली जान पड़ती है—सैकड़ों गगनचुम्बी मन्दिरोंसे शोभित हो रही है, और एक राजपुरीसी दिखती है, परन्तु राजपुरी क्या तपोवनकी बराबरी कर सकती है? विद्वान्की झोपड़ीकी समता क्या राजाका महल कर सकता है? अहा! यदि इन शताधिक मन्दिरोंके साथ २ सौ पचास मुनि नहीं ब्रह्मचारी ही रहकर विद्याभ्यास करते होते, दश पांच उपदेशक निरन्तर आने जाने-वाले यात्रियोंको उपदेश देकर उनका कल्याण करते होते, जिन मन्दिरोंमें देवोंकी स्थापना है, उनमें दो चार हजार शास्त्रोंकी भी स्थापना होती और उनसे दर्शक गण अपने हृदयका अंधकार हटा-नेका प्रयत्न करते होते तो इनके दर्शनोंसे जो आनन्द होता है. वह कितनी वृद्धिको न प्राप्त होता? ऐसा होता तो मानो पंचभूता-त्मक शरीरमें जीव विराजमान हो जाता. चारित्रके बिल्लौरके साथ सम्यग्ज्ञानका मणि जड़ जाता, और तारागण मंडित आकाशमें पूर्ण चन्द्रका उदय हो जाता। क्या वह दिन कभी आयगा, जब उस स्मृतिपथके पार पहुंची हुई सच्ची शोभाका और इस वर्तमानकी बना-वटी तथा निर्जीव शोभाका सम्मेलन होगा? ऐसे दिवसका लाना वर्तमानके धर्मप्राण युवकोंपर और भविष्यकी प्रजाके हाथमें है।

पर्वतके नीचे भी मन्दिरोंकी कमी नहीं है। लगभग १६ मन्दिर हैं और कई धर्मशालाएँ हैं।

वहांके मन्दिरोंमें जो चढ़ावा चढ़ता है, उसको पंडे लोग लेते है। जैनियोंके मन्दिर जहां कहीं भी हैं उनकी चढ़ी हुई सामग्री

माली या व्यास लेते हैं और कोई नहीं ले सकता है परन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि, उन व्यासों या मालियोंका उनपर अधिकार हैं—उन्हें कोई कानूनी स्वत्व प्राप्त है। यदि मन्दिरवाले चाहें तो उन्हें निकाल कर उनके स्थानमें दूसरोंको रख सकते हैं। पर सोनागिरके पंडे जैनियोंकी दुर्बलता और संघशक्तिकी कमीसे ऐसे नहीं रहे हैं, वे वहांके अधिकारी बन बैठे हैं और भिक्षुकसे स्वामी बनकर जैनियोंके साथ मन माना व्यवहार करते हैं। चढ़ावाके मौरूसी अधिकारी तो वे वर्षोंसे बन ही रहे थे, पर अब इस वर्ष उन्होंने चन्द्रप्रभके मन्दिरमें एक भंडार वही रख दी है और आश्चर्य की बात यह है कि, उन्हें भोले भाई रुपया भी देते हैं। पर्वतके प्रायः प्रत्येक मन्दिर पर पंडोंकी औरतें बैठी रहती हैं और दर्शन करनेवालोंसे पैसा मांगती हैं। इनके सिवाय पर्वतपर सैकड़ों भिखारी तथा वैष्णव साधु भी बैठे रहते हैं, जो 'चन्द्रप्रभ स्वामी तुम्हारा भला करेगा' कहकर पैसा अधेला मांगते हैं। देहाती भाइयोंको ये लोग बहुत तंग करते हैं और उन्हें उनके हृदयमें 'कंजूस' आदि शब्दोंसे पीड़ा पहुंचा कर पैसा देनेके लिये लाचार करते हैं।

पूछनेसे मालूम हुआ कि, इस तीर्थपर जो भंडार एकत्र होता है, वह एक जगह नहीं होता है—कोई १४ या १५ जगह होता है, परन्तु कहां कितना होता है और उसका उपयोग क्या होता है, यह किसीको मालूम नहीं होता है। इतने बड़े तीर्थपर यदि अच्छा प्रबन्ध किया जावे और सब भंडार एकत्र जमा किया जावे तो सहज ही १५–२० हजार रुपया वार्षिक एकत्र हो सकता है। और उससे मन्दिरोंकी मरम्मत पूजाका प्रबन्धादि होकर भी एक दो धार्मिक संस्थाएँ अच्छी तरहसे चल सकती हैं। पर इतना

ख्याल किसको है? जहां रुपया दे देनेमें ही पुण्य समझ लिया जाता है-उसका उपयोग क्या होता है इस ओर दृष्टि ही नहीं जाती है। वहां ऐसी बातोंको कौन सोचे? लगभग एक वर्षसे यहां तीर्थक्षेत्रकमेटीकी ओरसे एक मुनीम रक्खा गया है और सब जगह आन्दोलन किया गया है कि, इस प्रामाणिक संस्थाको सब लोग भंडार देवें। परन्तु हमारे लकीरके फकीर अज्ञानी भाई इस संस्थाके पास भी खड़े होनेको डरते हैं। इस संस्थासे जिन लोगोंके स्वार्थमें बाधा पड़नेकी संभावना है और जिन्हें अपने अधिकारोंके छिन जानेका डर है, वे लोग तो इसे न जमने देनेके लिये जी जानसे प्रयत्न करते ही हैं, परन्तु साथ ही दूसरे भाई भी इसके साथ सहानुभूति नहीं दिखलाते हैं। हमने तीर्थक्षेत्रकमेटीके इन्स्पेक्टर बाबू वंशीधरजी और मुनीम बदामीलालजीकी प्रेरणासे चतुर्थीको कमेटीके दफ्तरके सामने एक सभा करके सोनागिर तीर्थकमेटीके संगठन करनेका और तीर्थक्षेत्रकमेटीका परिचय करानेका विचार किया। यह सभा संध्याको की गई, और उसमें जैसे तैसे २५०--३०० भाई जमा भी हुए तथा हमने जैनजातिकी उन्नति कैसे हो। इस विषयपर एक व्याख्यान भी दिया, परन्तु बहुतसे सज्जनोंके द्वारा जिनमें इस ओरके बहुतसे अगुए भी शामिल थे। इस बातकी जी भरके कोशिश की गई कि, इस सभामें कोई भाई न जावे। इस घटनासे हमको बड़ा भारी दुःख हुआ। समाजमें जहां देखिये वहां इसी प्रकार अज्ञानता स्वार्थपरता और गतानुगतिकताका साम्राज्य हो रहा है। न जाने हमारे समाजके शिक्षित भाइयोंका ध्यान इस ओर कब जायगा। जिन तीर्थोंपर उचित साधन मिलानेसे समाजके अगणित उपकार किये जा सकते हैं-अनेक संस्थाओंको सहायता दी जा सकती है, उन्हींकी

ऐसी दशा देखकर न जाने उनके हृदयमें धार्मिक जोश कब आयगा। जिनके हृदयमें समाजके हित करनेकी सच्ची उत्कंठा है, उन्हें चाहिये कि, और नहीं तो ऐसे स्थानोंमें कमसे कम एक २ उपदेशक रखनेका प्रबन्ध तो फिलहाल कर दें। मन्दिर बहुत बन चुके धर्मशालाएँ भी बहुत बन गईं, अब ऐसा उपाय करना चाहिये, जिससे इन मन्दिरों और धर्मशालाओंके बनवानेका उद्देश जो धर्मकी उन्नति करता है, वह थोड़ा बहुत सिद्ध होने लगे।

यहां प्रतिदिन द्वितीयासे पंचमी तक एक २ जलेब निकलती है, और उसके साथ खूब गीतनृत्यादि होते हैं। पंचमीके दिन दो जलेबें निकलनेवाली थीं. इससे जलेब निकालने वालोंमें विवाद हो गया। सुनते हैं कि. उक्त विवाद यहांतक बढ़ गया कि. राज्यके अधिकारियों तक पहुंचा और वहांसे यह फैसला हुआ कि, एक जलेब १२ बजेके पहिले २ निकल जावे और दूसरी उसके बाद, कहां है वे धर्मात्मा. जो कहते हैं कि. जैन समाजमें धार्मिक श्रद्धा बहुत है। क्या इसीको धार्मिक श्रद्धा और धार्मिक विचार कहते हैं ? क्या ऐसे विवादोंका यह अर्थ नहीं है कि, ये जलेबें श्रीजीकी नहीं, किन्तु हमारे श्रीमानों तथा पंचायतके अगुओंकी निकलती हैं। जैनधर्मके उदार पवित्र और शान्त सिद्धान्तोंसे तो हमारी समझमें ये बातें कोसों दूर हैं। एक जलेबमें श्रीजीके सामने पद कहे जा रहे थे। एक नवयुवकने एक नये ढंगका पद जिसमें कि विद्याकी उन्नति करने का जोर भरा था, कहना प्रारंभ किया, बेचारेने एक दोही तुकें कही थीं कि, एक प्रबन्धक महाशयने डपट कर कहा यहां ऐसे पद मत गाओ यहां तो कोई ' हजूरी' पद गाना चाहिये। युवक अप्रतिभ होकर चुप हो रहा। उसके बाद

ही आपने श्रीजीको उद्देश करते हुए अपने तानसेनी कंठसे एक पद कहना शुरू किया। उक्त पद मुझे स्मरण नहीं रहा, परन्तु उसका अभिप्राय यह था कि, प्रातःकाल उठकर जिनमन्दिरको जाना चाहिये और पूजन बन्दन करना चाहिये इत्यादि, जब आप इसे गाते समय भगवानकी प्रतिमाके सामने हाथोंसे इशारा करते थे उस समय यही भास होता था कि, भक्त महाशय श्रीजीको उपदेश दे रहे हैं कि, आप यहां बैठे २ क्या कर रहे हैं—मन्दिरको जाया कीजिये। यह सुनकर हमने समझ लिया कि, 'हजूरी' पदोंका यह अर्थ है। जैनियोंके मेलोंमें तथा जुलूसोंमें ऐसे एक नहीं, सैकड़ों दृश्य दिखलाई देते हैं, कोई परीक्षक बुद्धिसे देखनेवाला होना चाहिये। इस समय जैनियोंमें जो अज्ञान अंधकार फैला हुआ है धार्मिक-तत्त्वोंकी जो अज्ञता बढ़ रही है, उसके कारण वे अपने धार्मिक-कृत्योंको जिस ढंगसे करते हैं तथा अपने इष्ट देवोंके विषयमें उनके हृदयमें जो संस्कार बैठे हुए हैं उनको देखकर उनके विषयमें पूछताछकरके कोई भी अपरिचित विदेशी पुरुष यह नहीं जान सकता है कि, जैनी ईश्वरको सृष्टिका कर्त्ता नहीं मानते हैं, वे एकेश्वरवादी नहीं हैं और प्रतिमाओंको अपने भावोंकी शुद्धी-के लिये पूजते हैं। वह यही समझ सकता है कि, वैष्णव शैवादि-के समान जैनधर्म भी हिन्दूधर्मकी एक शाखा है। इन्होंने ईश्वरके नामादिमें कुछ भेद मान लिये हैं वास्तवमें कुछ अन्तर नहीं है। अपने पवित्र सर्वथा स्वतंत्र और अद्वितीय धर्मके विषयमें लोगोंके द्वारा ऐसे अनुमान बँधवाना, हमारे लिये बड़ी ही लज्जाका विषय है।

सोनागिरमें तीन भट्टारकोंकी गद्दी हैं, जिनमेंसे भट्टारक हरेन्द्र-भूषणजी वहीं रहते हैं। इनके एक दो शिष्य भी हैं इनके पास

सम्पत्ति तो बहुत सुनते हैं, पर विद्या भी थोड़ी बहुत है या नहीं इसमें सन्देह है। तो भी इस प्रान्तमें आपपर श्रद्धा करनेवाले भोलेभक्तोंकी कमी नहीं है। आजकल आपके वहांके पंडोंसे कई मुकद्दमे चल रहे हैं। तीर्थक्षेत्रकमेटीसे भी आप बहुत अप्रसन्न रहते हैं। हमने आपको एक सरकारी कागजपर दस्तखत करते हुए देखा तो मालूम हुआ कि आप स्वयं ही अपनेको 'श्रीमत् स्वामी श्री १०८ श्रीजैनगुरु भट्टारक हरेन्द्रभूषणजी लिखते हैं। अच्छा है, और कोई नहीं लिखे, तो स्वयं लिखनेसे चूकनेमें कौनसी बुद्धिमानी है? हम आपके दर्शन करनेके लिये इसलिये गये थे कि, सोनागिरका शास्त्रभंडार देखें। दो तीन बार जानेसे अपने ग्रन्थ तो नहीं, पर ग्रन्थोंकी सूची दिखलानेकी कृपा कर दी। उससे मालूम हुआ कि, ग्रन्थोंका संग्रह अच्छा है और बहुतसे अपूर्व ग्रन्थ भी हैं वैदिक धर्मियोंके भी कई सौ ग्रन्थ होंगे। इस सूचीमें एक बड़ी भारी कमी यह है कि, नम्बर नहीं हैं और नम्बरके बिना एक ग्रन्थके ढूंढनेमें दो दिन लग जाते हैं। महाराजको लड़ाई झगड़ोंके मारे इतना अवकाश कहां कि, ग्रन्थोंको सिलसिलेसे लगा दें और नम्बरवार सूची बना दें। यदि महाराजके कोई शिष्य ही इसका प्रयत्न करें तो अच्छा हो।

महासभाके विषयमें कुछ नोट।

चैत्रवदीके जैनमित्रसे महासभाकी अन्तर्व्यवस्था सम्बन्धी बहुत सी विलक्षण बातें मालूम हुई हैं। उसके दफ्तरमें [illegible] मासिकका क्लार्क होनेपर भी अधिवेशन सरीखे जरूरी कामोंके पत्रोंकी तामिली डेढ़ २ महिनेमें की जाती है। और उसमें भी

जालसाजियां की जाती हैं । अबकी बार लखनौके पंचोंके निमंत्रणको जो कि पहिले आ चुका था, **फीरोजाबादके** निमंत्रणसे पीछे आया हुआ बतलाकर सभासदोंकी आखोंमें धूल डालकर उनकी सम्मतियां मांगीं गई और इस तरह सभाके अधिवेशन होनेके मार्गमें एक प्रकारसे कांटे बिछाये गये । महासभाका जब किसी वर्ष कहींसे निमंत्रण नहीं आता है, तब उपालम्भ दिया जाता है कि, समाजमें उत्साह नहीं है लोगोंको सभादि धर्म सम्बन्धी कार्योंसे प्रेम नहीं है । परन्तु जब कहींके भाई उत्साह करके निमंत्रण देते हैं तब महासभाका दफ्तर ऐसी मुस्तैदी और भलमंसाहत दिखलाता है। फिर लोग क्यों न सोचें कि, **वरं शून्या शाला न च खलु वरो दुष्ट वृषभः** ।

जैनमित्रके लेखोंमे जो कि **फीरोजाबाद** और **लखनौके** अधिवेशनके सम्बन्धमें प्रकाशित हुए हैं, यह फलितार्थ निकलता है कि महासभाके सहायक महामंत्री **श्रीमन्त सेठ मोहनलालजी** लखनौकी अपेक्षा फीरोजाबादमें महासभाका होना अच्छा समझते हैं और इसी कारण उनके दफ्तरसे उक्त लज्जास्पद कार्यवाही हुई है। परन्तु श्रीमन्त सेठजी फीरोजाबादके अधिवेशनको क्यों पसन्द करते हैं. यह एक गूढ प्रश्न है । हमारी समझमें इसका सम्बन्ध **दस्सों बीसोंके** उस झगड़ेसे है, जो कि प्रकाश रूपमे शान्त हुआ बतलाया जाता है । इस झगड़ेमे समाजमें जो दो पक्ष पड़ गये है, एक धनिकों वा सेठोंका और दूसरा शिक्षितोंका । श्रीमन्त सेठजी भी उनमेंसे एक पक्षके पुरस्कर्ता हैं। फीरोजाबाद स्थान सेठ **मेवारामजी** तथा उनके पक्षके प्रभावसे अतिशय अभिभूत है । इस पक्षके सज्जन समझते होंगे कि, यदि फीरोजाबादमें अधिवेशन हो जा-

यगा, तो हम अपनी मनमानी कार्यवाही करके जीके फफोलोंको शान्त कर लेंगे और महासभाको एक विशिष्ट पथपर खींच लेजानेकी कोशिस करेंगे। इसलिये उन्होंने जी जानसे फीरोजाबादके अधिवेशनके लिये कोशिस की और श्रीमन्त सेठजीको इस बातके लिये लाचार किया कि, जैसे बने तैसे वे सभासदोंकी सम्मति लेकर यह कार्य सिद्ध करा देवें। इधर सेठोंकी मुख पत्रिका रत्नमालाने भी एक लम्बा चौड़ा लेख लिखकर फीरोजाबादका अधिवेशन मंजूर करानेकी कोशिश की। इन बड़े २ प्रयत्नोंसे इसमें सन्देह नहीं कि, फीरोजाबादका अधिवेशन निश्चित हो जाता, और वहां मुजफ्फरनगरके अधिवेशनसे भी बढ़कर आनन्द आये विना नहीं रहता, परन्तु दुर्भाग्यसे बाबू अजितप्रसादजी वकील इस बीचमें आ कूदे और उन्होंने रंगमें भंग कर दिया। लोग समझेंगे कि, उन्होंने यह कार्यवाही अपने निवासस्थान लखनौके मेलेमें महासभाका अधिवेशन करानेके लिये की होगी, परन्तु नहीं. लखनौके अधिवेशनकी अपेक्षा उन्हें महासभामें धींगाधींगी न होने देनेका अधिक ख्याल है। वे चाहते हैं कि, अब महासभा एक सुव्यवस्थित और नियमबद्ध संस्था हो जाय। उसमें नियमविरुद्ध कार्रवाइयां न हों। इसीलिये उन्होंने पिछले मथुराके मेलेमें जहां कि, सेठ पक्षकी धूमधाम थी, महासभाका अधिवेशन न होने पावे इस बातका भी प्रयत्न किया था। महासभाके सभापति दानवीर सेठ माणिकचन्दजीने जो फीरोजाबादवालोंके तारों और पत्रोंके जबाबमें फीरोजाबादमें अधिवेशन करनेके विषयमें टालटूल बतलाई है और जैनमित्रमें प्रकाशित करवाया है कि, श्रीमन्त सेठ मेरे पत्रोंपर बिलकुल ध्यान नहीं देते हैं, इसलिये मैं सभापतित्वका

स्तीफा भेज देता हूं उससे साफ जाहिर होता है कि, वे फीरोजाबादके अधिवेशनमें महासभाका अनिष्ट देखते हैं। वे स्पष्ट रूपसे भले ही न कहें, पर उन्हें सेठ पक्षकी मनमानी कार्रवाईयोंका और उसका समाजके हितकी ओर जो दुर्लक्ष्य है, उसका जरूर भय है और श्रीमन्त सेठ जो सभापति महाशयकी लिखा पढ़ी पर ध्यान नहीं देते हैं, उसका कारण उनका प्रबल पक्ष मोह है। इससे कोई यह न समझ ले की, दानवीर सेठजी अथवा बाबू अजितप्रसादजी दूसरे पक्षके हैं, इसलिये वे सेठ पक्षके अभिमत अधिवेशनके विरोधी हैं। वे शिक्षित पक्षके अनुयायी अवश्य हैं परन्तु साथ ही वे यह भी चाहते हैं कि, महासभामें यह दुस्सों बीसोंकी चर्चा ही न उठे और कुछ उपयोगी कार्य हों। और फीरोजाबादमें ऐसा होना असंभव सा प्रतीत होता है।

महासभाके विषयमें यह जो खींचातानी और धींगाधींगी हो रही है, इसमें जितना खेद होता है, उतना ही बल्कि उससे भी अधिक इस बातका हर्ष होता है कि, अब उसे लोग कुछ महत्त्वकी वस्तु समझने लगे हैं। जबसे महासभा स्थापित हुई है, तबहीसे जैनसमाजमें एक दल ऐसा रहा है जिसने हमेशा उससे प्रतिकूलता धारण की है। महासभाके मेम्बर होना अथवा उसके साथ सहानुभूति रखना तो बड़ी बात है, स्वप्नमें भी इस दलके जीमें यह बात नहीं आई होगी कि, महासभासे जैनियोंका कल्याण होगा। पर आज वह दिन आ पहुंचा है- जैनसमाजमें इतनी प्रगति हो चुकी है, सभा पाठशालादि कार्योंकी ओर लोगोंकी इतनी रुचि बढ़ गई है कि, वह दल भी जो महासभाका कट्टर विरोधी था, अब इस

बातकी कोशिश करता है कि, हमारा एक अगुआ महासभाके सभापतिका आसन सुशोभित करे। हमारे मन्तव्य महासभाके द्वारा स्वीकार किये जावें और हमारे प्रतिपक्षियोंका महासभाके द्वारा शासन हो। महासभाकी क्या यह साधारण सफलता और लोकप्रियता है? महासभाका प्रबन्ध अच्छा नहीं है, अथवा उसके द्वारा प्रत्यक्षमें कोई काम नहीं होता है, यह दूसरी बात है; पर इसमें सन्देह नहीं कि, लोगोंमें उसका महत्त्व बढ़ता जाता है। उसका सभापति वा अधिकारी होना एक सौभाग्यका विषय समझा जाने लगा है।

हिन्दीमें इस समय सैकड़ों पत्र निकलते हैं, परन्तु उनमें भी ग्रेज्युएट सम्पादकों द्वारा चलनेवाले शायद ही एक दो पत्र हों। गतवर्ष जैनगजटके सम्पादनका कार्य जब श्रीयुक्त बाबू बनारसीदासजी, बी. ए., एल्. एल्. बी.ने स्वीकार किया तब हमको बड़ी ही प्रसन्नता हुई। हमने समझा कि, अब जैनसमाजके दिन कुछ अच्छे आये हैं उसका मुखपत्र जैनगजट अब खूब चमकेगा। इस बातका भी हमको अभिमान हुआ कि, जैनियोंके गजटका सम्पादन अब एक ग्रेज्युएटके द्वारा होगा। परन्तु महासभाका कुछ भाग्य ही ऐसा है कि, उसके सम्बन्धसे सोना भी लोहा हो जाता है। ग्रेज्युएट सम्पादकको पाकर भी वह अपने मुख्य पत्रकी अवस्था उन्नत न कर सकी—उन्नत करना तो दूर रहा, जैसी थी वैसी भी न रख सकी। इस समय जैनगजट कभी दो सप्ताहमें, कभी तीनमें कभी चारमें और कभी इससे भी अधिकमें निकलता है। और जबसे वकील महाशयकी छत्रछायामें गया है, तबसे समयपर निकलनेकी

तो मानो उसने कसम ले ली है। सम्पादन भी ऐसी लापरवाहीसे होता है कि, कुछ पूछिये नहीं। हम नहीं कह सकते कि, बाबू बनारसीदासजीने क्या समझ कर इस कामका भार अपने ऊपर लिया था। यदि इस ओर लक्ष्य देनेको काफी समय उनके पास नहीं था, तो क्यों यह आपत्ति मोल ली। शिक्षितोंका यह कर्तव्य होना चाहिये कि, जो काम अपने ऊपर लेवें, उसे अपनी शक्ति भर अच्छा करके दिखलावें। किसी कामको आनरेरी समझ कर उसे जैसा तैसा कर देना शिक्षितोंका काम नहीं। बल्कि आनरेरी कामोंको तो उन्हें और अधिक मुस्तैदी और खूबीके साथ करना चाहिये। जो लोग अपने ऊपर लिये हुए कामको आनरेरी समझ कर उसपर कम ध्यान देते हैं, पर आनरेरी होनेके कारण उससे यशकी आशा रखते हैं, वे भूलते हैं। समाजसे उन्हें कभी यश नहीं मिलता है उल्टी निन्दा होती है। हमको विश्वास है कि, वकील साहब यदि पूरा २ ध्यान देवें और स्वयं कुछ परिश्रम करें, तो जैनगजटका ऐसा अच्छा सम्पादन हो कि, जैसा होनेका उसे कभी सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। पर पूरा ध्यान देवें, तब न? जैनगजटकी दुर्दशाका सबसे बड़ा कारण उसका निजका प्रेस न होना और कहीं सम्पादन हो कर कहीं छपना है। इस कमीके कारण अच्छे २ सम्पादक भी निराश हो कर थक जाते हैं और उसको समय पर नहीं निकाल सकते हैं। यदि वे प्रेस खोलनेका इन्तजाम करते हैं, तो महासभाके मंत्री महाशय उसकी आज्ञा नहीं देते हैं। उन्हें भय रहता है कि, कहीं प्रेस खोला और उसमें कोई एकाध ग्रन्थ छप गया तो! उसके पापसे तो महासभा निगोदमें चली जायगी। हमारी समझमें अब या तो महासभाको निजका प्रेस खोल देना

चाहिये, या जैनगजटको बिलकुल ही बन्द कर देना चाहिये। बल्कि अब उसे खुल्लमखुल्ला छापेका पक्ष ले लेना चाहिये। क्योंकि विना छापेकी सहायतासे उसके विद्याप्रचारादिके सभी कार्य शिथिल हो रहे हैं। और यदि यह न करना हो, तो सेठ लोग महासभाको चाहते ही हैं, उन्हींके नामसे इसकी रजिष्ट्री करा देना चाहिये। वे कभी छापेका नाम भी नहीं लेंगे, और छपे ग्रन्थोंके प्रचारको रोक रोक कर जैनधर्मकी उन्नति करेंगे।

छापेके प्रश्नका विचार अब कर ही डालना चाहिये। इस समय जैन समाजमें जितनी काम करनेवाली संस्थाएं हैं, वे सब छापेके पक्षमें हैं। क्योंकि वर्तमान युगमें छापा उन्नतिके कामोंका प्रधान साधन बन रहा है। यदि नहीं है, तो एक श्रीमती जैनमहासभा। इस विषयमें वह आजसे [illegible] वर्ष पहिले जहां थी, वहीं इस समय भी है। परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं है कि, उसके कार्यकर्त्ताओं और मेम्बरोंके विचार भी वहांके वहां है। नहीं, महासभाने जिन लोगोंके द्वारा थोड़ा बहुत समाजका कल्याण किया है और कर रही है, प्रायः सब ही छापेके सम्पूर्णतया अनुरागी हैं। इसके सिवाय समाजके विचारोंमें भी इस विषयसम्बन्धी आश्चर्यकारक क्रांति हुई है। तीन चतुर्थांशसे भी अधिक लोग छापेके अनुयायी हो गये हैं और शिक्षितोंमें तो प्रायः सब ही इसकी आश्चर्यकारिणी शक्तिके आगे सिर झुकाते हैं। केवल थोड़ेसे संकीर्ण हृदयके लोग इसके विरुद्धमें हैं, जो दस्तखत कराने वा प्रतिज्ञा कराने रूप मिट्टीके बाँधसे इसके अनिवार्य प्रवाहको रोकनेका यत्र तत्र प्रयत्न करते हैं। ऐसी अवस्थामें जब कि बहुसमाज इसके अनुकूल है और शिक्षाप्रचारके साथ २ शेष लोगोंमें भी इसकी अनुकू-

रूता बढनेका निश्चय है, तब महासभा इस उपयोगी साधनको काममें न लानेकी दिखावटी कसमको जो कि कुछ विघ्नसंतोषी लोगोंके शान्त रखनेके लिये की गई थी, क्यों नहीं तोड़ देती है? जब तक वह ऐसा न करेगी, तब तक उसके द्वारा समाजकी और धर्मकी जितनी सेवा होनी चाहिये, उतनी कभी नहीं होगी। इस कसमके तोड़नेसे प्रारंभमें थोड़े बहुत उपद्रव होंगे, परन्तु वे बहुत ही शीघ्र शान्त हो जावेंगे। प्रान्तिक सभा बम्बईने भी पहिले इस विषयकी चर्चा न करनेकी कसम ले रक्खी थी, परन्तु अब वह खुल्लमखुल्ला इस पक्षमें आ गई है।

दक्षिणमहाराष्ट्र जैनसभाका चौदहवां अधिवेशन।

गत ता० १ मार्चसे ६ मार्च तक इस सभाका अधिवेशन बेलगांवमें खूब उत्साह और समारोहके साथ पूर्ण हो गया। यह सभा बहुत ही नियमबद्ध और व्यवस्थित पद्धतिसे चल रही है। यद्यपि यह एक प्रान्तीय सभा है, तो भी इसका कार्य इसके सुशिक्षित और विचारशील संचालकोंके कारण बहुत ही सुन्दरतासे सम्पादित होता है। हमारी महासभाके समान धींगाधींगी और मनमानी कार्रवाइयां इसमें नहीं होती हैं। और यही कारण है कि, इस सभाने और सभाओंकी अपेक्षा शिक्षासम्बन्धी कार्योंमें बहुत सफलता प्राप्त की है! कोल्हापुरका जैन बोर्डिंग स्कूल, बेलगांवका सूबेदार बोर्डिंगस्कूल, हुबलीका जैन बोर्डिंग स्कूल और सांगलीका विद्यालय तथा बोर्डिंग इस तरह इस सभाके द्वारा चार तो विद्या संस्थाएँ स्थापित हो चुकी हैं और वे अच्छी तरहसे चल रही

हैं। **प्रकृति आणि जिनविजय** नामका मराठी साप्ताहिक पत्र बहुत उत्तमतासे सम्पादन हो कर निरन्तर समय पर प्रकाशित होता है, और एक जिनविजय नामका कनड़ी भाषाका मासिक पत्र भी निकलता है। इसके सिवाय तीर्थकमेटी, महिला परिषद् आदि और भी कई काम इस सभाके द्वारा सम्पादन होते हैं।

बेलगांवके सुप्रसिद्ध वकील मि० चौगुले, B. A. L. L. B. ने चन्द्रप्रभ भगवानका एक नवीन मन्दिर बनवाया है। इसी मन्दिरके बिम्ब प्रतिष्ठाके महोत्सवके साथ २ सभाका वार्षिक अधिवेशन किया गया था। अबके अधिवेशनके सभापति स्याद्वाद वारिधि पूज्यवर पंडित गोपालदासजी चुने गये थे। सभापति महोदय ता० २९ फरवरीके प्रातःकाल बेलगांव पहुंचे। उनके साथ पं० **धन्नालालजी** काशलीवाल, न्यायाचार्य पं० **माणिकचन्दजी**, कुंवर **दिग्विजयसिंहजी**, बाबू **अर्जुनलालजी** सेठी, बी. ए., सेठ **रामचन्द्रनाथाजी** सेठ **हीराचन्द नेमिचन्दजी**, आदि बहुतसे सज्जन थे। गाड़ीके स्टेशनपर पहुंचते ही उत्साही स्वयंसेवकोंने बन्दूकोंके २१ फैर करके अभिनन्दन किया और इसके पश्चात् खूब ठाट बाटसे स्वागत किया गया। पुष्पहार वा मालाएं पहिनाई गईं। उस समय लोगोंमें विलक्षण आनन्दोत्साह था। पंडितजीके विषयमें जो लोगोंके हृदयमें भक्ति थी वह उनके चेहरोंपर झलक रही थी। बेलगांवके पहिले ही **मिरज, गोकाक, पाचापुर, सुलदाल, सुलेभावी** आदि स्टेशनोंपर भी पंडितजीका खूब स्वागत किया गया था। इससे मालूम होता है कि इस ओरके लोगोंके चित्तोंमें सभाके कार्योंसे सहानुभूति तथा स्नेह बहुत है। स्टेशनपर स्वागत हो चुकनेके बाद पंडितजी मोटरपर विराजमान किये गये और एक बड़े भारी जुलूसके साथ डेरेकी ओर प्रस्थानित

किये गये। आगे २ मनोहर बेंडबाजा बजता जाता था। शाहापुरके एक सुन्दर मकानमें पंडितजीको डेरा दिया गया। सभाके लिये मेचफेक्टरीकी दाहिनी ओर एक सुविशाल और दर्शनीय मंडप बनाया गया था और उसमें स्त्रियोंके बैठनेके लिये भी स्वतंत्र प्रबन्ध किया गया था। ता० १ मार्चके ढाई बजेसे सभाका कार्य शुरू किया गया। लगभग दो हजार मनुष्य सभामें उपस्थित थे। मंगलाचरणादिके पश्चात् स्वागत सभाके चेअरमेन मि० चौगुले. बी. ए., एल. एल. बी. का व्याख्यान हुआ और फिर मि० अंकले ल्ट. डिपुटी इन्स्पेक्टरने पंडितजी महोदयका परिचय देकर उनसे सभापतिका आसन स्वीकार करनेकी प्रार्थना की। इसका समर्थन सेठ हीराचन्द नेमिचन्दजीने इस तरह किया कि दक्षिण जैनियोंकी सभाके सभापतिका आसन एक उत्तर प्रान्तके विद्वानको देनेके लिये प्रार्थना की जाती है, इसका कारण यह है कि, हमारे समस्त तीर्थंकर और प्रधान २ तत्त्वज्ञानी उत्तर भारतमें ही हुए हैं, इस लिये उत्तर प्रान्त हम सबके लिये अतिशय पूज्य हो गया है। ऐसे पूज्य प्रान्तके एक विद्वान और सन्मान्य गृहस्थको सभापतिके पदके लिये की हुई योजना किसे आनन्दप्रद न होगी। इसे दक्षिणवासियोंके पूर्व पुण्यका फल ही समझना चाहिये। इस विषयमें एक सज्जनने और भी समर्थन किया और पंडितजीने सभापतिका आसन सुशोभित किया। सभामंडप तालियोंके शब्दसे गूंज उठा। इसके पश्चात् पंडितजीका व्याख्यान प्रारंभ हुआ। * व्याख्यान बहुत विस्तृत था, इस लिये उस दिन पूर्ण नहीं हो सका। शेषांश दूसरे दिन ता० २

* सभापति महोदयका व्याख्यान विस्तृत होनेके कारण पूर्ण नहीं पढा गया और इस अंकके साथ बांटा गया है।

को पूर्ण किया गया। उस दिन व्याख्यानके सिवाय सभाकी पिछली रिपोर्ट पढ़कर सुनाई गई और पास की गई। इसके सिवाय पांच प्रस्ताव और भी सर्वानुमतसे पास किये गये; जिनमें दो विशेष महत्त्वके थे--एकमें सम्राट महोदयने जो शिक्षा प्रचारके लिये १० लाख वार्षिक द्रव्य देना स्वीकार किया है, इसके विषयमें कृतज्ञता प्रकाश की गई और आनरेबिल मि० गोखलेने जो* बलात् शिक्षा विषयक बिल पेश किया है; वह सरकारकी उदारतासे पास हो जायगा, ऐसी आशा प्रकाश की गई। और दूसरेमें बालकोंके हृदयमें धर्मतत्त्वोंका बीजारोपण करनेके लिये संस्कृत, मागधी आदि प्राचीन भाषाओंका ज्ञानकी वृद्धि करना, उच्च श्रेणीकी धार्मिक विद्याकी शिक्षा देनेवाली संस्थाओंकी और उनमें पढ़नेवाले विद्यार्थियोंकी सहायता करना, जैनधर्मके संस्कार रक्षित रखके व्यवहारोपयोगी शिक्षा देनेकी तजवीज करना आदि उत्तम उपायोंको काममें लानेकी प्रेरणा की गई। रातको कुंवर दिग्विजयसिंहजीका 'जैनधर्मका सौन्दर्य' पर और सभापति महोदयका 'राष्ट्रधर्म' पर व्याख्यान हुआ। दोनों ही व्याख्यान श्रोताओंको विशेष रुचिकर हुए।

ता० २ मार्चकी सभामें तीन प्रस्ताव पास हुए, जिनमेंसे एक स्त्रियोंमें शिक्षाका प्रचार करनेके सम्बन्धमें था, दूसरा सभाका चन्दा वसूल करनेके विषयमें था और तीसरा 'श्रीवत्सनेश्वर' नामक नाटक, जो कि जैनजातिका और जैनधर्मका तिरस्कार करनेवाला था, सरकारने बन्द कर दिया, इसके उपलक्षमें सरकारका आभार मानने और उसीके समान 'शंकर दिग्विजय' नाटकके बन्द करनेकी प्रेरणा करनेके विषयमें था। आज एक विशेष और महत्त्वका कार्य यह हुआ कि, श्रीयुत कल्लापा मांवरेकर नामक विद्यार्थीको चित्रकला

* हम लोगोंके दुर्भाग्यसे यह बिल सरकारने पास नहीं किया। संपादक.

सीखनेको इटली भेजनेके लिये चन्दा किया गया और स्वामी जिनसेनाचार्यने विलायत गमनके लिये उसे अनुमति दे दी।

ता० ४ मार्चको चार साधारण प्रस्ताव पास हुए। आज सदर्न मराठा डिवीजनके कमिश्नर मि० शेफर्डने अपनी स्त्रीसहित सभाको सुशोभित किया। आपने कहा—जैनधर्म संसारके अतिशय पवित्र और शुद्ध धर्मोंमेंसे एक है। इसके अनुयायी शांतताप्रिय और सुधारणाशील हैं। इस सभाके उद्देश्य प्रशंसनीय हैं। इत्यादि। ता० ५ मार्चको पंडितजीका शरीर कुछ अस्वस्थ हो गया था, इसलिये सभाका कार्य न हो सका। सेठ हीराचन्द नेमिचन्दजीके सभापतित्वमें कुंवर दिग्विजयसिंहजी और अर्जुनलालजी सेठीके दो व्याख्यान हुए।

ता० ६ को यथा नियम सभाका कार्य शुरू हुआ। जैनियोंकी संख्या क्यों घट रही है, इस पर विचार करने और कार्यकारिणी समिति गठित करने आदिके सम्बन्धमें ६–७ प्रस्ताव हुए। दो प्रस्ताव विशेष महत्त्वके हुए–एकसे जैनधर्मकी छोटी २ पुस्तकें छपाकर बहुत थोड़े मूल्यमें बेचनेके लिये एक कमेटी बनाई गई। और दूसरेसे भट्टारकोंको इस बातकी सूचना की गई, कि वे अपने मठकी आमदनी और खर्चका हिसाब प्रतिवर्ष छपाकर प्रकाशित करें। क्योंकि मठोंका द्रव्य सार्वजनिक द्रव्य है और उसका उपयोग ठीक होता है या नहीं। इस विषयमें लोगोंको सन्देह है। अन्तमें सभापतिका आभार मानकर सभाका कार्य आनन्द पूर्वक समाप्त किया गया।

इस सभाके जल्सेके साथ महिला परिषद्का भी अधिवेशन उत्साहके साथ हुआ। पंडितजीके डेरेपर सभाके अतिरिक्त दूसरे

समयोंमें निरन्तर बहुतसे सज्जनोंका जमाव रहा करता था और शास्त्रीय चर्चा तथा शंका समाधानादि होते थे।

इस तरह द० म० जैनसभाकी यह बहुत ही संक्षिप्त रिपोर्ट समाप्त की जाती है।

यूरोपका धर्मविश्वास।

इस बातको यूरोप तथा अन्यान्य समस्त सभ्यदेशोंके विचारशील विद्वान स्वीकार करते हैं कि, धर्मविश्वासकी हानि होनेसे धर्मपर श्रद्धा न रहनेसे सामाजिक बन्धन शिथिल हो जाते हैं और समाज-बन्धन शिथिल होनेसे धीरे २ जातिकी संघ शक्ति क्षीण हो जाती है, जिसका फल यह होता है कि, वह जाति अल्पकालमें ही अपने स्वातंत्रको खो बैठती है। इस समय यूरोपके बड़े २ पादरी और समाजपति इस चिन्तामें डूब रहे हैं कि, यूरोपके वर्तमान सभ्यसमाजमें धर्मविश्वासकी प्रबलता कैसे हो। बहुतोंका यह विश्वास है कि, आधुनिक विज्ञानचर्चाकी अधिकतासे ही विज्ञानशास्त्रके देशव्यापी प्रचारसे ही लोगोंके मनमें अविश्वासका भाव उत्पन्न हुआ है और विज्ञानशास्त्रकी ज्यों २ उन्नति होगी, त्यों २ धर्मश्रद्धाका निस्सन्देह ह्रास होगा। परन्तु अब यह बात शक्तिसे बाहर हो गई है और योग्य भी नहीं है कि विज्ञानचर्चा उठा दी जावे। जिस विज्ञानने यूरोपको संसारका शिरोमणि बनाया है, यूरोपवासी उस विज्ञानकी उन्नति करनेका प्रयत्न चाहे जितना कर सकते हैं, उसका गला घोंटना उन्हें कदापि पसन्द नहीं आ सकता। अतएव वहांके धर्माचार्य अब इस बातकी चेष्टा कर रहे हैं कि, विज्ञानशास्त्रका पठन पाठन भी प्रचलित रहे और लोग कट्टर ईसाई भी बने रहें।

इस समय इस चेष्टासे यूरोपमें विलक्षण २ ग्रंथ प्रकाशित हो रहे हैं। इन ग्रन्थोंके मुख्य दो भेद किये जा सकते हैं। प्रथम रोमन कैथलिक धर्ममूलक ग्रन्थ और द्वितीय प्रोटेस्टेंट धर्म मूलक ग्रन्थ। इन दोनों धर्मोंकी युक्तियां और लेखन पद्धतियां जुदी २ हैं। रोमन कैथलिक ग्रन्थोंमें भी दो श्रेणियां हैं, एक नर्मनपद्धति और दूसरी आक्सफोर्ड पद्धति। इसी प्रकार प्रोटेस्टेंटोंकी भी दो पद्धतियां हैं एक पोपकी पद्धति और दूसरी फरासीसी पद्धति।

सबसे पहिले हम पोप विचार पद्धतिकी बात कहेंगे। पोप कहते हैं "विज्ञान दृष्ट और लौकिक व्यापारोंकी आलोचना करता है और धर्म अदृष्ट तथा अलौकिक व्यापारोंका विचार करके विधिनिषेधकी रचना करता है। इसीलिये आप्तवाक्योंपर धर्मकी प्रतिष्ठा है अर्थात् जो आप्तने कहा है, वही धर्म है। आप्त वाक्य प्रमाण सापेक्ष नहीं हैं उनके सत्यसिद्ध करनेके लिये प्रमाण ढूंढनेकी आवश्यकता नहीं है। वे स्वतःसिद्ध और अज्ञेयके ज्ञाता हैं। इससे लौकिकी विज्ञान विद्याके द्वारा अलौकिक व्यापारोंका पता लगाना ठीक नहीं साइन्सकी तराजूमें धर्मका नाप करना उचित नहीं। साइन्सका जो प्रयोजन है वह साइन्सके द्वारा ही सिद्ध होगा और इसीमें उसकी सार्थकता है। इसी प्रकारसे धर्मका जो प्रयोजन है, वह धर्मपथका अवलम्बन करनेसे ही सिद्ध होगा और अवश्य होगा, इसीमें उसकी सार्थकता है। जो साइन्सकी सहायता से धर्मको जानना चाहता है—धार्मिक तत्त्वोंकी खोज करना चाहता है वह नास्तिक है। ऐसे नास्तिकोंको समाजमें नहीं रखना चाहिये।" पोपके इस उपदेशका प्रचार होनेसे फ्रान्समें एक विषम समाज विक्षोभ और धर्म विप्लव उपस्थित

हुआ है और इसका फल यह हुआ है कि, वहांकी गवर्नमेंट अब फ्रान्समें रोमन कैथलिक धर्म प्रतिष्ठित रखनेके लिये राजकोषसे धन व्यय नहीं करती है। परन्तु पोपकी उक्त पद्धतिका अनुसरण करके एक श्रेणीके लेखक कुछ अपूर्व ही प्रकारके धर्मग्रन्थोंकी रचना करनेमें दत्तचित्त हो गये हैं। और उक्त ग्रन्थ ऐसे प्रभावशाली हुए हैं कि, उनके आलोचन तथा मननके प्रभावसे जर्मनीके शिक्षितोंकी विचार तरंगें एक नवीन ही पथपर अग्रसर हुई हैं।

आक्सफोर्डके पंडितोंने इससे एक विपरीत ही पथका अवलम्बन किया है। वे कहते हैं कि,—"साइन्सने जिन २ बातोंका आविष्कार किया है, वे सर्वथा सत्य है—उनमें सन्देहके लिये स्थान नहीं है। इसलिये यदि धर्म सत्य और अभ्रान्त होगा, तो वह साइन्स प्रतिपादित सत्य बातोंकी सीमासे बाहिर नहीं जा सकेगा।" इतना तो सबको ही मान्य है। जो कुछ झगड़ा और वितण्डा है वह इसके आगे है। मेरी (ईसाकी माता) की चिरकाल तक कुमारी रहने और ईसको जन्म देनेकी कथा, ईसाके मर जाने और फिर भी उठनेकी कथा, अनादिकाल व्यापी दंडकी और स्वर्गके भोगोंकी कथा, इसी प्रकार और भी बाइबिलमें लिखी हुई अप्राकृत अस्वभाविक घटनाओंकी कथाएँ आधुनिक साइन्सकी सहायतासे सत्य प्रतीत नहीं होती हैं। बल्कि पुरातत्त्वकी आलोचनासे यह एक प्रकारसे स्थिर ही हो गया है कि, Old testament (पुराना करार) नामक पुस्तक नहीं है—एक समय लिखी हुई नहीं है, और उसमें ऐतिहासिक सत्य भी नहीं है। इन सब विषमताओंको—गड़बड़ोंको दूर करनेके उद्देशसे जर्मनीके ईसाइयोंने बाइबिलकी आध्यात्मिक व्याख्या करनेका आरंभ किया है। वे बाइबिलकी आदि पुस्तक

परसे जो कि हिब्रू भाषामें है, नूतन अनुवाद करते हैं—अर्थात् एक अभिनव बाइबिलकी रचना करनेके लिये उद्यत हुए हैं। गरज यह कि, वे जो बाइबिल प्रकाशित करते हैं, वह पुरातन बाइबिलके अनुरूप नहीं है। इस उद्योगमें एक नई बातका पता लगा है। वह यह कि ईसाई धर्म जूम धर्मके साथ बौद्ध धर्मके संमिश्रणका परिणाम है। जर्मनीकी पंडित मण्डलीमें यह बात अब ऐतिहासिक सत्यरूपसे मानी जाने लगी है। इसमें किसीको कुछ भी सन्देह नहीं रहा है। इसीसे जर्मनीके बहुतसे विद्वान बौद्धधर्म ग्रहण करने लगे हैं। वे कहते हैं कि, बौद्धधर्म आधुनिक विज्ञानके सिद्धान्तोंसे अविरुद्ध है। यदि हम यह कहें कि, उसमें अलौकिक बातोंका अति प्राकृत घटनाओंका समावेश ही नहीं है, तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

इंग्लैंडका आक्सफोर्ड सम्प्रदाय कुछ बातें जर्मन पद्धतिकी और कुछ पोपके आदर्शोंको ग्रहण करके उनमें सामञ्जस्य (औचित्य) घटित करनेकी चेष्टा कर रहा है। वह कहता है "बाइबिलमें जो सब उपदेश लिखे हैं, वे सर्वकालीन सर्व जातियोंके लिये उपयोगी हैं। वही बाइबिलका धर्म है। इस धर्ममतको ईसा और उसके अनुयायी जो आकार दे गये हैं—जिस रूपमें संगठित कर गये हैं, वही ईसाई धर्म है। देश काल और पात्रके अनुसार धर्मका जो आकार जो स्वरूप इंग्लैंडमें जितना परिवर्तित हुआ है, वह इंग्लैंडके लिये उपयोगी है। वही हमारे लिये प्रतिपाद्य और अनुसरणयोग्य है।" इसके साथ २ उसने (आक्सफोर्ड सम्प्रदायने) जर्मनीकी आध्यात्मिक व्याख्याका भी कुछ अंश ग्रहण किया है। इस आक्सफोर्ड पद्धतिका कुछेक अनुसरण करके 'मारी कोरेली'

ने The Christian नामक ग्रन्थकी रचना की है और आध्यात्मिक व्याख्यांश ग्रहण करके उन्होंने Soul of Libith और Barabbas नामक दो उपन्यासोंकी भी रचना की है। ईसाई धर्मको विज्ञान-विदग्ध यूरोपमें किस प्रकारसे फिर प्रतिष्ठित करना होगा, इसीका मार्ग इन उपन्यासोंमें दिखलाया गया है।

इंग्लेंड और यूरोपके समस्त स्वाधीन देशोंमें विद्यार्थियोंको बालकपनसे ही धर्मकी शिक्षा दी जाती है। उन्हें प्रतिदिन उपासना भी सिखलाई जाती है। तो भी नास्तिकताका प्रसार खूब जोर शोरके साथ होता जाता है। यह नहीं कि, केवल नास्तिकता की ही वृद्धि होती हो। नहीं, साथ ही साथ बहुत लोग अन्धविश्वासी भी होते जाते हैं। जो लोग आस्तिक हैं, वे जिन सब बातोंमें अटल विश्वास रखते हैं, उन्हें सुनकर हँसी आती है। कोई कुछ निश्चय नहीं कर सकता है, तो रोमनकेथिलिक हो जाता है। कोई थियोसोफिष्ट स्पिरिचुआलिष्ट आदि नाना प्रकारके उपधर्मोंको स्वीकार करता है। और तो क्या भारतवर्षके तांत्रिक धर्मकी चर्चा भी यूरोप और मार्किनमें खूब जोरसे चल रही है। ऐसा मालूम होता है कि, समाज धर्म किसको कहते हैं; धर्मकी आवश्यकता क्या है, धर्मका विनियोग कहां और कैसे होता है; इन सब बातोंको यूरोप भूल गया है। इस धर्मविप्लवके विषयमें इस समय केंटरबरीके आर्च बिशपसे लेकर सामान्य पादरीतक चिन्तित हैं। प्रायः सबहीका यह विश्वास होता जाता है कि, यूरोपमें एक विराट धर्मविप्लव होगा। यह विप्लव जिससे विषम आकार धारण न करने पावे और समाज शरीर को विध्वस्त न कर सके, इसके लिये प्रायः सब ही विचारशील पुरुष जी जानसे प्रयत्न कर रहे हैं। ईसाई पादरी यहां विदेशोंमें

तो ईसाई धर्मका प्रचार कर रहे हैं, परन्तु उनके स्वदेशमें तो ईसामशीहको ही देशनिकाला दिया जा रहा है, यह बात जानकरके भी बेचारे कुछ प्रतीकार नहीं कर सकते हैं।

वर्तमानमें विलायतके एक उच्च पदाधिकारी पादरीने इन सब बातोंको लेकर एक बड़े भारी ग्रन्थकी रचना की है। यह ग्रन्थ इतने महत्त्वका है कि, उसका थोड़े ही दिनोंमें जर्मन भाषामें अनुवाद हो गया है और उसके आधारसे इंग्लेंड और जर्मनीके धार्मिक पत्रोंमें बीसों लेख प्रकाशित हो चुके हैं। इस ग्रन्थके जोड़का एक और स्वतंत्र ग्रन्थ डाक्टर रेंचने लिखा है। आप कहते हैं कि—यूरोप चाहे जितनी चेष्टा क्यों न करे, जातिके हिसाबसे उसका अधःपतन अवश्यंभावी है—वह नीचे गिरे बिना नहीं रहेगा। इस पुस्तकका नाम है The Mistery of Life इसमें आपने अनेक प्रमाण देकर सिद्ध किया है कि, चीन, प्राचीन मिसर, और हिन्दू आदि जातियां स्थितिके जिस मूलमंत्रसे चिरजीवी हुई हैं, वह यूरोपमें नहीं है। विलास और व्यक्तिगत स्वातंत्र्यके कारण यूरोप नष्ट होगा। केवल ईसाई धर्मका दृढ़ श्रद्धानी बना देनेसे यूरोप नहीं टिकेगा; टिकेगा तो प्राचीन कालके अनुसार एक स्वामीके शासनाधीन समाज पद्धति चलानेसे टिकेगा। इस सिद्धान्तका प्रतिवाद करनेके लिये अनेक विद्वान कटिबद्ध हुए हैं। शीघ्र ही कोई नया ग्रन्थ इसके प्रतिवाद स्वरूप प्रकाशित होगा। *

नोट—यूरोपका धार्मिक विश्वास विज्ञान वा साइन्सके सिंहनादसे किस प्रकार पलायोन्मुख हो रहा है और वह जहांका तहां स्थिर बना रहे—पलायन नहीं करे; इसके लिये वहांके पादरी कैसे २

* बंगला साहित्यकी फाल्गुनकी संख्यामें प्रकाशित हुए एक लेखका अनुवाद।

आयोजन कर रहे हैं, पाठकोंको इस बातका थोड़ा बहुत परिचय लेखसे हो जायगा। और यदि अच्छी तरहसे विचार किया जाय, तो इस बातका भी ज्ञान हो जायगा कि, इस समय जैनियोंका कर्त्तव्य क्या है। हमारी समझमें जिन लोगोंको इस बातका अभिमान है और पक्का विश्वास है कि, जैनधर्म और साइन्स परस्पर अनुयायी हैं—साइन्सके सिद्ध किये हुए पदार्थ जैनधर्मसे विरुद्ध नहीं जाते हैं और जैनधर्मके पदार्थ साइन्सके अनुकूल हैं, उन्हें इस समय चुप नहीं रहना चाहिये कुछ पुरुषार्थ करके दिखलाना चाहिये। जिन लोगोंकी श्रद्धा ईसाई धर्मसे उठकर बौद्ध थियोसोफिष्ट आदि मतोंपर जा रही है—उन्हें जैनधर्मकी उदार और शीतल छायामें विश्राम करनेके लिये आह्वान करनेका प्रयत्न करना चाहिये। जैनधर्मकी पताका दूसरे देशोंमें उड़ानेके लिये इससे अच्छा अवसर और कब आवेगा? इसके लिये दश बीस ग्रेज्युएटोंको जो कि साइन्सकी उच्च श्रेणीकी शिक्षा पाये हों, जैनधर्मके विद्वान् बनाना चाहिये और दश बीस जैनधर्मके पंडितोंको अंग्रेजीकी और साइन्सकी उच्च शिक्षा देना चाहिये; फिर इस तरह जो विद्वान् हो जावें, उन्हें युरोपमें उपदेश देने और जैनधर्मके प्रचारका उद्योग करनेको भेजना चाहिये।

समाजके शिक्षितोंको विशेष करके भारतजैनमहामंडलको इस ओर ध्यान देना चाहिये और फिलहाल कमसेकम अंग्रेजीमें कुछ जैनग्रन्थोंके अनुवाद करनेका और अंग्रेजीके प्रतिष्ठित पत्रोंमें जैन फिलोसोफीके लेख प्रकाशित करानेका प्रयत्न करना चाहिये।

शान्तिके विज्ञापनमें अशान्ति।

पाठकोंने रानीवालोंकी ओरसे प्रकाशित हुए 'सत्यकी जय' शीर्षक विज्ञापन पढ़ा होगा। यह विज्ञापन निकाला तो गया है शान्तिके लिये, परन्तु बहुत कम आशा है कि, इससे शान्ति फैले। क्योंकि इसमें अपने पक्षकी जीत सिद्ध करनेकी कोशिश की गई है और साथ ही दूसरे पक्षवालोंको दो चार उलटी सीधी सुना दी गई है। सुलह करनेकी पद्धति यह नहीं है। यह एक अन्याय है। यदि दूसरे पक्षवाले इस विज्ञापनके विषयमें कुछ कहेंगे तो रानीवाले कह देंगे कि, हम क्या करें, वे शान्ति नहीं चाहते और फिर उपद्रव मचाना शुरू कर देंगे। परन्तु अपनी करतूत नहीं देखते कि, हम क्या कर रहे है।

उक्त विज्ञापनमें लिखा है कि, 'पंडितजी अपनी भूल इन ल-फ्जोंमें स्वीकार करते हैं, इस प्रकार बाबू सूरजभानजीने हस्ति-नापुरमें कहा था। परन्तु यह बात बिलकुल झूठ है। पंडितजीसे न कोई भूल हुई है और न उन्होंने स्वीकार की है। वे तो लोगोंकी भूल बतलाते हैं, जिन्होंने उनके इजहारका कुछका कुछ अर्थ स-मझ लिया और इसका वे खेद प्रगट करते है। देहलीमें जो पंडि-तजीकी ओरसे सूचना प्रकाशित हुई थी, उसमें उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि, मैंने तीर्थंकरोंकी शानमें कोई अनुचित शब्द नहीं कहे, मैं तीर्थंकरोंको विशुद्ध कुलोत्पन्न और परमपूज्य मानता हूं। जो शब्द तीर्थंकरोंको दूषित करनेवाले हों, उनका कहना मैं अनुचित समझता हूं। मेरे इजहारका सारांश वाक्य तीर्थंकरोंपर दूषण लगा-नेवाला नहीं है। कुछ महाशयोंने उसको तीर्थंकरोंपर दूषण लगाने-वाला समझ लिया है, इसका मुझे हार्दिक दुःख है। पाठक सोचें कि, इसमें पंडितजीने क्या भूल स्वीकार की है!

हस्तिनापुरमें झगड़ा तय हो जानेकेबाद उसे फिर उकसानेका दोष गोपालदासजीकी पार्टीके लेखोंपर मढ़ा गया है। परन्तु यह विज्ञापनदाता महाशयकी सफेद झूठ है। हस्तिनापुरके बाद यह मामला फिर कभी नहीं उठता। यदि आगरेके मेलेमें रानीवालोंकी ओरसे फिरसे उकसानेका प्रयत्न न किया जाता। इस ओरका लेख उस समय आगरेमें बांटा गया है, जब पंडितजीको बहिष्कार करनेके लिये लोगोंसे हस्ताक्षर कराये जाने लगे थे।

अन्तमें 'अशान्तिकी जड़ किस ओर है' इस लेखको जैनगजटमें लिखनेके अपराधमें विश्वंभरदासजी गार्गीयको उलटी सीधी सुनाई है और पंडित गोपालदासजीको उपदेश दिया है कि, वे ऐसे पुरुषोंसे बचें। जैनगजटके उक्त लेखको जाति मात्रको गालियां देनेवाला और सत्यका खून करनेवाला कहा है, पर हमने तो उसमें कोई वाक्य ऐसा नहीं देखा जिससे यह बात मालूम हो सके और इसका सुबूत यही है कि, यदि वह वास्तवमें ऐसा होता जैसा कि आप कहते हैं, तो जैनगजटके सम्पादक महाशय जो कि आपके अनुयायी हैं, उसे कभी प्रकाशित नहीं करते। और जब आप इस झगड़ेको शान्त ही करना चाहते हैं, तब एक सज्जनके जीको इस प्रकारके अपमान जनक शब्द लिखकर दुखानेकी आपने क्या आवश्यकता समझी?

उक्त विज्ञापनका शीर्षक जो 'सत्यकी जय' है, वही कह रहा है कि, मैं रानीवालोंकी जय प्रगट करनेके लिये निकला हूं, कोई झगड़ा शान्त करनेके लिये नहीं निकला। मालूम होता है-सत्य शब्दका अर्थ रानीवालोंका पक्ष है। उनके पक्षसे पृथक कोई सत्य नहीं है।

अन्तमें मैं स्पष्ट शब्दोंमें प्रगट कर देना चाहता हूं कि, मेरी इच्छा यह कदापि नहीं है कि, यह झगड़ा फिरसे उकसाया जाय। मैं हृदयसे चाहता हूं कि, इसकी यहीं शान्ति हो जाय और लोग इस व्यर्थके प्रपंचमें उलझे न रहकर अपनी शक्तियोंको अच्छे कामोंमें लगावें। परन्तु मुझे विश्वास नहीं होता है कि, ऐसे विज्ञापनोंसे यह उपद्रव शान्त हो जायगा। अभीतक इन सत्य पक्षवालोंके हृदय साफ नहीं हुए हैं। इसलिये मैं ने यह सूचना करना उचित समझा शान्ति संस्थापकोंको इस ओर ध्यान देना चाहिये।

उचित वक्ता।

विविध विषय।

दैनिक भारतमित्र—जिस हिन्दीके बोलनेवाले आठ करोड़से ऊपर हैं और जो भारतकी राष्ट्रभाषा बननेका दावा करती है, उसमें दैनिक समाचारपत्रका अभाव बहुत ही खटकता था। हर्षका विषय है कि, कलकत्तेका 'भारतमित्र' अब इस अभावकी पूर्ति कर देनेके लिये कटिबद्ध हुआ है। अभी दरबारके समय डेढ़ महीनेके लिये जो उसने दैनिक रूप धारण किया था, उसकी प्रायः सभी पत्र लिखोंने प्रशंसा की है। दैनिकके लिये कलकत्ता स्थान भी बहुत उपयुक्त है। चैत्र शुक्लासे उसका दैनिक संस्करण प्रकाशित होने लगा। दैनिकका वार्षिक मूल्य कलकत्तेमें छह रुपया, और बाहिर दश रुपया है। हिन्दी प्रेमियोंको चाहिये कि, अपनी भाषाके इस एक मात्र दैनिकके ग्राहक बनकर हिन्दीका गौरव बढ़ावें।

जैनियोंकी संख्यामें कमी—गतवर्षकी मनुष्यगणनाका जो संक्षिप्त विवरण हाल ही प्रकाशित हुआ है, उससे मालूम होता है कि, जैनियोंकी संख्या जो १९०१ की गणनाके अनुसार १३,३४,१४८ थी, वह घटकर १२,४८,१८२ रह गई है। अर्थात् दश वर्षमें ८५,९६६ की घटी हुई है। जैनियोंके लिये यह बड़ी भारी चिन्ताका विषय है। जब सनातनधर्मियोंकी हजार पीछे ४९, आर्यसमाजियोंकी ९,६४४, ब्रह्मसमाजियोंकी ३५९, और सिक्खोंकी ३७३ वृद्धि हुई है, तब जैनियोंकी ६४ हानि हुई है। पाठकोंको मालूम होगा कि, जैनियोंकी संख्या १९०१ की गणनामें भी पिछली १८९१ की गणनासे इसी प्रकार कम हुई थी। जब प्रति दश वर्षमें प्रति सहस्र ६४ की कमी हो जाती है, तब प्रत्येक बुद्धिमान समझ सकता है कि, जैनजातिका अस्तित्व कितनी जल्दी लुप्त हो जायगा। प्रत्येक जातिहितैषीको इस विषयपर विचार करना चाहिये। यह जीवन मरणका प्रश्न है। क्या कारण है जो अन्य सब जातियोंकी वृद्धि हो रही है, और जैनियोंकी हानि हो रही है। और हानि भी कितनी सौमें ६॥ मनुष्य! यदि इसी तरह बराबर कमी होती रही, तो, केवल डेढ़सौ वर्षमें जैनजातिका संसारमें नाम भी नहीं रहेगा। बहुतसे भाई इस कमीका कारण यह बतलाते हैं कि, मनुष्यगणनाके समय जैनी अपनेको हिन्दुओंमें लिखा देते हैं। परन्तु हमारी समझमें यह कारण ठीक नहीं है। क्योंकि यह भूल १९०१ की मनुष्य गणनामें भी तो हुई होगी। बल्कि इन दश वर्षोंमें जैनियोंमें धार्मिक आन्दोलन बहुत अधिक हुआ है। जिससे पिछली मनुष्यगणनाकी अपेक्षा इस मनुष्यगणनामें जैनियोंने अपनेको जैनी विशेषणाके साथ लिखवाया होगा। इसी प्रकारसे [illegible]

कारण भी इस घटीके नहीं हो सकते हैं। क्योंकि ऐसा कोई नियम नहीं है कि, प्लेग जैनीयोंको ही विशेषरूपसे आक्रमण करता हो। तब इसके कारण बहुत ही गूढ़ और विचारणीय होंगे। हम आशा करते हैं कि महासभा और जैनमहामंडल अपने अधिवेशनोंमें इस विषयमें खास तौरपर विचार करेंगे। समाचारपत्रोंमें भी इसकी चर्चा होनी चाहिये। हर्षका विषय है कि, दक्षिण महाराष्ट्र जैन-सभाने अपने इस अधिवेशनमें इस विषयपर बहुत चर्चा की है।

रत्नमालाका दर्शन—दृष्टिदोषके भयसे स्याद्वादीके संरक्षक तो स्याद्वादीको घरमें ही छुपाये रहे अभीतक उसे बाहिर नहीं निकलने दिया, पर इधर उसके पीछे जन्म लेनेवाली सहयोगिनीके तीन चार बार दर्शन हो गये। सहयोगिनीके जन्मदाताओंको बधाई है। जैनपताकाके बाद इधर कुछ समयसे सहयोगिनीका स्थान खाली था और अनेक सहयोगियोंके बीचमें यह कमी बहुत खटकती थी। अच्छा हुआ कि इसकी पूर्ति हो गई। सहयोगि-नीका जन्म बड़े घरोंमें हुआ है, बड़े २ धनिकोंकी उसपर सुदृष्टि है। आर्थिक चिन्ता उससे कोसों दूर है। इससे आशा है कि, वह समाजको अपने पुनीत दर्शनोंसे निरन्तर ही प्रसन्न किया करेगी।

दो हजार वर्षकी पुरानी मूर्तियां सहयोगी जैनमित्रमें जो कटकके पासके उदयगिरि खंडगिरि तीर्थोंका वृत्तान्त प्रकाशित हुआ है। इससे मालूम होता है कि, वहांकी हाथीगुफामें जो दिगम्बर जैनप्रतिमाएं हैं वे मौर्यसंवत् [illegible] की अर्थात् ईस्वी सनसे [illegible] वर्ष पहिलेकी प्रतिष्ठित की हुई हैं। कलिंगदेशके खारवेल नामक जैनराजाके समयमें उक्त प्रतिमाएं स्थापित हुई थीं। ऐसा वहांके एक शिलालेखसे मालूम होता है। वहांके अन्यान्य लेखोंसे यह भी

पता लगा है कि, जिस उड़ीसा और बंगाल प्रान्तमें इस समय जैन-धर्मका लोप हो गया है, वहां पहिले जैनधर्मका खूब जोर शोर था। वहां बहुतसे राजा भी जैनी हुए हैं। जैनधर्मके प्राचीन वैभव-का इतिहास ऐसे न जाने कितने पर्वतों और गुफाओंमें छुपा हुआ पड़ा है। न जाने जैनी उसे कब प्रकाशमें लानेका प्रयत्न करेंगे।

बंगालमें जैनधर्म—का परिचय और प्रचार करनेके लिये जो बंगीय सार्व धर्मपरिषद् स्थापित हुआ है, हर्षका विषय है कि, उस की ओर जैनसमाजका चित्त आकर्षित हुआ है। थोड़े ही दिनोंके प्रयत्नसे उसको जो सफलता प्राप्त हुई है, उससे इस बातका अच्छी तरहसे अनुमान होता है कि, समाजमें नई जागृती उत्पन्न हो गई है और लोग नई पद्धतिके अनुसार जैनधर्मके प्रचार करनेकी आव श्यकता समझने लगे हैं। उनके पुराने ख्याल बदलते जा रहे हैं और एक ऐसे जनसमूहका उत्थान हो रहा है, जो थोड़े ही समयमें कुछ करके दिखलानेको समर्थ हो सकेगा। इन थोड़े ही दिनोंमें बंगीय परिषद्को लगभग १५००) की सहायता मिल चुकी है और बहुत लोग सहायता देनेका वचन दे रहे हैं। यहांपर हम बम्बईके शेठ नाथारंगजी गांधीकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते जिन्होंने परिषद्को लगभग ९००) की सहायता देकर उपकृत किया है। नाथारंगजीके परिवारमे इस समय विद्योन्नतिके कार्योंमें जैसी सहा-यता मिलती है, वैसी शायद ही किसी जैनपरिवारसे मिलती हो। समाजके कोट्याधिशोंको आपका अनुकरण करना चाहिये। यदि आपके समान अन्य धनिक गण अपने द्रव्यदानका प्रवाह विद्याकी ओर बदल दें, तो थोड़े ही दिनोंमें जैनधर्मकी विजयपताका फहराने लगे। परिषद्को दो अच्छी सहायताएँ और मिली हैं. एक कलक-

तेके बाबू घन्नूलालजी अटर्नीसे—आपने एक बंगला ट्रैक्ट छपाना स्वीकार किया है, जिसमें सौ या डेढ़सौ रुपया लगेंगे और दूसरी शोलापुरके शेठ बालचन्द रामचन्दजीसे—आप परिषदको प्रतिवर्ष १०१) की सहायता दिया करेंगे। इनके सिवाय लगभग ४५०) के और फुटकर सहायताएँ मिली हैं। परिषदके मंत्री महाशय काशीमें एक पुस्तकालय खोलनेकी बड़ी भारी आवश्यकता बतला रहे हैं और उसके लिये किसी एक दानीसे सिर्फ ५००) चाहते हैं। इस पुस्तकालयमें बंगला तथा हिन्दीके अखबार मंगाये जावेंगे और उत्तमोत्तम पुस्तकें रक्खी जावेंगी। जिनके पढ़नेके लिये बंगाली सज्जन आवेंगे और उस समय उन्हें जैनधर्मका परिचय कराया जावेगा।

सहायता 'पं० पन्नालालजी बाकलीवाल भेलूपुरा बनारस सिटीके' पतेसे भेजना चाहिये।

हर्ष समाचार।

सर्व सज्जन विद्याप्रेमी महाशयोंकी सेवामें निवेदन है कि, बुन्देलखंडके मुख्य शहर ललितपुरमें अति रमणीक व सुन्दर स्थान क्षेत्रपाल पर श्रीअभिनन्दन दिगम्बर जैन पाठशाला स्थापित हुई है, जिसमें उच्च कोटिकी धार्मिक व लौकिक शिक्षा दी जाती है। संस्कृतके साथ साथ अंग्रेजी भी पढ़ाई जाती है। बाहरसे आए हुए विद्यार्थियोंके लिए खान, पान, रहन, सहन, का भी अति उत्तम प्रबंध है। और हमको इस बातका अभिमान है कि, जैनियोंकी जितनी संस्थाएं हैं उन सबमें स्वास्थ्य और स्थानकी अपेक्षा इस

पाठशालाका स्थान क्षेत्रपाल उत्तम है। इस स्थानपर कमसेकम २०० विद्यार्थी अति सुगमतासे विद्याध्ययन कर सकते हैं और ऐसी ही आशासे इस पाठशालाका मुहूर्त किया गया है। सर्व भाईयोंको और खासकर बुन्देलखण्डके भाइयोंको इस पाठशालाकी ओर ध्यान देना चाहिये. इसके कोषकी वृद्धि करना चाहिए और हिन्दीमें अच्छी योग्यता रखनेवाले तीक्ष्णबुद्धि विद्यार्थियोंको विद्वान पंडित बनानेके लिए इस पाठशालामें भेजना चाहिए।

इस पाठशाला सम्बन्धी समस्त पत्रव्यवहार श्रीयुत सेठ मथुरादासजी ललितपुरके नामसे करना चाहिये।

दयाचन्द्र जैन बी. ए.

पुस्तक-समालोचन।

पत्नीधर्म संग्रह—गिरिजाप्रसाद शर्मा बहुगुण द्वारा संग्रहीत और अनुवादित। [illegible] पृष्ठोंकी इस छोटीसी पुस्तकमें व्यास, दक्ष, शंख, वसिष्ठ, गौतम, कात्यायन, पाराशर, अत्रि, याज्ञवल्क्य, और मनुकी स्मृतियोंसे स्त्रियोंके सदाचार सम्बन्धी श्लोक संग्रह किये गये हैं और नीचे उनका हिन्दी अनुवाद दिया हुआ है। यदि इसमें पतिके मरनेपर स्त्रीको अग्निमें भस्म हो जाना चाहिये, जो ऋतुस्नात स्त्री पतिसे प्रसंग नहीं करती है, वह नरकको जाती है और बार बार विधवा होती है। ब्रह्माने अपनी देहके दो खंड करके एकसे पुरुष और एकसे स्त्री बनाई, इत्यादि पुराने मिथ्याविश्वासके श्लोक न संग्रह किये जाते, तो अच्छा होता। ऐसी शिक्षाओंसे अब स्त्रियोंका कल्याण नहीं हो सकता है। पुस्तकभरमें यह कहीं भी नहीं लिखा कि, पढ़ना लिखना भी स्त्रियोंका धर्म है।

कविरत्नमाला, प्रथमभाग— जोधपुर निवासी मुंशी देवीप्रसादजी मुन्सिफ द्वारा लिखित। इसमें राजपूतानेके १०८ हिन्दी कवियोंका परिचय और उनकी कविताका नमूना दिया गया है। परिचय बहुत ही संक्षिप्त है तो भी इसके लिये हमें मुंशीजीको धन्यवाद देना चाहिये। क्योंकि उनके परिश्रमसे हिन्दी जाननेवालोंको ऐसे २ कवियोंकी कविता पढ़नेको मिली, जिनका कभी नाम भी नहीं सुना था। कोई २ कविता बहुत ही अच्छी है। कई पद्योंसे बहुतसी ऐतिहासिक बातोंका ज्ञान होता है।

आत्मसुधार—बाबू वृन्दावनलालजी वर्मा, गुदरी, झांसी लिखित। इस छोटीसी ४१ पृष्ठकी परन्तु महत्त्वपूर्ण पुस्तकको पढ़कर हम बहुत प्रसन्न हुए। हिन्दीमें ऐसी पुस्तकोंकी बहुत बड़ी जरूरत है। एक अंग्रेज विद्वानके लिखे हुए अंग्रेजी निबन्धका आशय लेकर इसकी रचना की गई है। भाषा परिमार्जित और सरल है। ऐसा नहीं मालूम होता है कि, किसी दूसरी भाषासे अनुवादित की गई है। इसमें आत्मसुधार अर्थात् अपना सुधार करनेके तत्त्व बतलाये गये हैं। पढ़कर या रटकर प्राप्त की हुई विद्यासे स्वयं उपार्जित की हुई विद्याका महत्त्व बहुत अधिक है। रटन्तके द्वारा विषयको गलेके नीचे न उतारकर मस्तकमें चढ़ाना चाहिये। आत्मशिक्षा ही सच्ची शिक्षा है। जो दूसरोंके द्वारा जबरदस्ती गलेमें ठूंसी जाती है, वह दूर भी बहुत जल्दी हो जाती है। जिस तरह अध्ययनसे मन सुधरता है, उसी तरह कामसे शरीर सुधरता है। श्रम न करना प्रकृतिके नियमके विरुद्ध है। शरीर अच्छा हो, तब मन अच्छा रह सकता है और मन अच्छा हो, तब ही सच्चा आनन्द मिलता है। शारीरिक परिश्रम नहीं

करनेवाले पुरुषोंका चरित्र कभी शुद्ध नहीं रह सकता है। असन्तुष्ट दुःखी निकम्मे निराश और उदासचित्त विद्यार्थियोंके सुधारनेकी एक मात्र औषधि शारीरिक श्रम और व्यायामकी पाबन्दी कड़ाईके साथ करना है। लगातार परिश्रम करनेसे असाध्य कार्य भी साध्य हो जाते हैं। मनुष्यको श्रेष्ठता श्रमके बदलेमें मिलती है—योंही पड़े पड़े नहीं मिल जाती। किसी भी कामके पूरा करनेके लिये दृढ़ प्रतिज्ञा, अटल इच्छा, अचल पुरुषार्थ और असीम साहस चाहिये। जो कुछ पढ़ो, ध्यानसे पढ़ो। धुंधला ज्ञान किसी कामका नहीं। एक साथ जल्दी २ तरह २ की किताबोंके पढ़नेसे दिमाग कमजोर हो जाता है। और रोगोंके समान किताबें पढ़नेका भी एक रोग है। सदा काममें लगे रहनेसे बड़ा आनंद आता है। घुल घुलकर मर जाना बहुत अच्छा, पर जंग मोर्चा खाकर मरना बहुत ही निकृष्ट है। दिमागमें ढेरकी ढेर विद्याका रखना और सदुपयोग न करके उसका घमंड करना वैसा ही है, जैसे किसी कुलीका भारी बोझ लादकर यह कहना कि, यह मेरी ही जायदाद है। बिना व्यावहारिक बुद्धिके मनुष्य मनुष्यता हीन होता है। केवल विद्या बोझ मात्र है। विद्याका उद्देश बुद्धिको बलिष्ठ और चरित्रको उन्नत करना है। यदि तुम्हारी विद्यासे यह न हुआ, तो तुम्हारे पढ़नेका समय व्यर्थ ही गया। आत्ममर्यादा मनुष्यकी सर्वश्रेष्ठ पोशाक है। आमोद प्रमोद निरोगताके देनेवाले हैं, पर उनमें ज्यादती अच्छी नहीं। उच्च चरित्रके बिना बड़े २ प्रतिभा शालियोंका भी जीवन निकम्मा और निर्बल हो जाता है। कठिनाइयोंका पहाड़ मनुष्यको मनुष्य बनाता है। सबल सफलतासे नहीं विफलतासे आती है। समयकी प्रतिकूलता हमारी छुपी हुई शक्ति-

योंको हमारे सामने खोलकर रख देती है और पुरुषार्थको सम्मुख बुला देती है। आत्मसुधारके कार्यमें हर दर्जेकी निर्धनता भी आड़े नहीं आ सकती। दृढनिश्चय, कष्ट सहिष्णुता और परिश्रमशीलता भर होनी चाहिये। परिश्रमी पुरुषोंने वृद्धापनमें भी विद्याएँ प्राप्त करके संसारको चकित किया है। मन्दबुद्धि भी परिश्रम और उद्योगसे तीक्ष्णबुद्धि हो सकते हैं। इत्यादि बातें यूरोपादि देशोंके नामी २ विद्वानोंके उदाहरण देकर विस्तारके साथ लिखी हैं। आत्मसुधारकी इच्छा रखनेवाले प्रत्येक पुरुषको इस पुस्तकका स्वाध्याय करना चाहिये।

उक्त तीनों पुस्तकें भारतमित्र प्रेस, मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट कलकत्तासे मिल सकती हैं। गतवर्षके उपहारमें पांच पुस्तकें दी गई थीं उसमेंसे तीन ये हैं। शेष दो की समालोचना आगामी अंकमें की जायगी।

चित्रमय जगत् (दिल्लीदरबारका अंक) हिन्दीके भाग्य कुछ अच्छे जान पड़ते हैं। हिन्दीकी सर्व श्रेष्ठ मासिक पत्रिका सरस्वतीके प्रकाशक जिस तरह एक बंगाली सज्जन हैं, उसी प्रकार सुविपुल और सुन्दर चित्र प्रकाशित करनेवाले इस पत्रके स्वामी एक दक्षिणी हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि, हिन्दी भाषा भाषियोंके सोते रहने पर भी हिन्दीकी उन्नति अवश्यंभावी है। पूनेके चित्रशाला प्रेससे यह मासिकपत्र प्रकाशित होता है। इसके सम्पादक हिन्दीके सुप्रसिद्ध लेखक पं० लक्ष्मीधरजी वाजपेयी हैं। मुल्य साधारण संस्करणका २।) और उत्तम संस्करणका ९॥) है। इस पत्रमें यद्यपि चित्रोंकी प्रधानता है, तो भी लेख और कविताएँ भी अच्छी २ रहती हैं। इस अंकमें सब मिलाकर लगभग ७० चित्र हैं। शाही खान्दानका

रंगीन चित्र तो बहुत ही मनोमोहक है। दरबारसम्बन्धी लेख बहुत महत्त्वके हैं। बाजी प्रभु देशपांडेका लेख पढ़कर स्वदेश भक्ति जागृत हो उठती है। बाबू मैथिलीशरणजीकी युगद्दृश्य नामक कविताके पाठसे हर्ष और शोक दोनों एक साथ उद्भूत हो उठते हैं।

सृष्टिकर्तृत्व मीमांसा और भूगोल मीमांसा—जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभा, इटावाके ये १२ और १३ नम्बरके ट्रेक्ट हैं। पहिलेका मूल्य एक आना है और दूसरेका आधा आना। ये दोनों ही लेख जैनमित्रसे उद्धृत किये गये हैं। दूसरे ट्रेक्टमें कुछ थोड़ासा परिवर्तन किया गया है। पहिले ट्रेक्टमें ईश्वर सृष्टि कर्ता है या नहीं, इसका विचार किया गया है। इसके पहिलेके ५-६ पृष्ठोंकी भाषा जैसी सरल है। यदि वैसी आगेकी भी होती, तो सर्व साधारणको इससे बहुत लाभ होता। आगेकी भाषा बहुत ही क्लिष्ट है। पंडितोंके सिवाय उसे शायद ही कोई समझ सके। दूसरे ट्रेक्टमें पृथ्वीकी गुलाई और गतिका न्यायकी पद्धतिसे खंडन किया गया है। दोनों ट्रेक्ट उक्त सभाके मंत्री बाबू चन्द्रसेनजी वैद्यके पाससे मिलेंगे।

जैन तिथि दर्पण—यह सुन्दर क्यालेन्डर स्याद्वाद महाविद्यालय काशीके छात्रोंद्वारा स्वर्गीय बाबू देवकुमारजीके स्मरणार्थ प्रकाशित किया गया है। इसमें उक्त बाबू साहबका सुन्दर चित्र है। और पंचमी अष्टमी तथा चतुर्दशीका तिथिपत्र है। प्रत्येक जैनीभाईको इससे अपने बैठकखानेकी शोभा बढ़ानी चाहिये और समय २ पर बाबू साहबके गुणोंका स्मरण करके उनके समान धर्मसेवा करना सीखना चाहिये। मूल्य किसा नहीं। स्याद्वाद महाविद्यालयके मैनेजरको पत्र लिखकर मंगाना चाहिये।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

दक्षिण महाराष्ट्र जैनसभाके चौदहवें वार्षिकोत्सवके सभापति स्याद्वाद वारिधि पं० गोपालदासजीका व्याख्यान.

मंगलाचरण।

दोहा—वन्दौं श्रीजिनचन्द्रवच मिथ्या तमक्षयकार ॥
जिहसेवतवेवतस्वपर भव संताप निवार ॥ १ ॥
शिवमगदर्शक वीर जिन दोषावरण विहीन ॥
ज्ञायक लोकालोकप्रभु करहु अमकलहीन ॥ २ ॥

सबसे पहले मैं महाराज पञ्चम जार्जको धन्यवाद देता हूं कि, जिनके निष्कंटक राज्यमें हम स्वतन्त्रता पूर्वक धार्मिक तथा सामाजिक उन्नतिका प्रयत्न कर इसलोक और परलोक सम्बन्धी आत्महित साधन कर सकते हैं।

आज बड़े सौभाग्यका दिन है कि, आप महानुभावोंने मुझ तुच्छ व्यक्तिको ऐसे महान पदका सन्मान देकर मेरा गौरव बढ़ाया है। ऐसी महती सभाके सभापतित्वका भार उठानेका मेरे जीवनमें यह पहिला ही मौका है। इसलिये सम्भव है कि, इस कार्यके सम्पादनमें अनेक त्रुटियां रह जांय। परन्तु मैं आशा करता हूं कि, आप सरीखे उदार महाशय मेरी त्रुटियोंकी उपेक्षा कर जैसे हंस नीरको त्याग क्षीरका ही ग्रहण करता है, उस ही प्रकार आप भी मेरे इस तुच्छ व्याख्यानको सुनकर प्रसन्न होवें।

आकाशके बहु मध्यभागमें संस्थित द्रव्यादेशसे अनादि निधन और पर्यायापेक्षासे प्रतिक्षण परिणामी जीवादिक द्रव्योंके समुदायात्मक सात राजूके घनस्वरूप ऊर्ध्वाधो मध्य संज्ञक तीन विभागोंमें विभक्त इस लोकमें अपने ही अपराधसे अनादि सन्तानबद्ध दर्शन मोहादिक द्रव्यकर्म तथा रागादिक भावकर्मोंके वशीभूत घटीयंत्रकी तरह पुद्गलादि पंच परावर्तनोंको पूरा करता हुआ यह जीव अनादिकालसे घोर दुःखात्मक चतुर्गतिमें परिभ्रमण कर रहा है। नरक और तिर्यंच इन दो गतियोंमें प्रायः दुःखसे और देवगतिमें इन्द्रियजनित सुख किन्तु पारमार्थिक दुःखसे अपने हिताहित विचार करनेको छुटकारा ही नहीं मिलता। तथा मनुष्यगतिमें भी बहुभाग तो दिनरात जठराग्निको शमन करनेकी चिन्तासे व्याकुलित चित्त हुए अपनी मौतके दिन पूरे करते हैं। और शेष एक भागमेंसे बहुभाग पर्वबद्ध पुण्यके उदयसे प्राप्त इष्ट विषयोंमें भोगतृष्णासे प्रेरित निरन्तर आत्माकुलित किया करते हैं। बाकी कुछ इने गिने जिनके काललब्धिके निमित्तसे कर्मभार कुछ हलका होगया है, आत्महितकी खोजमें उद्यमशील दृष्टिगोचर होते हैं। परन्तु उनमें भी अनेक महाशय सदुपदेशके अभावसे मृगतृष्णामें जल संकल्पभ्रान्त मृगोंकी तरह इतस्ततः भटकते हुए अभीष्ट फलसे वंचित ही रहते हैं। आज इस लेखमें हमको इस ही विषयका विवेचन करना है कि, इस जीवका वास्तविक हित क्या है और उस हितका साधकमार्ग साक्षात् तथा परम्परा प्रणाली किस प्रकार है।

आत्महित।

जीवके आल्हादात्मक गुणविशेषको सुख कहते हैं। यह सुख गुण अनादिकालसे ज्ञानावरणादिक अष्टकर्मोंके निमित्तसे वैभाविक परिणतिरूप हो रहा है। सुख गुणकी इस वैभाविक परिणतिको ही दुःख कहते हैं। इस आकुलतात्मक दुःखके दो भेद हैं-एक साता और दूसरा असाता। संसारमें अनेक प्रकारके पदार्थ हैं जो प्रति समय यथायोग्य

निमित्त मिलनेपर स्वाभाविक तथा वैभाविक पर्यायरूप परिणमन करते रहते हैं। यदि परमार्थ दृष्टिसे देखा जाय तो कोई भी पदार्थ न इष्ट है और न अनिष्ट है। यदि पदार्थोंमें ही इष्टानिष्टता होती तो एक पदार्थ जो एक मनुष्यको इष्ट है वह सबहीको इष्ट होता और जो एकको अनिष्ट है। वह सबहीको अनिष्ट होता। परन्तु संसारमें इससे विपरीत देखा जाता है इससे सिद्ध होता है कि, पदार्थोंमें इष्टानिष्टता नहीं है। किन्तु जीवोंने भ्रम-वश किसी पदार्थको इष्ट और किसीको अनिष्ट मान रक्खा है। मोहनीय-कर्मके उदयसे दुरभिनिवेशपूर्वक इष्टानिष्ट पदार्थोंमें यह जीव रागद्वेषको प्राप्त होता है जिससे निरन्तर ज्ञानावरणादिक कर्मोंका बन्ध करके इस संसा-रमें भ्रमण करता हुआ इष्टानिष्ट संयोग वियोगमें अपनेको सुखी दुखी मानता है। भ्रमवश इस जीवने जिसको सुख मान रक्खा है वह वास्तवमें आकु-लतात्मक होनेसे दुःख ही है। ये सांसारिक आकुलतात्मक सुख दुःख आत्माके स्वाभाविक सुख गुणका कर्मजन्य विकृत परिणाम है। कर्मोंसे मुक्त होनेपर उस गुणकी स्वाभाविक पर्यायको ही यथार्थ सुख अर्थात् वास्तविक आत्महित कहते हैं।

आत्महितका साक्षात् साधन—

मुनिधर्म है। आत्माके सुख गुणको विकृत करनेवाले ज्ञानावरणादिक अष्टकर्म हैं। इस कारण जबतक ये कर्म आत्मासे जुदे न होंगे तब तक इस जीवको यथार्थ सुख नहीं मिल सकता। न्यायका यह सिद्धान्त है कि जिस कारणसे जिस कार्यकी उत्पत्ति होती है उस कारणके अभावसे उस कार्यकी उत्पत्तिका भी अभाव हो जाता है। इस न्यायके अनुसार यह बात स्वतः सिद्ध है कि, जिन कारणोंसे कर्मोंका सम्बन्ध होता है। उन कारणोंके अभावमें कर्मोंका वियोग अवश्य हो जायगा। मिथ्याज्ञानपूर्वक रागद्वेषसे कर्मोंका बन्ध होता है अतः सम्यग्ज्ञानपूर्वक रागद्वेषकी निवृत्तिसे यह जीव कर्मोंसे मुक्त हो सकता है। एकदेश ज्ञानकी प्राप्ति तथा रागद्वेषकी निवृत्ति यद्यपि गृहस्थाश्रममें भी होसकती है परन्तु पूर्णतया ज्ञानकी प्राप्ति तथा रागद्वे-

पकी निवृत्ति मुनि अवस्थामें ही होती है इसलिये आत्महितका साक्षात् साधन मुनि धर्म ही है। परन्तु जो महाशय सिंहवृत्तिरूप मुनिधर्मको धारण करनेमें असमर्थ हैं वे—

आत्महितका परम्परा साधन

सागारधर्मका आराधन कर अपनी कर्तव्यताका पालन करते हैं जो महानुभाव पूर्वभवके संस्कारसे दीक्षोचित उत्तम कुलमें जन्म लेकर गर्भाधानादि संस्कार विधिसे संस्कृत होते हैं उन्ह. धर्मको धारण करनेके वे ही उचित पात्र हैं। यह सागारधर्म तीन विभागोंमें विभाजित है। उन तीन विभागोंमेंसे प्रथम भाग—

ब्रह्मचर्याश्रम—

है। गर्भसे अष्टम वर्षमें ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य पुत्र जिनमंदिरमें जाकर अर्हत्पूजनपूर्वक शिरोमुंडन मौंजीबंधन और सात लड़का यज्ञोपवीत धारणकर स्थूलहिंसादिक पापोंका त्याग गुरुकी साक्षीसे ब्रह्मचर्यव्रतको धारण करें। यह ब्रह्मचारी शिखा तथा श्वेत अथवा रक्त वस्त्र (अन्तरीय और उत्तरीय) धारण करें, तथा अपने आचरणके योग्य जिनदासादिक दीक्षित नामको धारण करें। शृङ्गारादिक क्रियाओंसे सदा उदासीन रहें। और राजपुत्रके सिवाय अन्य समस्त ब्रह्मचारी भिक्षावृत्तिसे निर्वाह करें। इस प्रकार वेष धारणकर यावज्जीव विद्या तथा धर्मके आराधन करनेवालेको नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहते हैं। यहां इतना विशेष है कि जो महाशय इस उपनयन संस्कारके पश्चात् केवल यज्ञोपवीत धारणकर विद्याभ्यासके अनन्तर किसी उचित कन्याके साथ पाणिग्रहण कर लेते हैं वे उपनय ब्रह्मचारी कहलाते हैं। जो क्षुल्लक रूपसे विद्याभ्यास समाप्तकर गृहस्थाश्रममें प्रवेश करते हैं वे अवलम्ब ब्रह्मचारी कहलाते हैं। जो बिना किसी वेषके विद्याध्ययनकर विवाह करलेते हैं वे अदीक्षा ब्रह्मचारी कहलाते हैं। और जो गूढवेषसे विद्या

न्यासकर राजा तथा कुटुम्बियोंके आग्रहसे गृहस्थाश्रमको अवलम्बन करते हैं वे गूढब्रह्मचारी कहलाते हैं। तथा जो महाशय गृहस्थाश्रमको त्याग विषयभोगोंसे विरक्त होकर यावज्जीव ब्रह्मचर्यव्रतको धारण करते हैं वे भी नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं। इस ब्रह्मचर्याश्रममें पांचो ही प्रकारके ब्रह्मचारी यद्यपि ब्रह्मचर्यव्रतके पालन और भिक्षावृत्तिसे निर्वाह इन दोनों क्रियाओंमें समान हैं तथापि चारित्रके अन्य भेदोंकी अपेक्षासे इनमें तारतम्य है। अर्थात् पाक्षिक अवस्थासे लगाकर नवमी प्रतिमातक ब्रह्मचर्याश्रममें चारित्र पाया जाता है। इस ब्रह्मचर्याश्रममें विद्यासाधनकी प्रधानता है। प्राचीन कालमें इन ब्रह्मचारियोंमेंसे कितने ही ब्रह्मचारी तो गृहस्थाचार्यके समीप विद्याध्ययन करते थे। तथा कितने ही ब्रह्मचारी मुनि तथा विद्वान् ब्रह्मचारीयोंके साथ देशाटन करते हुए विद्यादेवीकी उपासना करते थे। परन्तु खेदके साथ कहना पड़ता है कि आज न तो वे गृहस्थाचार्य ही है और न वे विद्वान् ब्रह्मचारी और मुनि ही हैं कि, जिनके निमित्तसे हमारी सन्तान स्वतंत्रतापूर्वक किसी प्रकारके द्रव्यव्ययके विना विद्या सम्पादन कर सके। आज हमको इस विद्यासाधनके निमित्तभूत पाठशाला, विद्यालय, कालेज, स्कूल, बोर्डिंग आदिक बनानेके लिये घर घर भिक्षा मांगनी पड़ती है और फिर भी यथेष्ट सफलता प्राप्त नहीं होती। परन्तु लाचार होकर हमको प्राप्तोनिर्वाचितेऽभुना की नीतिका अवलम्बन करके वर्तमान देशकालानुरूप रीति नीतिके अनुसार प्रयत्नशील होकर उसमें यथा संभव सुधार करते हुए विद्योन्नतिके कार्यमें तनमनधनसे उद्योग करना चाहिये। विद्याविषय शिक्षाप्रणाली और संस्था प्रबन्ध इस प्रकार दो विभागोंमें विभक्त हो सकता है। इन दो विभागोंमेंसे पहिले—

शिक्षाप्रणाली—

पर विवेचन किया जाता है। संसारके समस्त प्राणियोंकी यह इच्छा रहती है कि, हमको सुखकी प्राप्ति हो और सदाकाल ऐसा ही उपाय

करते रहते हैं। परन्तु सुख तथा सुखके साधनका यथार्थ स्वरूप न जाननेके कारण अभीष्ट फलको प्राप्त नहीं होते। यथार्थ सुख मोक्षमें है इसलिये पुरुषका असली प्रयोजन अर्थात् परमपुरुषार्थ मोक्ष है। मोक्षका साधन धर्म है। इसलिये दूसरा पुरुषार्थ धर्म है। इस धर्मपुरुषार्थका पूर्णतया साधन यत्याश्रममें ही हो सकता है। और इस यत्याश्रमको वे ही महानुभाव धारण कर सकते हैं कि, जो शारीरिक तथा मानसिक शक्तिशाली होनेपर विषयभोगोंसे नितान्तविरक्त होगये हैं। जो महाशय विषयभोगोंसे विरक्त होनेपर भी शारीरिक तथा मानसिक शक्तिकी हीनताके कारण मुनिपदको धारण नहीं कर सकते। वे दशमी तथा ग्यारवीं प्रतिमास्वरूप वानप्रस्थ आश्रमको स्वीकार करके धर्मपुरुषार्थका एकदेश साधन करते हैं। तथा जिन महाशयोंकी विषयाकांक्षा भी पूर्णतया नहीं घटी है देवद्विजाग्नि साक्षीपूर्वक योग्य कन्यासे पाणिग्रहण करके न्यायरूप भोगोंको भोगते हुए कामपुरुषार्थ तथा उसके साधनभूत धनार्जनरूप अर्थपुरुषार्थ और यथाशक्ति धर्मपुरुषार्थ इसप्रकार धर्म अर्थ और कामस्वरूप त्रिवर्गका साधन करते हुए गृहस्थाश्रमका पालन करते हैं। उक्त चारों पुरुषार्थोंमें मोक्ष और काम ये दो पुरुषार्थ साध्यरूप हैं तथा धर्म और अर्थ ये दो पुरुषार्थ साधनरूप हैं। किसी पुरुषार्थका साधन तद्विषयिक विद्या प्राप्त किये बिना अत्यन्त दुःसाध्य है और गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेपर चित्त अनेक चिन्ताओंसे व्याकुलित हो जाता है। इसलिये इतर तीन आश्रमोंकी साधनभूत विद्याओंकी आराधनाके लिये अनेक चिन्ताओंसे अलिप्त कुमार अवस्थामें ब्रह्मचर्य आश्रमका विधान है। इस ब्रह्मचर्य आश्रममें किन २ विद्याओंके अभ्यास करनेकी आवश्यकता है आगे इस ही विषयपर विवेचन किया जाता है। नीतिकारोंने कहा है कि—

दोहा—कला बहत्तरि पुरुषकी तामें दो सरदार ॥
एक जीवकी जीविका एक जीव उद्धार ॥ १ ॥

काव्य—अनन्तपारं किलशब्द शास्त्रं ।
स्वल्पं तदायुर्बहवश्च विघ्नाः ॥
सारं ततोग्राह्यमपास्य फल्गु ।
हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात् ॥ २ ॥

भावार्थ धर्म पुरुषार्थ और अर्थ पुरुषार्थ इन दो पुरुषार्थोंकी कारणभूत धार्मिक और औद्योगिक इन दो प्रकारकी विद्याओंका अभ्यास करना परमावश्यक है। किसी भी विद्याकी प्राप्ति उस भाषाके परिज्ञानके बिना नहीं हो सकती। जिस भाषामें ग्रन्थकारोंने उक्त विद्याओंका निरूपण किया है। हमारे प्राचीन ऋषियोंने संस्कृत भाषामें प्रायः समस्त विषयोंकी रचना की थी। परन्तु हमारे दुर्भाग्यवश कुछ आक्रमणोंद्वारा और कुछ हमारी उपेक्षासे हमारा संस्कृत साहित्य प्रायः नष्ट भ्रष्ट होगया, इसलिये संस्कृत भाषामें हमको समस्त आवश्यक विषय नहीं मिलते हैं। इसलिये औद्योगिक विद्याओंकेलिये हमको अंग्रेजी साहित्यका भी आश्रय लेना पड़ता है। इन सबका खुलासा यह हुआ कि, विद्याओंकी प्राप्तिकेलिये हमको संस्कृत और अंग्रेजी भाषाका परिज्ञान करनेकी आवश्यकता है। भाषाओंके दो भेद हैं। मातृभाषा और इतरभाषा। मातृभाषाके लिखने पढ़ने और सीखनेमें जितने परिश्रमकी आवश्यकता है इतर भाषाओंके लिखने पढ़ने और सीखनेमें उससे कई गुणा परिश्रमकी आवश्यकता होती है। संस्कृत और अंग्रेजी हमारी मातृभाषा नहीं है इसलिये मातृभाषाकी अपेक्षा इतर विद्याओंके अभ्यास करनेमें बहुत अधिक काल लगता है। योरुप, अमेरिका, जापान आदि देशोंने आशातीत उन्नति की है वह इस ही नीतिके अवलम्बनसे ही की है। परन्तु हमारे भोले भारतवासी लकीरके फकीर बिना विद्याभ्यासके भाषाओंके परिज्ञान प्राप्त करनेहीमें अपना समय खोकर विद्याशून्य निकम्मे रह अपने अमूल्य जीवनको व्यर्थ खो रहे हैं। प्रत्येक भाषामें यह एक अपूर्व चमत्कार है कि किसी भी

लेखमें लेखकके अभिप्रायोंका प्रतिबिम्ब पड़ता है। इसलिये किसी मूल पुस्तकके अभ्यास करनेसे प्रकृत भाषाका मर्मज्ञ चतुर पाठक मूल ग्रन्थकर्ताके असली अभिप्रायतक पहुंच सकता है। परन्तु उक्त मूल ग्रन्थके इतर भाषामें अनुवादको पढ़नेसे मूल ग्रन्थकर्ताके अभिप्राय ज्ञात नहीं हो सकते। किन्तु उस अनुवादके पढ़नेसे पाठक अनुवादके केवल उन अभिप्रायोंतक पहुंच सकता है कि, जो अनुवादकने मूल ग्रन्थके अभ्याससे समझे हैं। सम्भव है कि, अनुवादक मूल ग्रन्थकर्ताके असली अभिप्रायोंको न पहुंचा हो तथा प्रत्येकभाषामें प्रत्येक विषयके अभिभावक शब्द न मिलनेकी भी संभावना है। इसलिये अनुवादित ग्रन्थोंका अभ्यास करनेसे मूलग्रन्थोंके अभ्यासकी अपेक्षा त्रुटि रहजानेकी संभावना है। परन्तु यह त्रुटि उस त्रुटिके सामने बहुत ही थोड़ी है कि, जो अमातृक भाषाओंका अभ्यास करने मूल विद्याओंमें वंचित रहनेसे होती है। इसलिये सर्व साधारणकेलिये राजमार्ग यही हो सकता है। कि, इष्ट विद्याओंका अभ्यास उन ग्रन्थोंका मातृभाषामें अनुवाद कराकर कराया जावे। आजकल इस भारतवर्षमें अंगरेज महाशयोंका राज्य है इसलिये राजविद्या अंगरेजी है। राजविद्याका अभ्यास किये बिना आजकल मनुष्य मूर्ख समझा जाता है। व्यापारमें राजविद्याका आजकल इतना अधिकार बढ़ चढ़ रहा है। कि, उसके बिना व्यापारके असली तत्त्वसे वंचित रहना पड़ता है इसलिये अंगरेजी भाषाका परिज्ञान प्राप्तकरना हमारा प्रधान कर्तव्य है। शिक्षाप्रणाली चार विभागोंमें विभाजित होसकती है। अर्थात् १ प्रारंभिक शिक्षालय (Primary School), २ प्रवेशिका विद्यालय (Anglo-Vernacular High school) ३, भाषा महाविद्यालय (Vernacular College) और ४ संस्कृत महाविद्यालय (Sanskrit College) भाषा महाविद्यालयके अन्ततक अंगरेजी भाषाका इतना ज्ञान करा देना चाहिये कि, जितना आजकल अंगरेजी हाईस्कूलोंमें

मेट्रिक्यूलेशनतक कराया जाता है। तथा मातृभाषाके साहित्यके साथ २ मातृभाषामें ही उन समस्त विद्याओंका अभ्यास करा देना चाहिये जिनका कि, अभ्यास वर्तमानदेशकालानुसार आवश्यक है। तथा इतना संस्कृत भाषाका भी ज्ञान करा दिया जावे कि, जिससे विद्यार्थी सुगम संस्कृत ग्रन्थोंको समझ सके तथा संस्कृत विद्यालयमें अभ्यास करने योग्य हो जावे। इसके पश्चात जिन महाशयोंको गृहस्थाश्रम संबन्धी चिन्ताओंने नहीं सताया है, तथा जो महाशय उत्साहपूर्वक आगे भी विद्याभ्यास करना चाहते हैं, उनकेलिये आगे विद्याभ्यास करनेके दो मार्ग हैं। जो महाशय पाश्चिमात्य विद्वानोंके मूल ग्रन्थोंका अभ्यास करके सरकारी डिग्रियां प्राप्त करना चाहते हैं। उनको चाहिये कि वे सरकारी कालेजोंमें प्रवेश करके अपनी इच्छा पूर्ण करें और जो महाशय प्राचीन ऋषियोंकृत मूल न्याय धर्म अध्यात्म शास्त्रोंका अभ्यास करनेके अभिलाषी हैं उनकेलिये संस्कृतविद्यालय स्थापन करनेकी आवश्यकता है। शिक्षाप्रणालीका क्रम निरूपण करनेसे पहिले इस बातका विवेचन किया जाता है कि, शिक्षाप्रणालीमें हमको किन २ विद्याओंका समावेश इष्ट है। समस्त विद्या तीन विभागोंमें विभक्त हो सकती हैं अर्थात भाषा १, मूल विद्या २, और सहकारिणी विद्या ३, भाषा भी तीन भागोंमें विभक्त है। अर्थात —

भाषाविभाग।

१ मातृभाषासाहित्य. (Vernacular Literature.)

२ अंगरेजीसाहित्य. (English Literature.)

३ संस्कृतसाहित्य. (Sanskrit Literature.)

मूलविद्याविभाग

१ धार्मिकविद्या.

२ औद्योगिकविद्या.

धर्मविद्याविभाग।

१ प्रथमानुयोग (इतिहास) (History).

२ चरणानुयोग.

३ करणानुयोग (Geography & Astronomy).

४ द्रव्यानुयोग (पदार्थविज्ञान) (Science & Philosophy).

औद्योगिकविद्याविभाग।

१ शस्त्रविद्या.

२ कृषिविद्या (स्थल, जल,–भूगर्भ, खनि) (Agriculture Mineral &c).

३ मसिविद्या (Book Keeping).

४ वाणिज्यविद्या (Trade).

५ शिल्पविद्या (चित्रस्थपितादि) (Technical Engineering &c.)

६ इतर विद्या (संगीतादिक).

सहकारिणीविद्याविभाग।

१ गणितविद्या—

१ अंकगणित (Arithmatic).

२ रेखागणित (Euclid).

३ बीजगणित (Algebra).

४ क्षेत्रगणित (Mensuration).

२ नीतिविद्या.

१ सामान्यनीति.

२ राजनीति (Political knowledge).

३ वैद्यकविद्या (Physical Knowledge).

४ न्यायविद्या (Logic).

अब आगे शिक्षाप्रणालीका क्रम लिखा जाता है।

प्राथमिक शिक्षाक्रम ।

खण्ड.	काल.	धर्मशास्त्र.	भाषा.	गणित.	मौखिक शिक्षा*	जागरफी.
१	६ मास	बालबोध जैनधर्म प्रथमभाग.	प्रथम पुस्तक.	पहाड़े २० तक.	प्रथमभाग.	दिशाओंका ज्ञान.
२	,,	द्वितीयभाग.	द्वितीय पुस्तक.	पहाड़े पूर्ण.	द्वितीयभाग.	जिला जागरफी.
३	१ वर्ष	तृतीयभाग.	तृतीय पुस्तक, भाषाव्याकरण पूर्वार्द्ध	साधारण जोड़, बाकी, गुणा और भाग.	तृतीयभाग.	प्रान्त जागरफी.
४	१ वर्ष	चतुर्थभाग.	चतुर्थ पुस्तक, भाषाव्याकरण पूर्ण.	मिश्र जोड़, बाकी, गुणा, भाग, त्रैराशिक, जिन्सों की फैलावट गुरुओंसे	चतुर्थभाग.	भारत जागरफी.

* इस विषयकी शिक्षाके लिये अध्यापक पशु, पक्षी, फल, फूल, अन्न आदि पदार्थोंके रंग, रूप, प्रकार, उपयोग आदिका ज्ञान करावे, और ज्ञान कराते समय संभवतः उन पदार्थोंको सन्मुख रक्खे ।

प्रवेशिका शिक्षाक्रम.

खंड.	काल.	धर्मशास्त्र.	भाषा साहित्य.	गणित.	इंगलिश.	इतिहास जागरफी व पदार्थ विज्ञान.
१	एकवर्ष.	पार्श्वपुराण.	जैनपद्यसंग्रह, भाषासारसंग्रह.	मिश्र, दशमलव व मुनीमी.	Primer. and I Reader.	जैन जागरफी व भारतका इतिहास.
२	,,	श्रावकाचार छहढालामार्ग.	छन्दप्रभाकर. उपमिति भवप्रपञ्चा कथा	अंकगणित पूर्ण	II Reader.	इंग्लेंडका इतिहास पदार्थ विज्ञान.
३	,,	मोक्षमार्ग-प्रकाशक.	चरित्र गठन प्रबोध चन्द्रिका	रेखागणित १ भाग बीज गणित जोड़ बाकी गुणा भाग	III Reader & Grammer (Etymology)	इतिहास (फ्रांस) पदार्थ विज्ञान रसायन (मोहनचरण कृत)
४	,,	जैनसिद्धान्त प्रवेशिका, चर्चाशतक.	मुद्राराक्षस. हरिश्चन्द्र नाटक. सुशीला उपन्यास.	रेखागणित ४ भाग, बीज गणित, क्षेत्र गणित,	IV Reader & Grammer.	इतिहास (जर्मन) रसायन और नैपोलियन बोनापार्ट.

हिन्दीकालेज।

खंड.	काल.	धर्मशास्त्र.	संस्कृत साहित्य.	न्याय.	इंग्लिश.	औद्योगिक.
१	१ वर्ष	जैनसिद्धान्तदर्पण.	संस्कृत शिक्षिका.	प्रमाणनय दीपिका.	Matric course.	स्वाधीनता.
२	,,	समयसारनाटक. प्रवचनसारकेपद.	क्षत्रचूडामणि. हितोपदेश.	त्रिलोकसार.	Do.	सम्पत्तिशास्त्र.

संस्कृत कालेज।

उपाध्याय परीक्षा।

खण्ड.	काल.	धर्मशास्त्र.	न्याय.	साहित्य.	व्याकरण.
१	१ वर्ष	सागार धर्मामृत त्रैवर्णिकाचार (ब्रह्मसूरिकृत)	न्यायदीपिका परीक्षामुख मूलसूत्र.	चन्द्रप्रभकाव्य.	जैनेन्द्र वा शाकटायन की प्रत्यान्त.
२	,,	सर्वार्थसिद्धि	प्रमेयरत्नमाला आप्तमीमांसामूल.	अलंकारचिन्तामणि. पार्श्वनाथ काव्य.	पूर्वार्द्ध.

विशारद परीक्षा।

खण्ड.	काल.	धर्मशास्त्र.	न्याय.	साहित्य.	व्याकरण.
१	१ वर्ष.	गोमटसारजीवकाण्ड पञ्चाध्यायी १ अध्याय.	आप्त परीक्षा सप्तभंगीतरंगिणी	धर्मशर्माभ्युदय जीवंधर चम्पू,	तिङन्त
२	१ वर्ष	गोमटसारकर्मकाण्ड, पञ्चाध्यायी पूर्ण.	प्रमेयकमल मार्तण्ड	द्विसंधानकाव्य, विक्रान्त कौरवीय नाटक.	पूर्ण.

आचार्य परीक्षा।

खण्ड.	काल.	धर्मशास्त्र.	न्याय.	साहित्य.	व्याकरण.
१	१ वर्ष.	लब्धिसार. राजवार्तिक.	अष्टसहस्री.	गद्यचिन्तामणि काव्यानुशासन (हेमचन्द्र)	जैनेन्द्र महावृत्ति अथवा अमोघवृत्ति. दो अध्याय.
२	"	नाटकत्रयी.	श्लोक वार्तिक.	यशस्तिलक, आदिपुराण.	पूर्ण.

कन्या शिक्षा.

प्राथमिक शिक्षा.

१ धर्मविषय. २ भाषाविषय. ३ गणित. सीनापीरोना

प्रवेशिका.

१ धर्मविषय. पाकशास्त्र. अंकगणित.

हिन्दीकालेज.

१ धर्मविषय.

उपर्युक्त पठनक्रममें प्रायः जैनियोंकी बनाई हुई पुस्तकें रक्खी गई हैं। तथा कितनी ही पुस्तकें अन्यमतावलम्बियोंकी बनाई हुई रक्खी हैं। और कुछ पुस्तकें उपलब्ध न होनेके कारण विषयके नामसे ही अंकित की गई हैं। जो पुस्तकें अन्यमतावलम्बीकृत रक्खी हैं, उनका विषय प्रायः जिनमतसे अविरुद्ध है और यदि किसी पुस्तकमें जिनमतसे विरुद्ध विषय हो तो जैन विद्वानोंका कर्तव्य है कि वे उक्त पुस्तकोंके सदृश विषयवाली जैनमतसे अविरुद्ध पुस्तकोंकी रचना करें और उसमें विरुद्ध विषयोंकी उल्लेखपूर्वक समालोचना करके यथार्थ स्वरूपका निरूपण करें। तथा अनुपलब्ध पुस्तकोंकी रचना करके पठनक्रमकी त्रुटियोंको पूर्ण करें। पाठ्य पुस्तकोंकी रचना करनेके लिये अनुभवी विद्वानोंकी एक कमेटी बनाई जावे। और उस कमेटीसे पास कराके पुस्तक प्रचारमें लाई जावे। आनरेबल मिस्टर गोखलेके बिलका समर्थन करते हुए हम सरकारसे भी प्रार्थना करते हैं कि, प्राथमिक शिक्षाका प्रचार मुफ्त और बलपूर्वक किया जावे।

गृहस्थाश्रमरूपी गाड़ीको चलानेवाले पुरुष और स्त्री ये दो पहिये हैं। इसलिये गृहस्थाश्रमके योग्य पात्र बनानेके लिये जैसे बालकोंको शिक्षाकी आवश्यकता है। उस ही प्रकार योग्य गृहिणी बनानेकेलिये कन्याओंको भी शिक्षा देनेकी आवश्यकता है। जिस

घरमें शिक्षिता स्त्री नहीं है। वहां वर्णाश्रम धर्मका यथोचित पालन नहीं हो सकता। बाल्यावस्थामें सन्तानको उचित शिक्षासे भूषित करना माताका ही कर्तव्य है। अनेक महाशयोंका कथन है कि शिक्षासे स्त्रियां दुश्चरित्रा हो जाती हैं यह उनका भ्रम है। पुराण और इतिहासोंसे यह बात सुतरां सिद्ध है। कि सीता, द्रौपदी, अंजना, मनोरमादिक अनुकरणीय सर्व ही सती शिक्षिता थीं। स्त्रियोंको दुश्चरित्रा बनानेका कारण दूषित शिक्षा है। असभ्य और अश्लील पुस्तकोंके अभ्याससे स्त्रियोंके चारित्रमें धब्बा लग जाता है। इसलिये स्त्रियोंकी शिक्षाकी उत्तमतापर पूर्ण ध्यान रखना चाहिये। स्त्रियोंको धार्मिक तथा गृह सम्बन्धी पाकादिककी और घरका हिसाब रखने योग्य गणितकी शिक्षा तो अवश्य ही देनी चाहिये। शिक्षा प्रचारके लिये—

संस्थाओंके प्रबन्ध—

की आवश्यकता है। प्रत्येक ग्राममें जहां जैनियोंकी बस्ती कमसेकम दश घरकी भी हो वहां एक २ पाठशाला स्थापन की जावे। जिसमें प्राथमिक शिक्षा दी जावे। प्रत्येक नगरमें जहां जैनियोंकी बस्ती कमसेकम सौ घरकी हो वहां प्राथमिक और प्रवेशिका पाठशाला खोली जावे। जिसमें प्राथमिक और प्रवेशिकाकी शिक्षा दी जावे। भाषाओंके हिसाबसे भारतवर्षको चार विभागोंमें विभाजित करना चाहिये। अर्थात्

१ हिन्दीविभाग.	**३ गुजरातविभाग.**
२ दक्षिण विभाग.	**४ कर्नाटकविभाग.**

प्रत्येक विभागमें अपनी २ मातृभाषामें शिक्षा दी जावे। सब विभागोंमें कमसेकम एक भाषामहाविद्यालय खोला जावे, जिसमें प्रवेशिका और भाषामहाविद्यालयकी शिक्षा दी जावे। भारतवर्षमें कमसेकम एक संस्कृतमहाविद्यालय खोला जावे, जिसमें संस्कृत भाषामें न्याय व्याकरण साहित्य और धर्मशास्त्रकी शिक्षा दी जावे। भारतवर्षकी समस्तशिक्षा-

सम्बन्धी संस्थाओंका प्रबन्ध करनेके लिये विद्वानोंकी एक सभा बनाई जावे, जिसमें संस्कृतके पंडित और ग्रेज्युएट शामिल किये जावें। इस विद्वज्जन महासभाके अन्तर्गत चार प्रान्तिकसभा नियत की जावें, जो उपर्युक्त प्रत्येक विभागका प्रबन्ध करें। प्रत्येक विभागके लिये कमसे-कम एक एक निरीक्षक नियत किया जावे तथा परीक्षाकेलिये एक परीक्षालय खोला जावे, जो भारतवर्षके समस्त विद्यार्थियोंकी परीक्षा लिया करे। असमर्थ विद्यार्थी स्थानीय श्रावकोंके घर मधुकरी वृत्तिसे भोजनकर विद्याभ्यास करे। जहांतक हो ये संस्थाएं ब्रह्मचर्याश्रमके स्वरूपमें नियत की जावें। इन शिक्षालयोंके साथ एक एक बोर्डिंगहाउस भी रहे जिसमें समर्थ अथवा छात्रवृत्ति प्राप्त विद्यार्थियोंके भोजन तथा समस्त विद्यार्थियोंके निवासका प्रबन्ध किया जावे। शिक्षालय तथा बोर्डिंगोंमें शिक्षक अध्यक्ष सुपरिटेन्डेंट पदपर अनुभवी सदाचारी महाशय नियत किये जावें विद्यार्थियोंके शारीरिक स्वास्थ्य तथा सदाचारपर पूरा पूरा ध्यान दिया जावे। विद्यार्थियोंको स्वार्थत्यागकी भी शिक्षा दी जावे कि जिससे कुछ विद्यार्थी विद्या प्राप्त करके नैष्ठिक ब्रह्मचारी अथवा वानप्रस्थ तथा यत्याश्रमी बनकर देश देशान्तरमें देशाटन कर जैनधर्मकी विजयपताका फहराकर जैनधर्मको सार्वजनिक धर्म बना समस्त संसारका हित साधन करे। इस प्रकार संक्षेपसे ब्रह्मचर्याश्रमका कथन करके अब आगे गृहस्थाश्रमपर कुछ विवेचन किया जाता है।

गृहस्थाश्रम।

ब्रह्मचर्याश्रमको समाप्त करके गुरुकी आज्ञासे जो महानुभाव गृहस्थाश्रममें प्रवेश करते हैं, उनको धर्म अर्थ और काम इन तीन पुरुषार्थोंके साथ साथ सामाजिक नियमोंका भी पालन करना पड़ता है। इसलिये गृहस्थाश्रमके कर्तव्य धर्म अर्थ काम और समाज इन चार विभागोंमें विभक्त हो सकते हैं। विषयभोगोंकी वासना इस जीवके अनादिकालसे लग रही

है और इस ही वासनाके निमित्तसे यह जीव इस संसारमें नाना प्रकारके दुःख भोग रहा है। इसलिये काम पुरुषार्थके निरूपण करनेकी कुछ आवश्यकता न समझकर धार्मिक आर्थिक और सामाजिक कर्तव्योंपर ही संक्षेपसे विवेचन किया जाता है। उक्त तीन विषयोंमेंसे पहिले धार्मिक विषयका निरूपण करते हैं।

गृहस्थधर्म।

अनादिकालसे घोर दुःखसंतप्त प्राणियोंको दुःखसे निकाल मोक्षके उत्तम सुखमें पहुंचावे उसे धर्म कहते हैं। जीवद्रव्यका सम्यक्त्वगुण अनादिकालसे दर्शनमोहनीयकर्मके निमित्तसे विकृत भावको प्राप्त हो रहा है। सम्यक्त्वके इस विकृत भावको ही मिथ्यात्व कहते हैं। मिथ्यात्वके सम्बन्धसे ही ज्ञानावरणकर्मके क्षयोपशमसे प्रकाशमान ज्ञान भी मिथ्याज्ञान कहलाता है तथा चारित्रमोहनीयकर्मके निमित्तसे आत्माके चारित्र गुणका भी विकृत परिणाम हो रहा है। मोहनीयकर्मका क्षय होनेसे जीवके सम्यक्त्व और चारित्र गुण स्वाभाविक अवस्थाको प्राप्त हो जाते हैं। तथा मोहनीयकर्मका क्षय होनेसे कुछ ही पीछे ज्ञानदर्शनावरण और अंतरायके क्षयसे पूर्णज्ञानको प्राप्त हो जाता है। कुछ कालके बाद योगोंका भी अभावकर सम्यक्त्व ज्ञान और चारित्र इन तीन गुणोंकी पूर्णता हो जाती है। इन तीनों गुणोंकी पूर्णताको ही धर्म कहते हैं और यही धर्म मोक्षका सच्चा उपाय है। इन तीनों गुणोंमें सम्यक्त्व गुण प्रधान है। जब तक सम्यक्त्व गुणकी प्राप्ति नहीं होती तब-तक ज्ञान और चारित्र सम्यग व्यपदेशको प्राप्त नहीं होते। चारित्रगुणके दो भेद हैं। देशचारित्र और सकलचारित्र। सकलचारित्र मुनि अवस्थामें होता है। जो महाशय सकलचारित्रका पालन करनेमें असमर्थ होते हैं वे देशचारित्रको ग्रहणकर गृहस्थधर्मका पालन करते हैं। पदार्थोंके यथार्थ श्रद्धानको सम्यक्त्व, यथार्थ जाननेको सम्यग्ज्ञान कहते हैं।

हिंसा असत्य चौर्य मैथुन और परिग्रह इन पांच पापोंकी पूर्णतया निवृत्तिको सकलचारित्र और एकदेशनिवृत्तिको देशचारित्र कहते हैं। सम्यक्त्व सहित देशचारित्रके पालनकरनेको ही गृहस्थधर्म कहते हैं। इस गृहस्थधर्मको श्रावकधर्म और उसके पालनेवालेको श्रावक कहते हैं। श्रावकके तीन भेद हैं पाक्षिक १, नैष्ठिक २, और साधक ३, जो सम्यक्त्व और अष्ट मूल गुणोंका निरतिचार पालन नहीं कर सकता अर्थात् सदोष पालन करे उसको पाक्षिक श्रावक कहते हैं। अष्ट मूलगुण इस प्रकार हैं। मद्यत्याग १, मांसत्याग २, मधुत्याग ३, रात्रिभोजनत्याग ४, पंचोदुम्बरत्याग ५, पंचपरमेष्ठीकास्तवन ६ जीवदया ७, और जलगालन ८, सम्यक्त्व और मूलगुण तथा उत्तरगुणोंके सांगोपांग प्रतिमारूप निर्वाह करनेवालेको नैष्ठिक श्रावक कहते हैं। नैष्ठिक श्रावकके ११ भेद हैं जिनका संक्षेप स्वरूप इस प्रकार है। १ सम्यक्त्व और मूलगुणके निर्दोष पालनेको दर्शन प्रतिमा कहते हैं। २ अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रह, प्रमाण संज्ञक पंच अणुव्रत, दिग्व्रत, देशव्रत, और अनर्थदण्ड संज्ञक तीन गुणव्रत, तथा भोगोपभोग परिमाण प्रोषधोपवास सामायिक और अतिथि संविभाग संज्ञक चार शिक्षाव्रत, इस प्रकार १२ उत्तरगुणोंके निर्दोष पालनेको व्रतप्रतिमा कहते हैं। ३ त्रिकाल सामायिक करनेको सामायिक प्रतिमा कहते हैं। ४ पर्वदिनोंमें प्रोषधोपवास व्रत करनेको प्रोषधप्रतिमा कहते हैं। ५ सजीव पदार्थके भक्षणके त्यागको सचित्तत्यागप्रतिमा कहते हैं। ६ दिनमें मैथुन त्यागको दिवामैथुनत्यागप्रतिमा कहते हैं। ७ स्त्रीमात्रके संसर्ग त्यागको ब्रह्मचर्यप्रतिमा कहते हैं। ८ कृष्यादिक हिंसाके हेतुभूत आरंभके त्यागको आरम्भत्यागप्रतिमा कहते हैं। ९ धनधान्यादिक परिग्रहके त्यागको परिग्रहत्यागप्रतिमा कहते हैं १० आरम्भादिकमें अनुमतिके त्यागको अनुमतित्यागप्रतिमा कहते हैं। ११ उद्दिष्टभोजनके त्यागको उद्दिष्ट-

त्यागप्रतिमा कहते हैं। मरणसमय स्वरूपकी सावधानता रखनेवालेको साधक श्रावक कहते हैं। इस प्रकार गृहस्थधर्मका यहां नाम मात्र कथन किया है। इसका सविस्तर स्वरूप श्रावकचारोंसे जानना। जब तक धर्मके स्वरूपको नहीं जानोगे तब तक धर्ममें प्रीति कदापि नहीं हो सकती। नीतिकारोंका भी वाक्य है कि—

काव्य—न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्षं,
स तं सदा निन्दति नात्रचित्रम्।
यथा किरातीकरिकुम्भलब्धां
मुक्तां परित्यज्य बिभर्तिगुञ्जाम्॥ १॥

धर्मका महत्त्व न जानकर ही भोले भाईयोंके हृदयमें धर्मसे ग्लानि हो रही है। इसलिये जो महाशय अपनेको सदा सुखी बनाना चाहते हैं उनका प्रधान कर्तव्य धर्म शास्त्रोंका स्वाध्याय करना है। धर्म साधनके अनेक अंगोंमें स्वाध्याय प्रधान अंग है। इस स्वाध्यायको शास्त्रकारोंने अन्तरङ्गतपोंमें वर्णन किया है। स्वाध्याय करनेमें मन, वचन, काय, तीनों कारण सांसारिक विषयोंसे हटकर स्वाध्यायमें लग जाते हैं। इसलिये जितने कालतक यह जीव स्वाध्याय करता है, उतने कालतक परम निर्जरा होती है। स्वाध्यायकी सिद्धिके वास्ते पुस्तकोंकी प्राप्तिकी बहुत भारी आवश्यकता है। हमारे धर्म शास्त्र प्रायः संस्कृत और प्राकृत भाषाओंमें हैं। और आजकल इन दोनों ही भाषाओंका प्रचार बहुत ही कम हो गया है। इसलिये विद्वानोंका कर्तव्य है कि धर्मशास्त्रोंका देशभाषामें अनुवाद कर दें। और धनाढ्योंका कर्तव्य है कि उनको छपाकर बिना मूल्य अथवा अल्पमूल्यमें देकर सर्वसाधारणमें पुस्तकोंका प्रचार कर दें। छापेमें सरेसका बेलन तथा लेखोंमें अशुद्ध स्याही लगती है और कहीं २ अस्पृश्य शूद्रोंके हाथसे सब काम किया जाता है इसलिये छापा

कर्तव्य है कि, परमपवित्र जिनवाणीको छपानेके लिये एक स्वतन्त्र प्रेस बनावें। जिसमें स्वच्छ पवित्र वेष्ठन और शुद्ध स्याही काममें लाई-जावे तथा कर्मचारी म्लेच्छ अथवा अस्पृश्य शूद्र न रक्खे जावें। जब-तक इस प्रकारका प्रेस तय्यार न होवे तब तक जिनको हस्तलिखित शुद्ध ग्रन्थोंकी सुगमतासे प्राप्ति नहीं है वे उपलब्ध मुद्रित ग्रन्थोंका ही स्वाध्याय करें। स्वाध्याय न करनेकी अपेक्षा उपलब्ध ग्रन्थोंसे स्वाध्याय करना कहीं बढ़कर है। सुलभतासे पुस्तक प्राप्तिका सबसे बढ़कर साधन प्रत्येक नगर और ग्रामोंमें **सरस्वती भवनका—स्थापन** करना है। हमारे जिन पूर्वाचार्योंने अपने मुख्य धर्म, तप और ध्यानको गौणकरके हमारे उपकारके लिये अनेक ग्रन्थोंकी रचना की। आज उनकी सन्तानमें हम ऐसे अभागे उत्पन्न हुए कि, उन अमूल्य ग्रन्थोंको भंडारोंमें जीर्णशीर्ण देखते हुए अज्ञान और प्रमादके वशसे कभी उनको धूप भी नहीं दिखलाते। हमारी इस असावधानतासे हजारों ग्रन्थ दीमकोंकी जठराग्निको शमनकरके हमसे हमेशाके लिये विदा हो गये। किसी भी मतकी चिरस्थितिका यदि कोई उपाय है सो उस मतके साहित्यकी रक्षा करना ही है। इसलिये यदि आप इस जिनधर्मको कुछ कालतक कायम रखना चाहते हो तो जगह २ पर सरस्वतीभवन नियतकरके जिनवाणीकी रक्षा और उसका घर घर प्रचार करो। यद्यपि सरस्वतीभवनकेलिये बाबू देवकुमारजीका प्रयत्न प्रशंसा योग्य है। परन्तु ऐसी योग्यताका सर्वत्र मिलना दुःसाध्य है। इसलिये सरस्वतीभवनकेलिये सर्वत्र भिन्नस्थान बनानेकी कोई आवश्यकता नहीं है। जैनमंदिर अथवा मठोंके ही किसी कमरेमें सरस्वतीभवनका कार्य बहुत अच्छी तरह चल सकता है। और यही रीति हमारे यहां प्राचीन कालसे चली आ रही है। प्रत्येक मंदिरोंमें सर्वत्र शास्त्र भंडार पाये जाते हैं। यह सब कुछ

है। परन्तु जब मठ व मंदिरोंकी व्यवस्थापर विचार किया जाता है तो, हृदय कांपने लग जाता है मंदिर तथा मठोंके प्रबन्धकर्ता प्रायः पुराने ढर्रेके आलसी महात्मा हैं। मंदिरभंडारोंके हिसाब किताबका कुछ भी पता नहीं है। जिन लक्ष्मीके लालोंके मंदिरभंडारका रुपया जमा हुआ तो मानौं वह उनकी मौरूसी पूंजी हो गई। अगर किसीने हिसाब मांगा तो उसकी कम्बख्ती आ गई। इस प्रकार मंदिर व मठोंकी दुर्व्यवस्था होनेसे मंदिरोंकी आमदनी घट गई और हमारे धर्म साधनमें बड़ी हानि पहुंच रही है। इसलिये मठ मंदिर तीर्थक्षेत्रादिकोंका संतोष-जनक प्रबन्ध होनेकी बड़ी भारी आवश्यकता है। यद्यपि इस सभाके तथा बंबई प्रांतिकसभाके प्रयत्नसे अनेक तीर्थक्षेत्रोंका संतोषजनक प्रबन्ध हो गया है परन्तु अभी अनेक तीर्थक्षेत्रोंके प्रबन्धकी आवश्यकता है। मंदिरादिकका प्रबन्ध करनेकेलिये स्थानीय गृहस्थोंकी नियमानुसार सभाएं स्थापित होकर हिसाब किताब तथा अन्य सब कार्यवाहीकी प्रतिवर्ष रिपोर्ट छपकर प्रकाशित होनी चाहिये। जिसप्रकार मंदिरोंकी दुर्व्यवस्था हो रही है उस ही प्रकार व्यापारियोंके धर्मादायकी भी बुरी हालत है। जिन महाशयोंके धर्मादायका रुपया जमा है उसको उन्होंने अपना निज द्रव्य समझ रक्खा है। बहुत महाशयोंका तो काम ही इस फंडसे चल रहा है। यदि धर्मादायके द्रव्यकी सुव्यवस्था की जावे तो उस द्रव्यसे कई संस्थाओंका काम अच्छी तरहसे चल सकता है। प्रत्येक व्यापारीको इस बातकी प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिये कि वर्षके अन्तमें उक्त खातेका रुपया किसी संस्थाको भेजकर उक्त खातेको बराबर कर दे।

कर्मभूमिकी आदिमें ऋषभदेवस्वामीने क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इस प्रकार तीन वर्णोंकी स्थापना की थी। पीछे भरतचक्रवर्तीने क्षत्रिय वर्णमेंसे धर्मात्माओंको छांटकर ब्राह्मणवर्णकी स्थापना की। ये ब्राह्मण-निरन्तर आत्मकल्याण करते हुए अपनी विद्यासे इतर तीन वर्णोंका

अनेक प्रकारसे उपकार करते थे। उन ही ब्राह्मणोंकी सन्तानमें हमारे दक्षिणवासी उपाध्याय हैं। आजकल हमारे उपाध्याय महाशय विद्या-विहीन और निर्माल्योपजीवी होकर अत्यन्त हीन अवस्थाको प्राप्त होगये। यदि ये महाशय निर्माल्यभक्षणको छोड़कर अपनेको विद्यासे भूषित करें और उचित अवस्थामें वानप्रस्थ तथा मुनिपदको ग्रहण करके अनेक देशोंमें देशाटन करते हुए धर्मोपदेश करें तो यह जैनधर्म शीघ्र ही राष्ट्रधर्मका गौरव प्राप्तकर संसारके समस्त जीवोंका यथार्थ कल्याण करे। आज यह कहते हमको बड़ा हर्ष होता है कि जबसे बीसवीं शताब्दीका प्रारम्भ हुआ है तबसे लोगोंके हृदयमेंसे पक्षपातका पचड़ा निकल गया है अब वे बाबा-वाक्यको प्रमाण माननेके लिये तैयार नहीं हैं। आज अनेक महाशय सत्य-की खोजमें लग चुके हैं। ऐसे समयमें यदि जैनधर्मके सत्य और अटल सिद्धान्त पब्लिकके सम्मुख रक्खे जांय तो आशा है कि, जैनधर्मके सि-द्धान्तोंको सत्यान्वेषी महाशय सब उत्साहसे स्वीकार करेंगे। विस्तारके भयसे इस समय जैन सिद्धान्तविषयपर कुछ कहकर आपका समय लेना नहीं चाहता। यदि कुछ समय मिला तो फिर किसी दिन आपको उक्त विषयपर कुछ सुनाऊंगा अब अन्तमें जातिके अगुआ विद्वानोंसे प्रार्थना है कि वे गृहस्थाश्रमसे उपेक्षित होकर ब्रह्मचारी बन देशदेशान्तरोंमें देशा-टन करते हुए सारे संसारमें जैनधर्मके अटल सिद्धान्त **अहिंसापरमो-धर्मकी** विजयपताका फहराकर अतुल पुण्यका उपार्जन करें। इसप्रकार गृहस्थाश्रमके धार्मिकविषयको समाप्त करके आगे सामाजिक विषयपर विवेचन किया जाता है।

सामाजिक व्यवस्था।

श्लोकः—द्वौ हि धर्मौ गृहस्थानां लौकिकःपारलौकिकः।
लोकाश्रयाभवेदाद्यः परस्यादागमाश्रयः॥ १॥

सर्वमेव हि जैनानां प्रमाणंलौकिकोविधिः।
यत्रसम्यक्त्वहानिर्न यत्रनोव्रतदूषणम् ॥ २ ॥

उपर्युक्त श्लोकोंका भावार्थ इस प्रकार है कि, गृहस्थके दो धर्म हैं। एक लौकिक (सामाजिक) और दूसरा पारलौकिक (धार्मिक) लौकिक धर्म सामाजिक नियमोंके आश्रयसे चलता है। और पारलौकिक धर्म धर्मशास्त्रोंके नियमोंके अनुसार चलता है। किन्तु जो सामाजिक नियम सम्यक्त्व और चारित्रमें दोषोत्पादक हों वे सामाजिक नियम उपादेय नहीं हैं। अर्थात् धर्मशास्त्रोंसे अविरुद्ध ही सामाजिक नियम होने चाहिये। संसारमें जीवोंके मोहनीयकर्मकी तीव्र मंद उदयादिक अवस्थाके निमित्तसे श्रद्धान और आचरणमें अनेक भेद हो गये हैं। श्रद्धानके भेदसे धर्मभेद और आचरणके भेदसे समाजभेदकी उत्पत्ति होती है। किसी समाजमें धर्म और आचरण सदृश हैं और किसीमें आचरणकी समानता होनेपर भी धर्मकी सदृशता नहीं है। जिन मनुष्योंका परस्परमें पंक्तिभोजन और विवाह सम्बन्ध होता है। उनका ही एक समाज बन जाता है। और जिनका पंक्तिभोजन और विवाहसम्बन्ध परस्पर नहीं होता उनका समाज भी भिन्न होता है। समाजके मूलभेद दो हैं। एक आर्य और दूसरे म्लेच्छ। जो मनुष्य मांसोपजीवी हैं वे म्लेच्छ कहलाते हैं। और जो मांसोपजीवी नहीं है वे आर्य कहलाते हैं। किन्तु जो मनुष्य स्वयं तो मांसोपजीवी नहीं हैं परन्तु मांसोपजीवियोंके साथ उनका पंक्तिभोजन और विवाहसम्बन्ध है वे भी म्लेच्छ ही है। आर्य चार भागोंमें विभाजित हैं। अर्थात् जो शस्त्रोपजीवी हैं वे क्षत्रिय कहलाते हैं। जो मसिकृषिवाणिज्यसे आजीविका करते हैं उनको वैश्य कहते हैं। जो शिल्प और विद्योपजीवी हैं वे शूद्र कहलाते हैं। और जो आजीविकाका कुछभी उपाय न करके धर्म साधनपूर्वक स्वपरोपकार करते हुए इतर वर्णद्वारा भक्तिपूर्वक प्राप्तद्रव्यसे संतोषपूर्वक अपना जीवन निर्वाह करते हैं वे ब्राह्मण कहलाते हैं।

ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य ये तीन वर्णवाले उच्चकुली और मोक्षके पात्र हैं। शूद्र तथा म्लेच्छ नीचकुली मोक्षजानेके योग्य नहीं हैं। इस ही प्रकार मुनिलिंगको उच्चकुली ही धारण कर सकते हैं। उच्चकुली नीचकुलीके हाथका भोजन भी ग्रहण नहीं करते हैं। सन्तानक्रमसे जिनके उच्चाचरण चला आया है वे उच्चगोत्री और जिनके नीचाचरण चला आया है वे नीचगोत्री कहलाते हैं। तदुक्तं गोम्मटसारे।

गाथा—सन्ताणकमेणागय जीवायरणस्सगोद मिदिसण्णा।
उच्चंणीचंचरणं उच्चंणीचं हवेगोदम्॥ १॥

हिंसादिक बाह्य तथा रागद्वेषादिक अभ्यन्तर क्रियाविशेषके त्यागको निश्चय चारित्र कहते हैं और अशुभ कार्योंसे निवृत्त हो शुभकार्योंमें प्रवृत्तिको व्यवहार चारित्र कहते हैं। गोत्रके लक्षणमें आचरण शब्दसे व्यवहार चारित्र ही अभिप्रेत है। अर्थात् शुभप्रवृत्तिको उच्चाचरण और अशुभ प्रवृत्तिको नीचाचरण कहते हैं। दुष्ट तथा परचक्रसे प्रजाकी रक्षाकर उसकी एवजमें भूमिकरादिक वसूल कर आजीविका करनेको असिकर्म कहते हैं। राजा तथा व्यापारीका लेनदेनका हिसाब लिखकर आजीविका करनेको मसिकर्म कहते हैं। भोगोपभोगकी सामग्रीको पृथ्वीमेंसे उत्पन्न करके आजीविका करनेको कृषिकर्म कहते हैं। भोगोपभोगकी कच्ची सामग्रीको स्वयं तैयार करके अथवा अन्यसे तैयार कराकर तथा तैयार की हुई पक्की सामग्रीका क्रय विक्रयकर आजीविका करनेको वाणिज्यकर्म कहते हैं। ये चारों ही कर्म शुभकर्म हैं। इसलिये इनसे आजीविका करनेवाले भी उच्चकुली हैं। यद्यपि मसिकर्ममें स्वामी सेवककी रूढि प्रसिद्ध है। परन्तु वास्तवमें स्वामित्व तथा सेवकत्व नहीं है। राज्य तथा व्यापारका कार्य अत्यन्त महत्त्वका है इसलिये उसको एक मनुष्य पूर्णरूपसे करनेमें असमर्थ है, अतएव अपने रिश्तेदार भाईबन्ध तथा जातीय सज्जनोंकी सहायतासे उसको पूरा करता है। और उनको परिश्रमका

फलस्वरूप कुछ देकर उनसे अपनी बराबरीका व्यवहार रखता है। भोगोपभोगकी सामग्रीको शारीरिक परिश्रमसे तैयार करके उसके प्रति फलमें इनामके स्वरूपमें अथवा ठहराकर द्रव्य लेकर आजीविका करनेको शिल्पकर्म कहते हैं। तथा संगीतादिक नानाप्रकारकी विद्याओंसे दूसरेके चित्तको प्रसन्नकरके उनसे इनामके स्वरूपमें अथवा ठहराकर कुछ द्रव्य-लेकर आजीविका करनेको विद्याकर्म कहते हैं। यह दोनों ही कर्म अशुभ हैं। क्योंकि इन कर्मोंमें अपनेसे दूसरेको उच्च मानकर गूढरूपसे याचनाका प्रयोग करना पड़ता है। और इस ही कारणसे इन कर्मोंसे आजीविका करनेवाले नीचकुली हैं। परन्तु जो महाशय निरपेक्षवृत्तिसे अपनी विद्याओंद्वारा परका उपकार करते हैं और उपकार्य महाशय भक्तिपूर्वक उपकारकी भेटके स्वरूपमें कुछ अर्पण करते हैं, ऐसी भेटको ग्रहण करना नीचकर्म नहीं है। अब यहांपर यह शंका उठ सकती है कि, जब उच्चता और नीचता आचरणके निमित्तसे है तो, यदि कोई तत्‌काल नीचकर्म छोड़कर उच्चकर्म करने लगे तो उच्चकर्मका प्रारम्भ करते ही उच्चकुली हो सकता है या नहीं? इस शंकाका समाधान इस प्रकार है। यह जीव अनादि सन्तानबद्धकर्मके उदयसे प्रतिक्षण कर्म नोकर्म वर्गणाओंका ग्रहण करता रहता है। जिस प्रकार कर्म वर्गणा शुभाशुभ अनेक प्रकार है उस ही तरह नोकर्म वर्गणा भी अनेक [illegible] रूप है। जिस समय जीवके शुभाचरणरूप परिणाम होते हैं, [illegible] समय शुभ नोकर्मका बन्ध होता है, और जब अशुभ परिणाम [illegible] तब अशुभ नोकर्मका बन्ध होता है। जिस प्रकार कर्ममें स्थिति[illegible] होता है उस ही प्रकार नोकर्ममें भी स्थितिबन्ध होता है। इस[illegible] जीव चिरकालसे अशुभाचरण कर रहा है, उस जीवके अशु[illegible] सत्त्व अधिक है। यद्यपि भूतभवका नोकर्म वर्तमानभवमें [illegible] नहीं आता है। तथापि मातापिताके रजवीर्यसे जो इसका शरीर [illegible] है

उसमें अनेक अशुभाचरणी पूर्वजोंके अशुभ नोकर्मकी सन्तान आती है। इस प्रकार अशुभाचरणी पुरुषका शरीर नोकर्म वर्गणाओंके अशुभ परमाणुओंसे बना हुआ है। यदि किसी जीवने अशुभाचरण छोड़ दिया तो उसके अशुभ परमाणुओंके बन्धका तो उस ही समय अभाव हो जाता है। परन्तु सत्तामें जो अशुभपरमाणु मौजूद हैं वे तो बन्धाभावमें निर्जराको प्राप्त नहीं होते, किन्तु उनकी निर्जरा अपनी २ स्थिति पूरी होनेपर होगी। इससे सिद्ध होता है कि नीचकुली अशुभाचरणके छोड़नेपर भी तत्काल शुद्ध नहीं हो जाता। किन्तु उसके शुद्ध होनेके लिये कुछ कालकी आवश्यकता होती है। जो कालशुद्धिको नहीं मानते उनके सूतक तथा मद्य पानादिक प्रायश्चित्तकी शुद्धि नहीं हो सकती। बहुतसे महाशयोंका ऐसा कथन है कि जो अशुद्ध है वह हमेशा अशुद्ध ही रहेगा कभी भी शुद्ध नहीं होगा उनका कथन प्रमाणबाधित है। क्योंकि जो अशुभाचरणी अशुभाचरणको छोड़कर शुभाचरणकी तरफ लग जाते हैं उनके अशुभपरमाणुओंके बन्धका अभाव हो जाता है और पूर्वबद्ध परमाणुओंकी कालक्रमसे निर्जरा हो जाती है, ऐसा न माननेसे या तो शुभाचरणियोंके भी अशुभ नोकर्मका बन्ध मानना पड़ेगा, या पूर्वबद्ध नोकर्मकी स्थिति पूरी होनेपर भी निर्जराका अभाव मानना पड़ेगा और ये दोनों ही बातें सिद्धान्तसे विरुद्ध हैं, तथा अवसर्पिणीके छठे और उत्सर्पिणीके प्रथम और द्वितीय कालवर्ती अशुभाचरणियोंकी सन्तान स्वरूप परम विशुद्ध तीर्थंकरोंमें भी अशुद्धताका प्रसंग आवेगा। गोत्रके लक्षण निरूपक गाथासूत्रमें जो आचरणका विशेषण सन्तानक्रमेण गत पड़ा हुआ है उसका भी उपर्युक्त युक्तियोंसे अविरुद्ध यही अभिप्राय है कि शुद्धि होनेकेलिये कुछकालकी आवश्यकता है।

जैन धर्मको राष्ट्रधर्म बनानेकी बात सुनकर हमारे बहुतसे भाई विचलित चित्त हुए हैं। उन्होंने समझ रक्खा है कि जैसे आर्यसमाजी मुसलमानोंको आर्य बनाकर तत्काल उनके हाथका भोजन खाने लगते हैं,

उस ही प्रकार जैन धर्मको राष्ट्रधर्म बनानेवाले भी नीचकुलियोंको जैनी बना-
कर उनके हाथका भोजन खाने लगेंगे। सो ऐसा समझना उनका
भ्रम है। सार्वधर्म परिषदका उद्देश्य जीवमात्रका जैनधर्मके द्वारा कल्याण
करना है। सामाजिक व्यवस्थामें वह बिलकुल हस्तक्षेप नहीं करेगी। त्रै-
वर्णिकाचारादिक ग्रन्थोंसे यह बात पाई जाती है कि, उच्चवर्णका मनुष्य
समवर्ण अथवा अपनेसे नीचवर्णकी कन्याके साथ विवाह कर सकता है।
परन्तु अपनेसे उच्चवर्णकी कन्याके साथ विवाह नहीं कर सकता।
समानवर्णके मनुष्य और स्त्रीसे जो सन्तान पैदा होगी उस सन्तानका
वर्ण वही होगा जोकि उसके मातापिताका है और जो भिन्नवर्णवाले माता-
पितासे सन्तान उत्पन्न होगी वह सन्तान मिश्रवर्ण कहलावेगी, वे मिश्रवर्ण
जातियां भी कालक्रमसे अपने २ पिताके वर्णको प्राप्त हो जाती हैं। मनु-
ष्यसमाजमें उत्पत्तिकी अपेक्षासे दो भेद हैं। एक शुद्धकुलोद्भव और दूसरा
अपध्वंसज। जो ठीक अव्यभिचारी मातापितासे उत्पन्न होते हैं वे शुद्धकुलोद्भव
कहलाते हैं और जो व्यभिचारसे उत्पन्न होते हैं वे अपध्वंसज कहलाते
हैं। एक गर्भाशयमें अनेक वीर्यके मिलनेको व्यभिचार कहते हैं। एक
पुरुषके [illegible] अनेक स्त्रियोंसे संभोग करनेसे व्यभिचार नहीं होता।
किन्तु एक स्त्रीके दो पुरुषोंके साथ संभोग करनेपर ही व्यभिचार दोष
होता है। इसलिये पुरुष अनेक विवाह करनेसे भी व्यभिचारी नहीं
है किन्तु स्त्री दूसरा विवाह करते ही व्यभिचारिणी हो जाती है। वीर्य
ऐसा [illegible] पदार्थ है कि एक बार गर्भाशयमें पहुंचनेपर यदि वीर्य
वहांसे निकल भी जाय तो भी गर्भाशयमें वीर्यके संस्कार रह जानेकी अ-
धिक सम्भावना है। कालान्तरमें उस ही गर्भाशयमें दूसरे मनुष्यका वीर्य
पहुंचनेसे वीर्य संकर हो जाता है और उस मिश्रित वीर्यसे जो सन्तान
उत्पन्न होती है वह उत्तम सन्तान नहीं होती, किन्तु अधम सन्तान होती
है। ऐसी सन्तान मोक्षकी अधिकारिणी नहीं है। इसलिये व्यभिचारसे

उत्पन्न मनुष्योंकी मोक्षके पात्र न होनेसे शूद्र संज्ञा है। त्रैवर्णिकाचारमें कहा है "शूद्राणां तु सधर्माणः सर्वेऽप्यधमजाः स्मृताः। उत्तम वर्णवालोंमेंसे यदि कोई इस प्रकारसे अधमज उत्पन्न हो जाते हैं तो वे जातिसे बहिष्कृत कर दिये जाते हैं और ऐसे अनेक मनुष्योंको मिलकर दस्सा जाति हो जाती है। जिन दस्सोंमें उपर्युक्त व्यभिचारका प्रचार रहता है वे दस्से अशुद्ध ही समझे जाते हैं। परन्तु जो दस्से इस अधम कार्यका परित्याग करके अपने आचरणको सुधार लेते हैं उनकी सन्तान कई पुश्तमें जाकर शुद्ध हो जाती है। त्रैवर्णिकाचारमें इसके लिये इस प्रकार कहा है—

श्लोक—जात्युत्कर्षो युगेज्ञेयः सप्तमे पंचमेऽपि वा।
कर्मणांव्यत्ययेऽपिस्यात्पूर्ववच्चाधरोत्तरे॥ १॥

अर्थात् आचरणके सुधारनेसे पांच वा छह और सात पुश्तमें यथाक्रम उच्चवर्णी होजाता है और इसी प्रकार आचरणके बिगाड़नेसे पांच छह और सात पुश्तमें यथाक्रम नीचवर्णी हो जाता है। इसलिये जिन दस्सोंको सदाचरणका प्रचार हुए उपर्युक्त प्रमाण काल व्यतीत होगया है वे दस्से अब वीसोंके समान होगये हैं और उनके साथ पान-भोजन और विवाह सम्बन्ध करनेमें कुछ दोष नहीं है।

मर्दुमशुमारीकी रिपोर्टसे ज्ञात होता है कि जैनियोंकी संख्या पहिलेकी अपेक्षा घट गई है। इस घटीका प्रथम कारण स्वास्थ्य रक्षाकी असावधानता प्रतीत होती है। स्वास्थ्यकी रक्षा ठीक न होनेसे जन्मसंख्याकी अपेक्षा मृत्युसंख्या अधिक होती है। घटीका दूसरा कारण अनेक पुरुषोंका बिना विवाह किये ही जीवन समाप्त कर जाना है। अनेक पुरुषोंके अविवाहित रहजानेका कारण यह है कि जैन समाज अनेक जातियोंमें विभक्त हो गया है, इसलिये प्रत्येक जातिकी संख्या बहुत न्यून होगई है और थोड़े पुरुषोंमें अनेक रिश्तेदारियां होनेके सबबसे गोत्र टालकर वर मिलना कठिन होगया है ऐसी अवस्थामें अनेक पुरुष

अविवाहित रहजाते हैं। घटीका तीसरा कारण बालविवाह है बालविवाहके होनेसे कच्ची उमरमें कच्चा वीर्य स्खलित होता है, जिससे प्रथम तो सन्ताने उत्पत्तिहि नहीं होती, कदाचित् सन्तान उत्पन्न भी हुई तो शीघ्र ही मरजाती है, कदाचित् अधिक कालतक भी जीवित रही तो बिलकुल निर्बल और विद्यादिक सद्गुणोंको धारण करनेके अयोग्य होती है। घटीका चौथा कारण वृद्धविवाह है। धनके लोभी मातापिता धनतृष्णासे अन्धे होकर अपनी प्रिय पुत्रियां योग्य वरको न देकर पुरुषार्थहीन वृद्ध नपुंसकोंके हवाले कर उनको जन्मभरके लिये घोर दुःखमें पटक देते हैं। वृद्धोंके संसर्गसे सन्तानकी उत्पत्ति भी नहीं होती और वे दुःखिनी बाला व्यभिचारका शरण लेकर उभय कुलको कलंकित करती हैं। घटीका पांचवां कारण अविद्या है अर्थात् बहुतसे महाशय जैन कुलमें उत्पन्न होकर भी अज्ञानवश यह भी नहीं जानते कि हम किस धर्मको अवलम्बन करनेवाले हैं और मर्दुमशुमारीके समय अपनेको हिन्दू लिखा देते हैं इसलिये संख्याकी वृद्धिके वास्ते हमारा कर्तव्य है कि, बालविवाह, वृद्धविवाह और अविद्याका जैनसमाजमेंसे काला मुह कर दें और स्वास्थ्यकी रक्षाकी तरफ पूरा २ ध्यान दें। तथा उत्तम कुलियोंकी अपने २ वर्णमें भी जो पंक्तिभोजन और विवाहसम्बन्धकी संकीर्णता हो रही है उसको दूरकरके उदारताका परिचय दें। अब विधवाओंके कर्तव्यपर विवेचन किया जाता है।

एक पुरुष अनेक कन्याओंके साथ जिस प्रकार विवाह करलेता है उस ही प्रकार एक स्त्री भी अपने पूर्व पतिके मरण होनेपर दूसरे पुरुषके साथ विवाह करलेवे तो उसमें कुछ हानि नहीं है। ऐसे विचारवाले भोले महाशय विधवाओंका पुनर्विवाह करनेकी सम्मति प्रदान करते हैं। परन्तु उनका ऐसा विचार अविचारित रम्य है। स्त्री और पुरुषमें मनुष्यत्वकी अपेक्षा समानता होनेपर भी अनेक विशेषोंकी अपेक्षासे महान् अन्तर है। प्रथम तो स्त्री और पुरुषमें

भोज्य भोजक सम्बन्ध है। भोजनसे भरे हुए ऐसे अनेक थालोंमें जिनमेंसे किसी भी पुरुषने भोजन नहीं किया है एक पुरुष भोजन कर सकता है, परन्तु यदि एक थालमें किसी एक पुरुषने भोजन कर लिया है तो उस थालमें दूसरा पुरुष कदापि भोजन नहीं करता है। क्योंकि वह भोजन उच्छिष्ट होजाता है। उस ही प्रकार एक पुरुष अनेक अभुक्त स्त्रियोंका भोग कर सकता है, परन्तु भुक्त स्त्रीको उच्छिष्ट होनेसे कोई भी सत्पुरुष नहीं भोगता। विवाहका प्रयोजन हमारे बहुतसे भोलेभाइयोंने काम वासनाकी तृप्ति ही समझ रक्खा है। यदि कामवासनाकी तृप्ति ही विवाहका प्रयोजन होता तो विवाहबन्धनकी कुछ भी आवश्यकता न थी। विवाह-बन्धनके विना भी पशुओंकी तरह कामवासना तृप्त हो सकती थी। विवाह-बन्धनका मुख्य प्रयोजन उत्तम सन्तानकी उत्पत्ति करना है। जैसा कि, पहिले कहा जा चुका है। उत्तम सन्तानकी उत्पत्ति एक पुरुषके अनेक अभुक्त स्त्री संभोग करनेसे हो सकती है किन्तु एक स्त्रीके अनेक पुरुषोंके साथ संभोग करनेपर उत्तम सन्तानकी उत्पत्ति कदापि नहीं होसकती। विधवाओंको वैराग्यका उपदेश देकर विषयभोगोंसे विरक्त करा कर आर्यिकाकी दीक्षा दिलानी चाहिये और जो असमर्थ होनेके कारण आर्यिका नहीं हो सकती हैं उनको चाहिये कि वे वैधव्य दीक्षा धारण करके स्त्रीसमाजमें विद्या और धर्मका प्रचार करें। उत्तरदेशकी अपेक्षा दक्षिणदेशमें विद्या और धर्मका प्रचार कुछ न्यून होरहा है, इसकारण सभाका प्रधान कर्तव्य यह है कि अपने देशके स्त्रीसमाज तथा पुरुषसमाजमें विद्या और धर्मका प्रचार करनेमें तन मन धनसे प्रयत्न करें।

आजकल भारतवर्षका और इतर विदेशोंका लौकिक विद्या और वाणिज्यके सम्बन्धमें ऐसा घनिष्ट सम्बन्ध होगया है कि विना विदेश गये लौकिक विद्या और वाणिज्यकी यथेष्ट उन्नति नहीं होसक्ती। परन्तु जब विदेशमें आचार निर्वाहपर विचार किया जाता है तो प्रतीत होता है कि

विदेशमें आचरण निर्वाह बहुत ही कष्ट साध्य है और इस ही कारणसे विदेश जानेवाले महाशय समाजसे बहिष्कृत किये जाते हैं. यद्यपि विदेशोंमें आचरण निर्वाह कष्ट साध्य है, तथापि असंभव नहीं है । इसलिये जो महाशय अपने आचरण निर्वाहकी पूर्ण सामग्रीका प्रबन्ध करके विदेशको जाते है उनको समाजसे बहिष्कृत करना अनुचित प्रतीत होता है । परन्तु जो महाशय उत्तम खाद्य तथा अनुचित स्पर्शसे अलिप्त आचरण निर्वाहकी सामग्री एकत्र किये विना ही विदेश चले जाते हैं वे अनुचित स्पर्शादि दोषोंसे अलिप्त नहीं रह सकते. इसलिये ऐसी अवस्थामें विदेश जानेवाले महाशय अवश्य ही प्रायश्चित्तके पात्र हैं । किन्तु जिन देशोंमें आचरण निर्वाहकी उत्तम सामग्रीके मिलनेका सुभीता हो उन देशोंमें जानेवाले महाशयोंको बहिष्कृत करना समुचित नहीं दिखता ।

आजकल हमलोगोंमें परस्परका ईर्षा द्वेष यहांतक बढ़गया है कि, एक २ जातिमें कई धड़े होगये हैं और धीरे धीरे होते जाते हैं । एक दूसरेकी बुराई करनेमें बिलकुल नहीं हिचकता, पंचायती नियमोंकी कोई परवाह नहीं करता और पंचायती दंडोंका कोई पालन नहीं करता । पंचायत स्थापन करनेका मुख्य उद्देश समाजमें शान्ति स्थापन था, परन्तु उस उद्देशको पैरोंसे कुचलकर अदालतोंमें मुकद्दमेबाजी करके बड़े २ धनाढ्य लंगोटी लगाकर फकीर बन गये । अदालतोंमें जाकर भी हम लोगोंका ही कहना मंजूर करना पड़ता है । अगर समाजमेंसे ही चंद सज्जनोंको परस्परके झगड़े तय करनेका अधिकार दे दिया जाता तो अदालतोंमें अपनी कठिन कमाईका द्रव्य व्यर्थ नहीं खोना पड़ता । परन्तु 'गई सो गई अब राखि रहीको' के अनुसार हमारा कर्तव्य है कि, जातीय पंचायतोंका गठन इस ढंगसे करें कि, जिससे हमारी सामाजिक व्यवस्थाभी ठीक होजाय और परस्परके दीवानी और फौजदारी झगड़े भी पंचायतोंमें फैसल होजाया करें ।

११

आर्थिक व्यवस्था ।

जो महाशय विषयभोगोंको सर्वथा त्यागनेमें असमर्थ हैं और सिंह-वृत्ति मुनिधर्मको जो धारण नहीं कर सकते हैं वे अन्यायरूप भोगोंका त्यागकरके न्यायरूप भोगोंका सेवन करते हुए गृहस्थाश्रमका निर्वाह करते हैं। इस आश्रमके निर्वाहकेलिये धनकी बड़ी भारी आवश्यकता है। इस लिये जिन गृहस्थोंके पास धन नहीं है उनकेलिये यह गृहस्थाश्रम जीवन बड़ा ही दुःखमय है। निर्धन पुरुष सदा विह्वल चित्त रहते हैं और उनका प्रायः सर्वत्र निरादर ही होता है। मित्र पुत्र स्त्री आदिक सदा रुष्ट रहते हैं। इसीलिये गृहस्थका प्रधान कर्तव्य धन उपार्जन करना है। मनुष्य समाज आजीविकाके भेदसे चार वर्णोंमें विभक्त है। अर्थात क्षत्रियोंकी आजीविका असिकर्म वैश्योंकी कृषि मसि वाणिज्य और शूद्रोंकी शिल्प और विद्या है। ब्राह्मण वर्णकी कोई खास आजीविका नहीं है। किन्तु इतर तीन वर्णोंके दिये हुए भक्तिपूर्वक दानसे सन्तोषपूर्वक अपना निर्वाह करते हुए धर्मसेवन करते हैं। किसी समयमें यह भारतवर्ष धन और विद्यामें संसारके समस्त देशोंका शिरोमणि गिना जाता था समस्त देशोंने इस भारतके धन और विद्यासे अपनेको विभवशाली बनाया है। परन्तु खेदके साथ कहना पड़ता है कि, जो भारत एक दिन सबका गुरु था आज वह उनका शिष्य हो गया है। जो भारत एक दिन धनकुबेर समझा जाता था आज हमारी ही असावधानतासे वह एक दरिद्र भिखारी बन गया है। आज वह अपनी जठराग्नि शमन करनेके लिये दूसरोंके मुहकी ओर ताक रहा है। क्या आप कभी इसका विचार करते हैं कि, हम ऐसे क्यों होगये। प्यारे भाइयो इसका कारण और कुछ नहीं है किन्तु हम अपने ही प्रमाद अविद्या और परस्परकी ईर्षा आदिक दोषोंसे इस अवस्थाको पहुंच गये हैं। किन्तु

बड़े हर्षका विषय है कि, भारतके कुछ शुभचिन्तकोंकी कृपा और प्रयत्नसे मुर्दोंसे बाजी लगाकर सोनेवाला भारत जागृत हुआ है। जगह २ सभा सुसाइटीये होने लगी हैं। अनेक पाठशाला स्कूल ब्रह्मचर्याश्रम और गुरुकुल खुलगये हैं और खुल रहे हैं। ऐसे शुभ चिह्नोंसे आशा होती है कि अब भारतके कुछ अच्छे दिन आने वाले हैं। इस समयमें हमारा कर्तव्य है कि, जिन प्रमाद, अविद्या, विलासप्रियता, निर्बलता, जन्मभूमिवत्सलता, सन्तोष, भयभीतता, फूट और ईर्षादिक दोषोंसे हमारी यह अवनत अवस्था हुई है उनको बहिष्कृत करके उद्योग, साहस, धैर्य, बल, बुद्धि, पराक्रम, स्वदेशप्रेम, एकता और सत्यप्रियता आदिक गुणोंसे अपनेको विभूषित करके पुनः इस भारतको उन्नतिके शिखर पर पहुंचा देवें। किसी देशको समृद्धिशाली बनानेका प्रधान उपाय उस देशके कृषि शिल्प और वाणिज्यकी उन्नति है। जिन २ देशवासियोंने कृषि शिल्प और वाणिज्यकी उन्नति की है वे आज धन कुबेर बनरहे हैं और जिन्होंने कृषि शिल्प वाणिज्यको निरादर और प्रमादसे पद दलित किया है वे स्वयं पद दलित हो रहे हैं। जो पदार्थ हमारे देशमें उत्पन्न नहीं होते किन्तु दूसरे देशोंसे आते हैं, हमारा कर्तव्य है कि उन पदार्थोंको हम अपने देशमें ही उत्पन्न करें जिससे कि हमको दूसरे देशोंका मोहताज न रहना पड़े। तथा कृषिके सम्बन्धमें विदेशियोंने जो नये २ आविष्कार किये हैं हमारा कर्तव्य है कि उनको अमलमें लाकर उससे लाभ उठावें। नवीन आविष्कारोंके प्रयोगसे पुराने प्रयोगोंकी अपेक्षा कई गुणा अधिक लाभ हो सकता है। जिस प्रकार पाश्चिमात्य विद्वानोंने कृषि आदिक के सम्बन्धमें नवीन २ आविष्कार किये हैं। उस ही प्रकार हमारा भी कर्तव्य है कि नवीन २ आविष्कार करें। भारतवर्षकी बहुतसी भूमि बंजर पड़ी हुई है। जो हमारे बहुतसे भाई आलस्यका आश्रय लेकर निकम्मे हो रहते हैं, हमारे नेताओंका कर्तव्य है कि उन निकम्मोंका आलस्य दूर-

कर ऊसर भूमिको आवाद कर भारतकी श्री वृद्धि करें। हमारा कर्तव्य है कि, भारतवसुंधरामें अपनी तथा विदेशियोंकी जरूरतके पदार्थ उत्पन्न करके भारतके धनको विदेश जानेसे रोकें और विदेशका धन भारतमें लाकर इस दरिद्र भारतको पुनः पहलासा संपत्तिशाली बना दें। भारतके शिल्पकी जैसी अधोदशा हुई है उसका चिन्तवन करनेसे भी कलेजा थर्राने लगता है। आज अगर विदेशी लोग भारतसे अपना हाथ खींच लें तो हमारे सब काम बंद हो जायं। और बातोंकी कथा तो दूर रही हम दियासलाई तथा चूल्हेमें आग जलाना भी विदेशियोंकी कृपाभूत दियासलाईके बिना नहीं कर सकते। हमारे यहांकी कच्ची सामग्री रुई वगैरह एक रुपयेकी तीन सेर यहांसे सात समुद्र पार जाती है और उस ही सामग्रीके कपड़े आदि तीन रुपयेके एक सेरके भावमें हमें ही बेच जाते हैं। हमारे प्रमाद और अविद्यासे हमारे हिस्सेकी रोटी दूसरोंके पेटमें जाती है और हम भूखके मारे तड़फड़ा और चिल्ला रहे हैं। हमारी मूर्खतासे हमारा ही करोड़ों और अर्बों रुपया तीन तथा चार आने सैंकड़ेके सूदपर विदेशियोंके पास जमा है। जिससे कि वे सैकड़ों कारखाने खोलकर लाखों रुपये पैदाकर अपने देशको समृद्धिशाली बना रहे हैं और हम निःसार व्याजमें संतोष करते हुए तोंद फुलाकर तकियेके सहारे लेटे लेटे अपने जीवनको कृतकृत्य समझ रहे हैं। हमारे भारतवासी शिल्पकार बिचारे बिना विदेशी शिल्पकारोंसे परास्त होकर अपने रोजगारको छोड़ बैठे हैं और थोड़ी बहुत अंग्रेजी सीखकर विदेशियोंकी सेवा करके ही अपना निर्वाह कर रहे हैं। परन्तु खेद है कि इस पेशा वालोंकी आज ऐसे महात्माओंकी इतनी बहुतायत हो गई है कि, अब उन बिचारोंको नौकरी भी नहीं मिलती और अपना मौरूसी रोजगार करनेमें अब बाबू साहब अपनी हतक समझने लगे हैं। इस प्रकार यह दीन हीन भारत दिनपर दिन रसातलको चला जा रहा है। हम लोग ऐक्-

चरबाजी तो बहुत कुछ करते हैं, परन्तु अमली कारवाई की ओर हमारा बिलकुल ध्यान नहीं है, मिश्री २ कहनेसे मुंह कभी मीठा नहीं होगा। प्यारे भाइयो हमारा कर्तव्य है कि, जगह २ पर कृषि और शिल्प विद्यालय खोलकर नये आविष्कारोंके अनुसार अपनी सन्तानको शिक्षित बनावें तथा आप स्वयं अमली कारवाई करके कृषि और शिल्पकी यथेष्ट उन्नति करें। धन उपार्जन करनेके समस्त उपायोंमें वाणिज्यका नम्बर सबसे ऊचा है। इतर उपायोंमे द्रव्यकी परिमित आय होती है किन्तु वाणिज्यसे अपरिमित द्रव्यकी आय होती है। जो भारत एक दिन वाणिज्य विषयमें सबका दादा गुरु गिना जाता था, आज उस भारतका वाणिज्य पद दलित हो रहा है। वाणिज्यका मक्खन आज विदेशी व्यापारी उड़ा रहे हैं और हमारे भारतवासी आढ़त दलाली और व्याजरूपी छाछमें सन्तोष करके अपने जीवनको कृतकृत्य समझ रहे हैं। आजकल वाणिज्यका घनिष्ट सम्बन्ध विदेशोंसे है, इसलिये जब तक हम जन्मभूमिका झूटा ममत्व छोड़कर विदेशोंमें वाणिज्यके अड्डे नहीं जमावेंगे तथा जबतक हम भारतवासी मिलकर अनेक कम्पनियां खोलकर नेशनल बैंक और कारखाने जारी नहीं करेंगे और स्वदेश प्रेमसे हम स्वदेशी वस्तु हीं व्यवहार करनेकी प्रतिज्ञा धारण नहीं करेंगे तबतक हम वाणिज्यकी यथेष्ट उन्नति करनेमें कदापि समर्थ नहीं होंगे। यह विषय बहुत ही गम्भीर है और मेरे लिये समय थोड़ा है इस कारण इस विषयको मैं संक्षेपमें ही कहकर समाप्त करता हूं।

धन उपार्जन करके भी जो महाशय धनका उपयोग करना नहीं जानते वे संसारमें कदापि सुखी नहीं हो सकते हैं। धनके उपयोगका मूलतत्त्व आमदनीसे कम खर्च करना है। जो आमदनीसे कम खर्च करते हैं वे सदा सुखी रहते हैं। प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है कि, अपनी आमदनीका कुछ भाग तो आपत्ति कालके लिये अलग निकाल-

कर रक्खें और कुछ भाग धर्म कार्यमें लगावें और शेषको खर्चमें लगावें। प्रमाद और अविद्याके निमित्तसे हमारे अनेक भाइयोंकी आमद इतनी कमती होगई है कि धर्म और विपत्तिकालके लिये अलग निकालनेकी बात तो अलग रही। वे उस आमदनीसे अपना निर्वाह भी नहीं कर सकते हैं और ऐसी अवस्थामें वे ऋणके चक्करमें पड़कर जन्मभरके लिये दुःखी हो जाते हैं। बहुतसे महाशय वस्त्रादिककी बाहरी चकाचकीके झूठे शौकमें फसकर अपनी आमदनीसे अधिक खर्चकी पूर्ति करनेके लिये ऋणका आश्रय लेते हैं और जब ऋण चुकानेमें असमर्थ होते हैं तब नाना प्रकारके अन्यायोंमें प्रवृत्त होकर अपने जीवनको नष्ट भ्रष्ट करदेते हैं। तथा ऋण न चुकानेके कारण कुरकी कारागार आदिक अनेक भयानक घटनाओंका सामना करना पड़ता है। एक बार खाकर तथा एक पैसेके चनोंसे पेट भर कर अथवा भूखे ही सोजाना अच्छा है परन्तु ऋणका भार सिरपर लेना कदापि श्रेयस्कर नहीं है। हमारे बहुतसे भाई अपनी आमदनीमें जिसतिस प्रकार भोजन वस्त्रका तो निर्वाह करलेते हैं परन्तु जब उनकी सन्तानके विवाहका मौका आता है तब उनका धैर्य विदा हो जाता है—विवेक उनसे कोसों दूर भाग जाता है। और ईर्षा अभिमान उनपर पूरा २ अधिकार जमा लेता है। "अमुक पुरुषने अपने विवाहमें दो मिठाई बनाई थी मैं अबतक पांच मिठाई नहीं बनाऊं तो मेरी बात बिल्कुल फीकी पड़ जायगी। हमारे बापदादोंने किसी भी विवाहमें दो हजारसे कम नहीं लगाये। अब जो हमने वैसा विवाह नहीं किया तो हमारी नाक कट जायगी" इस प्रकार मिथ्या अभिमान और झूटी ईर्षाके चक्करमें पड़कर अपने पास धनके न होनेपर भी मकान तथा जेवर गिरवी रखकर अथवा मकान जेवरके अभावमें ऋण लेकर झूटी वाहवाह लूट सदाके लिये

अपनेको आपत्तिमें डाल देते हैं। बहुतसे भाई इस झूठी तारीफके लूटनेके लिये अपनी बेटीतकको बेचनेमें नहीं शरमाते। बहुतसे भाइयोंको जातिके पंचोंकी उदरज्वाला बुझानेके लिये ही अपनी कन्याका विक्रय करना पड़ता है। धिक्कार है उन कन्याविक्रय करनेवालोंको और कोटिशः धिक्कार है उन पंचोंको जो कन्याविक्रयके धनसे बने हुए लड्डू उड़ाकर मूछों-पर ताव देते हैं। पंचोंका कर्तव्य है कि जो महाशय कन्या विक्रय करें उनके विवाह भोजनमें कदापि शामिल न हो और जो उनके विवाह क्रियाओंमें शामिल होना चाहें वे महाशय अपने घर भोजन करके शामिल होवें। धर्मके अंगोंमें भी धन खर्च करनेकी उपयोगिता हमें अवश्य विचार रखना चाहिये। धर्मके प्रतिष्ठादिक अंगोंमें आजकल धन खर्च करनेकी उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी कि विद्यावृद्धि विषयमें खर्च करनेकी आवश्यकता है। इसलिये समयानुकूल विचार करके आवश्यक अंगोंमें ही धन खर्च करना ही धनकी सच्ची उपयोगिता है। धनकी उपयोगिताकी तरह समयकी उपयोगिताकी भी बड़ी आवश्यकता है। जो समयकी कदर नहीं करते समय उनकी भी कदर नहीं करता। और जो समयकी कदर करते हैं आज उनकी दुनियाभरमें खूब कदर हो रही है। हम लोगोंने निकम्मे बैठकर समयके दुरुपयोग करनेको ही सुख समझ रक्खा है। हमारे बहुतसे भाइयोंके पास लाखों और करोड़ोंका धन है। वे ऐशआरामके सब काम गुमाश्तोंके ऊपर छोड़कर सोने और गप्प उड़ानेमें ही समय बिताकर अपने मनुष्य जन्मको सफल मानते हैं। परन्तु प्यारे भाइयो मनुष्य जन्म पानेकी यह सच्ची सफलता नहीं है। आपको अपने गुजरातियों [illegible] जो कि महासभामें स्वयंसेवकोंका काम करके अनुभव प्राप्त कर रहे हैं, कुछ शिक्षा प्राप्त करनी चाहिये। इस प्रकार गृहस्थाश्रमका संक्षिप्त स्वरूप कहकर अब वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम विषयपर अति संक्षेपसे विवेचन करके मैं अपने व्याख्यानको समाप्त करूंगा।

वानप्रस्थ और यत्याश्रम।

गृहस्थ धर्मके प्रतिमाओंकी अपेक्षासे जो ग्यारह भेद किये थे। उनमेंसे दसवीं और ग्यारहवीं प्रतिमाके चारित्र निर्वाहको वानप्रस्थ-आश्रम कहते हैं। इन प्रतिमाओंका विस्तृत स्वरूप श्रावकाचारसे जानना। जो महाशय दिगम्बर रूप धारण करके अट्ठाईस मूलगुणका तथा चौरासी लाख उत्तरगुणका पालन करते हैं वे यति कहलाते हैं और इन यतिओंके चारित्र निर्वाहको यत्याश्रम कहते हैं। यतिओंके चारित्रका सविस्तार कथन चरणानुयोगके ग्रन्थोंमें जानना।

आज खेदके साथ कहना पड़ता है कि चतुर्थकालमें जो जगह २ पर मुनियोंके संघोंका विहार होता था और जिससे जैनधर्मकी सच्ची प्रभावना होती थी। आज उन सिंहवृत्तिधारी ऋषियोंके दर्शन भी दुर्लभ होगये हैं। इन प्राचीन ऋषियोंकी पद परम्परामें आज जो भट्टारक महाशय हमारे सन्मुख उपस्थित हैं वे अपने परिग्रहयुक्त होकर आगमानुसार मुनिपदसे च्युत होगये हैं। इन महाशयोंसे हमारी सविनय प्रार्थना है कि वे अपने परिग्रहका त्याग करके प्रायश्चित्त पूर्वक पुनर्दीक्षित होकर सूत्रानुसार अट्ठाईस मूलगुणका पालन कर समाजकी दृष्टिमें पुनः यथार्थ वंदनाके पात्र बनें। पूर्वाचार्योंकी स्पष्ट आज्ञा यहां है कि किसी व्रतको धारण करनेके पहले इस व्रतका अच्छी तरह विवेचन कर लेना चाहिये कि, मैं इस व्रतका निर्वाह कर सकूंगा या नहीं और विचारपूर्वक ग्रहण किये हुए व्रतका प्रयत्नपूर्वक निर्वाह करना चाहिये। कदाचित् प्रमादसे गृहीत व्रतमें कुछ दोष लग जाय तो प्रायश्चित्त लेकर पुनः दृढतापूर्वक व्रतका पालन करना ही कर्तव्य है।

जिस प्रकार प्रजाके शासनकेलिये न्यायनिष्ठ राजाकी आवश्यकता है। अथवा जिस प्रकार मुनि समाजके शासनके लिये धर्माचार्यकी जरूरत है, उस ही प्रकार गार्हस्थ्य समाजके शासनकेलिये गृहस्थाचार्यकी आवश्य

कता है। यद्यपि स्वतन्त्रता एक महत्त्वपूर्ण गुण है और जो इस गुणके पात्र हैं वे इससे नानाप्रकारके लाभ उठा सकते हैं। परन्तु अपात्रके पल्ले पड़कर इस गुणसे लाभके बदले हानि ही होती है। नीतिकारनेभी ऐसाही कहा है कि–

गुणागुणज्ञेषु गुणा भवन्ती इत्यादि।

भावार्थ–अज्ञानी मनुष्य गृहस्थाचार्यके विना मदोन्मत्त स्वच्छन्द हस्तीकी तरह गृहस्थाश्रमरूपी बागको विध्वन्स करडालते हैं। इसलिये हमारा कर्त्तव्य है कि अपने समाजमेंसे किसी विद्वान धर्मात्माको गृहस्थाचार्यके पदपर नियुक्त करके समाजकी दीक्षा शिक्षाका भार उसके सुपुर्द करें। अपनी कठिन कमाईके द्रव्यमें से उचित दान देकर अनेक विद्यालय, औषधालय, अनाथालय, अन्नसत्रादिक उपयोगी संस्था स्थापन करके उक्त गृहस्थाचार्यको उसका प्रबन्धकर्त्ता बनावें। इन गृहस्थाचार्यके निर्वाहके लिये हमारा कर्तव्य है कि हम भक्तिपूर्वक अपनी शक्त्यनुसार उनकी हरतरहसे सहायता करें और वे सन्तोषपूर्वक अपना निर्वाह करते हुए हरतरह समाजका उपकार करें। संस्थाओंके संचालनके लिये हमको चाहिये कि उचित नियम बना दें। जो गृहस्थाचार्य अपने कर्त्तव्यसे च्युत होकर अन्यायमें प्रवर्तने लग जाय तो हमारा कर्त्तव्य है कि उसको गृहस्थाचार्यके पदसे च्युत करके उस पदपर किसी अन्य योग्य महाशयका आयोजन करें। इस प्रकार संक्षेपसे आवश्यक विषयोंका विवेचन करके मैं अपने व्याख्यानको समाप्त करताहूं। मेरे इस व्याख्यानमें संभव है कि, अज्ञान और प्रमादसे अनेक त्रुटियां रहगई हों जिनके लिये मैं आशा करताहूं कि आपसरीखे उदारचित्त महाशय क्षमा प्रदान करेंगे। अब मैं सबजैक्ट कमेटीके चुनेजानेकी प्रार्थना करके मैं अपना आसन ग्रहण करताहूं

भूल संशोधन।

पिछले तीसरे चौथे अंकमें प्रकाशित-अपराजिता प्रवासीमें प्रकाशित चारु बाबूकी एक गल्पका अनुवाद है। मूलसे लेखके नीचे यह बात छपनेसे रह गई।

जैनमित्र कमेटीका देशोपकार।

उक्त कमेटीने श्रीमान् राजराजेश्वर भारतसम्राट्के राज्याभिषेकके हर्षोपलक्षमें प्रस्ताव स्वीकृत किया है कि निम्नलिखित तीनों दवाईयें सर्वसाधारणको मुफ्त वितीर्ण की जावें। अतएव जिन महाशयोंको जरूरत हो पोस्टखर्चके लिये एक आनेका टिकिट भेजकर दवा मुफ्त मंगवा लें॥

नं० १ बालहितकारी बटिका

नं० २ नेत्रांजन बटी

नं० ३ गोली दद्रुहर्नी

पता मैनेजर **जैनमित्र कमेटी** कार्यालय,

पो० करहल जिला मैनपुरी।

पुरुषार्थसिद्ध्युपाय।

श्रीअमृतचन्द्रसूरिकृत मूल श्लोक, और नाथूरामप्रेमीकृत अन्वयार्थ भावार्थ सहित। यह ग्रन्थ एक बार छपकर बिक गया था, कई वर्षोंसे यह ग्रन्थ नहीं मिलता था। इस कारण फिरसे संशोधन कराकर छपाया गया है। यह ग्रन्थ जैनतत्त्वोंका भाण्डार है। इसकी प्रशंसा लिखकर ग्रन्थका महत्त्व घटाना है। कागज छपाई साईज पूर्ववत् है। न्यो० एक रुपिया।

बालबोध जैनधर्म।

तीसरा भाग

इसके दो भाग पहिले छप चुके हैं। स्कूलों तथा बालकोंको धार्मिक शिक्षाके लिये अत्यन्त उपयोगी पुस्तक है। मूल्य दो आना।

मिलनेका पता—**श्रीजैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,**

हीराबाग, पो० गिरगांव—बम्बई।

जैनहितैषीके नियम।

१. जैनहितैषीका वार्षिक मूल्य डांकखर्च सहित १॥) पेशगी है।

२. प्रतिवर्ष अच्छे २ ग्रन्थ उपहारमें दिये जाते हैं और उनके छोटे बड़ेपनके अनुसार कुछ उपहारी खर्च अधिक भी लिया जाता है। इस सालका उपहारी खर्च ॥) है। कुल मूल्य उपहारी खर्चसहित २) है।

३. इसके ग्राहक सालके शुरूसे ही बनाये जाते है, बीचमें नहीं, बीचमें ग्राहक बननेवालोंको पिछले सब अंक शुरू सालसे मंगाना पड़ेंगे, साल दिवालीसे शुरू होती है।

४. जिस साल जो ग्रन्थ उपहारके लिये नियत होगा वही दिया जायगा उसके बदले दूसरा कोई ग्रन्थ नहीं दिया जायगा।

५. प्राप्त अंकसे पहिलेका अंक यदि न मिला हो, तो भेज दिया जायगा। दो तीन महिने बाद लिखनेवालोंको पहिलेके अंक दो आना मूल्यमें प्राप्त हो सकेंगे।

६. बैरंग पत्र नहीं लिये जाते। उत्तरके लिये टिकट भेजना चाहिये।

७. बदलेके पत्र, समालोचनार्थ पुस्तकें, लेख वगैरह **"सम्पादक, जैनहितैषी, पो० मोरेना, जिला ग्वालियर"** के पतेसे भेजना चाहिये।

८. प्रबंध सम्बंधी सब बातोंका पत्रव्यवहार मैनेजर, **जैनग्रंथरत्नाकर कार्यालय, पो० गिरगांव, बम्बई** में करना चाहिये।

जैनहितैषी।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम्।

जीयात्त्रैलोक्यनाथस्य शासनं जिनशासनम्॥

आठवाँ भाग] [वैशाख श्रीवीर नि० सं० २४३८ [सातवाँ अंक

तारनपन्थ।

(१)

बुन्देलखण्ड और मध्यप्रान्तको छोडकर अन्य प्रान्तोंमें बहुत कम लोग ऐसे होंगे जो यह जानते हों कि, दिगम्बरियोंमें भी एक पंथ ऐसा है, जो प्रतिमापूजनका निषेधक है। इस पंथका परिचय हम लोगोंके समान पिछले दो सौ तीन सौ वर्षोंमें जो हमारे ग्रन्थकार हुए हैं, उन्हें भी शायद नहीं था। क्योंकि उनके किसी प्रचलित ग्रन्थमें इस पंथका खंडन नहीं मिलता है। जिन ग्रन्थकारोंने श्वेताम्बर, रक्ताम्बर, ढूंढिया आदि मतों वा पंथोंका खंडन किया है; यदि उन्हें परिचय होता, तो वे अवश्य ही इस पन्थका खंडन करते। इस लेखमें हमने अपने पाठकोंको इसी पन्थका परिचय करा देनेका विचार किया है।

इस पन्थको **तारनपन्थ** वा **समैया पन्थ** कहते हैं। **तारन** वा **तरन तारन** नामक एक गुरु इस पंथके संचालक हुए हैं, इसलिये इसे तारनपंथ कहते हैं और इसके अनुयायी समय वा शास्त्रोंकी उपासना करते हैं, इसलिये इसे समैयापंथ कहते हैं।

मध्यप्रदेशके सागर, जबलपुर, दमोह, हुशंगाबाद, नागपुर, छिन्दवाड़ा आदि कई जिलोंमें, ग्वालियर टोंक और भोपाल राज्यमें, बुन्देलखंडके कुछ भागमें और खानदेशके कुछ स्थानोंमें इस पन्थके अनुयायी रहते हैं। **परवार,** (समैया) **असैटी. गोलालारे, चरनागरे, अजुध्यावासी,** और **दोसखे** परवार इन छह जातियोंमें इस पंथके माननेवाले है। तारनपंथी इन्हें छहसंघ कहते हैं। असैटी और गोलालारे सुनते हैं कि, आपसमें मिल गये हैं अर्थात उनमें परस्पर बेटीव्यवहार होने लगा है। शेष जातियोंमें परस्पर बेटीव्यवहार नहीं है। भोजनव्यवहार कई जातियोंमें पक्कीका है और कईमें कच्चीका है। इन छहों जातियोंमें लगभग ढाई हजार घर तारनपंथी हैं। मनुष्यसंख्या आठ नौ हजार होगी।

तारनपंथी परवारोंका पहिले दिगम्बरी परवारोंके साथ बेटीव्यवहार और भोजनव्यवहार होता था. परन्तु अब संकीर्ण विचारोंके कारण यह प्रथा प्रायः बन्द हो रही है। भोजनव्यवहार तो अभी निहाई लोग रखते भी है, पर बेटीव्यवहार एक प्रकारसे बन्द ही हो गया है। शायद ही किसी सालमें इस प्रकारके एक दो सम्बन्ध होते हों। तारनपंथी गोलालारोंमें और दिगम्बरी गोलालारोंमें भी सुनते है कि, बेटीव्यवहार अब नहीं होता है।

इन छह संघोंमें जो चरनागरे नामकी जाती है, वह तारनपंथियोंमें पूज्य समझी जाती है। पांडे वा पंडित इसी जातिमें होते हैं। दोसखे एक प्रकारके परवार हैं, जिनमें दो सांकें मिलाकर विवाहसंबन्ध किया जाता है। अजुध्यावासी अपनेको पूर्वमें अयोध्याके रहनेवाले बतलाते हैं। इनके कुछ घर मैनपुरी और इटावाके जिलेमें भी पाये जाते हैं।

तारनपंथकी एक दो जातियोंके विषयमें लोगोंके ऐसे ख्याल हैं कि, वे वास्तवमें कोई शूद्र वा नीच जातियां हैं। उन्हें जब तारनस्वामीने जैनधर्मका उपदेश दिया और जब वे जैनधर्मकी माननेवाली होकर शूद्रोंका कर्म छोड़कर वैश्यवृत्तिमें निर्वाह करने लगीं तब कुछ समयमें उनकी गणना वैश्योंमें होने लगी। जैनधर्मके माननेवाले प्रायः वैश्य ही हैं, इस कारण भी इन्हें लोग वैश्यजाति समझने लगे। हमारे दिगम्बरियोंमें (प्रतिमापूजकोंमें) भी बहुत सी जातियां ऐसी हैं, जो पहिले ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्रादि वर्णोंकी थीं परन्तु अब वैश्य कही जाने लगी हैं। जातियोंमें वा वर्णोंमें इस प्रकारके परिवर्तन हजारों वर्षोंसे होते आ रहे हैं। उत्कर्ष और अपकर्षका नियम अन्य पदार्थोंके समान जाति वा वर्णके लिये भी लागू है।

तारनपंथकी स्थापना विक्रमकी सोलहवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें हुई है। इसके स्थापक **तारनस्वामी** वा **तारकल** मार्गशीर्ष शुक्ला ७ रविवार विक्रम संवत् १५०५ में उत्पन्न हुए थे और जेठ वदी ६ शनिवार संवत् १५७२ में परलोकको प्राप्त हुए थे। इनके जन्मस्थानका निश्चय नहीं है कोई २ **देहलीमें** बतलाते हैं, कोई २ **सेमरखेड़ी** रियासत टोंकमें बतलाते हैं और समैयोंकी एक पुस्तकमें **पुष्पावती** नगरी लिखा है पर बहुत करके **सेमरखेड़ी** ही इनका जन्मस्थान होगा। इनके पिताका नाम **गुढ़ासाहु** और माताका **वीरसिरी** वा **विसासुरी** था। ये जातिके चौसके परवार थे। इनका गोत्र **गोहिल** और मूर **गाहो** था। परवारोंकी बस्ती देहलीकी ओर बिलकुल नहीं है, पर टोंककी ओर है, इसी लिये इनका जन्मस्थान सेमरखेड़ीमें मानना युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

तारनपन्थकी पुस्तकोंमें तारनस्वामीके विषयमें जो कुछ लिखा है, वह इतना अस्पष्ट, अस्तव्यस्त और कलई किया हुआ है कि उससे उनके जीवनकी वास्तविक घटनाओंका पता लगना एक प्रकारसे असंभव मालूम होता है। एक तो ऐसे लोगोंके चरित्रको जिन्हें कि जनसमूह श्रद्धाकी दृष्टिसे देखने लगता है, नाना प्रकारकी अलौकिक अमानुषिक घटनाओंसे भर देनेकी इस देशकी कुछ प्रथा ही है—दूसरे तारनपंथमें मूर्खताका इतना अधिक विस्तार रहा मालूम होता है कि, उन्होंने अपने इस विचित्र गुरुका चरित्र किसी ऐसी भाषामें लिखनेका प्रयास ही नहीं किया, जिसे लोग समझ सकें। इस पंथकी **छदमस्तवाणी** और **निर्वाणहुंडी** आदि दो एक पुस्तकोंमें जो कुछ लिखा है, उससे सिर्फ इतना ही पता लग सकता है कि, तारनस्वामीने अपनी पिछली उमरमें अपने आसपासके लोगोंको उपदेश देकर अपना अनुयायी बनाया है और ग्वालियर रियासतके **मल्हारगढ़** नामक स्थानमें समाधिमरण किया है। छदमस्तवाणीमें तारनस्वामीकी आयुके इस प्रकार विभाग किये हैं—मिथ्यावली वर्ष ११, समय मिथ्यावली वर्ष १०, प्रकृति मिथ्यावली वर्ष ९, मायावली वर्ष ७, निदानावली वर्ष ५, अज्ञानवर्ष ८, वेदक कषाय वर्ष २॥, क्षायक वर्ष ३॥, और परम उत्पन्न वर्ष ९= कुल वर्ष ६७। इसके मिथ्यावली आदि शब्दोंका अर्थ क्या है, सो तो तारनपंथी भाई ही समझते होंगे, परन्तु इनसे इतना अनुमान हो सकता है कि, लगभग १९–२० वर्षतक उन्होंने तारनपंथका उपदेश दिया होगा। उक्त पुस्तकमें यह भी लिखा है कि, तारनस्वामीने ११,३,३१९ जीवोंको संबोधित किया था। तारनपंथी भाई कहते हैं कि, तारकस्वामी १८ वर्षकी उमर तक

तो अपने मातापिताको मूर्तिपूजाका त्याग करनेके लिये उपदेश देते रहे, पीछे जब वे शास्त्र पूजक हो गये तब उन्होंने दूसरोंको सम्बोधना प्रारंभ किया और तब ही वे गुरु कहलाये।

तारन स्वामीके विषयमें एक किंवदन्ती उन लोगोंमें प्रसिद्ध है, जो तारनपंथसे परिचित हैं और जिनके आसपास तारनपंथी रहते है। जो लोग यह किंवदन्ती कहते है, वे तारनपंथसे द्वेष रखते हैं; इसलिये हो सकता है कि. इसमें बहुतसी बातें बनावटी हों, तो भी इसे सर्वथा निस्सार वा कल्पित नहीं कह सकते है और इसलिये हम उसे संक्षेप रूपमें प्रकाशित कर देना उचित समझते हैं:—

सेमरखेड़ीमें गुढ़ासाहु नामके एक चौसके परवार रहते थे। उनके एक लड़का था, जो लिखना पढ़ना तो साधारण जानता था पर पूजा पाठ अच्छी तरहसे जानता था। गुढ़ासाहुके घरमें एक चैत्यालय था। जब वे घर रहते थे, तब जिनदेवकी पूजा और शास्त्रस्वाध्याय स्वयं करते थे। परन्तु जब घर नहीं रहते थे—व्यापारादिके लिये किसी दूसरे गांवको चले जाते थे, तब उनका लड़का यह कार्य करता था। पूजामें जो नैवेद्य और मिष्ट फलादि चढ़ाये जाते थे, इस लड़केको उनके खानेकी आदत पड़ गई। इस तरह गुप्त रीतिसे निर्माल्य खाते हुए उसे बहुत दिन बीत गये। एक बार निर्माल्य ले जानेवाले मालीने उसे निर्माल्य खाते देख लिया। उसने गुढ़ासाहुसे यह बात कह दी। उन्हें पहिले तो विश्वास नही हुआ, परन्तु जब स्वयं परीक्षा कर ली, तब उन्होंने लड़केको बहुत तिरस्कृत किया और अपने घरमेंसे निकाल दिया। लड़केने कहा कि, निर्माल्य खानेमें कोई दोष नहीं है, इसलिये मैं खाता हूं। इसके बाद उसने अपने एक जुदे मार्गको चलानेका विचार किया।

और वही पीछेसे तारनस्वामी हुआ। एक राजाने कुछ नटों तथा जादूगरोंको कैद कर रक्खा था। उनकी स्त्रियां चिन्तामें थीं कि किसी प्रकारसे हमारे पति छूट जावें। अपने पतियोंके समान वे भी कुछ जादू टोना जानती थीं। उन्होंने थोड़ीसी इलायची मंत्रित करके चाहा कि, राजाके पास पहुंचावें। परन्तु उन्हें कोई पहुँचाने-वाला नहीं मिलता था। अचानक उनकी भेंट तारनसे हो गई। उससे उन्होंने अपना अभीष्ट कहा। उसने कहा—मैं इलायची पहुंचा दूंगा, यदि तुम यह प्रतिज्ञा करो कि, इसके बदलेमें हम तुम्हें जादूगरी सिखला देंगी। स्त्रियोंने शपथ की। इलायची राजाके पास पहुंच गई। नट छूट गये और तारनने जादूगरी सीख ली। इसी जादूगरीके द्वारा उसे अपने नये मार्गकी स्थापनामें सफलता प्राप्त हुई। जितनी उसमें बुद्धि थी उसके अनुसार उसने चौदा ग्रन्थ बनाये और उन्हें आकाशसे उतरते हुए बतलाये! इसके सिवाय और भी कई प्रकारकी कलाओंसे लोगोंको आश्चर्यचकित किया और अपना अनुयायी बनाया। एक मुसलमान आवारा फिरता था। उसने इनसे पूछा, मैं क्या करूं। उन्होंने कहा, इसी वक्त उत्तरकी ओर चले जाओ। तुम्हारा भाग्य चमकेगा। वह उत्तरकी ओर चला गया और भाग्यवश शाही फौजमें नौकर होकर एक बड़ा ओहदेदार हो गया। कुछ वर्षोंके बाद लौटकर वह तारनस्वामीके पास आया। परन्तु उस समय तारनकी मृत्यु हो गई थी। लोग अग्निसंस्कारकी तयारी करते थे। ओहदेदार साहब ने आकर कहा—ये तो हमारे उस्ताद थे, इन्हें तुम जलाते क्यों हो? हम तो इन्हें दफन करेंगे। झगड़ा हो पड़ा। आखिर यह फैसला हुआ कि, पहिले मियां साहब दफन करनेकी रश्म अदा करलें, पीछे

दूसरे लोग अग्निसंस्कार करें। तारनस्वामीका एक शिष्य नट भी था। उसने भी चाहा कि, मैं अपनी पद्धतिसे इनका संस्कार करूं। निदान तीनोंने अपनी २ विधिसे संस्कार किया। सुनते हैं, तारन पंथियोंमें पहिले नाममात्र दफन करनेकी और नटोंके समान थाली रखनेकी पद्धति अब भी कहीं २ की जाती है।

तारनकी जन्मभूमि सेमरखेड़ी टोंक रियासतकी सिरोंज तहसीलमें है। वहांपर तारनका एक चैत्यालय बना हुआ है। बहुत लोग उसके दर्शनोंको जाया करते हैं। मृत्यु उनकी मल्हारगढ़में हुई थी। यह स्थान ग्वालियर रियासतमें मूंगावली स्टेशनसे तीन कोसपर है। इसे तारनपंथी 'नसईजी' कहते हैं। यही उनका प्रधान तीर्थ है। यहां तारनस्वामीका एक समाधिमन्दिर और चैत्यालय बना हुआ है और प्रतिवर्ष फागुन सुदी ८ से चैत वदी ९ तक मेला भरता है। कई हजार तारनपंथी यहां दर्शनोंको आते हैं। चैत्य शब्दका प्रसिद्ध अर्थ प्रतिमा है, इसलिये पाठक चैत्यालयका अभिप्राय ऐसे मन्दिर न समझ लेवें. जिनमें प्रतिमाएं वा मूर्तिएं होती हैं। नहीं, तारनपंथमें चैत्यालयका अर्थ ग्रन्थालय होता है। इनके चैत्यालयोंके मध्यमें एक बेदी होती है, उसपर तारनस्वामीके चौदहों ग्रन्थ विराजमान रहते हैं। पद्मपुराणादि ग्रन्थ भी कहीं २ रहते हैं।

जिस तरह परवारोंमें सिंगई वा सेठकी पदवी मिलती है, उसी प्रकार तारनपंथी भाइयोंको सेठका पद मिलता है। पर इस पदके लिये बहुत द्रव्य व्यय नहीं करना पड़ता है। मल्हारगढ़में जो चैत्यालय है, उसकी प्रतिष्ठा करा देनेसे, नया चैत्यालय बनवानेसे अथवा पुराने चैत्यालयोंमें वेदी रखवाकर विरादरीको भोजन करा-

देनेसे ही यह पदवी मिल जाती है। इस पदके लिये तारनपंथी भाई *मल्हारगढ़के चैत्यालयकी बीसों प्रतिष्ठाएँ करा चुके हैं।*

जितने मतोंके वा पन्थोंके स्थापक हुए हैं, प्रायः उन सबको ही उनके अनुयायियोंने ईश्वरका दूत अथवा सिद्ध पुरुष माना है, साथ ही यह भी प्रतिपादन किया है कि, उनका धर्म अनादि कालसे है और उसकी परम्परा इस इस प्रकारसे है। इसी परम्पराके मिलानेके लिये बौद्धोंको २४ बुद्धोंकी और ब्राह्मणोंको २४ अवतारोंकी कल्पना करनी पड़ी है। प्रायः प्रत्येक धर्ममें यह साधारण नियम पाया जाता है। सब ही अपने धर्मको अनादि कालका और ईश्वरप्रेरित मानते हैं। फिर तारनपंथ इस नियमसे बाहिर क्यों रहे? उसने भी इस विषयमें प्रयत्न किया है।

दिगम्बर जैनग्रन्थोंमें लिखा है कि, राजा **श्रेणिक**का जीव पहिले नरक गया है। वहांकी ८४००० वर्षकी आयु समाप्त करके वह आगामी कालमें **पद्मनाभ** तीर्थंकर होगा। इस विषयमें दिगम्बर सम्प्रदायके किसी भी ग्रन्थमें मतभेद नहीं है। परन्तु तारनपंथी इसके मध्यमें अपना कल्पना-कौशल्य इस प्रकारसे दिखलाते हैं:-उनके ग्रन्थोंमें लिखा है कि, पहिले नरकके पहिले बिलेकी आयु पौने दो हजार वर्षोंकी है। उसे पूरी करके श्रेणिकका जीव **भद्रबाहु** आचार्य्य हुआ। भद्रबाहुकी आयु ९९ वर्षकी हुई। फिर **कुन्दकुन्दाचार्य** हुआ। कुन्दकुन्दकी आयु ८४ वर्षकी हुई। फिर **तारनस्वामी** हुआ। तारनकी आयु ६७ वर्षकी हुई। *तारनस्वामीका शरीर छोड़कर श्रेणिकका जीव* सर्वार्थसिद्धि स्वर्गके जयन्तनामक विमानमें ८२००० हजार वर्षकी आयु वाला देव हुआ। इस आयुको पूरी करके वह अगामी कालमें

पद्मनाभ तीर्थंकर होगा। श्रेणिकके और पद्मनाभके बचिका काल जो ८४ हजार वर्ष है, वह इस तरह पूरा हो गया। (१७५०+ ९९+८४+६७+८२०००=८४०००)। तारन स्वामीका एक रुइयारमन नामका शिष्य था, जो कि बहुतकरके मुसलमान था; उसके विषयमें निर्वाणहुंडीमें लिखा है कि, वह आगामी चौथे कालके इतने मास इतने दिन बीतनेपर कार्तिक वदी अमावसकी रातको गणधरपद प्राप्त करेगा !

तारनपन्थी यह भी मानते हैं कि, तारनस्वामीके समान धर्मोद्धारक पहिले अनेक हो गये हैं और आगे भी होवेंगे। बीच २ में धर्मकी व्युच्छित्ति हो जाती है, उसे तारन वा तारकल ही दूर करते हैं। १४९ चौवीसी हो जानेके बाद विरहिया काल (हुंडा काल) आता है, तब एक तारकल वा तारन होता है और भूले हुए प्राणियोंको राह लगाता है।

तारनस्वामीके बनाये हुए चौदह ग्रन्थ है। उनके नाम और उनका परिमाण नीचे लिखा जाता है—

ग्रन्थ	परिमाण	मत
१ न्यायसमुच्चयसार—	९०९ गाथा	सार मत।
२ उपदेशशुद्धसार —	५८८ गाथा	
३ त्रिभंगीसार —	६९ श्लोक	
४ चौवीसठाणा —	लगभग३०० गाथा	मलल मत।
५ ममल पाहुड़ —	५५०० गाथा	
६ सुंन सुभाव —	ल० ३० गाथा	केवलमत।
७ शुद्धसुभाव —	,, ,,	
८ खातका विशेष —	ल०३०० गा.	
९ छद्मस्थवाणी —	ल० ३०० श्लो.	
१० नाममाला —	३२ श्लोक	

११ मालाजी (गद्य)—लगभग	६०० श्लोक		
१२ पंडित पूजा—	३२ श्लोक	विचारमत ।	
१३ कमलबत्तीसी	३२ श्लोक		
१४ श्रावकाचार—	४६२ गाथा	आचारमत ।	

तारनपंथका ग्रन्थभंडार बस इतना ही है । इनके सिवाय **निर्वाणहुंडी, चौदहमंगल, गुरावली तिलक** आदि दो चार छोटी छोटी पुस्तकें और भी हैं, जो तारनपन्थके पंडितोंकी बनाई हुई हैं।

इन सब ग्रंथोंमें क्या है, इनकी भाषा कौनसी है, इनमें महत्त्व क्या है, आदि बातोंका वर्णन तो हम आगे करेंगे—यहां यह बतला देना चाहते हैं कि, तारनपंथी अपने चैत्यालयोंमें जाकर क्या करते हैं और इन ग्रन्थोंकी उपासना किस प्रकार करते हैं-

तारनपन्थी चैत्यालयोंमें जाकर पहिले नमोकार मंत्रका उच्चारण करते हैं । नमोकारमंत्रका शुद्ध उच्चारण करनेवाले हमारे यहां भी थोड़े हैं, परन्तु तारनपन्थी भाइयोंमें तो इस मंत्रकी इतनी दुर्दशा हुई है कि, सुनकर दुःख होता है । ये बहुत ही अशुद्ध पाठ बोलते हैं । इसके पश्चात् पंचपरमेष्ठी, रत्नत्रय, अनुयोग, और देव गुरु शास्त्रको नमस्कार करके शास्त्रकी वेदीके सम्मुख साष्टांग प्रणाम करते हैं । फिर सामायिक होती है । इसमें संस्कृत देव पूजाका कुछ थोड़ासा भाग पढ़ते हैं । फिर पंचपरमेष्ठी आदिके १८३ गुणोंका अपनी विलक्षण संस्कृत प्राकृत भाषामें उच्चारण करते हैं । इसके पश्चात् ग्यारह नमस्कार करते हैं । और उनमें अपने कई ग्रन्थोंके प्रारंभके श्लोक पढ़ते हैं । फिर सतखरी पचखरी जिसका कि कुछ अभिप्राय समझमें नहीं आता, कहकर एक सौ आठगुण, त्रेपन क्रिया, और तीनों चौवीसीके नाम पढ़ते हैं । सोलहकारण, दश-

लक्षण, आठ अंग, पांच समिति, तीन गुप्ति, चार अनुयोग, आठ सिद्ध गुण, तेरह चारित्र, सात तत्त्व, छह द्रव्य, नवपदार्थ, पांच अस्तिकाय, छह सम्यक्त, और पंचपरमेष्ठी आदि मिलाकर १०८ गुण कहे जाते हैं और जघन्यपात्रकी आठ मूलगुण, चार दान, रत्नत्रयादि १८, मध्यमपात्रकी ग्यारह प्रतिमादि १६ और उत्तमपात्रकी बारहव्रतादि १९ इस तरह त्रेपन क्रिया कहलाती हैं। यह सामान्य सामायिक है। जो लोग भक्त तथा पंडित होते हैं, वे भाषा भक्तामर, कल्याणमन्दिर, निर्वाणकांड, बारह भावना, बाईसपरीषह आदिका भी पाठ करते हैं। साधारण स्त्रियां नमोकार मंत्रकी और १०८ गुणोंकी जाप देती हैं।

शास्त्रके समय जब सब भाई जमा हो चुके, पंडितजीने शास्त्रका बस्ता उठाकर चौकीपर विराजमान किया। चौकी रेशमी और जरीके कपड़ोंसे सुसज्जित रहती है। सबने दर्शन किये फिर बैठकर सबने ममलपाहुड़के मंगलाचरणके द्वारा स्तवन किया। इसके पश्चात् जो कट्टर तारनपंथी होते हैं, वे तो अपने ही पन्थके श्रावकाचार, न्यायसमुच्चयसार आदि ग्रन्थ घंटे दो घंटे पढ़ते हैं किन्तु जो कुछ शिथिल होते हैं, वा भोले होते हैं, वे पद्मपुराण रत्नकरंडादि ग्रन्थ पढ़ते हैं। इसके पीछे आटे की १० आरती बनाई जाती हैं। उन्हें दो रकाबियोंमें रखकर एक पुरुष जामा पगड़ी पहिनकर आरती उतारता है और सब लोग झांझ मृदंगादि बजाकर भजन पढ़ते हैं। भजन हो चुकनेपर तत्त्व अर्थात् ममलपाहुड़का मंगलाचरण, तीर्थकरोंकी नामावली, और नीतिके दोहे तथा श्लोक पढ़े जाते हैं।

यहां इतना विशेष होता है कि दशलक्षणके दिनोंमें ममलपाहुड़का एक गीत और पंडितपूजा पढ़ी जाती है। और रातको

मालाजी तथा कमलबत्तीसी अर्थसहित पढ़ी जाती है। दिवालीके बाद पांच दिनतक जब चैत्यालय होता है, तब छद्मस्तवाणीका पाठ होता है और होलीके बाद पांच दिन फाग फूलना गाया जाता है।

श्लोकादि पढ़े जानेके बाद अवलवानी पढ़ी जाती है जिसमें कुछ तरन तारनकी प्रशंसा है और कुछ बेसिर पैरके श्लोक हैं। यह पढ़ी जानेपर सबने खड़े हो कर बाजे गाजेके साथ अन्तका भजन गाया और एक आदमीने आरती उतारी। फिर चन्दन घिसा गया। पहिले उसे शास्त्रोंमें लगाया और फिर सब लोगोंने लगाया। अनन्तर परसाद (मिठाई मेवा आदि) का थाल लाया गया। पंडितजीने शास्त्रके पास थाल रखकर परसाद लानेवालेकी कई पुश्तोंका नाम लेकर कहा—अमुककी ओरसे परसाद आया है। फिर 'जय नमोस्तु' कह कर सबको बँटवा दिया। इसके बाद फिर तत्त्व पढ़ा गया और सब लोग अपने अपने घर गये। परसादको सब लोग प्रेमके साथ खाते हैं।

तारनपंथके अनुयायियोंकी विवाहविधि देखनेका हमको कभी सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। परन्तु सुनते हैं, उसमें कई बातोंमें अन्य परवारादि जैनियोंसे विलक्षणता है। सुनते हैं, उनके यहां सप्तपदी नहीं होती है। कन्यावरके गलेमें माला पहिना देती है और वर कन्याके कंठमें माला डाल देता है। उस समय मालाजीका पाठ पढ़ दिया जाता है।

तारनपंथके अनुयायी जिस तरह अपने ग्रन्थोंके सिवाय पद्मपुराणादि ग्रन्थ भी पढ़ते हैं, उसी प्रकारसे अपने तीर्थोंके सिवाय सम्मेदशिखर, गिरनारजी आदि तीर्थोंकी बन्दनाको भी जाते हैं। परन्तु वहां जाकर प्रतिमाओंके दर्शन नहीं करते हैं—पर्वतकी बन्दना करके

चले आते हैं, जो लोग कट्टर नहीं हैं, वे प्रतिमाओंके दर्शन भी करते हैं। पद्मपुराणादि ग्रन्थोंमें यदि कहीं प्रतिमापूजनादिका सम्बन्ध आता है, तो ये भाई इस प्रकार अपनी शंकाका समाधान कर लेते हैं कि प्रतिमापूजकोंने मिला दिये है।

अनेक स्थानोंके तारनपंथी प्रतिमापूजक जैनियोंके सम्बन्धमे जिनमन्दिरोंमें भी जाते आते और दर्शन पूजनादि करते हैं; परन्तु इस कारण उनकी बिरादरी अथवा पंथके लोग उनपर कुछ शासन करनेका साहस नहीं कर सकते है। कारण यह है कि उनकी जातीय शक्ति वा समूहशक्ति बहुत ही क्षीण हो गई है।

तारनपंथके अनुयायियोंमें विद्याकी बहुत ही कमी है। न्याय व्याकरण धर्मशास्त्रादि पढ़ा हुआ यदि आप एक भी तारनपंथी चाहें, तो नहीं मिलेगा! एक भी पंडित उनमेंसे ऐसा नहीं, है जो यह बतला सके कि, हमारे मतका सार क्या है और हमारे ग्रन्थोंमें लिखा क्या है? यह तो धर्मविद्याकी दशा हुई, रही लौकिक विद्या। सो उसमें भी सफाई है। एक भी बी०ए०, एम्०ए० आपको इस पंथमें नहीं मिलेगा। ऐसा मालूम होता है कि, तारनपंथमेंसे विद्या निर्वासित कर दी गई है।

(अपूर्ण--)

जैनदर्शनके जीवतत्त्वका एकांश।

बौद्ध जिस तरह 'आर्य आष्टाङ्गिकमार्ग' के नामसे प्रसिद्ध सम्यग्दर्शनादिको निर्वाणका पथ मानते हैं, उसी प्रकारसे जैनधर्ममें भी सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रको मोक्षमार्ग कहा है। इस मोक्षमार्गकी साम्प्रदायिक व्याख्या न की जावे तो भी

केवल यथाश्रुत अर्थसे जैनधर्मके मर्मस्थानका एक रमणीय आभास प्राप्त हो जाता है। जैनी इन तीनोंको रत्नके समान अतिशय उपादेय समझते हैं और इसीलिये जैनशास्त्रोंमें ये **रत्नत्रयके** नामसे प्रसिद्ध हैं। यहां हम इस रत्नत्रयके सम्बन्धमें विशेष आलोचना नहीं करना चाहते हैं। इसके अन्तर्गत सम्यग्ज्ञानके विषयीभूत तत्त्वसमूहमें जो एक जीव नामक तत्त्व है, उसीके सम्बन्धमें हम कुछ बातें संक्षेपमे वर्णन करना चाहते हैं।

तत्त्व वा प्रमेय–पदार्थोंकी संख्याके विषयमें जैनाचार्योंमें कुछ मतभेद मालूम होता है। कोई २ चित् और अचित् इन दो परमतत्त्वोंको स्वीकार करके अन्य सबोंको इन्हींमें गर्भित कर लेते हैं। कोई २ सात तत्त्व बतलाते हैं और कोई २ विस्तृतरूपसे नव (पदार्थ) मानते हैं। चित् और अचित् जिन्हें दूसरे शब्दोंमें हम जीव और अजीव कह सकते हैं, सभी मतोंमें प्रधानतत्त्वरूपसे माने गये है।

दूसरे दर्शनोंमें अथवा साधारण व्यवहारमें जीव शब्दसे हम जो अर्थ समझते हैं, जैनदर्शनका जीव शब्द उसकी अपेक्षा और अधिक व्यापक अर्थ प्रकाशित करता है और यह बात विशेषतासे ध्यान देने योग्य है।

जैनी जीवको प्रधानतासे दो भागोंमें विभक्त करते हैं—एक मुक्त और दूसरे संसारी। जिन्हें जन्मादि क्लेश नहीं हैं. और जो सर्वदा आनन्दमय एकरूप रहते हैं, वे मुक्त और उनके अतिरिक्त अन्य सब संसारी। संसारी जीव दो प्रकारके हैं–स्थावर और जङ्गम। जैनदर्शनमें जंगम जीवोंका पारिभाषिक नाम त्रस है। त्रस् धातु, कम्पन अर्थमें हत होती है, और जंगमजीव स्वयं कंपित वा चलित होते हैं इसलिये उन्हें त्रस कहा है।

स्थावर और जंगम जीवोंको भी दो भागोंमें विभक्त किया है– पर्याप्त और अपर्याप्त। आहार, शरीर, इन्द्रिय, प्राण (श्वासोच्छास), भाषा और मन ये छह पर्याप्ति हैं। जिसके ये छह पर्याप्ति हों, वह पर्याप्त और जिसके न हों वह अपर्याप्त। एकेन्द्रिय जीवोंके चार, विकलेन्द्रियोंके पांच, और पंचेन्द्रिय जीवोंके छह पर्याप्ति हो सकती हैं।

पृथ्वी, जल, [1]तेज, वायु और वृक्ष (उद्भिज) ये स्थावर हैं और इनके केवल एक स्पर्शन इन्द्रिय है। इसलिये इनकी गिनती एकेन्द्रिय जीवोंमें होती है। [2]द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय जीव जंगम हैं।

इस स्थानमें दो बातें ध्यान देने योग्य हैं–**एक** तो, जैन दार्शनिकोंकी जीवविद्याकी पर्यालोचना। कौन २ जीवोंके कितनी २ इन्द्रियां हैं, यह निर्णय करना सामान्य पर्यवेक्षणका फल नहीं है। इसके लिये उन्हें बहुत समय तक निःसीम परिश्रम करना पड़ा होगा, इस विषयमें कुछ भी सन्देह नहीं है। इनके सिद्धान्त कहां तक सत्य हैं, इस विषयकी आलोचना करनेका भार आधुनिक वैज्ञानिक जीवविद्याके जानने वालोंके ऊपर है। इन सम्पूर्ण जीवोंके नाम अनेक जैन ग्रन्थोंमें प्राप्त होते हैं। जीवविद्याविज्ञ उनकी सूची बनाकर परीक्षा करके देख सकते हैं। **दूसरी** बात यह है कि–जैन दार्शनिकोंने पृथिवी

१. तत्त्वार्थाधिगमसूत्र (२.१३.१४) मे उमास्वाति कहते है–तेज और वायु जंगम जीवोंमे है। २ कृमि, गण्डूपद (केंचुआ), शंख, सीप, जोंक, और शम्बूक आदि द्वीन्द्रिय है। इनके स्पर्शेन्द्रिय और रसनेन्द्रिय है। चिउटी, तिरूला आदि त्रीन्द्रिय है; इनके स्पर्शन रसन और घ्राण है। भ्रमर, मक्खी आदि चौइन्द्रिय है; इनके पिछली तीन और आंखे है। मनुष्य और चौपाये आदि पंचेन्द्रिय हैं, इनके समस्त इन्द्रियां है।

जल आदिको भी जीवोंकी श्रेणीमें आसन दिया है। वे इन सब पदार्थोंको सचेतन बतलाते हैं–कहते हैं, इनके भी इन्द्रिय है। यह कोई सामान्य वा उपेक्षाका विषय नहीं है। वे किस युक्तिसे इस प्रकार अग्रसर हुए हैं अर्थात् पृथिवी आदिमें वे जीव कैसे मानते हैं और उनके उस माननेका कितना मूल्य है–उसमें कितना तथ्य है, यह दर्शनरसिकों वा ऐतिहासिक विद्वानोंकी गवेषणाका विषय है। पृथिवी आदि जिन२ जीवोंको वे जीव मानते हैं, उन सबके विषयमें युक्तियां दी गई हैं। उनमेंसे वृक्षोंके जीवत्व सम्बन्धमें जो युक्तियां प्रदर्शित की गई हैं, वे बहुत ही रमणीय हैं। स्थानकी कमीके कारण अन्यान्य अंशोंको छोड़कर हम यहां पर केवल वृक्षके जीवत्वके विषयमें जैन दार्शनिकोंकी युक्तियोंको संक्षेपमें संकलन करनेकी चेष्टा करेंगे। पृथ्वी आदि जीवोंके विषयमें जो कुछ वे कहते हैं, उसका स्थूल तात्पर्य यह है कि–यद्यपि पृथिवी आदिमें स्पष्ट जीवलक्षण नहीं दिखलाई देता है, तब भी उनमें अस्पष्ट जीवलक्षण लक्षित होता है। वृक्षके जीवत्वसम्बन्धमें वे कहते हैं—

मनुष्य चेतन है, इस विषयमें तो किसीको कोई प्रकारका सन्देह नहीं है। इस चेतन मनुष्यके साथ वृक्षकी बहुत कुछ समानता है। मनुष्य शरीर जिस प्रकारसे बाल्य, कौमार, यौवन आदि अवस्थाओंसे सर्वदा वृद्धि प्राप्त करता है, उसी प्रकार वृक्षशरीर भी अङ्कुर किशलय, शाखा, प्रशाखादिसे सर्वदा बढ़ता रहता है। मनुष्य जिस प्रकार सोते जागते हैं, अगस्त्य, शमी (सोंठ ?) और आँवला आदि वृक्ष भी ऐसे ही देखे जाते हैं। लज्जावती (लजनू) आदि लताओंको स्पर्श करो, तो वे संकुचित हो जाती हैं और कोई कोई वृक्ष ऐसे हैं कि, वे स्पर्श करनेसे उल्लसित होजाते हैं। लतादि वन-

स्पतियां दूसरे वृक्षोंपर चढ़ जाती हैं। ये सब संकोच, उल्लास और उपसर्पण आदि विविध क्रियाएँ चेतन मनुष्यमें ही सर्वदा देखी जाती हैं। वृक्षका कोई अवयव काटा जाता है, तो वह म्लान हो जाता है। वृक्ष नियमित आहार ग्रहण करते हैं। ये सब धर्म अचेतनमें नहीं हो सकते। मनुष्यकी आयुका जिस प्रकार परिमाण होता है, वैसा ही वृक्षोंका भी होता है। अच्छे और बुरे आहारसे मनुष्य शरीरमें जिस प्रकार वृद्धि और हानि होती है, वृक्षशरीरमें भी वैसी ही होती है। रोग हो जानेसे मनुष्य शरीरमें जिस प्रकार नानारूप विकार और कष्ट होते हैं, वृक्षोंमें भी ठीक वैसे ही होते हैं; और चिकित्सा करनेसे रोगक्षय भी दोनोंमें समान रूपसे होता है। रसायनसेवनसे मनुष्य शरीरकी जिस प्रकार विशिष्ट कान्ति और रसबलकी वृद्धि होती है, वृक्षशरीरकी भी वैसी ही होती है। स्त्रियां जैसे दोहद उपभोग कर पुत्रादि उत्पन्न करती हैं, वृक्ष भी वैसे ही फलते हैं। अतएव मनुष्यके समान वृक्ष भी चेतन हैं और उनके भी आत्मा है[1]।

उद्भिज विद्यामें भी जैन दार्शनिकोंकी पर्यवेक्षण शक्ति कितनी उच्चश्रेणीकी थी, यह बात यहां विचारणीय है। किन्तु वृक्षोंमें चेतनताका दर्शन इन्होंने सबसे पहिले किया था, ऐसा नहीं है। जैनधर्मके आविर्भावके बहुत पहिले महाभारतमें हम इस विषयका उल्लेख पाते हैं। महाभारत शान्तिपर्व, १८४ अध्याय ६ आदि श्लोकोंमें वृक्षका जीवत्व बहुत सी युक्तियां देकर निर्णीत किया है। वृक्षोंका शरीर मनुष्यादिकोंके शरीरके समानपंच भूतोंसे

१ आचारांगसूत्र १. १. ५—६, षड्दर्शनसमुच्चय ५८—५९, गुणरत्नकृत तर्कपरीक्षा टीका।

बना है, यह बात भी वहां बतलाई गई है। जैनदार्शनिक वृक्षोंके एक ही इन्द्रिय बतलाते हैं, परन्तु महाभारतमें पांच इन्द्रियां बतला कर उन्हें सिद्ध करनेके लिये युक्तियां दी हैं। हम यहां महाभारतमे इस विषयके श्लोक उद्धृत करते हैं।

उष्मतो म्लायते पर्णं त्वक्फलं पुष्पमेव च।
म्लायते शीर्यते चापि स्पर्शस्तेनात्र विद्यते॥
वाय्वग्न्यशनिनिर्घोषैः फलं पुष्पं विशीर्यते।
श्रोत्रेण गृह्यते शब्दस्तस्माच्छृण्वन्ति पादपाः॥
वल्ली वेष्टयते वृक्षं सर्वतश्चैव गच्छति।
नह्यदृष्टश्च मार्गोऽस्ति तस्मात्पश्यन्ति पादपाः॥
पुण्यापुण्यैस्तथा गन्धैर्धूपैश्च विविधैरपि।
अरोगाःपुष्पिताःशान्त तस्माज्जिघ्रन्ति पादपाः॥
पादैः सलिलपानाच्च व्याधीनाञ्चैव दर्शनात्।
व्याधि प्रतिक्रियत्वाच्च विद्यते रसनं द्रुमे॥
व्यक्तेनोत्पलनालेन यथोर्द्ध्व जलमाददत्।
तथा पवनसंयुक्तः पादैः पिवति पादपाः॥
सुखदुःखयोश्च ग्रहणात् छिन्नस्य च विरोहणात्।
जीवं पश्यामि वृक्षाणामचेतन्यं न विद्यते॥

अर्थात्—उष्णताके संयोगसे वृक्षके पत्ते, फूल, और छाल आदि मुरझा जाते हैं और शीर्ण हो जाते हैं अतएव मालूम होना

१. महाभारतके प्रसिद्ध टीकाकार नीलकंठ इस अंशकी टीकामें कहते है—शीर्यंत इत्यनेन वज्रमणेरपि मत्कुणशोणित स्पर्शात्शीर्यमानस्य चेतनत्वं व्याख्यातं। एवमेकदेशे कम्पादिदर्शनाद् गोरिव भूमेरपि तद्द्रष्टव्यम।

है, वृक्षोंको स्पर्शानुभव होता है। वायुके शब्दसे अग्निके शब्दसे और बिजलीके कड़कनेसे वृक्षके फल फूल सूख जाते हैं; कानके द्वारा ही शब्द ग्रहण किया जाता है. अतएव इससे जाना जाता है कि वृक्ष सुनते हैं। वल्ली (लता) वृक्षको वेष्टित करती है, और सब ओरको गमन करती है; दृष्टिहीन व्यक्तिको मार्ग नहीं सूझता अतएव वृक्ष देखते हैं। बुरी भली गन्ध और विविध प्रकारकी धूपोंसे वृक्ष नीरोग होकर फूलते हैं; अतएव वे सूंघते हैं। वृक्ष अपनी जड़ोंसे [1]पानी पीते हैं, उन्हें व्याधियां होती हैं और उनका निवारण भी होता है, अतएव वे रसानुभव करते हैं। पद्मनाल छोटे २ छिद्रोंके द्वारा जल जैसे ऊपरको खींचता है, वृक्ष भी उसी तरह वायुके संयोगसे जड़ोंके द्वारा जलपान करते हैं। वृक्ष सुख और दुःखका अनुभव करते है। उनका यदि कोई अंग कट जाता है, तो वह फिर अच्छा हो जाता है। अतएव हम वृक्षोंके जीव देखते हैं, उनमें अचेतनता नहीं है। वृक्ष जो जल ग्रहण करते हैं, अग्नि और वायुके प्रभावसे वह जीर्ण होता है, उनका भुक्त द्रव्य परिपक्व होता है और इसीसे उनमें स्नेह जन्मता है तथा वृद्धिगत होता है।*

वृक्षोंमें जीव है, इसका वैदिक साहित्यमें भी पता लगता है। छान्दोग्योपनिषद (६'११.१-२) में कहा है:—हे सौम्य, यदि कोई व्यक्ति इस महा वृक्षके पाददेशमें (नीचे) आघात करे, तो यह जीवित रह कर ही (रस) क्षरित करता है। यदि कोई मध्यमें आघात करे, तो यह जीवित रहकर ही (रस) क्षरित करता है और यदि कोई

१. एतेन क्षीरादिपायिनः पारदेरपि चेतनत्वं व्याख्यातम् ।

* श्रीजगदीशचन्द्र वसु महाशयने इस सम्बन्धमें वैज्ञानिक प्रक्रियासे जो समस्त तत्त्व प्रकाशित किये है, वे भी विचारणीय हैं।

अग्रभागमें आघात करे, तो भी यह जीवित रहकर ही (रस) क्षरित करता है। यह जीवरूप आत्माके द्वारा व्याप्त है और अतिशय (रस) पान करते करते मोदमान होकर खड़ा है। जीव यदि इसकी एक शाखाका त्याग करता है, तो सबका सब वृक्ष सूख जाता है।

तन्त्रशास्त्रोंपर दृष्टि डालनेसे जाना जाता है कि, हिन्दुओंने वृक्षोंके मध्यमें स्त्री जाति और पुरुषजाति पर्यन्त निर्णय करलिया था।

बौद्ध भी उद्भिदोंमें अर्थात् वृक्षोंमें जीवका अस्तित्व स्वीकार करते हैं, ऐसा महावग्ग (१.७.१ -२) ग्रन्थसे मालूम होता है। इसी लिये ब्राह्मण बौद्ध और जैन इन तीनों सम्प्रदायोंमें इस प्रकारका उपदेश दृष्टिगोचर होता है कि, जहां तक बने वृक्षोंका छेदन मत करो।

नोट —यह लेख बंगलाके प्रसिद्ध मासिकपत्र प्रवासीकी गत फाल्गुनकी संख्यामें प्रकाशित हुए बंगला लेखका अनुवाद है। इसके लेखक हैं श्रीविधुशेखर भट्टाचार्य शास्त्री। आप संस्कृत प्राकृत और पाली भाषाके नामी विद्वान् हैं। आपने अभी हाल ही बंगलामें पालीभाषाके एक सर्वोत्कृष्ट व्याकरणकी रचना की है। जैनग्रन्थोंके अध्ययनका भी आपको शौक है। जैनेतर विद्वानोंने जैनधर्मके विषयमें अभी तक जितने लेख लिखे है, हमारी समझमें शायद ही कोई ऐसा होगा, जिसमें जैनधर्मके एक तात्त्विक विषयका इतना निर्भ्रान्त वर्णन किया हो। औरोंकी अपेक्षा हम ऐसे लेखोंको मूल्यवान् समझते हैं। जैनधर्मका सच्चा सौन्दर्य-उसके प्रतिपादन किये हुए तत्त्वोंमें है। और यदि कभी जैनधर्मपर संसारकी श्रद्धा होगी, तो उसके आचार्योंकी गभीर गवषेणा शक्तिके

कार्यस्वरूप तत्त्वविचारके प्रकाशसे ही होगी। हमें चाहिये कि, उक्त लेखक महाशयके ढंगपर अपने तत्त्वोंके एक २ अंशको ऐसी सरलताके साथ कि जिसे सब लोग सहज ही समझ लेवें प्रसिद्ध २ पत्रोंके तथा स्वतंत्र ट्रेक्टोंके द्वारा प्रकाशित करनेका प्रयत्न करें। शास्त्रीजी कहते हैं कि, जैन दार्शनिकोंके कहे हुए पदार्थोंकी जो कि उनके गहरे पर्यवेक्षणके फल हैं आधुनिक वैज्ञानिक जीवविद्याके जाननेवालोंको जांच करना चाहिये। हम कहते हैं और जोरके साथ कहते हैं कि, जरूर करना चाहिये। "**सदाकत जैनमतकी आजमाए जिसका जी चाहे।**" जैनियोंको विश्वास है कि, उनकी फिलासोफी सच्ची और सर्वश्रेष्ठ है। साथ ही हम अपने जैनी भाइयोंसे प्रार्थना करते हैं कि, वे अपनेमें कुछ ऐसे विद्वान् भी तयार करनेकी कोशिश करें. जो आधुनिक जड़विज्ञान, जीवविज्ञान, मनोविज्ञान, वनस्पतिविज्ञान और दर्शनशास्त्रके पारंगत पंडित हों। जिससे वे निश्चय कर सकें कि, जैनधर्ममें कहा हुआ जड़, जीव, मन, आदिका स्वरूप कहांतक सत्य है और संसारको बतला सकें कि, सर्वज्ञ प्रणीत धर्म कौनसा है। यह जमाना इस तरहसे किसी बातपर विश्वास करनेवाला नहीं है कि, अमुक बात हमारे भगवानकी कही हुई है, अथवा अमुक बात न्यायकी पंक्तियोंसे सिद्ध होती है, इसलिये इसे मान लो। वह तो प्रत्यक्षपर सबसे बड़ी भक्ति रखनेवाला है। और आधुनिक विज्ञान कमसे कम इंद्रियगम्य पदार्थोंको प्रत्यक्ष दिखलाने वाला है। इसलिये हमें अब इसकी सहायता अवश्य लेनी चाहिये।

उक्त लेखकके पिछले भागमें महाभारतके कुछ श्लोक उद्धृत करके यह कहा है कि, "वैदिक विद्वानोंने वनस्पतिमें पांचों इन्द्रियां मानी

हैं, परन्तु जैनी वनस्पतिमें एक इन्द्रिय मानते हैं। यह विषय विचारणीय है।" हमारी समझमें महाभारतकारका वनस्पतिमें पंचेन्द्रियत्व मानना भ्रमपूर्ण है। आगामी अंकमें हम एक स्वतंत्र लेखके द्वारा इस विषयका विचार करेंगे। जैन विद्वानोंको चाहिये कि, वे उन युक्तियोंसे जिन्हें अन्य धर्मावलम्बी भी मान सकें वनस्पतिका एकेन्द्रियत्व सिद्ध करनेका प्रयत्न करें।

सम्पादक।

विनोद-विवेक-लहरी।

(१)

बिल्ली।

मैं अपने शयनागारमें चारपाईपर बैठा हुआ हुक्का पी रहा था। आलेमें एक छोटासा चिराग टिम टिमा रहा था। दीवालपर चंचल छाया प्रेतके समान नृत्य करती थी। भोजन तयार होनेमें कुछ देरी थी, इसलिये मैं हाथमें हुक्का लिये हुए और नेत्रोंको बन्द किये हुए विचार कर रहा था कि, यदि मैं **नेपोलियन** होता, तो वाटर्लूके युद्धमें विजय प्राप्त कर सकता या नहीं। इसी समय आवाज आई—"म्याऊ।"

मैंने आंखें खोलकर इधर उधर देखा, पर एकाएक कुछ समझमें नहीं आया। पहिले सोचा कि, **ड्यूक आफ [1]वैलिंगटनने** किसी कारणसे बिल्लीका शरीर प्राप्त करके मेरे पास अफीम मांगने आया है। उस समय पाषाणके समान कठोर होकर मैंने कहा ड्यूक महा-

---

१. वाटर्लूके प्रसिद्ध युद्धमें इसी अंग्रेज सेनापतिने जगद्विजयी नेपोलियनको हराया था।

शयको यथोचित पुरस्कार दिया जा चुका है; अब और नहीं दिया जा सकता। अधिक लोभ करना कोई अच्छी बात नहीं है। ड्यूक महाशय बोले—"म्याऊ।"

इस समय आंखें फाड़कर अच्छी तरहसे देखा तो मालूम हुआ कि, वैलिंगटन नहीं, एक छोटीसी बिल्ली है जो मेरे लिये रक्खे हुए दूधसे अपनी उदर ज्वालाको शान्त करके प्रसन्नता प्रगट करनेके अभिप्रायसे मधुर स्वरसे कह रही है—"म्याऊ।" जिस समय वह दुग्धपान कर रही थी, उस समय मैं वाटर्लूके मैदानमें व्यूह रचना कर रहा था, तब उसे रोकता कौन? मैं शब्दशास्त्रके प्रमाणसे सिद्ध तो नहीं कर सकता हूं, परन्तु मुझे मालूम होता है कि उसके 'म्याऊ' शब्दमें कुछ व्यंग अवश्य था। वह या तो मन ही मन हँसती और मेरी ओर देखती हुई यह कहती थी कि, "कोई मरपचके संग्रह करता है और कोई हाथ साफ करता है" या मेरे मनका भाव पूछना चाहती थी कि, तुम्हारा दूध तो मैं पी चुकी हूं, अब कहिये क्या विचार है?

कहूं क्या? मैं तो कुछ निश्चय नहीं कर सका। दूध मेरे बापका नहीं था। दूध **मंगला** गायका था और दुहा था **प्रसन्नो** ग्वालिनीने। अतएव उसपर मेरा अधिकार था, वही बिल्लीका भी था! इस हिसाबसे बिल्लीपर क्रोध करनेकी जरूरत नहीं थी। परन्तु एक पुरानी चाल चली आ रही है कि, बिल्ली यदि दूध पी जावे, तो उसके पीछे मारनेको दौड़ना चाहिये। फिर मैं इस बापदादोंकी पद्धतिकी अवमानना करके कुलाङ्गार क्यों बनूं? और यह भी तो चिन्ता लगी थी कि, कहीं यह बिल्ली अपनी जातीय सभामें मेरी यह कहकर निन्दा करने लगी कि, कमलाकान्तका पुरुष है तो?

अतएव मैंने पुरुषोंके समान आचरण करना ही ठीक समझा। इच्छा न रहते हुए भी हुक्केको नीचे रखकर और एक टूटीसी लकड़ीको लेकर जो कि मुश्किलसे सारा घर ढूंढने पर मिली थी, मैं बिल्लीके पीछे दौड़ा।

बिल्ली कमलाकान्तको जानती थी। उसने लकड़ी देखकर विशेष भयभीत होनेके कोई लक्षण प्रकाश न किये। केवल मुंहकी ओर देखती हुई वह कुछ पीछे सरक गई और बोली—"म्याऊ।" मैंने समझा यह कुछ प्रश्न करती है, इसलिये लकड़ी फैंककर मैं फिर चारपाईपर जाकर बैठ गया और हुक्का पीने लगा। उस समय एकाएक मुझे दिव्य कर्ण प्राप्त हो गये; इसलिये मैंने बिल्लीका जो कुछ वक्तव्य था, अच्छी तरहसे समझ लिया।

बिल्ली कहती थी—"तुम मुझे यह लकड़ी क्यों दिखलाते हो? जरा स्थिर होके और थोड़ासा धूम्रपान करके विचार तो करो कि, इस संसारके दूध, मलाई, दही, मक्खन आदि पदार्थ क्या केवल तुम्हारे ही लिये हैं? हमारे लिये कुछ भी नहीं हैं? तुम मनुष्य हो, हम मार्जार हैं, बतलाओ, हममें तुममें क्या अन्तर है? तुम्हें भूख प्यास लगती है, तो क्या हमें नहीं लगती? तुम अच्छी तरहसे खाओ, पीओ, इसमें हमारा कोई एतराज नहीं है; परन्तु हमने खाया कि, तुम लकड़ी लेके चलते हो! यह किस शास्त्रके आधारसे? तुम्हें हमसे कुछ उपदेश ग्रहण करना चाहिये। जब तक तुम सुचतुर चौपायोंसे कुछ शिक्षा प्राप्त नहीं करोगे, तब तक सच समझना तुम्हारे ज्ञानकी उन्नति होना असंभव है।

"कमलाकान्त, क्या तुम जानते हो कि, धर्म क्या है? सुनो, परोपकार ही धर्म है। इस दूधके पीनेसे मेरा बड़ा भारी उपकार

हुआ है। तुम्हारे दूधसे यह परोपकार सिद्ध हुआ—अतएव इस परमधर्मका फल भी तुम्हें मिलेगा। हम चोरी करें चाहे कुछ भी करें; पर इसमें सन्देह नहीं कि, तुम्हारे धर्मसंचयके मूल हैं। इसलिये तुम्हें हमको मारना नहीं चाहिये—उलटी प्रशंसा करनी चाहिये। चोर तुम्हारे सहायक हैं।

"देखो, हम चोर मालूम होते हैं, पर क्या हम इच्छा करके शौकसे चोर हुए हैं? खानेको मिलता रहे, तो काहेको कोई चोर होवे? जो बड़े २ साधु हैं—भले मानस हैं, चोरका नाम भी जिन्हें पसन्द नहीं है, उनमेंसे बहुतसे चोरोंकी अपेक्षा भी अधर्मी हैं। वे चोरी नहीं करते है, सो यह समझ कर नहीं कि चोरी करना पाप है; किन्तु उन्हें चोरी करनेकी आवश्यकता नहीं है—इसलिये नहीं करते है। वास्तवमें उनके पास आवश्यकतासे अधिक धन है, तो भी वे चोरकी ओर आँख उठाकर नहीं देखते हैं, इसीलिये चोर चोरी करते हैं। चोर जो चोरी करते हैं, उसके पापके भागी चोर नहीं किन्तु कंजूस धनिक हैं। चोर दोषी मालूम होते हैं, परन्तु कंजूस धनी उनकी अपेक्षा सौ गुणे दोषी हैं। चोरोंको तो दंड दिया जाता है, परन्तु चोरीके मूल कारण जो धनी है, उनको दंड क्यों नहीं दिया जाता?

"देखो, हमने जहां तहां 'म्याऊ! म्याऊ! करते फिरनेका व्रत लिया है, तो भी कोई हमारे आगे एक रोटीका टुकड़ा नहीं डालता है। भोजनके वर्तनोंके धोवनको, बचे हुए रोटीके टुकड़े तथा भातके सीतोंको लोग मोरियोंमें डाल देते हैं—पानीमें बहा देते हैं, परन्तु हमको बुलाकर नहीं देते। भाई, जब तुम्हारे पेट सदा भरे रहते हैं, तब हमारे पेटकी भूखका अनुभव तुम्हें क्यों होने लगा? हाय!

दरिद्रोंके लिये दुखी होनेमें क्या तुम्हारा कुछ गौरव कम हो जायगा? क्या तुम्हारी भलमनसाहतमें फरक आ जायगा? हम जैसे दरिद्रोंके दुःखमें दुखी होना सचमुच ही लज्जाकी बात है। जो कभी किसी अंधेको भी मुट्ठीभर अन्न नहीं देता है, उसे भी यदि कोई बड़ा राजा किसी संकटमें पड़ा हो, तो उसके दुःखसे रातभर नींद नहीं आती है–इस तरह सब ही दूसरोंके दुःखमें दुखी होना चाहते हैं, पर हम जैसे क्षुद्रोंके दुःखमें दुखी छिः! कौन होता है?

"देखो, यदि अमुक सेठजी या अमुक पंडितजी आकर तुम्हारे दूधको पी लेते, तो क्या तुम उन्हें लकड़ी लेकर मारनेको चलते? नहीं, हाथ जोड़कर कहते–"और क्या लाऊं?" फिर हमारे लिये यह लाठी क्यों? तुम कहोगे, वे बड़े भारी भाग्यवान् वा विद्वान हैं। पर क्यों जी भाग्यवान् वा विद्वान् होनेसे क्या हमारी अपेक्षा उन्हें अधिक भूख लगती है? मनुष्य जातिके कुछ विचार ही अजीब है। जो खाना नहीं चाहते हैं–खानेसे ऊब गये हैं, उनके लिये तो भोजनों की तयारी की जाती हैं और जो भूखकी ज्वालासे विना बुलाये ही अन्न खा जाते हैं, वे चोर कहकर दंडित किये जाते हैं। छिः! छिः!

"देखो, हमारी दशा देखो। प्रत्येक घर आंगन और छतपर चारों ओर दृष्टि डालते हुए और 'म्याऊ। म्याऊ!' कहते हुए हम फिरा करते है, परन्तु कोई हमारी ओर एक कौर अन्न भी नहीं डालता है। हां! यदि हममेंसे कोई तुम्हारे प्यारका पाला हुआ विड़ाल हो पाता है, तो अवश्य ही वह इस तरह पुष्ट हो जाता है; जिस तरह बुड्ढेके घर रहनेवाला उसकी जवान स्त्रीका भाई, अथवा मूर्ख धनीके साथ शतरंज वा तास खेलनेवाला खिलाड़ी, माल खा खाकर पुष्ट हो जाता है। ऐसे गृहमार्जार हृष्ट पुष्ट हो जाते हैं,

उनके शरीर पर खूब मांस वा रोम हो जाते हैं और उसके रूपकी छटाको देखकर बहुतसे मार्जार कवि हो जाते हैं।

"और हमारी दशा देखो– भोजन न मिलनेसे हमारा पेट घुस रहा है, हड्डियां दिख रही हैं, पूंछ गिर रही है, दांत बाहर निकल रहे हैं, और जीभ झूल आई है। निरन्तर भूखे रहनेसे हम लोग निरन्तर पुकारा करते है–"म्याऊ! म्याऊ! (मैं आउं?) खानेको नहीं मिला है।" हमारा काला चमड़ा देखकर घृणा मत करो। इस पृथ्वीके दूधदही वा अन्नपर हमारा भी कुछ अधिकार है। हमको खानेके लिये दो, नहीं तो चोरी करेंगे। हमारा काला चमड़ा, सूखा मुंह, क्षीण और करुणा पूर्ण 'म्याऊ! म्याऊ!' शब्द सुनकर क्या तुम्हें दुख नहीं होता है? चोरीका दंड है, पर क्या निर्दयता का कोई दंड नहीं है? जब दरिद्रके लिये आहार संग्रह-करनेके अपराधमें दंड दिया जाता है, तब धनीको उसकी कंजूसीके अपराधमें दंड देनेकी व्यवस्था क्यों नहीं की जाती है? कमला-कान्त, तुम दूरदर्शी हो, क्योंकि तुम अफीम खाते हो! क्या तुम भी यह नहीं समझते हो कि, धनियोंके दोषसे ही दरिद्री चोर होते हैं! पांच सौ दरिद्रोंको वंचित करके एक धनीको क्या अधिकार है कि, वह पांच सौका आहार्य संग्रह करे? यदि करता है, तो वह आप खाकर जो शेष रहता है, उसे दरिद्रोंको क्यों नहीं बांट देता है? यदि वह नहीं बांटेगा–नहीं देगा, तो दरिद्र उसके पाससे अवश्य चोरी करेंगे! क्योंकि भूखों मरनेके लिये इस पृथ्वीपर कोई नहीं आया है!"

मार्जारीके कटाक्षोंको मैं और अधिक नहीं सह सका। मैंने कहा–ठहरो! ठहरो! मार्जर पंडिते, तुम्हारी बातें बड़ी भारी सोशिया-

लिष्टिक् हैं ! समाज विश्रृंखलाकी जड़ है ! जिसमें जितना सामर्थ्य है, उसके अनुसार यदि वह धनसंचय नहीं कर पायगा, अथवा संचय करके चोरोंके उपद्रवसे निर्विघ्नता पूर्वक उसे भोग नहीं सकेगा, तो फिर कोई धनसंचय करनेका यत्न नहीं करेगा। और इससे फिर समाजकी धनवृद्धि नहीं हो सकेगी।

मार्जारीने कहा—"नहीं होगी, तो न सही, उसमे हमारा क्या? समाजकी धनवृद्धिका अर्थ है, धनियोंकी धनवृद्धि। सो यदि धनियोंके धनवृद्धि नहीं होगी, तो उसमे गरीबोंकी क्या हानि होगी"

मैंने समझाकर कहा—"सामाजिक धनवृद्धिके विना समाजकी उन्नति नहीं हो सकती है।" मार्जारीने क्रोधित होकर कहा—"हमको यदि खानेको नहीं मिला, तो समाजकी उन्नतिको लेकर हम क्या करेंगे?"

बिल्लीको समझाना कठिन हो गया। विचारक वा नैयायिकको कोई कभी समझा ही नहीं सकता है। बिल्ली सुविचारका है और अच्छी नैयायिका भी मालूम होती है, इसमे उसको मेरी बात न समझनेका अधिकार है; इस ख्यालमे उसपर क्रोध न करके मैने कहा—"समाजकी उन्नतिसे दरिद्रोंका कुछ प्रयोजन हो चाहे मत हो, परन्तु इससे धनियोंकी आवश्यकता कम नहीं हो सकती। अतएव चोरोंपर दंड होना ही चाहिये।"

मार्जारीमहाशयाने कहा—"चोरको फांसी दो, इसमें हमारी ओरसे कोई आपत्ति नहीं है, परन्तु इसके साथ ही एक और नियम बनाओ। जो विचारक वा न्यायाधीश चोरको सजा देवें, उसे सजा देनेके पहिले तीन उपवास करना चाहिये। इन तीन लंघनोंमें भी यदि उसकी चोरी करके खानेकी इच्छा न हो, तो

खुशीसे वह चोरको फांसीपर लटकवा देवें। तुमने हमारे मारनेके लिये लाठी उठाई थी। तुम आजसे तीन लंघनें करके देखो। इस बीचमें यदि तुम नशी बाबूके रसोई घरमें न पकड़े जाओ, तो फिर तुम प्रसन्नतासे हमको लकड़ी मारना।"

पंडितोंका सिद्धान्त है कि, यदि कभी वाद विवादमें परास्त होना पड़े तो उस समय गंभीर भाव धारण करके कुछ उपदेश करने लगना चाहिये। तदनुसार मैंने मार्जारीसे कहा—"ये सब बातें नीतिसे सर्वथा विरुद्ध है। इनकी चर्चा और आन्दोलन करनेमें भी पाप है। तुम इन सब कुविचारोंको छोड़कर धर्माचरणमें चित्त लगाओ। तुम यदि चाहो, तो तुम्हारे स्वाध्यायके लिये हम **न्यूमान** और **पार्करके** ग्रन्थ दे सकते हैं। इस समय अपने स्थानको गमन करो। प्रसन्नो ग्वालिनीने कल खोवा देनेको कहा है। कलेबाके समय आ जाना हम तुम दोनों बांटकर खावेंगे। आज और किसी की हंडी नहीं चाटना। किन्तु यदि भूलसे बहुत ही व्याकुलता हो जाय, तो फिर दूसरी बार आना, एक सरसों भर अफीम दे दूंगा।

मार्जारीने कहा—"अफीमकी मुझे आवश्यकता नहीं है। रही किसीकी हंडीपर हाथ मारनेकी बात, सो इसका विचार भूखके अनुसार किया जायगा।"

मार्जारी चली गई। कमलाकान्तको इस ख्यालसे बड़ी भारी प्रसन्नता हुई कि, मैं आज एक पतित आत्माको अज्ञानांधकारसे प्रकाशमें ले आया।

---

* बंगला 'कमलाकान्तेर दफ्तर'के एक लेखका अनुवाद।

सम्पादकीय विचार।

१ नवीन शक्तिका दर्शन।

गत ता० ५ अप्रैलसे ९ अप्रैल तक **श्रीजैनतत्त्वप्रकाशिनी सभाका** वार्षिक जल्सा हो गया। अब की बार हमको भी उक्त सभाके अधिवेशनमें सम्मिलित होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। सभाके कार्यसे हमको बड़ी भारी प्रसन्नता हुई। हमने वहां पर एक ऐसी नवीन शक्तिके दर्शन किये, जिसकी प्रत्येक समाजके तथा धर्मके उत्थानके समय आवश्यकता होती है और जिसके विना कोई भी समाज ऊपर उठनेका प्रयत्न नहीं कर सकता है। सभाके सभापतिसे लेकर व्याख्याता गायक और श्रोताओं तकमें उनके जोशीले शब्दोंसे, उत्तेजक सुरोंसे और उत्साह युक्त करतल ध्वनियोंसे इस शक्तिके अस्तित्वका पता लगता था। इसमें सन्देह नहीं है कि, यह शक्ति अभी २ उत्पन्न हुई है, इसलिये यह क्या कर सकती है, इसका यथार्थ अनुमान सहसा नहीं हो सकता है। पर हमको विश्वास है कि, यदि जैनसमाजने इसका उचित आदर किया, इसके पोषणमें सहायता दी—कमसेकम इसे संकीर्ण हृदय लोगोंके उपद्रवसे बचा ली, तो थोड़े ही समयमें लोगोंको मालूम हो जायगा कि, यह वही शक्ति है, जिसके द्वारा भगवान् **महावीर** और उनके शिष्योंने सारी पृथ्वीपर जैनधर्मका डंका बजा दिया था और अपने पवित्र उपदेशोंके द्वारा किसी प्रकारका बल प्रकाश किये विना ही करोड़ों मनुष्योंको जैनधर्मका अनुयायी बना दिया था। यह वही प्रचंड शक्ति है जिसने **निकलंक** और **अकलंकभट्टके** हृदयमें विराजमान होकर बौद्ध धर्मके प्रबल प्रतापकी परवा न करके

सार्वधर्मकी विजय दुंदुभि फिर बजा दी थी और यह वही उदार शक्ति है, जिसने पीछेके अनेक आचार्य्योंके चित्तपर अधिकार करके सैकड़ों ऊंच नीच सभ्य असभ्य जातियोंको जैनधर्मकी शीतल छायामें स्थान दान दिया था। हम इस नवीन शक्तिका सादर स्वागत करते हैं और आशा करते हैं कि, हमारे पाठक भी इसकी अभ्यर्थना किये बिना न रहेंगे।

२ नवीन शक्तिका कार्य।

इस नवीन शक्तिकी प्रेरणासे तत्त्वप्रकाशिनी सभाने भारतवर्षके कल्याणके लिये- भारत ही क्यों समस्त पृथ्वीके कल्याणके लिये जैन धर्मके तत्त्वोंका सर्व साधारणमें प्रचार करनेका, जैन धर्म दुर्बल नहीं है, उसके सामने किसी भी धर्मकी युक्ति नहीं ठहर सकती है, यह स्पष्ट कर देनेका और जैन धर्म उदार है -उसमें ऊंच नीच जाति सम्बन्धी संकीर्णता नहीं है, ब्राह्मणसे लेकर चांडालतक बल्कि पशुओंतक को भी वह अपनी पवित्र दीक्षासे दीक्षित कर सकता है, यह बतलानेका बीड़ा उठाया है। और प्रसन्नताकी बात है कि, इसमें उसने आशातीत सफलता प्राप्त की है। गतवर्षमें उसके जहां जहां दौरे हुए हैं, वहांकी सर्वसाधारण प्रजाके हृदयमें जैनधर्मका खूब प्रभाव पड़ा है, उसके लेक्टरोंने भी बहुत काम किया है और पिछली वर्ष दो और इस वर्ष तीन अन्य धर्मावलम्बियोंको जैन धर्मकी दीक्षा देकर तो उपर्युक्त नवीन शक्तिके प्रादुर्भावकी उसने डोंडी पीट दी है सभाके प्लेटफार्म पर इस वर्ष जो जैनी हुए, उनमें एक ब्राह्मण पंडित, एक आर्यसमाजी अग्रवाल और एक नाई था। **जिस समय ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीने** उक्त भव्योंको दीक्षा दी, उस समय सभामें अपूर्व उत्साह और अपार आनन्द दिखलाई

देता था। तत्त्वप्रकाशिनी सभाके उक्त कार्योंसे भिन्न धर्मियोंपर जो जैन धर्मका प्रभाव पड़ता है–सो तो पड़ता ही है, साथ ही नययुवक जैनियोंमें एक विलक्षण ही भाव उत्पन्न होता है। उन्हें अपनी शक्ति पर विश्वास होता है, हमको भी कुछ धर्मसेवा करना चाहिये, ऐसा उत्साह उत्पन्न होता है और यह ज्ञान होता है कि, यह समय जैन धर्मका प्रसार करनेके लिये बड़े ही मारकेका है।

३ ऐसी और भी कई संस्थाओंकी आवश्यकता है।

जैनसमाजमें मेले, उत्सव, रथ प्रतिष्ठादि कार्य बहुत ही अधिक होते हैं। शायद ही कोई वर्ष ऐसा जाता हो, जिस वर्ष ऐसे सौ पचास सम्मिलन न होते हों। अभी तक समाजकी अज्ञानतासे इन सम्मेलनोंका जैसा उपयोग होना चाहिये. वैसा नहीं होता था— पूजा पाठ नृत्य गान आदि कार्यो तक ही इनका अन्तिम उद्देश पहुंचता था। परन्तु अब लोगोंमें धीरे २ ज्ञानका प्रकाश होने लगा है। वे तत्त्वप्रकाशिनी सभा जैसी संस्थाओंका बुलाना और उनके द्वारा सच्ची प्रभावना करनेकी आवश्यकता समझने लगे हैं। तत्त्व-प्रकाशिनी सभाके पास इस वर्ष इतने अधिक आमंत्रण आये कि, वह इच्छा रहते हुए भी समयकी कमीसे उन सबको स्वीकार न कर सकी--लाचार होकर उसे बहुतोंको निराश करना पड़ा। जब अभी प्रारंभ ही प्रारंभमें यह दशा है, तब आगे कितने आमंत्रण आवेंगे, इसका विचार पाठक ही कर सकते हैं। ऐसी दशामें यह उचित मालूम होता है कि, जुदे २ प्रान्तोंमें तत्त्व प्रकाशिनी सभाके ढंगपर काम करनेवाली और भी कई संस्थाएँ स्थापित की जावें और उनके द्वारा ऐसा प्रबन्ध किया जावे जिससे कोई भी मेला

उत्सव आदि ऐसा न हो जिसमें जैन धर्मकी सच्ची प्रभावना न की जाय और इस नई शक्तिसे कुछ काम न लिया जाय ।

---

४ परवारोंका चार सांकों सम्बन्धी प्रस्ताव ।

जैनहितैषीके गत तीसरे अंकमें हमने एक प्रस्ताव इस विषयका प्रकाशित किया था कि, परवारोंमें विवाह सम्बन्ध करते समय जो आठ सांकें (गोत्र) मिलाई जाती हैं, उनसे बड़ी भारी हानि हो रही है; इसलिये उनके स्थानमें चार सांकें मिलानेकी पद्धति जारी कर दी जाय । जिस समय हमने और हमारे मित्र **बाबू मौजीलालजी सिंगईने** इस प्रस्तावको प्रकाशित किया था, उस समय हमको आशा नहीं थी कि, परवार समाज इसकी ओर कुछ विचार करेगा । परन्तु वास्तवमें वह हमारा भ्रम था । हम यह नहीं सोच सके थे कि, शिक्षाप्रचारके साथ २ जो समाजसुधारकी लाट उठी है, उससे परवार भाई कैसे अछूते रह जावेंगे । इसके सिवाय आवश्यकतामें कार्य सम्पादन करानेकी जो विलक्षण शक्ति रहती है, उसपर भी हमने कुछ ध्यान नहीं दिया था। हमको यह लिखते बड़ी भारी प्रसन्नता होती है कि, **श्रीद्रोणागिरि** सिद्धक्षेत्रपर गत वैशाख कृष्णामें जो बुन्देलखंड प्रान्तिक सभाका वार्षिक अधिवेशन हुआ, उसमें यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया और लगभग **दश हजार भाइयोंकी सम्मतिसे खूब उत्साहके साथ पास** हो **गया** । अधिवेशनके सभापति सुप्रसिद्ध विद्वान् **पं० गणेशप्रसादजी वर्णीने** अपनी प्रभावशालिनी वक्तृतामें स्वयं इस प्रस्तावकी आवश्यकता प्रतिपादन की और श्रोताओंको समझा दिया कि, यह प्रस्ताव परवार जातिकी रक्षाके लिये बहुत आवश्यक है और इसमें

धार्मिक दृष्टिसे कोई हानि नहीं है। सारी सभामेंसे केवल दो सज्जनोंने इस प्रस्तावका विरोध किया था। जोकि नहींके समान हैं। वास्तवमें विचारा जाय, तो इस तरह प्रायः सर्व सम्मतिसे इस प्रस्तावका पास हो जाना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। क्योंकि इस समय जितने बालबच्चेवाले परवार भाई हैं, वे सब ही इन आठ सांकोंके दुःखको पीढ़ियोंसे अनुभव कर रहे हैं और कोई २ तो बहुत ही ऊब गये हैं। इस दुःखसे मुक्त होनेके लिये वे बहुत वर्षोंसे तड़फड़ा रहे थे। पर बेचारे यह नहीं सोच सकते थे कि, इसका भी कोई मार्ग है या नहीं? कुछ कल्पित पापके खयालसे भी इस विषयकी चर्चा नहीं छेड़ते थे। परन्तु ज्यों ही उन्होंने एक विद्वान्के मुंहसे सुना कि, इससे मुक्त होनेका भी मार्ग है और उसमें कुछ पाप नहीं है, त्यों ही चिरकालका रुका हुआ पूर बढ़ आया और एक साथ दश हजार कंठोंमेंसे निकल पड़ा—" यह प्रस्ताव हमको स्वीकार है।"

---

५ शिक्षित परवारोंका कर्तव्य।

प्रस्ताव तो पास हो गया। अब उसको कार्यमें परिणत करना शिक्षित भाइयोंके हाथमें है। उन्हें चाहिये कि, अब वे गांव २ की पंचायतीमें इसकी चर्चा करें और सौ पचास ब्याह इस प्रस्तावके अनुसार करके दिखलावें। क्योंकि जब तक दश बीस ब्याह इस प्रकारके न हो जावेंगे, तब तक सर्वसाधारण लोग इस प्रथाको स्वीकार न करेंगे और ऐसी दशामें प्रस्तावका पास होना न होना बराबर ही होगा। हमने सुना है कि, पन्ना रियासतकी ओरके अठसखे परवार भाई चार छह वर्ष पहिलेसे चार सांकें मिलाकर विवाह करने लगे हैं और उनका सम्बन्ध जबलपुरकी ओरके अठसखे परवारोंसे बरा-

बर होता है। इसके सिवाय झांसी जिलेमें कई ब्याह छह सांके मिलाकर किये गये हैं और वहांके बहुतसे भाई चार सांकें भी स्वीकार करनेके लिये तयार हैं। इन सब बातोंपर विचार करके शिक्षित परवार भाई देखेंगे कि, इस विषयमें भयका कोई कारण नहीं है। जातिका बहुत बड़ा भाग इस प्रस्तावको स्वीकार करनेके लिये प्रस्तुत है। केवल अगुआ बनकर थोड़ासा प्रयत्न मात्र करनेकी आवश्यकता है।

---

६ महासभाकी दो प्रबन्धकारिणी कमेटी।

महासभाकी प्रबन्धकारिणी कमेटीकी एक नहीं दो—और एक स्थानमें नहीं दो स्थानोंमें—बैठकें हो गईं। कोरम भी दोनोंका पूरा हो गया। एक बैठक इटावामें ता० ७ अप्रैलको हुई और दूसरी ९ अप्रैलको फीरोजाबादमें हुई। पहिली कमेटीको दूसरीने नाजायज ठहराया बल्कि इस विषयका उसने एक प्रस्ताव भी कर डाला। प्रस्तावमें कहा गया कि, वह नियमानुकूल नहीं हुई है, उसका कोरम पूरा नहीं हुआ था। दूसरी कमेटीवाले अपना कोरम पूरा और नियमानुकूल बतलाते हैं। अब देखना यह है कि, वे फीरोजाबादकी कमेटीको किस तरह नाजायज ठहराते हैं। हमारी समझमें उन्हें फीरोजाबादकी सभाको नाजायज ठहरानेका कोई हक नहीं है, क्योंकि उनकी कमेटीमें कोई एक भी सेठ नहीं था—विरुद्ध इसके फीरोजाबादकी कमेटीमें चार पांच सेठ स्वयं उपस्थित थे और छह सात सेठोंकी तथा 'प्रायः सेठों'की प्राक्सी आ गई थीं।

फीरोजाबादकी कमेटीमें मान्यवर मुंशी चम्पतरायजीने एक प्रस्ताव यह पेश किया था कि, प्रबन्धकारिणीके सभासदोंकी फीस

२९) रक्खी जाय। यदि यह प्रस्ताव पास हो जाता, तो बहुत अच्छा होता। महासभा सेठों वा धनिकोंके लिये ही रिजर्व हो जाती। पढ़े लिखे वा निर्धन लोग जो इसमें धींगाधींगी किया करते हैं, उससे सदाके लिये छुट्टी मिल जाती। दुःखकी बात है कि, यह प्रस्ताव पास नहीं हो पाया। हम सिफारिश करते हैं कि, आगामी अधिवेशनमें इस पर फिर गौर किया जाय।

एक प्रस्ताव यह पास हुआ कि, जैनगजट रायबहादुर सेठ मेवारामजी की निगरानीमें कमसेकम दो सालके लिये खुर्जा भेजा जावे और उन्हें अपनी रायसे किसी वैतनिक सम्पादकको नियत करनेका अधिकार दिया जाय। हमारी समझमें इसमें इतना और निवेश कर दिया जाता, तो अच्छा होता कि, जैन रत्नमालाके सम्पादक पं० जवाहरलालजी शास्त्री ही जैनगजटके सम्पादक बना-दिये जावें और जैन रत्नमाला तथा जैनगजट दोनों मिला दिये जावें—जैनगजटके गलेमें ही रत्नमाला डाल दी जाय। रत्नमाला अपना काम कर चुकी अब उसकी पृथक् रहनेकी आवश्यकता नहीं। उसका काम अब जैनगजट भी अच्छी तरहसे कर सकेगा।

श्रीश्रुतपञ्चमी पर्व।

जेठ सुदी ५ बहुत ही समीप है। हम प्रतिवर्ष अपने पाठकोंको इस पूज्य पर्वका स्मरण करा दिया करते हैं और इस बातका आ-ग्रह करते हैं कि, यह पर्व प्रत्येक नगर और ग्राममें मनाये जानेका प्रयत्न करना चाहिये। यद्यपि गत कई वर्षोंके आन्दोलनसे अनेक स्थानोंमें यह पर्व मनाया जाने लगा है, परन्तु अभी तक यह ऐसा पर्व नहीं बन सका है जैसे कि, हमारे दूसरे पर्व सर्वत्र माने जाते

हैं और प्रत्येक जैनीको उनका ज्ञान रहता है। इसके लिये समाजके शिक्षितोंको शक्तिभर उद्योग करना चाहिये और इस पर्वका महत्त्व प्रत्येक जैनीको समझा देना चाहिये। यह पर्व कोई साधारण पर्व नहीं है। यह हमारे पूर्व पुरुषोंकी अपार विद्याका, असाधारण पांडित्यका और संसारी जीवोंपर उनके निःसीम करुणाभावका पवित्र स्मारक है। इसमें अब भी वह शक्ति मौजूद है कि, यदि हम उसे उपयोगमें लावें, तो हम न केवल अपने समाजमें से ही अज्ञान अंधकारको निकाल कर बाहिर कर दें; किन्तु सारे संसारमें सर्वज्ञके ज्ञानका प्रकाश कर दें। जिस समाजमें ज्ञानकी उपासनाके और ज्ञानको महत्त्व देनेके ऐसे २ पर्व मौजूद हैं, उस समाजमें अज्ञान अंधकार टिक ही नहीं सकता है—प्रयत्न भर होना चाहिये और लोगोंको मालूम हो जाना चाहिये कि, इस पर्वका अभिप्राय क्या है। जिस समय हम इस ज्ञानपर्वका सच्चा उत्सव मनाने लगेंगे-इस पर्वमें हमारा आदरभाव स्थापित हो जायगा, उस समय प्रति-वर्ष हम सुनेंगे कि, अब की जेठ सुदी पंचमीको अमुक २ स्थानोंमें पुस्तकालय स्थापित हुए, अमुक मन्दिरोंमें वाचनालय खोले गये अमुक नगरोंमें श्रुतका विस्तार करनेवाले विद्यालयोंकी नीव डाली गई और अमुक २ धर्मात्माओंने जनसमाजका अज्ञान दूर करनेके लिये ग्रन्थोंके प्रकाश करने और बहुलतासे प्रचार करने वा दान करनेके लिये अपनी २ पूंजीका इतना २ अंश देना स्वीकार किया। जिनेन्द्र देव हमारे भाइयोंको सुमति देवें, जिससे हम शीघ्र ही उक्त सौभाग्य दिवसको देखकर धन्य होवें।

निर्बलोंपर प्रबलोंका अत्याचार।*

(लेखक-श्रीयुक्त बाबू मैथिलीशरण गुप्त।)

(१)

हम बली, तुम निर्बल, देखना !
बस हमें निज नाशक लेखना !!
जब विनोद हमें करना हुआ—
समझ लो कि तुम्हें मरना हुआ !!!

(२)

सबल हो तुम, सो हम जानते,
अबलता अपनी हम मानते।
पर नहीं यह न्याय विचार लो,
अबल देख हमें तुम मार लो॥

(३)

तव नृशंसपना खलता नहीं,
निज दशापर जी जलता नहीं।
पर हताहत देख हमें पड़े—
अहह! क्या तुम हो हँसते खड़े॥

(४)

कर हमें पदमर्दित सर्वदा—
तुम मदान्ध हुए फिरते यदा।
फिर हमें न महीपर ठौर क्या?
बस तवार्थ बनी यह, और क्या?

---

* जैन शासनके दिवालीके अंकपरसे उद्धृत।

(५)

तनिक कंकड़ भी पदमें गड़ा—
कि तुमको फिर चैन नहीं पड़ा।
तदपि हो तुम हिंसकता-भरे,
तब सजीव तुम्हीं ठहरे अरे!

(६)

अति असंख्यक प्राणि-विघात हो,
रुधिरमग्न मही दिनरात हो।
न तुमको इसका कुछ ध्यान है,
अहह! स्वार्थ बड़ा बलवान है॥

(७)

समझकी बस है यह भिन्नता,
अबल जान हमें तुम लो सता।
यदि कभी हम भी बल पायँगे—
अबल देख तुम्हें उर लायँगे॥

(८)

कर नहीं परपीड़नके लिये,
पर-हितार्थ तुम्हें प्रभुने दिये।
तुम न जो परपालक हो अहो!
मनुज! तो परपीड़क तो न हो॥

पुस्तकसमालोचन।

पार्वती परिणय नाटक—अनुवादक, आरा–पथारग्रामनिवासी पं० रामदहीन शर्मा काव्यतर्थि। वाणभट्ट कविके पार्वती परिणय नाटकमें पार्वतीके साथ महादेवके ब्याह होनेका वर्णन है। धार्मिक दृष्टिसे वह चाहे जैसा हो, परन्तु काव्यदृष्टिसे उसकी गणना अच्छे नाटकोंमें होती है। उक्त संस्कृत नाटकका यह गद्यपद्यमय हिन्दी अनुवाद है। इस गद्यकी भाषा तो अच्छी है–समझमें आती है, परन्तु पद्यकी भाषा हमें अच्छी नहीं मालूम हुई। एक तो उसका भाव कठिनाईसे समझमें आता है, दूसरे उसमें अशुद्धियां भी बहुत हैं। अनुवादक संस्कृतके अच्छे विद्वान हैं, तो भी जिस भाषामें उन्होंने पद्य लिखा है, उसके व्याकरण का उन्हें यथेष्ट बोध नहीं जान पड़ता है। १९ वें पद्यमें लिखा है–" प्रथमगिरी शिवशिरपै पीछे, तोहि शिखर समुदाई। फिर जो तोहि शिखरसे गिरिकै, मृत्युलोकमें आयी (१)॥" इसमें जो तोहि शब्द दो स्थानोंमें आया है, उसे लेखकने ' तेरे ' या ' तुम्हारे ' अर्थमें लिखा है, परन्तु भाषामें इसका अर्थ ' तुझे ' होता है। ५८ वें पद्यके " पावत जाहि न भेद।" इस चरणमें ' जाहि ' शब्द ' जिसके ' के अर्थमें लाया गया है। परन्तु वास्तवमें ' जाहि ' का अर्थ ' जिसे ' होता है। ' जिसके ' के बदले ' जासु ' लिखा जाता तो ठीक होता। ८९ वें पद्यमें ' माला ' और ८८ वें पद्यमें ' करधनी ' शब्द पुल्लिंग माना गया है। इसी तरह और भी बहुतसी भूलें हैं। यदि इसका पद्य खड़ी बोलीमें लिखा जाता तो शायद इतनी भूलें नहीं होतीं और लोग कविके अभिप्रायको भी ठीक २ समझ लेते। बहुतसे पद्य

अच्छे और भावपूर्ण हैं। ग्रन्थके प्रारंभमें यदि छोटी मोटी भूमिका होती, तो मूलग्रन्थ कर्त्ताका कुछ परिचय मिल जाता और यह भी मालूम होजाता कि, अनुवाद मूलका भाव लेकर किया गया है, या शब्दशः किया गया है। यह बड़ी कमी है।

धर्मतत्त्व—बंगलाके सुप्रसिद्ध लेखक स्व० बाबू बंकिमचन्द्रके लिखे हुए 'अनुशीलन' नामक ग्रन्थका यह हिन्दी अनुवाद है। बाबू महावीरप्रसादजीने अनुवाद किया है। बंकिमबाबू श्रीकृष्ण-जीके परम भक्त थे। परन्तु भक्त होकर भी वे उन्हें ईश्वर नहीं मानते थे। उनका विश्वास था कि, संसारमें अब तक जितने पुरुष-रत्न हुए हैं. श्रीकृष्ण उन सबमें शिरोमणि थे। उनका चरित्र हिन्दुओंका आदर्श और उनका उपदेश हिन्दुओंका धर्म है। जिस समय बंगालके नव युवकोंमें पश्चिमी शिक्षाके विस्तारसे नास्तिकता व ईसाईपनका जोर बढ़ रहा था, उस समय बंकिम बाबूने अपने उक्त विश्वासके अनुसार 'अनुशीलन' की रचना की थी और अपनी प्रतिभाशाली लेखनीके द्वारा अपने इस नये ढंगसे संस्कृत किये हुए हिन्दू धर्ममें आस्था उत्पन्न की थी। गुरु और शिष्यके प्रश्नोत्तर रूपसे यह ग्रन्थ लिखा गया है। दुःख क्या है, सुख क्या है, मनुष्यत्त्व क्या है, आदि बातोंको इसमें बड़ी उत्तमतासे समझाया है। सुखका उपाय धर्म बतलाया है और धर्मका लक्षण शारीरिक और मानसिक शक्तियोंका अनुशीलन (शक्तिका विकाश) किया है। सुखके परमोत्कर्षको मोक्ष कहा है। परलोक हो या न हो, पर अनुशीलन सुखका कारण अवश्य है। अनुशीलनसे इस लोकमें सुख मिलेगा और यदि परलोक है तो वहां भी सुख मिलेगा। यह बात दूसरी है कि, इस ग्रन्थके

मतसे सब लोग सहमत न होंगें, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि, प्रत्येक विद्वानके पढ़ने योग्य इसका विषय है। वर्तमानमें धर्म ग्रन्थोंकी रचना इस ढंगसे होनी चाहिये। अनुवाद अच्छा हुआ है। परन्तु भाषा कुछ और भी सरल की जाती तो अच्छा होता। बंगलाकी झलक उसमें साफ दिखलाई देती है। लेखक महाशय ने यह अनुवाद करके हिन्दीका बड़ा भारी उपकार किया है, इसलिये हमें उनके कृतज्ञ होना चाहिये।

उक्त दोनों पुस्तकें " भारतमित्र प्रेस-नं० ९७ मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट कलकत्ता " से मिल सकती हैं। मूल्य पुस्तकोंपर लिखा नहीं।

भारतकी वर्तमान दशा—बम्बईके बैरिष्टर मि० के. ई. घमटकी 'दी प्रेजेण्ट स्टेट आफ इंडिया' का पं० जगन्नाथ प्रसादजी चतुर्वेदी कृत हिन्दी अनुवाद। प्रकाशक, हिन्दी ट्रैन्सलेटिंग कम्पनी बड़ाबाजार, कलकत्ता। मूल्य पुस्तकपर लिखा नहीं। भारतमें कुछ वर्ष पहिले जो उग्र असंतोष फैला था, उसके इसमें देशी अखबारोंका निरादर, देशियोंके साथ अशिष्टता, विचारालयोंमें वर्णभेद, हाईकोर्टोंका अंग भंग, बड़ी २ नौकरियोंसे वंचित रखना, उच्चाभिलाषाओंकी उपेक्षा, शिक्षासे विराग, किसानोंका दारिद्र, पार्लीमेंटकी बेपरवाई, और लार्ड कर्जनका शासन ये दश कारण बतला कर प्रत्येक कारणका बहुत बारीकीसे विवेचन किया है। यद्यपि इस पुस्तकको छपे हुए छह सात वर्ष हो गये और इसके लेख भारतमित्रमें भी एक एक करके प्रकाशित हो चुके हैं, तो भी इसके लेखोंका महत्त्व नहीं घटा है। हिन्दीके पाठक अब भी इससे बहुत ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

प्राकृत मार्गोपदेशिका—पं० बेहेचरदास जीवराज द्वारा रचित और श्रीयशोविजय जैन पाठशाला—बनारस द्वारा प्रकाशित। पृष्ठ संख्या

लगभग १८० (डिमाई अष्टपेजी)। मूल्य बारह आना। काशीकी यशोविजय पाठशाला ग्रन्थप्रकाशन कार्यमें बड़ा उद्योग कर रही है। थोड़े ही दिनोंमें इसने बीसों ग्रन्थरत्न प्रकाशित करके जैन साहित्यकी अभूत पूर्व सेवा की है। यह पुस्तक भी उक्त पाठशालाके उद्योग का फल है। प्राकृत भाषा जैनियोंके धर्मसाहित्यकी प्रधान भाषा है। विना इसके जाने जैन धर्मके प्राचीन ग्रन्थोंका मर्म नहीं समझा जा सकता है। यद्यपि–संस्कृतकी अपेक्षा यह भाषा बहुत सरल है परन्तु वर्तमानमें पठन पाठनकी परम्परा नष्ट होजानेसे और योग्य साधन न मिलनेसे यह संस्कृतसे भी बहुत कठिन मालूम होने लगी है। विना संस्कृत का अच्छा ज्ञान सम्पादन किये तो इसका जानना एक प्रकार से असंभवसा हो गया है। इस भाषाके जो व्याकरण हैं, वे भी इस समय प्राय संस्कृतमें ही मिलते हैं। इन सब बातोंका विचार करके गुजराती भाषा जानने वालोंके उपकारके लिये इस पुस्तककी रचना हुई है। ग्रन्थकर्त्ता भूमिकामें कहते हैं कि, केवल गुजराती जाननेवाले भी इसके द्वारा प्राकृतके ज्ञाता हो सकते हैं। डा० भाण्डारकरकी बनाई हुई संस्कृतमार्गोपदेशिकाको आदर्श मानकर उसीके ढँगपर यह रची गई है। इसमें सन्देह नहीं कि, विद्यार्थियोंको इससे बहुत लाभ पहुँचेगा। सामान्यतः पुस्तक अच्छी बनी है और परिश्रम भी अच्छा किया गया है। गुजराती जाननेवालोंको इससे जरूर लाभ उठाना चाहिये। इसमें हमको दो एक त्रुटियां मालूम पड़ती हैं। एक तो यह कि, इसमें वर्तमानकालकी क्रियाओंके जो रूप और वाक्य दिये हैं, वे तो बहुत ही ज्यादा हैं, परन्तु भूत और भविष्यत्कालके वाक्य बहुत ही थोड़े हैं। इससे विद्यार्थियोंको भूत भविष्यत् कालका ज्ञान वर्तमानकालकी अपेक्षा बहुत

ही कम होगा। दूसरे समासका प्रकरण बहुत ही संक्षिप्त लिखा है–और तीसरे कारकका स्वरूप नहीं बतलाया गया, जिसके विना कि वाक्योंकी शुद्ध रचना नहीं हो सकती है। यदि इसके प्रारंभमें प्राकृत भाषाकी उत्पतिका इतिहास उसके भेद, उसका प्राचीन साहित्य, उसकी वर्तमान अवस्था आदि बातोंका परिचय करानेका प्रयत्न किया जाता तो बहुत अच्छा होता।

विविध विषय।

जैन सिद्धान्त भास्कर–आराके जैन सिद्धान्त भवनकी ओरसे उक्त नामका त्रैमासिक पत्र शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाला है। उसमें शिलालेखोंकी नकल, जैन इतिहास, आचार्योंके जीवन चरित, तथा प्राचीन शास्त्रोंके प्रशास्ति लेख आदि विषय प्रकाशित हुआ करेंगे। जैनियोंमें अपने ढंगका यह अपूर्व पत्र होगा। इससे जैन साहित्यकी बहुत उन्नति होगी। और हमें अपनी लुप्तप्राय इतिहास संग्रह करनेके लिये बहुत सहायता मिलेगी। वार्षिक मूल्य तीन रुपया रक्खा गया है। प्रत्येक शिक्षित जैनीको इसके ग्राहक बनना चाहिये। यदि ‘ जैन पुरा तत्त्वसंग्रह ’ अथवा ‘ जैन पुरावृत्त ’ सरीखा कोई नाम पत्रके लिये चुना जाता तो अच्छा होता। ‘ जैनसिद्धान्त भास्कर ’ नामसे यह बोध नहीं होता है कि, यह कोई ऐतिहासिक पत्र होगा।

सात महीनेकी कन्या और पच्चीसवर्षका वर–दक्षिणमें वोरगांव नामक स्थानमें एक २५ वर्षके जैनने सात महीनेकी लड़कीके साथ विवाह किया। और विवाहके कुछ समय पीछे एक विधवाके साथ पुनर्विवाह कर डाला! दक्षिणकी कुछ जैन जातियोंमें पुन-

विवाह प्रचलित है। परन्तु अविवाहित पुरुषको विधवाके साथ सम्बन्ध करनेका अधिकार प्राप्त नहीं है। इसी कारण उक्त पुरुषने किसी तरह सात महीनेकी लड़कीके साथ ही व्याह करके विवाहितोंमें गणना करा ली और लगे हाथ विधवासे सम्बन्ध करके अपनी इच्छा पूर्ण करली।

आर्यसमाजीसे जैनी—पसरूर (स्यालकोट) के पं० दुर्गादत्त नामक आर्यसमाजी उपदेशक जैनधर्मके ग्रन्थोंका अवलोकन करके जैनी हो गये हैं। आपने प्रकाशित किया है कि, यदि आत्माको सच्ची शान्ति मिल सकती है, तो केवल एक जैनधर्म ही के द्वारा मिल सकती है।

गुरुकुल कांगड़ीका—दशम वार्षिकोत्सव इस वर्ष बड़े उत्साह और ठाटबाटसे हुआ। लगभग १९ हजार दर्शक उपस्थित हुए थे। बड़े २ नामी विद्वानोंके गवेषणापूर्ण व्याख्यान हुए। लगभग ६२ हजार रुपयोंका चन्दा हुआ। आर्य समाजका यह गुरुकुल बड़ा काम कर रहा है। इसकी शिक्षाप्रणाली भारतकी आदर्श प्रणाली बनती जा रही है। आर्य समाजी भाई काम करना जानते हैं।

आवश्यक सूचनायें।

(१) जैनधर्म्म आत्माका निज स्वभाव है और एकमात्र उसीके द्वारा सुख सम्पादन किया जा सकता है।

(२) सुख मोक्षमें ही है जिसको कि प्राप्त करके यह अनादि कर्म मलसे संसार चतुर्गतिमें परिभ्रमण करनेवाला अशुद्ध और दुखी आत्मा निज परमात्म स्वरूपको प्राप्त कर सदैव आनन्दमें मग्न रहा करता है।

(३) स्मरण रक्खो कि मोक्ष मांगने और किसीके देनेसे नहीं मिलती। उसकी प्राप्ति हमारी पूर्ण वीतरागता और पुरुषार्थसे कर्म-मल और उनके कारण नष्ट कर लेने पर ही अवलम्बित है।

(४) स्याद्वाद सत्यताका स्वरूप है और वही वस्तुके अनन्त धर्म्मोंका यथार्थ कथन कर सकता है।

(५) जैनधर्म्म ही परमात्माका उपदेश है क्योंकि वही पूर्वापर विरोध और पक्षपातरहित सब जीवोंको उनके कल्याणका उपदेश देता है और उसीके परमात्माकी सिद्धि और छाप इस संसारमें है।

(६) एकमात्र 'ही, और 'भी, ही अन्य धर्म्म और जैनधर्म्मका भेद है। यदि उन सबके भाव और उपदेशकी इयत्ताकी "ही" "भी" से बदल दी जाय तो उन्हीं सबका समुदाय जैनधर्म्म है।

(७) मत समझो कि जैनधर्म्म किसी समुदाय विशेषका ही धर्म्म है या हो सकता है। मनुष्योंकी तो कहे कौन जीवमात्र इसको स्वशक्त्यानुसार धारण कर तद्रूप निज कल्याण कर सकता है।

(८) जैनधर्म्मके समस्त तत्त्व और उपदेश वस्तुस्वरूप प्राकृतिक नियम, न्यायशास्त्र, शक्यानुष्ठान और विकाश सिद्धान्तके अनुसार होनेके कारण सत्य हैं!

(९) सर्वज्ञ वीतराग और हितोपदेशक देव, निर्ग्रन्थ गुरु और अहिंसा प्ररूपक शास्त्र ही जीवको यथार्थ उपदेश दे सकते हैं, और उन सबके रखनेका सौभाग्य एकमात्र जैनधर्म्मको ही प्राप्त है।

(१०) समस्त दुःखोंसे उद्धार करनेवाली जैनेन्द्री दीक्षा ही है। यदि उसकी शक्ति न हो तो भी वैसा लक्ष्य रख अन्याय और अभक्ष्यका त्याग करके गृहस्थ मार्गद्वारा क्रमशः स्वपर कल्याण करते रहना चाहिये।

नोट—यह सूचनायें हेण्डबिलके रूपमें हजारों पृथक भी छपाई हैं जिनको चाहिये आध आनेका टिकट भेज कर मंगा लें और प्रचार करें। हिन्दीके अलावा उर्दू, इंग्लिश, गुजराती, मराठी और बंगलामें भी छपनेका प्रबन्ध हो रहा है।

चन्द्रसेन जैन वैद्य,
मंत्री—जैन तत्त्वप्रकाशिनी सभा—**इटावा.**

भट्टारक मीमांसा।

जैनहितैषीमें जो भट्टारक नामक लेख कई अंकोंमें छपा था, उसे पाठकोंने पढ़ा होगा। इस लेखको विद्वानोंने बहुत पसन्द किया और हमसे प्रेरणा की कि, इसे जुदा पुस्तकाकार छपाकर उन प्रान्तोंमें फैलाना चाहिये जहां कि भट्टारकोंकी मानता होती है। इससे वहांके लोगोंकी आंखें खुल जावेंगी और वे भट्टारकोंका असली स्वरूप समझकर उनके सुधारका प्रयत्न करने लगेंगे। इसलिये हम इसे शीघ्र ही जुदा छपाना चाहते हैं. यदि कोई धर्मात्मा मुफ्त बांटनेके लिये इसे लेना चाहें तो हम लागतके दामोंपर दे देवेंगे। आर्डर कमसे कम २५० प्रतिका लिया जायगा। पत्रव्यवहार हमसे शीघ्र करना चाहिये।

मैनेजर श्रीजैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय.
हीराबाग, पो० गिरगांव–मुंबई.

नई पुस्तकें।

धूर्ताख्यान।

छपकर तयार है ! शीघ्रता कीजिये !

धर्मपरीक्षाके ढंगका यह नवीन ग्रन्थ एक संस्कृत ग्रन्थके आधारसे हिन्दीमें लिखा गया है। इसमें पुराणोंकी पोलें एक मजेदार कथाके साथ खोली गई हैं। नामी २ धूर्तोंकी बातें सुनकर आप चकरावेगें और कहेंगे कि ये पुराण हैं या किसी मसखरेकी लिखी हुई किताबें हैं। छपाइ बहुत सुन्दर है। मूल्य सिर्फ तीन आने हैं। आप पढ़िये और अपने पौराणिक मित्रोंको सुनाईये।

धर्मरत्नोद्योत।

आरा निवासी बाबू जगमोहनदासजी कृत यह कविता ग्रंथ है। इसमें उपासना, प्रमाण, प्रमेय, भेदविज्ञान, उद्यमोपदेश, सुव्रत क्रिया द्वादशानुप्रेक्षा, समाधि भावना और आराधना इस प्रकार नौ अधिकार हैं। प्रत्येक अधिाकरमें कई कई विषयोंका वर्णन है। ग्रन्थ देखने योग्य है। सुन्दर एन्टिक पेपरपर छपा हुवा है। न्यो० १) मात्र है।

प्राणप्रिय–काव्य।

यह सुन्दर और सरस काव्य दो वर्ष पहिले जैनहितैषीमें प्रकाशित हुआ था। अब जुदा पुस्तकाकार हिन्दी अनुवाद सहित छपाया गया है। प्रत्येक सहृदयको इसे पढ़ना चाहिये। भक्तामरके चौथे चरणोंकी समस्या पूर्ति की गई है और उसमें नेमिनाथ और राजीमतीका सरस चरित्र निबद्ध किया गया है। मूल्य दो आना.

व्याख्यान।

स्याद्वाद वारिधि पं० गोपालदासजी बरैयाने द० महाराष्ट्र जैन सभाके चौदवें अधिवेशनपर बेलगाममें जो व्याख्यान दिया था, वह अलग विक्रीके लिये छपाया है। जिन भाइयोंको बांटनेके लिये चाहिये मंगा लेवें। व्याख्यान कैसा है यह पंडितजीके नामसे ही ज्ञात हो सकता है। एक साथ एक सौ प्रतियें ४) पचास २॥) में भेजी जावेंगी। शीघ्रता करें। बहुत थोड़ी कापियें रही हैं।

पुरुषार्थसिद्ध्युपाय।

श्रीअमृतचन्द्रसूरिकृत मूल श्लोक, और नाथूरामप्रेमीकृत अन्वयार्थ भावार्थ सहित। यह ग्रन्थ एक बार छपकर बिक गया था, कई वर्षोंसे यह ग्रन्थ नहीं मिलता था। इस कारण फिरसे संशोधन कराकर छपाया गया है। यह ग्रन्थ जैनतत्त्वोंका भाण्डार है। इसकी प्रशंसा लिखकर ग्रन्थका महत्त्व घटाना है। कागज छपाई साईज पूर्ववत् है। न्यो० एक रुपिया।

बालबोध जैनधर्म।

इस सेरीजमें छोटे छोटे बच्चोंको धार्मिक शिक्षण बहुत ही सरलतासे देनेका क्रम है। इसके पढ़नेसे बच्चे बहुत जलदी धार्मिक विषयोंसे जानकर हो जाते हैं। धार्मिक शिक्षणके लिये आज तक कोई भी ऐसी पुस्तक नहीं बनी है, जो इसकी जोड़की हो। मूल्य पहला भाग)॥ दूसरा भाग ~) तीसरा भाग =) चौथा भाग छप रहा है।

क्रियामंजरी।

इस पुस्तककी कई वर्षोंसे मांग थी। श्रावकोंके करने योग्य नित्य क्रियाओंकी इसमें हिंदीमें विधि लिखी है। संध्यावंदन, यज्ञोपवीतधारण, आदि सब विधियोंका तथा मंत्रोंका इसमें संग्रह है। मूल्य दो आना।

Reg. B. No. 719.

ॐ

जैनहितैषी ।

जैनियोंके साहित्य, इतिहास, समाज और
धर्मसम्बन्धी लेखोंसे विभूषित

मासिकपत्र ।

सम्पादक और प्रकाशक - श्रीनाथूराम प्रेमी ।

आठवाँ भाग ।	ज्येष्ठ श्रीवीर नि० संवत् २४३८	आठवाँ अंक

विषयसूची । पृष्ठ

पत्रव्यवहार करनेका पता—

मैनेजर—श्रीजैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगांव-बम्बई ।

Printed by G. N. Kulkarni at his Karnatak Press,
No. 7, Girgaon Back Road, Bombay, for the Proprietors.

जैनहितैषीके नियम।

१. जैनहितैषीका वार्षिक मूल्य डांकखर्च सहित १॥) पेशगी है।

२. प्रतिवर्ष अच्छे २ ग्रन्थ उपहारमें दिये जाते हैं और उनके छोटे बड़ेपनके अनुसार कुछ उपहारी खर्च अधिक भी लिया जाता है। इस सालका उपहारी खर्च ॥) है। कुल मूल्य उपहारी खर्चसहित २) है।

३. इसके ग्राहक सालके शुरूसे ही बनाये जाते है, बीचमें नहीं, बीचमें ग्राहक बननेवालोंको पिछले सब अंक शुरू सालसे मंगाना पड़ेंगे. साल दिवालीसे शुरू होती है।

४. जिस साल जो ग्रन्थ उपहारके लिये नियत होगा वही दिया जायगा। उसके बदले दूसरा कोई ग्रन्थ नहीं दिया जायगा।

५. प्राप्त अंकसे पहलेका अंक यदि न मिला हो, तो भेज दिया जायगा दो तीन महिने बाद लिखनेवालोंको पहलेके अंक दो आना मूल्यमें प्राप्त हो सकेंगे।

६. बैरंग पत्र नहीं लिये जाते। उत्तरके लिये टिकट भेजना चाहिये

७. बदलेके पत्र, समालोचनाकी पुस्तकें, लेख वगैरह "**सम्पादक जैन हितैषी, पो० मोरेना, जिला ग्वालियर**"के पतेसे भेजना चाहिये।

८. प्रबंध सम्बंधी सब बातोंका पत्रव्यवहार मैनेजर, **जैनग्रंथरत्नाकर कार्यालय, पो० गिरगांव, बम्बई**से करना चाहिये।

जैनहितैषीके ग्यारह सौ पते।

जिन महाशयोंको सूचीपत्र, विज्ञापन, समाचार पत्र, सभाप्रति इत्यादिकी प्रतियें रवाना करना हो, वे जैनहितैषीके ग्राहकोंके छपे हुए ११०० पते मंगाकर बड़ी आसानीसे रवाना कर देवें। सब ठिकाने पतपेट अर्थात् डाकखानेकी टिकटों सरीखे कट किये हुए हैं। मूल्य एक सीटका तीन रुपया।

पता—श्रीजैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय

हीराबाग पो० गिरगांव—बंबई

जैनहितैषी ।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम् ।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥

आठवां भाग   ज्येष्ठ श्रीवीर नि० सं० २४३८   आठवां अंक.

जैन लाजिक (न्याय) ।

प्रस्तावना ।

हमारे जो पाठक इतिहास और साहित्य विषयपर थोड़ीसी भी रुचि रखते हैं तथा ऐतिहासिक सभाओंकी रिपोर्टोंके देखनेका जिनको सुअवसर प्राप्त हुआ है, वे प्रेसिडेन्सी कालेज कलकत्तेके संस्कृत तथा पाली भाषाके प्रोफेसर **पंडित सतीशचन्द्र विद्याभूषण**, एम. ए., पी. एच. डी. के नामसे अवश्य परिचित होंगे । आप पाली, संस्कृत, तथा अंग्रेजी भाषाके अपूर्व विद्वान हैं । आपने बहुतसे अंग्रेजी, संस्कृत, प्राकृत, और पाली भाषाके ग्रन्थों तथा शिलालेखोंका अध्ययन करके दो वर्ष हुए २१० पृष्ठका एक ग्रन्थ लिखा है जिसका नाम 'हिस्ट्री आफ दि मिडिएवल स्कूल ऑफ इन्डियन लाजिक' (History of Mediaeval School of Indian Logic) है । इस ग्रन्थमें आपने जैन तथा बौद्ध न्याय शास्त्रोंका संक्षिप्त इतिहास दिया है और कलकत्तेके विश्वविद्यालयने

इसको प्रकाशित करके 'डाक्टर ऑफ फिलॉसफी' Degree of Doctor of Philosophy के कोर्समें रक्खा है। यद्यपि विद्याभूषण महाशयने जैनियोंके विषयमें लिखते हुए स्थान स्थानपर दिगम्बर शास्त्रोंके प्रमाण दिये हैं तथापि उनके ग्रन्थसे श्वेताम्बर सम्प्रदायकी अधिक गन्ध आती है. जिसका मुख्य कारण यह है कि, ग्रन्थकर्ता महाशयका श्वेताम्बर पंडितों व आचार्योंसे विशेष सम्बन्ध रहा है और उनके ग्रन्थोंका अंग्रेजी, जर्मनी इत्यादि भाषाओंमें अनुवाद हो जानेके कारण सुगमतासे आपको समागम हुआ है। इसके अतिरिक्त प्रकाशित होनेके पूर्व यह ग्रन्थ श्वेताम्बर विद्वानोंके पास संशोधनार्थ तथा समालोचनार्थ गया है और उन्होंने स्थान २ पर अपनी अपनी सम्मति प्रगट की है जिनका ग्रन्थकर्ता महोदयने सादर स्वागत किया है। अस्तु कुछ हो, हमको इस पुस्तकके प्रकाशित होनेका अभिमान है और हमारा समाज इस ग्रन्थकर्ताका आभारी है। चूं कि यह ग्रन्थ अंग्रेजी भाषामें है और जिस विषयका इसमें वर्णन है, उस विषयके विद्वान हमारी समाजमें प्रायः अंग्रेजीसे वञ्चित है और पुस्तकके सम्बन्धमें अंग्रेजी न जाननेके कारण कुछ भी नहीं जान सकते; अतएव हम ग्रंथके जैन लाजिक विभागका आशयानुवाद इस पत्र द्वारा पाठकोंको भेट करनेका विचार करते है और आशा करते हैं कि, हमारे पाठकगण इसको सहर्ष स्वीकार करेंगे। हम इसमें अपनी तरफसे कुछ भी न मिलायेंगे, केवल ग्रन्थकर्ताका आशय लिखेंगे, कारण इस समय इस भाषान्तरका आशय समालोचना करनेका नहीं है केवल यह दिखलाना है कि एक अन्यमती इतिहासवेत्ता विद्वानने हमारे विषयमें क्या लिखा है।

प्रथम अध्याय।

(ईस्वी सन् ६०७ वर्ष पूर्वसे ४९३ ईस्वी तक।)

जिन और महावीर।

१. जैनमतानुयायियोंका विश्वास है कि, जैनधर्म अनादि कालसे है। उनके कथनानुसार भिन्न २ समयमें संसारके इतिहासमें ऐसे महात्मा पैदा हुए हैं, जिन्होंने अपनी इच्छाओंका निरोध किया है। उनको वे जिन व तीर्थंकर कहते हैं। इन्हीं महात्माओंने जैनमतका प्रचार किया। उनका कथन है कि, हर एक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालमें ऐसे ऐसे चौवीस तीर्थंकर पैदा होते हैं। वर्तमान अवसर्पिणी कालके प्रथम तीर्थंकर **ऋषभदेव** और अन्तिम **वर्द्धमान** या **महावीर** थे। जिन्होंने ईस्वी सनसे ५२१ वर्ष पूर्व पावापुरीमें निर्वाणपद प्राप्त किया था। जिन शास्त्रोंको जैनी मानते हैं, वे महावीर स्वामीके उपदेशोंपर स्थिर हैं अर्थात् उनके उपदेशानुसार लिखे गये हैं। इस बातमें किसीको भी विवाद नहीं और प्राय करके सभी विद्वान यह मानते हैं कि महावीर जैनमतके संस्थापक थे और उनसे पूर्वके तेइसवें तीर्थंकर **पार्श्वनाथ**के सिवाय शेष तीर्थंकरोंके अस्तित्वके सिद्धान्तकी पीछेसे कल्पना की गई है।

श्वेताम्बरमतके **मेरुतुंगकी** विचारश्रेणी, **जिनप्रभसूरिके** तीर्थकल्प, विचार सार प्रकरण, तप गच्छ पट्टावली, इत्यादिके

* **पण छस्सय वस्सं पण मासजुदं गमिय वीरणिव्वुइदो सगराजो।** (त्रिलोकसार, दिगम्बर) अर्थात् महावीरने शक राजाके राज्य सिंहासनपर बैठने (७८ ईस्वी) से ६०५ वर्ष पांच मास पूर्व अर्थात् ईस्वी सनसे ५२७ वर्ष पूर्व, निर्वाण प्राप्त किया। जब कि महावीर स्वामीकी ७२ वर्षकी आयु हुई, तो ईस्वीसनसे ५९९ वर्ष पूर्व वे पैदा हुए होंगे।

अनुसार महावीर स्वामीने विक्रम सम्वत्से १७० वर्ष पूर्व अर्थात् ईस्वीसन् ५२७ वर्ष पूर्व निर्वाण प्राप्त किया था।

बौनके डाक्टर जैकोबी अपने २१ अक्टूबर सन् १९०७ ईस्वीके एक पत्रमें इस प्रकार लिखनेकी कृपा करते हैं कि, एक दूसरी दन्तकथाके अनुसार महावीर स्वामीका निर्वाण ६० वर्ष पश्चात् अर्थात् ईस्वीसन्से ४६७ वर्ष पूर्व सिद्ध होता है (देखो परिशिष्ट-पर्वकी उत्थानिका पृष्ठ ४, कल्पसूत्रकी उत्थानिका पृष्ठ ८) यह तारीख भी ज्यादा गलत नहीं हो सकती कारण कि महावीर स्वामीका बुद्धदेवसे (जिनकी मृत्यु ईस्वीसन्से ४७० और ४८० वर्षके बीचमें मानी जाती है) कुछ वर्ष पहले शरीरान्त हुआ है।

श्वेताम्बर दिगम्बर।

२. जैन लोग दो सम्प्रदायोंमें विभाजित है एक श्वेताम्बर जो श्वेत वस्त्र धारण करते हैं और दूसरे दिगम्बर जिनका दिशा ही वस्त्र है अर्थात् नग्न। श्वेताम्बर लोग अपनेको दिगम्बरियोंसे प्राचीन कहते हैं और इनके पृथक् सम्प्रदायका अस्तित्व ईस्वीसन ८२ से अर्थात् महावीर स्वामीके निर्वाणके ६०९ वर्ष पश्चात्से कहा जाता है।

(क्रमशः)

दयाचन्द्र गोयलीय बी., ए., ललितपुर.

१ श्वेताम्बर कहते हैं---**छव्वाससयाइं णवुत्तराइं तइया सिद्धिं ग यस्स वीरस्स तो बोडियाण दिट्ठी रहवीरपुरे समुप्पण्णा** ' अर्थात् दिगम्बरमतका रथ वीरपुरमें महावीर स्वामीके निर्वाणके ६०९ वर्ष पश्चात् प्रचार हुआ (आवश्यक निरुक्ति ५२)। परन्तु दिगम्बर लोग इस बातसे इकार करते है और कहते हैं कि, श्वेताम्बर विक्रम सम्वत १३६ अर्थात् ईस्वीसन ८९ में प्रगट हुए। देखो भद्रबाहु चरित्र ४. ५५.

मृते विक्रमभूपाले षट्त्रिंशदधिके शते।
गतेऽब्दानाममूल्लोके मतं श्वेताम्बराभिधम् ॥

विनोद-विवेक-लहरी।

(२)

पतंग.

बाबूके बैठकखानेमें फानूस जल रहा है। मैं पास ही तकियेके सहारे बैठा हूं। बाबूजी इधर उधरकी गप्पें हांक रहे हैं और मैं अफीमके नशेमें झूम रहा हूं। गप्पोंमें अन्य मनस्क हो जानेके कारण अफीमकी मात्रा कुछ ज्यादा हो गई है। क्या किया जाय? विधाताकी इच्छा ही ऐसी थी। इस अखिल ब्रह्मांडकी अनादि क्रिया परम्पराके दफ्तरमें उसने यह पहलेहीसे लिख रक्खा था कि, कमलाकांत चक्रवर्त्ती उन्नीसवी शताब्दिमें जन्म ग्रहण करके आज रातको नसीराम बाबूके बैठकखानेमें बैठकर अफीम चढ़ा जायगा। तब मेरी क्या शक्ति, उसे अन्यथा कर सकूं।

झूमते झूमते मैंने देखा कि, एक पतङ्ग (पतंगा) फानूसके चारों ओर घूम रहा है और "घों-ओं ओं-ओं" "घों-ओं ओं" शब्द कर रहा है। अफीमकी झोंकमें मैं सोचने लगा, पतंगकी भाषा क्या समझी नहीं जा सकती है? कुछ देर तक कान लगाकर सुना, परन्तु कुछ समझमें नहीं आया कि, यह क्या कह रहा है। तब मन ही मनमें मैंने पतंगसे कहा कि, मेरी समझमें नहीं आता है तू क्या "घों-घों" कह रहा है। उसी समय अफीम महादेवीके प्रसादसे मुझे दिव्यकर्ण प्राप्त हो गये। सुना, पतंग कह रहा है कि "मैं प्रकाशसे बातचीतकर रहा हूं, तुम चुप रहो!" मैं चुप हो रहा और पतंगका वक्तव्य सुनने लगा। पतंग कह रहा है:—

"देखो, प्रकाशमहाशय, तुम उस समय बहुत भले थे। पीतलके शमादानके फूलपर तुम्हारा आसन रहता था और हम स्वच्छन्द-

तासे पड़कर जल जाते थे। इस समय तुम परदेके भीतर छुप रहे हो—हम चारों ओर भटकते फिरते हैं—भीतर प्रवेश करनेका मार्ग नहीं पाते हैं और इसलिये जलके मर नहीं पाते।

"देखो जल मरनेका हमको चिरकालसे अधिकार मिला हुआ है। हमारी पतंग जाति हमेशासे प्रकाशमें जलकर मरती आ रही है। कभी किसी भी प्रकाशने हमारी इस इच्छाका व्याघात नहीं किया है। तेलके प्रकाशने, मोमबत्तीके प्रकाशने, लकड़ीके प्रकाशने, गरज यह कि किसी भी प्रकाशने हमको कभी नहीं रोका है, फिर हे प्रभो, आज तुम काचके कोटमें बैठकर हमें क्यों रोक रहे हो? हम गरीब पतङ्ग हैं—हमपर यह सहमरण निषेधका कानून क्यों जारी करते हो? हम क्या हिन्दुओंकी स्त्रियां हैं, जो जलके नहीं मर सकेंगी?

"देखो, हिन्दुओंकी स्त्रियोंमें और हममें बहुत बड़ा अन्तर है। हिन्दुओंकी स्त्रियां जब तक आशा भरोसा रहता है, तब तक कभी मरना नहीं चाहती हैं, पहले विधवा हो जाती हैं, तब जलनेको तयार होती हैं। परन्तु हम तो सर्वदा ही आत्मविसर्जन करनेके लिये तयार रहते हैं। फिर हमारे साथ स्त्री जातिकी तुलना कैसी?

"यह ठीक है कि, हम लोगोंके समान स्त्री जाति भी रूपकी शिखाको जलती हुई देखकर कूद पड़ती है और इसका परिणाम भी एक ही होता है। हम भी जल मरते हैं और वे भी मरती हैं। परंतु देखो उस जलनेमें उन्हें सुख है हमें तो सुख नहीं है? हम तो केवल जलनेके लिये जलते हैं और मरनेके लिये मरते हैं। क्या स्त्री जाति ऐसा कर सकती हैं? फिर हमारे साथ उसकी तुलना क्यों?

" सुनो, यदि जलते हुए रूपमें शरीरकी आहुति नहीं दी, तो फिर यह शरीर ही किस लिये है? अन्य जीव क्या सोचते हैं, यह तो हम नहीं कह सकते, परन्तु हमारी पतंग जाति यह नहीं सोच सकती है कि, हमारा यह शरीर किस लिये है? और इसको रखकर हम क्या करेंगे? प्रतिदिन फूलोंका मधुपान करते हैं? प्रतिदिन विश्व प्रफुल्लकर सूर्यकिरणोंमें विचरण करते हैं। भला, इसमें क्या सुख है? फूलोंकी वही एक ही गन्ध, मधुकी वही एक ही मिष्टता और सूर्यकी वही एक ही प्रकाशकी प्रतिमा फिर कहो, ऐसे असार, पुरातन और विचित्रता शून्य जगतमें रहकर क्या करेंगे? आओ, काचके बाहर आओ: तुम्हारी जलन्तरूप, शिखापर हम अपना शरीर निछावर कर दें।

" देखो, हमारी भिक्षा बहुत ही छोटी है। हम अपने प्राण तुम्हें देंगे तुमसे हम कुछ नहीं चाहते हैं। फिर तुम्हारी इसमें क्या हानि है? तुम रूप हो जलानेके लिये जन्मे हो: हम पतंग हैं जलनेके लिये जन्मे हैं। आओ, जिसका जो काम है, उसे कर डालें। तुम हंसते रहना: हम जल जावेंगे।

" तुम सारे संसारको जला देनेकी शक्ति रखते हो, जगतमें ऐसा कोई नहीं है जो तुम्हारी शक्तिको रोक सके-फिर तुम काचके भीतर क्यों घुसे हो? तुम जगतकी गतिके कारण हो, फिर किसके भयसे काच महलके भीतर छुपे हो? तुम तो विश्वव्यापी हो: क्या इस काचको तोड़कर हमको दर्शन नहीं दे सकते हो?

" तुम कौन हो, यह हम नहीं जानते। हम और कुछ नहीं जानते· केवल इतना ही जानते हैं कि, तुम हमारी वासनाकी वस्तु हो। जगतके ध्यान हो, निद्राके स्वप्न हो, जीवनकी आशा हो और मरणके आश्रय हो। तुम्हें कभी नहीं जान सकेंगे—जाननेकी चाह

भी नहीं है। जिस दिन जानेंगे, उस दिन हमारा सुख नष्ट हो जायगा। काम्यवस्तुका स्वरूप जान चुकनेपर उसमें सुखकी भावना कैसे रह सकती है?

"क्या तुमको हम नहीं पासकेंगे? देखें; तुम कितने दिन काचके भीतर रहते हो। क्या हम इस काचको नहीं तोड़ सकेंगे? अच्छा रहो, हम छोड़नेवाले नहीं हैं। फिर कभी देखा जावेगा; इस समय तो जाते हैं—वों–ओं–ओं--पतंग उड़ गया।

नसीराम बाबूने पुकारा—"कमलाकान्त" मैं चौंक पड़ा--मालूम हुआ कि, लुढ़ककर तकियेके नीचे आ गया हूं। नसीराम बाबूकी ओर आंखें फाड़कर देखा, तो भी उन्हें पहिचान नहीं सका। ऐसा मालूम हुआ कि, एक बृहदाकार पतंग तकियेसे झुका हुआ हुक्का पी रहा है। वे बातें करने लगे—मुझे मालूम होने लगा कि, पतंग 'वों-वों' करके कुछ बोल रहा है। इसी समयमें मुझे जान पड़ने लगा कि, संसारमें जितने मनुष्य हैं, वे सब पतंग हैं और उन सबके लिये कोई न कोई एक अग्नि है। सब ही उस अग्निमें जलकर मरना चाहते हैं और सब ही यह सोचते हैं कि, हमको इस अग्निमें जल मरनेका अधिकार है। कोई मर जाता है और कोई काचका विघ्न आ पड़नेसे बच जाता है। ज्ञानाग्नि, धनाग्नि, मानाग्नि, रूपाग्नि, धर्माग्नि, इंद्रियाग्नि आदि नाना अग्नि हैं। सारा ही संसार अग्निमय है और संसार काचमय भी है। जो प्रकाश देखकर मोहित होते हैं—मोहित होकर उसमें कूद पड़ना चाहते हैं, उनमेंसे कितने ही कूद नहीं सकते हैं, इसलिये लौटकर 'वों' करके चले जाते हैं और फिर चक्कर लगाने लगते हैं। यदि यह काचका आवरण न होता, तो संसार अब तक जल जाता। यदि

सारे ही धर्मज्ञ धर्मको अपने मानस प्रत्यक्ष कर सकते, तो कितने मनुष्य बच सकते थे? बहुतसे मनुष्य ज्ञानाग्निके आवरण-काचसे रुककर बच जाते हैं। साक्रेटीज और गेलीलिओ जल मरे। रूपाग्नि, धनाग्नि, और मानाग्निसे प्रतिदिन हजारों पतंग मरते हैं। यह हम अपनी आंखोंसे निरन्तर ही देखते हैं। इस अग्निके दाहका जिसमें वर्णन होता है, उसे पंडितोंकी भाषामें काव्य कहते हैं। महाभारतके कर्त्ताने मानाग्नि उत्पन्न करके उसमें दुर्योधन पतङ्गको जलाया और जगतमें अतुलनीय काव्य ग्रन्थकी सृष्टि की। ज्ञानाग्निके दाहका गीत Paradise Lost नामक अंग्रेजी ग्रन्थमें है। धर्माग्नि-का अद्वितीयकवि 'सेण्टपाल' गिना जाता है। भोगाग्निके पतंग "एण्टोनी क्लीयोपेट्रा," रूपवह्निके "रोमिओजुलियट" ईर्षावन्हिका "अथेलो" "गीतगोविन्द" और "विद्यासुन्दरमें" इंद्रिय-वन्हि जल रही है। स्नेहाग्निमें सीतापतङ्गके जलानेके लिये रामायण की सृष्टि हुई है। अग्नि क्या है, यह हम नहीं जानते हैं। रूप, तेज, ताप, क्रिया, गति इन सब बातोंका अर्थ हमारी समझमें नहीं आता। यहांपर दर्शन हार मानते हैं। विज्ञान हार मानता है, धर्म ग्रन्थ हार मानते हैं, और काव्यग्रन्थ हार मानते हैं। ईश्वर क्या है, धर्म क्या है, स्नेह क्या है, ये सब क्या है, हम कुछ नहीं जानते। तो भी उस अलौकिक अपरिज्ञात पदार्थके चारों ओर भटकते फिरते हैं। हम पतंग नहीं, तो और कौन हैं?

देखो भाई, पतंगगण, इस तरह भटकते फिरनेमें कुछ लाभ नहीं है। यदि अग्निमें पड़कर जल सको, तो जलमरो। नहीं तो जाओ 'बों' करके चले जाओ।

धर्मवीरोंसे पुकार ।

कमर कस लो धरमवीरो, उठालो जैनका झंडा ।
जगत उद्धार करनेको, बजा दो धर्मका डंका ॥ टेक ॥ १ ॥
नहीं है [1]तर्का मौरूसी, किसीका जैनमत प्यारो ।
सुनाकर सबको जिनवानी, मिटा दो उनकी सब शंका ॥ २ ॥
जगत मिथ्यात-सागरमें, ये देखो! खा रहा गोते ।
करो उद्धार अब जल्दी, लगा सम्यक्तकी नय्या ॥ ३ ॥
जगतमें पाप है फैला, हुआ परचार हिंसाका ।
दयाधर्मी ! दयाकर खोल दो मारग अहिंसाका ॥ ४ ॥
* हटा दो अब स्वार्थको जीमें, बनो समुदारचित भविजन ।
दयाका हाथ फैलाकर, करो उपकार सब जगका ॥ ५ ॥
तुम्हारे धर्मपर मोहित, तुम्हारे तत्त्वके [2] कायल ।
तुम्हारी जो शरण आवें, करो सन्मान तुम उनका ॥ ६ ॥
'जुगल' सोओ न गफलतमें, उठो जागो कमर बांधो ।
अविद्या दूरकर सारी, करो परचार जिनमतका ॥ ७ ॥

जातिसेवक—

जुगलकिशोर मुख्तार, देवबन्द

---

१ पैतृक संपत्ति । २ परीक्षापूर्वक श्रद्धान करने (मानने) वाले ।

*इसके स्थानपर उर्दूका ऐसा भी पाठ है "करो अब तर्क खुदगर्जी, कुशादः दिल बनो साहब,"

सालभरमें एकबार तो याद कर लिया करो।

अपने नामोंको जाति हितैषिताकी पदवीसे अलंकृत करनेवालो, और पत्रान्तमें जाति सेवक इत्यादि शब्दोंका प्रयोग करनेवालो, क्या तुम सचमुच ऐसे ही हो ! क्या तुमने अपने जीवनका कभी एक दिन भी उन जाति वीरोंकी यादमें गिनाया है जिन्होंने अपने प्राणोंको जातिके उद्धारके लिये तृणकी बराबर कदर नहीं की थी ? क्या तुमने कभी उन नेताओंका जीवनचरित पढ़ा है जिन्होंने वर्षों गृह छोड़ कर केवल जातिके उपकारार्थ भयानक जंगलोंमें रहकर जीवन व्यतीत किया है। जिनकी हड्डियां कभी २ अंग्रेजों द्वारा खुदवाये हुए स्थानोंमें पाई जाती हैं। प्रथम तो हमारे प्रश्नका उत्तर आप महाशय " नहीं " ही देंगे, यदि किसीने बहुत साहस किया तो शायद डरता हुआ हां हां हां कहता रह जायगा। लज्जाका स्थान है कि, तुमने उनकी याद तक न की। जिन्होंने तुम्हारे लिये इतना कष्ट उठाया और यदि तुम धन्यवाद नहीं दे सकते थे तो कृतघ्नी क्यों बने जो कुछ तुमने ज्ञान प्राप्त किया है वह उन्हीं नेताओंकी मांस, हड्डी रुधिर इत्यादिकी बदौलत है। यदि वे लगातार परिश्रमके द्वारा दिन और रात पसीना बहाकर जाड़े और गर्मीका विचार न करते हुए ऐसे अनुपम ग्रंथोंकी रचना न कर गए होते, तो आप सभामें खड़े होकर व्याख्यान देनेका साहस न कर सकते। केवल इतना ही नहीं किन्तु आप अपने पांवोंपर खड़े हुए लड़ खड़ाते। अय कृतघ्निओ, एक दिनतो सालभरमें उनको याद कर ही लिया करो। चाहिए तो यह था कि, प्रत्येक जैनीके घरमें **निकलंक देव**के देहत्यागके दिन एक अकथनीय विलक्षणता देखनेमें आती। चाहिए तो यह था कि,

अकलंकदेवका स्वर्गवासका दिन प्रत्येक जैनीकी जिव्हापर रहता। चाहिए तो यह था कि, टोडरमलजी जैसे महान् विद्वान्‌का चित्र प्रत्येक जैनीके कमरेकी शोभा बढ़ाता। परन्तु यह तो रही बड़ी बात, आज कल सौ प्रतिदस मनुष्य कठिनतासे ऐसे मिलेंगे जो इन महान् पुरुषोंके जीवन चरित्रसे भी परिचित हों। जैन जातिके विद्वानो, अब क्यों हमारे हृदयको जलाते हो और इस अङ्कित पग चिन्होंको मिटाते हो। क्यों तुम उसी हांडीमें खाकर छेद करते हो? क्यों तुम वृक्षकी छायामें बैठकर उसीको काटते हो? अब भी सँभलो, नहीं तो ऐसे डूबोगे कि, थाह भी नहीं मिलेगा। देखो, अभी तो इन पग चिन्होंपर धूल ही पड़ी है। आओ और जल्दी से इनको चमकाओ; नहीं तो फिर यह इतने दब जांयगे कि, तुमको इनकी स्थितिका भान भी न रहेगा। यदि तुममें जरा भी अपने पूर्वजोंका अंश बाकी है, तो प्रतिज्ञा करो कि तुम अपने सार्व धर्मपर जान देनेवालोंको साल भरमें एक दिन अवश्य याद कर लिया करोगे।

दीपचंद,

विद्यार्थी- ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम, हस्तिनापुर।

सभ्यता।

हम प्रश्न किया चाहते हैं कि, सभ्यता क्या वस्तु है और किन २ पदार्थोंसे सम्बन्ध रखती है? क्या यह कोई कृत्रिम वस्तु है या प्रकृतिने ही इसे मनुष्यकी प्रकृतिमें उत्पन्न किया है? इसका अर्थ क्या है? क्या यह कोई पारिभाषिक शब्द है जिसको सर्व साधारण मनुष्योंने या सिद्धांतकारोंने स्थापितकर लिया है, या कोई ऐसी

वस्तु है कि जिन २ पदार्थोंसे उसका सम्बन्ध है वे प्रकृतिके नियमोंमें पाये जाते हैं। इस विषयके निर्धारके लिए मनुष्यके विचारों और कार्योंपर दृष्टि डालना चाहिए। यदि सभ्यता एक स्वाभाविक वस्तु है, तो ग्रामीण और शहरके मनुष्योंमें सबमें उसका पता मिलेगा। उसकी आकृतियां भले ही भिन्न २ दिखाई देती हों परंतु सबकी जड़ एक ही होगी। मनुष्यमें एक यह स्वाभाविक बात है कि, वह अपने विचारोंके अनुसार किसी वस्तुको पसंद करता है और किसीको नापसंद करता है; या दूसरे शब्दोंमें यों कहिये कि, किसीको अच्छा ठहराता है और किसीको बुरा और उसका यह जी चाहता है कि उस बुरी चीजकी दशाको ऐसी दशामें परिवर्तन करले जिसको अच्छा समझता है। यही चीज सभ्यताकी जड़ है जो मनुष्योंके प्रत्येक समूहमें और प्रत्येक व्यक्तिमें पाई जाती है। इसी परिवर्तनका नाम सभ्यता है; और यह परिवर्तनकी इच्छा मनुष्यमें स्वाभाविक है।

अतएव सभ्यताकी और मनुष्यका स्वभाव आश्रित होनेके दो नियम ठहरे--अच्छा और बुरा; और बुरेको अच्छा करना सभ्यता ठहरी। परन्तु अच्छा बुरा ठहरानेके लिये भिन्न २ स्वाभाविक, प्राकृतिक, लौकिक, और सामाजिक, कारण ऐसे होते हैं, कि, उनसे जातियोंकी सभ्यतामें अन्तर पड़ जाता है। एक जाति जिस बातको अच्छा समझती है दूसरी जाति उसी बातको बहुत बुरी और असभ्य ठहराती है। सभ्यतामें यह भिन्नता जातियोंमें होती है व्यक्तियोंमें नहीं और यदि होती है तो बहुत ही कम। जब मनुष्योंका एक समूह किसी स्थानपर एकत्रित होकर बसता है, तो प्रायः उसकी आवश्यकताएँ, उसके भोज्य पदार्थ, उसके

वस्त्र, उसका ज्ञान, उसके विचार, उसकी आनंदकी बातें, उसकी घृणित वस्तुएँ सब समान होती हैं और इसी लिए बुराई और भलाइके विचार भी सबमें समान उत्पन्न होते हैं। बुराईको भलाइमें परिवर्तन करनेकी इच्छा भी सबमें एकसी होती है और परिवर्तनकी यही समुदित इच्छा या समुदित इच्छासे वह परिवर्तन उस जाति या समूहकी सभ्यता है। परन्तु जब भिन्न २ जातियां पृथक् २ स्थानोंमें निवास करती हैं, तो उनकी आवश्यकताएं और इच्छाएँ भी भिन्न २ होती हैं और इस कारणसे सभ्यताके विचार भी भिन्न भिन्न होते हैं। किन्तु अवश्य कोई ऐसी बात होगी, जो सभ्यताकी उन भिन्न २ दशाओंका निर्धार कर सके।

सामाजिक व्यवस्थाओंका जहां तक कि वे रहनसहनसे सम्बन्ध रखती हैं न कि चिंता, विचार, और समझसे--सभ्यतासे विशेष सम्बन्ध नहीं होता किन्तु केवल मनुष्यके उस विचारका उससे सम्बन्ध है जिसके कारण वह अच्छा और बुरा ठहराता है और जिस कारणसे उसके हृदयमें परिवर्तनकी इच्छा होती है और वह परिवर्तन होता है, जो सभ्यता कहलाती है। अतएव सभ्यताकी भिन्न २ व्यवस्थाओंका निर्धार वे कारण कर सकते हैं, जिनके कारण भले बुरेका विचार दिलमें आता है।

विचारोंकी स्थिरता और पसंदका संशोधन, ज्ञानकी बहुलता और विज्ञानकी परिचयतापर निर्भर है। मनुष्यके ज्ञानकी प्रति दिवस वृद्धि होती जाती है और उसके साथ सभ्यता भी बढ़ती जाती है। क्या आश्चर्य है कि, भविष्यतमें कोई ऐसा समय आवे जब मनुष्यकी सभ्यतामें ऐसी उन्नति हो कि इस समयकी सभ्यताको भी लोग ऐसे ही ठंडे दिलसे देखें जैसे कि हम अपने पूर्वजोंकी

सभ्यताको ठंडे परन्तु विनययुक्त दिलसे देखते हैं। सभ्यता या यों कहिये कि बुरी दशासे अच्छी दशामें लाना; संसारकी और समस्त वस्तुओंसे चाहे वे जड़ हों या चैतन्य संबंध रखती हैं और समस्त मनुष्योंमें पाई जाती हैं। दुःखसे निर्वृत्ति और सुखप्राप्तिका सबको समान ख्याल है। शिल्प कलाकौशल्य और उसको उन्नति देना संसारकी समस्त जातियोंमें विद्यमान है। जहां एक शिक्षित जाति हीरे मोतियोंसे अति उत्तम और सुन्दर आभूषण बनाती है, वहां अशिक्षित जाति भी कौड़ियों और पोथों (चीन) से अपनी सुन्दरताकी सामग्री एकत्रित करती हैं। शिक्षित जातियां अपनेको सुसज्जित करनेमें सोने, चांदी और मूंगे मोतियोंको काममें लाती हैं। अशिक्षित जातियां भी पक्षियोंके सुन्दर रंग बिरंगे परोंको सुनहरी पोशत और नीलम कैसे रंगकी बारीक और शोभनीय घासमें गूंथकर अपने आपको सुशोभित करती है। शिक्षित जातियोंको अपने वस्त्राभरणके ठीक करनेका ख्याल है, अशिक्षित भी उसके ठीक करनेमें लगे हुए हैं। राजाओंके मकान अति सुन्दर और शोभायमान बनते हैं, अशिक्षित भी उसके ठीक करनेमें लगे हुए हैं। राजाओंके मकान अति सुन्दर और शोभायमान बनते हैं, अशिक्षित जातियोंके झोंपड़े और उनके रहनेके घोंपे, वृक्षोंपर बांधे हुए टाड, जमीनमें खोदी हुई गुफाएं भी सभ्यतासे खाली नहीं हैं। गृहस्थकी सामग्री, पारस्परिक सम्बन्धके नियम, मेल जोलके कार्य, हर्ष आनंदकी सभाएं, प्रेम और भक्तिके चिन्ह दोनोंमें (शिक्षितों वा अशिक्षितोंमें) पाए जाते हैं। ज्ञानसे सम्बन्ध रखनेवाले विचारोंसे भी अशिक्षित जातियां वंचित नहीं बल्कि कुछ चीजें उनमें विशेष वास्तविक और स्वाभाविक रीतिसे दृष्टिगोचर होती हैं। जैसे कविता जो एक उत्तम

कौशल्य शिक्षित जातियोंमें है अशिक्षित जातियोंमें भी असाधारण उत्तमता और सुन्दरतासे पाया जाता है। वहां केवल खयाली बातें प्रगट की जाती हैं, यहां आन्तरिक उत्साहों और हार्दिक जोशोंका प्रकाश होता है। निःसन्देह गायनविद्याने शिक्षित जातियोंमें विशेष उन्नति प्राप्त की है, परन्तु अशिक्षित जातियोंमें भी उसने अद्भुत शोभा धारण की है। शिक्षितोंमें हाव भाव और आवाजका फरत, उसका घटाव, और उसका बढ़ाव, उसका ठहराव और उसकी उपज हाथोंका भाव, और पैरोंकी धमक अधिक तर नियोजित नियमोंके आधीन है: परन्तु अशिक्षित जातियोंमें ये सब चीजें हार्दिक जोशकी तरंगें हैं। वे लय, ताल, और रागरागनीको नहीं जानते किन्तु दिलकी लहर उनकी लय और दिलकी फड़क उनका ताल है। यद्यपि उनका गोलबांधकर खड़ा होना स्वाभाविक हलन चलनके साथ उछलना, दिलकी आकस्मिक उमंगोंमे झुकना फिर जोशमें आकर सीधा हो जाना, आज कलकी नजाकत और गायनविद्याके तत्त्वोंसे खाली है, तथापि वह स्वाभाविक जोशों और उमंगोंकी अवश्य तसवीर है। दिली उमंगोंका रोकना और उनको उत्तम दशामें रखना दूसरी समस्त जातियोंके विचारोंमें है. अतएव जिस प्रकार हम सभ्यताका स्वाभाविक सम्बन्ध सर्व मनुष्योंमें पाते हैं, उसी प्रकार उसका सम्बन्ध सजीव अथवा निर्जीव सम्पूर्ण पदार्थोंमें देखते हैं। जिस वस्तुमें उन्नति अर्थात् बुराईसे भलाईकी ओर झुकने या नीचेसे ऊंची श्रेणीकी ओर जानेकी शक्ति है, उसीसे सभ्यता भी सम्बन्ध रखती है।

अतएव सभ्यता क्या है? मनुष्यकी इच्छित क्रियाओं, हार्दिक विचारों और दिली जोशोंको सम रखना, समयको प्रिय समझना,

कार्य्योंके कारणोंको ढूंढना और उनका शृंखलाबद्ध रखना, शिष्टाचार, रहनसहन, खानपान, कलाकौशल, ज्ञानविज्ञानको यथासम्भव प्राकृतिक सुन्दरता और स्वाभाविक उत्तमतापर पहुंचाना तथा उनको समीचीनतासे कार्य्य रूपमें लाना। इसका परिणाम क्या है? धार्मिक आनंद, शारीरिक सुख, सच्ची प्रतिष्ठा और आत्मगौरव। और वास्तवमें यह पिछली एक बात है जिससे मनुष्यत्व और पशुत्वमें भेद होता है।*

दयाचन्द्र जैन, बी. ए.

क्षेत्रपाल, ललितपुर।

विलक्षण धैर्य।

महाराष्ट्र प्रान्तमें वीर केसरी **शिवाजी** महाराजने जो स्वराज्यका बीज बोया था, उसमें अभी अंकुर निकल रहा था। आज आठ ही दिन हुए कि, महाराजने **चाकन**का किला अपने अधिकारमें किया था और उसके समुचित प्रबंध करनेको वे वहां थोड़े दिनोंके लिये ठहर गये थे। आज किलेकी व्यवस्था ठीक हो जानेके कारण महाराज प्रसन्नतासे महलमें सोनेके लिये गये। और एक प्रकारकी निश्चिन्तताके कारण शय्याका आश्रय लेते ही उनकी आंख लग गई।

थोड़ी ही देर नहीं हुई थी कि, महाराज अचानक जाग पड़े आंख खोलते ही उन्होंने देखा कि, सिरानेकी तरफ एक अल्पवयस्क पुरुष हाथमें बड़ासा छुरा लिये खड़ा है; और समझ लिया कि, आज मेरे प्राणोंपर आ बनी है। यद्यपि उनकी 'भवानी' नामकी

* स्वर्गीय सर सैय्यद अहमद, के. सी. एस. आई. एल. एल. डी. के 'सिवीलिजेशन' नामक लेखका अनुवाद।

प्यारी तलवार पास ही खुंटीपर टंगी थी, परन्तु पड़े २ उस तक हाथ पहुंचाना उनकी सामर्थ्यसे बाहिर था। उनके नेत्र अभी भले प्रकार खुले न थे, तो भी उनके प्रशान्त गंभीर मुखपर जो मानासिक चलविचलकी छाया पड़ी थी, उसे युवक भांप गया और उसने उनके लगाये हुए स्वराज्यरूपी पौधेपर अन्तिम घाव मारनेके लिये अपना हाथ ऊपर उठाया। महाराजमें प्रसंगावधानता बड़ी विलक्षण थी। संकटके समय रक्षा करनेके लिये जिन दाव–पेचोंकी जरूरत होती है, उनमें वे सिद्धहस्त थे। वे युवकके इस भयंकर कृत्यसे किंचित् भी भयभीत नहीं हुए। उन्होंने विद्युद्वेगसे लपककर युवककी गर्दन ऐसे जोरसे पकड़ ली कि, युवकने उसको छुड़ानेके लिये अनेक उपाय किये, परन्तु वे सब निष्फल हुए। महाराजने लेटे ही लेटे युवककी गर्दन पकड़ी थी, इस लिये इस अवस्थामें वे बहुत समय तक नहीं रह सकते थे। उन्होंने एक दो बार गर्दनको छोड़े बिना ही उठनेका प्रयत्न किया, परन्तु वह व्यर्थ ही हुआ।

युवकने अपनी गर्दन छुड़ाने और इष्टसिद्धि करनेका निश्चय करके दाहिने हाथका छुरा बांयें हाथमें लिया और महाराजपर वार करनेके लिये ज्यों ही उसे उसने ऊपर उठाया, त्यों ही किसीने पीछेसे आकर उसका वह हाथ जोरसे पकड़कर उसे पीछे खींच लिया। महाराज उठकर खड़े हो गये। उन्होंने देखा कि, उनके खूनके प्यासे युवककी छातीपर एक बलवान् पुरुष चढ़ बैठा है और वह उनका अतिशय प्यारा मित्र है। वे इस मित्रका पहलेसे ही बहुत आदर करते थे परन्तु आज उस आदरकी मात्रा सौ गुणी बढ़ाई। उनके नेत्र कृतज्ञतासे भर आये और कंठ गद्गद हो गया। उन्होंने स्नेहयुक्त स्वरसे पुकारा–"तानाजी"।

महाराजकी हांक सुनते ही नानाजीने युवकके हाथसे छुरा छीनकर उसे उनके सन्मुख खड़ा किया। उस युवकके—युवक क्यों सोलह वर्षके लड़केके—इस साहसको देखकर महाराज बहुत विस्मित हुए। परन्तु उन्होंने अपनी इस मनोगत आश्चर्यकी तरंगको मुखपर न आने दिया और अपनी तीक्ष्ण तथा भेदभरी दृष्टिसे कुमारकी ओर देखा। उसकी मुद्रा बिलकुल बेफिकर दिखाई देती थी। महाराज अत्यंत गम्भीर स्वरसे बोले—तेरा अपराध कितना भारी है, इसकी तो कल्पना तुझे होगी ही। मुझे तो अपने मरनेकी कुछ चिन्ता नहीं है, परन्तु मैंने अपने हाथमें जो महाराष्ट्र देशके उद्धारका कार्य लिया है, उसमें बाधा आजाती और मेरी इच्छा मनकी मनमें ही रह जाती।

महाराजके प्रश्नका उत्तर कुमारने भी वैसे ही गम्भीर भावसे दिया! "मुझे अपने अपराधकी पूरी २ कल्पना है। इसके बदलेमें आप मुझे चाहे जितना कठिन दंड देवें, मैं उसे भोगनेके लिये तैयार हूं। आप खुशीसे मुझे तोपके मुंह पर रख दीजिये। मरनेका मुझे जरा भी भय नहीं है।"

लड़केके इस मनोधैर्यको देखकर महाराजको बड़ा भारी आश्चर्य हुआ। वे अबकी बार कुछ कोमलस्वरसे बोले "मुझे इस बातका आश्चर्य है कि, तेरे समान भोले लड़केसे यह दुष्ट कार्य कैसे हुआ? क्या तू चाहता है कि, महाराष्ट्रदेशमें हिन्दुओंका राज्य न हो? और यह मुझे याद नहीं आता कि, मैंने कभी तुझे कुछ हानि पहुंचाई है। इसलिये मालूम होता है कि, तू किसीके कहनेसे इस दुष्ट कार्यके करनेके लिये तैयार हुआ था। यदि तू सच २ बतला देगा, तो मैं तेरा अपराध क्षमाकर दूंगा। तू अभी बालक है।"

" महाराज क्षमा कीजियेगा। आपने यह कैसे समझ लिया कि. मैं मरनेके भयसे किसीके गुप्त रहस्यको प्रगट कर दूंगा? क्या मैं इतना नीच हूं? यदि आप इसका रहस्य जानना चाहते हैं, तो इसके बदले मेरे सिवाय और सबको क्षमा प्रदान कीजिये। मुझे आप जो उचित समझें, वह दंड देवें. मैं उसे सहर्ष स्वीकार करनेको तत्पर हूं।"

" अच्छा, मैंने अन्य सबके अपराधको क्षमा कर दिया, तू अपनी सारी बातें सुना।"

" महाराज मुझे मेरे पेटने इस हत्याके कार्यमें प्रवृत्त किया है। आज दो वर्ष हुए मेरे पिता आपकी लड़ाइमें मर चुके हैं। घरमें मैं हूं और मेरी माता है। गरीबी क्या चीज है, यह आप जैसे राजा महाराजा नहीं जान सके। आज चार महीने होगये, हम दोनों आधे पेट भोजन करके रहते हैं। धनके लोभमें मैंने यह कार्य स्वीकार किया था। क्योंकि मुझसे अपनी माताका असह्य दुःख देखा नहीं जाता था। सुभानरावने आपकी हत्या करनेके बदले मुझे सौ रुपया देनेका वचन दिया था और पेटकी प्रेरणासे मैंने इस निन्दनीय कृत्यके करनेका संकल्प किया था। यही मेरी सारी कहानी है। मुझे अपने प्रयत्नमें सफलता नहीं हुई, इस लिये आपके दिये हुए दंडको मुझे भोगना ही पड़ेगा।"

महाराजका हृदय दयार्द्र हो गया। बालकके कार्यमें उन्हें एक प्रकारका कौतुक मालूम होने लगा। परन्तु भली भांति उसके धैर्यकी परीक्षा करनेके लिये वे बोले-" नानाजी! इसे अभी तोपसे उड़ा दो!"

इस आज्ञाको सुनते ही उसके आंसू भर आये। वह विनीत स्वरमें

बोला " महाराज ! मुझे अपनी माताके दर्शन करनेको दो घड़ीकी छुट्टी दीजिये। मेरे एकाएक लुप्त हो जानेसे उसे बड़ा दुःख होगा।"

" यदि तू एक बार छोड़ दिया गया, तो फिर तेरे लौटनेकी आशा करना भ्रम है। जान बूझकर कालके गालमें जानेको कौन तैयार होगा ? तू यहांसे छूटा कि, अपने छिपने योग्य किसी सुरक्षित स्थानके ढूंढ़नेमें लगेगा।"

" महाराज ! मेरे कहनेपर विश्वास कीजिये। यदि मैं नियत समयपर न लौटूं, तो आप मुझे मराठेका पुत्र न कहकर खुशीसे वर्ण-संकर कहिये। आपको यदि अपनी माताके प्रेमकी कल्पना होगी, तो मुझे आशा है कि आप मुझे अपनी जननीसे अन्तिम भेंट करनेकी आज्ञा अवश्य देंगे।"

महाराजने सिर हिलाकर जानेका इशारा किया। आज्ञा पाते ही युवकका हृदय आनन्दसे उछल पड़ा। वह बोला -" महाराज आपके इस बर्तावसे मुझे विश्वास होता है कि, आप बहुत उदार हैं। इस समय मेरा ऐसा जी होता है कि, आपके हृदयसे लग कर भेंट लूं।"

" क्या इतने ही में ? नहीं, यदि तेरी इच्छा है, तो तू लौटकर तोपके मुंहपर जानेके पूर्व मुझसे भेंट कर सकता है। जो पुरुष मृत्युसे डरता है, उसके आलिंगनको मैं अग्निके समान समझता हूं।"

इसके बाद ही युवक वहांसे अदृश्य हो गया। उसके चले जानेपर कुछ समय तक वहां निस्तब्धता रही। इस सन्नाटेको भंग करते हुए महाराज बोले- "नानाजी ! तुमने मेरे साथ न जाने कितने उपकार किये हैं। प्रत्येक विपत्तिसे छुड़ानेके लिये तुम ही तैयार रहते हो। सच पूछो, तो संसारमें जीतके बदले जीव देनेवाला तुम्हारे सदृश

दूसरा मित्र नहीं है। मैंने तुम्हारे ही भरोसे पर यह स्वराज्यरूपी महलकी भीति खड़ी की है। मुझे सन्देह है कि, मुझे सुरक्षित रखनेकी चिन्तासे, तुम्हें नींद आती है या नहीं? तुम्हारे उपकारका बदला मैं अपने इस जन्ममें शायद ही चुका सकूंगा।"

"प्रभो! आप यह क्या कहते हैं? मुझ सरीखे तुच्छ व्यक्तिको आप इस प्रकार गौरवान्वित कर रहे हैं। आपके वाक्योंको सुनकर मुझे लज्जा आती है। आपकी रक्षा करना प्रत्येक महाराष्ट्रीयका सब-से पहला कर्तव्य है। परन्तु मालूम नहीं होता कि. **सुभानराव** इस नीच कृत्यके करनेको क्यों उद्यमी हुआ? उसके इस दुष्ट कृ-त्यसे मालूम होता है कि, अभी तक महाराष्ट्र देशके बुरे दिन गये नहीं हैं।"

"तानाजी! इस देशोद्धारके कार्यमें मुझे अपनी इच्छाके विरुद्ध बहुत लोगोंको हानि पहुंचाना पड़ती है। इस किलेके फतह करनेमें जो वीर काम आये हैं, उनमें सुभानरावका भवानी नामका इक-लौता पुत्र भी था। भवानी अपनी मंडलीमें शामिल है यह जान कर मुसलमानोंका क्रोध भभक उठा और उन्होंने सुभानरावकी जमीन छीन ली। इस तरह एकके पीछे एक आपत्तिने आकर उसे (सुभान रावको) इस दुष्कृत्यके करनेके लिये लाचार किया है, और इसमें कुछ आश्चर्य भी नहीं है। मैं इस विषयमें उसे दोष भी नहीं दे सकता हूं। और इस लिये मैंने उसका अपराध क्षमा भी कर दिया है।"

"कृपानिधे! आपकी उदारता और मनकी उच्चता अलौकिक है। परन्तु मुझे इस लड़केके विषयमें पश्चाताप होता है। यदि यह

शूर वीर लड़का अपनी ओरसे कभी रणक्षेत्रमें लड़ता, तो निस्सन्देह मराठा राज्यका बृहत् स्तम्भ बनता।"

"तानाजी, क्या आप ऐसा समझते हैं कि, मैं इस बालकको तोपसे उड़वा दूंगा? मुझे उसके सम्बन्धमें जो कल्पना हुई है, यदि वहीं सत्य हुई अर्थात् यदि वह अपने वचनकी सत्यता दिखानेको यह आया तो, उसे मैं अपने पास रखके मराठोंका यश फैलाऊंगा इसमें जरा भी सन्देह नहीं है।"

तानाजीको आज महाराजके धीरोदात्त गुणकी पूर्ण पहिचान हुई। "महाराज, आप देव हैं।" ऐसा कह कर उन्होंने अपना मस्तक महाराजके चरणोंपर रख दिया। तानाजीकी इस भांति भक्ति देख महाराजने उन्हें बड़े प्रेमसे उठा कर हृदयसे लगा लिया। अब तानाजी महाराजके पास प्रसन्नतासे बैठ गये। इतनेमें ही वह बालक आकर महाराजके सन्मुख खड़ा हो गया।

उसके धैर्य प्रदर्शक मुंहको देखकर महाराज मधुर स्वरसे बोले "बालक तू इतनी जल्दी आगया? अपनी माताके पास और अधिक क्यों नहीं बैठा? यदि कुछ देर और भी हो जाती, तो कुछ हानि न थी।"

"महाराज, यदि मैं समयपर उपस्थित न होता, तो आप मुझे क्या कहते? मैंने भेंट करते समय माताको सम्पूर्ण घटना सुनानेका संकल्प किया था। परन्तु उसे देखते ही मैं अपने विचारको भूल गया। उससे यह सब सुनानेका मुझे साहस ही नहीं हुआ। मुझे देखते ही उसने मेरे मस्तकपर कितने प्रेमसे हाथ फेरा, उसे मैं कह नहीं सकता हूं। इस दारुण दुःखको उसका हृदय कभी सहन नहीं कर सकेगा, ऐसा समझ कर मैं बिना कहे वैसे ही लौट

आया। वह जब सुनेगी तब समझ लेगी। परन्तु मैं एक वीरके समान मरा हूं, आप पीछेसे इतना ही समाचार उसके पास पहुंचा देना, यही मेरी अंतिम प्रार्थना है।"

युवकके वचनोंको सुनकर महाराजका हृदय विदीर्ण होने लगा। वे अधीर हो कर बोले—"बालक, मैं तेरे समान वीरको ऐसा दंड कैसे दूं? मैं तेरा अपराध क्षमा कर चुका हूं। तू आकर एक बार मुझे भेंटकर अपनी इच्छा पूर्ण कर ले।"

इसे सुनते ही युवकने दौड़कर महाराजके पैरोंपर सिर रख दिया। महाराजने उसे उठा कर हृदयसे लगा लिया। दोनोंके नेत्रोंमें आनंदाश्रु भर आये। युवक अपनी आती हुई हिचकियोंको रोककर रोते २ बोला—"महाराज आप मेरे धर्मपिता हैं! आज आपने मुझे और मेरी माताको प्राणदान दिया है।"

"पुत्र, जिस तरह तू अपनी मातापर प्रेम करता है, उसी प्रकार अपने इस देशके ऊपर प्रेम कर! क्या तू देशोद्धारके कार्यमें मेरी सहायता करेगा?" "महाराज, जब तक मेरे शरीरमें जीव है। तब तक मैं आपकी चरणसेवा न छोड़ूंगा।"

आगे महाराजके आधीन रहकर इस युवकने बड़ी भारी योग्यता प्राप्त की, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है। सरदार माल्लोजीराव के धैर्य, स्वदेशाभिमान और स्वामिभक्तिकी कहानी महाराष्ट्र प्रान्तके वृद्ध लोग अब भी बड़े प्रेमसे कहा करते हैं।*

बाबूलाल अध्यापक—
जैनपाठशाला, कुड़बाग।

* नागपुर मारिस कालेजके प्रोफेसर नारायण केशव बेहरे बी. एस. सी. की एक मराठी गोष्टका अनुवाद।

उद्बोधन ।*

आज पंचमीके दिवस, एक वर्षके बाद ।
द्वारे आकर भारती, हमें दिलाती याद ॥ १
नैनोंके तारे सुनो, जीवनके अवलम्ब ।
भूल गये क्या सर्वथा, यह दुखिनी तव अम्ब ॥ २
फटे पुराने चीथड़े, इस कृशतनपर देख ।
नाक न मोड़ो "रेखपर, मारी जाय न मेख" ॥ ३
दुखी दरिद्रा दीखती, तुम सबको जो आज ।
सीस झुकाते थे उसे, बड़े बड़े महाराज ॥ ४
रुधिर तृषित इस भूमिपर, मैंने ही सब ओर ।
करुणा समता-सुधाका, जल बरसाया घोर ॥ ५
जब कुसमयने पतनके, तटपर पटकी लाय ।
तब तुमने धक्का दिया, दया न आई हाय ॥ ६
यदि तुम माता समझते, रखते जरा विवेक ।
तो न आज यह देखते, जननी दुख उद्रेक ॥ ७
अस्तु पुरानी कथा यह, सुन अब करो न क्लेश ।
इस भूल कर्तव्यके, पथमें करो प्रवेश ॥ ८
पहिचानो निज मातुको, लाओ उरमें भक्ति ।
कर दो सारी खर्च वह, जो हो तुममें शक्ति ॥ ९
सारी पुण्य प्रभावना, सारे दान-विधान ।
सारे कार्य सुमातुहित, करो बचाओ प्रान ॥ १०
दानी धर्मी, बने तुम ठाट बाटमें भूल ।
पर जिनकी जननी दुखी, उनके धनपर धूल ॥ ११

* यह कविता मोरेनाके श्रुत पंचमीके उत्सवके समय लिखी गई थी ।

विना एकके अंकके, सारे शून्य निरर्थ।
जननी-सेवा अंक लिख, उन्हें बनाओ सार्थ १२
कैसा सुन्दर समय है, पाया शान्ति-निकेत।
कैसे साधन मिल रहे, फिर कब होगा चेत ? ॥ १३
दम घुटती होता रहा, शिथिल शक्ति दिनरात।
अंधेरेमें अब नहीं, रहा जाय हे तात ॥ १४
अँखिया जिसके दरसको, तरसर ही हैं हाय।
उस उजियालेमें मुझे, लाओ दया दिखाय ॥ १५
एक लालसा और है, सुन लो समज विचार।
पृथिवीका पर्यटन फिर, करवा दो इकबार ॥ १६
वीर पिताके समयमें, जाकर देश विदेश।
अपने सब हीको किये मैने दे उपदेश ॥ १७
पर न रहे वे दिन सदा, प्रबल हुआ मिथ्यात।
पक्षपात आंधी उठी, हुई दिवसमें रात ॥ १८
अवसर तबसे देखती, बँधी बंधनों बीच।
आशावश बस रही हूं, तनमें स्वासें खींच ॥ १९
अब आया है समय शुभ, करो न नेक विलम्ब।
विश्व व्यापिनी बना दो, दे उदार अवलम्ब ॥ २०
बोली जितनी विश्वकी, सुन पड़ती हैं अद्य।
उन सबमे ही करा दो, मम परिचय अनवद्य ॥ २१
जिससे सबको दे सकूं, मैं हितकर उपदेश।
सभ्य असभ्य असभ्यतर, रहे न कोई देश ॥ २२
यवन यहूदी हूण ज्यू, बौद्ध और क्रिस्तान।
अतिशय वन्य अनार्य भी, समझें दया प्रधान ॥ २३

स्याद्वाद मत सुधाका, करके सुखकर पान ।
पावें शान्ति अनन्त सब, और वस्तु-विज्ञान ॥ २४
जैसे तुम हो और भी, वैसे ही सन्तान ।
द्विधा-भाव नहिं, मुझे है, सबके हितका ध्यान ॥ २५
बस अब जाती हूं हुआ, मेरा कथन समाप्त ।
श्रीजिन तुम्हें सुबुद्धि दें, मुझको हो सुख प्राप्त ॥ २६

काकान्योक्ति-पञ्चक ।

(१)

रुचिर आम-वनमें निशंक, कट काक ! बसेरा ।
काँव काँव कर खूब, दोष नहिं इसमें तेरा ॥
पर होता है दुःख बुद्धिपर, उसकी मुझको ।
कोकिलके संग वास, दिया है जिसने तुझको ॥

(२)

मंजु मनोहर अमराईमें मौज उड़ावे ।
काली है तव देह, विविध फल भी तू खावे ॥
नरकोकिलकी दिखलाता यों लीला सब ही ।
किन्तु बोलते समय, नीच तू काक काक ही ॥

(३)

अतिमलीन तू काक, कर्णकटु वाणी तेरी ।
नहिं अभक्ष्य कुछ तुझे चपलता है बहुतेरी ॥
सब दोषोंका कोष यदपि है, यों तेरा तन ।
जाति-प्रेम लख किन्तु सराहें तुझको सज्जन ॥

(४)

स्पर्धाके वश काक, शब्द केकीका सुनके ।
करता अधिक प्रलाप, आप अतिशय जल भुनके ॥
मनमें कर अभिमान, और अनुमान कुटेकी ।
काँव काँवको नीच, समझता कलरव--केकी ॥

(५)

मोरोंकेपर लगा, भले ही हवस मिटा ले ।
हो न सकेगा किन्तु, मोर ये कौवे काले ॥
उधर नुचेगा इधर, बहिष्कृत होगा, " पांडे--
गये दीन दुनियासे. हलुवा मिले न मांडे " ॥

शिवसहाय चौबे—
देवरी (सागर)

पुस्तक समालोचन ।

सौंदर्यप्रभा वा अद्भुत अंगूठी--ठाकुर बलभद्रसिंह लिखित और भारतमित्र प्रेस, कलकत्ताद्वारा प्रकाशित । पृष्ठ संख्या १३६ । इस पुस्तकमें छत्रपतिमहाराज शिवाजीका और उनके समयका ऐति-हासिक वृत्तान्त उपन्यासके रूपमें लिखा गया है । परन्तु हमारी समझमें इसे औपन्यासिक ग्रन्थोंकी अपेक्षा ऐतिहासिक ग्रन्थोंमें स्थान देना अच्छा होता । क्योंकि इसमें ऐतिहासिक भाग ही अधिक है और वह बहुत खोजके साथ लिखा गया है । (औरंगजेबकी कैदसे शिवाजीके छूटनेके विषयमें ऐसी प्रसिद्धि है कि वे मिठाईकी टोकरियोंमें छुपकर भागे थे । परन्तु ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं कि यह सत्य नहीं है । शिवाजी मालीका वेष धारण करके भागे थे)।

इसके सिवाय काव्य वा उपन्यासके रस भागको पुष्ट करने और मनोहर बनानेके लिये जो नायिकाकी कल्पना की जाती है, वह इसमें नहीं है ग्रन्थ साधारणतया अच्छा है। हिन्दीमें ऐसे ग्रन्थोंकी जितनी विपुलता हो, उतनी ही अच्छी है। प्रत्येक घटनाके वर्णनके साथ ग्रन्थकर्त्ताने बहुतसा उपदेश दिया है और वह अच्छा है। तो भी उसकी मात्रा कहीं २ इतनी अधिक हो गई है कि, अरुचि हो जाती है। भाषा शुद्ध होनेपर भी कठिन है और वह जान बूझकर संस्कृत बहुत बनाई गई है। ग्रन्थका नाम सौन्दर्य प्रभा वा अद्भुत अंगूठी क्यों रक्खा गया, यह हम सारा ग्रन्थ पढ़ जानेपर भी नहीं जान सके। ग्रन्थके नामसे उसके वर्णनीय विषयका थोड़ा बहुत ज्ञान जरूर होना चाहिये। ग्रन्थमें भूमिकाका अभाव है, इस लिये यह मालूम न हुआ कि, लेखककी यह स्वतंत्र रचना है अथवा किसी दूसरी भाषाका अनुवाद है।

सिरोही राज्यका इतिहास—श्रीयुक्त पंडित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, अजमेर रचित और प्रकाशित। हिन्दी भाषा भाषियोंको यह जानकर प्रसन्न होना चाहिये कि, उनकी भाषाके ऐतिहासिक साहित्यकी पूर्ति एक ऐसे विद्वानद्वारा हो रही है जो इतिहासका अपूर्व विद्वान है और जिसके ग्रन्थ न केवल हिन्दीहीमें अपूर्व होते हैं किन्तु भारतवर्ष भरमें अपूर्व समझे जाते हैं। पं० गौरीशंकरजीने अभी कुछ वर्ष पहिले सोलंकियोंका प्राचीन इतिहास लिखकर हमें उपकृत किया ही था कि, इस वर्ष यह नवीन ग्रन्थ रचकर हिन्दीको गौरवान्वित किया है। लगभग २०-२२ वर्षके संग्रह और परिश्रमसे आपने इस ग्रन्थ की रचना की है और इसके रचनेमें आपने संस्कृत, अंग्रेजी, फारसी, प्राकृत और हिन्दीके लग-

मग १०४ ग्रंथोंका मथन किया है। डेमी चारपेजीके कोई ४०९ पृष्ठोंमें यह महत्त्व पूर्ण ग्रन्थ समाप्त हुआ है। सिरोहीके प्राचीन और वर्तमान राजाओंके ४--९ चित्र हैं। प्रारंभमें एक सुन्दर भूमिका है। ग्रन्थ आठ अध्यायोंमें विभक्त है।

पहले अध्यायमें भूगोल सम्बन्धी वृत्तान्त ४० प्रसिद्ध और प्राचीन स्थानोंका संक्षिप्त वर्णन, दूसरे अध्यायमें मौर्य, क्षत्रय, गुप्त, हूण, वैस, चावड़ा, गुहिल, पडिहार, सोलंकी, परमार आदि राजवंशोंका जिन्होंने कि सिरोहीमें राज्य किया है शोधपूर्ण परिचय, चौथेसे सातवें तकके अध्यायोंमें चोहान वंशकी उत्पत्ति, उसकी शाखाएँ और इस वंशके वासुदेव, सामन्तदेव, तथा जयराजसे लेकर वर्तमान महाराजके पहले तकके सम्पूर्ण राजाओंका क्रमशः परिचय तथा उनकी वीरता आदिका वर्णन है। आठवें अध्यायमें वर्तमान महाराज केसरीसिंहजी और युवराज स्वरूपसिंहजीका चरित्र, उनके कार्य तथा उनकी विलायतयात्रा आदिका वर्णन है। सिरोही राज्य शिक्षा आदिमें बहुत ही पीछे है, इसलिये यद्यपि उसके शासक इतनी प्रशंसाके पात्र नहीं हो सकते हैं जितनीकी इस अध्यायसे ध्वनित होती है, तो भी इसमें सन्देह नहीं कि उनके पूर्वजोंका इतिहास बहुत ही महत्त्व पूर्ण और गौरवचिन्हित है। और इसलिये उनके प्रति ग्रन्थकर्त्ताकी श्रद्धा होना स्वाभाविक है। बड़े बड़े विद्वानोंने इस ग्रन्थकी प्रशंसा की है। यह स्वतंत्र ग्रन्थ है और इसके समान सिरोहीका इतिहास अंग्रेजी, बंगला जैसी उन्नत भाषाओंमें भी नहीं मिल सकता है। हिन्दीका आसन तब ही ऊंचा होगा, जब उसमें ऐसे २ स्वतंत्र ग्रन्थोंकी रचना होगी। ओझाजीको इस ग्रन्थकी रचना करनेके उपलक्ष्यमें हम जितना धन्य-

वाद दें, उतना ही थोड़ा है। इतने बड़े ग्रन्थका मूल्य बहुत ही कम अर्थात् २) रक्खा गया है। अब भी यदि इसकी बिक्री न हो तो हिन्दीका दुर्भाग्य समझना चाहिये।

आर्योंकी प्रलय—बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार, देवबन्द जिला सहारनपुर लिखित। मूल्य एक आना। यह जैनतत्त्वप्रकाशिनी सभा–इटावाका पंद्रहवां ट्रैक्ट हैं। इसमें आर्यसमाजके संस्थापक स्वामी दयानन्दजीने अपने ऋग्वेद भाष्य, आदि ग्रन्थोंमें सृष्टिके प्रलयतत्त्वका स्वरूप लिखा है. उसकी निःसारता, परस्पर विरोधिता, और असंभवता दिखलाई है। पुस्तक योग्यता और परिश्रमसे लिखी गई है। प्रत्येक जैनीको अपने आर्यसमाजी मित्रोंमें बांटनेके लिये इसकी सौ २ पचास २ प्रतियां अवश्य मंगाना चाहिये। आर्योंकी प्रलय' इस नाममें प्रलय शब्दको लेखकने जो स्त्री लिंग माना है, सो कुछ खटकता है।

धर्म और शील लाला मुंशीलालजी जैनी एम. ए. गवर्नमेंट पेन्शनर लाहौरद्वारा लिखित और प्रकाशित। पृष्ठ छोटे साइजके ११२ मूल्य साढ़े छह आना। मुंशीलालजीसे हमारे बहुतसे पाठक परिचित होंगे। आपने हिन्दीमें जितनी पुस्तकें लिखी हैं, प्रायःवे सब ही आध्यात्मिक और उच्च नैतिक शिक्षाकी हैं और हमारी समझमें इस समय हिन्दीमें ऐसी पुस्तकोंकी बहुत आवश्यकता है। यह पुस्तक भी इसी प्रकारकी है। इसके पहले चार अध्यायोंमें इसलाम धर्मके अनुसार आत्मज्ञान, परमात्माका ज्ञान, इस लोकका ज्ञान और परलोकका ज्ञान इन चार महत्त्वके विषयोंपर विचार किया है और वह आध्यात्मिक पद्धतिको लेकर किया गया है। यद्यपि हमारा उक्त विषयोंमें मतैक्य नहीं हो सकता है तो भी इसमें सन्देह नहीं

कि, उक्त चारों ही अध्याय पढ़ने योग्य हैं विशेषकर उन लोगोंके जो वेदान्त वा अध्यात्मसे प्रेम रखते हैं। ये चार अध्याय 'दि अलकेमी ऑफ हैपिनेस' नामक अंग्रेजी पुस्तकसे अनुवादित किये गये हैं। आगे आत्मध्यान और मोक्ष, जीवतत्त्व, अजीवतत्त्व, शेषतत्त्व, ध्याता, ध्याताओंकी प्रशंसा छात्रोंके लिये नीति शिक्षा, कार्य, बचपनके संस्कार, सत्यकी महिमा, सर्वोत्तम स्त्रीके लक्षण, ब्रह्मचर्य आदि कई विषयोंपर छोटे २ निबन्ध हैं, और एक दो को छोड़ कर वे जैनहितैषीमें प्रकाशित हुए उक्त लाला साहबके लेखोंका संग्रह है। पिछले सब लेख जैनधर्मसे अविरुद्ध हैं, और अजैनी सबके पढ़ने योग्य हैं। भाषा शुद्ध हिन्दी होनेपर भी कहीं २ संशोधन योग्य है। हमारी समझमें पुस्तकके पहले चार अध्याय जुदे छपाये जाते और शेष भाग जुदा, तो अच्छा होता। पुस्तकका नामकरण भी अन्वर्थक नहीं हुआ है। कालीमाताकी गली गुमटी बाजारके ठिकानेसे ग्रन्थकर्ताको पत्र लिखनेसे पुस्तक मिल सकती है।

सम्पादकीय टिप्पणियां।

विविध भाषाओंका जैन साहित्य।

ज्यों ज्यों जुदी २ भाषाओंके साहित्यके इतिहासकी खोज की जाती है, त्यों त्यों विद्वानोंके हृदयमें निष्पक्षपातता बढ़ती जाती है और ज्यों ज्यों प्राचीन ग्रन्थोंके सम्पादन तथा प्रकाशनकी ओर लोगोंका उद्योग बढ़ता जाता है, त्यों त्यों इस बातका निश्चय होता जाता है कि प्राचीनकालमें जैन विद्वानोंने प्रायः प्रत्येक भाषाके साहित्यकी पुष्टि की है और अपनी विलक्षण प्रतिभाके बलसे प्रत्येक भाषाके साहित्यमें जैनसाहित्यको उच्च स्थानपर पहुंचानेका प्रयत्न

किया है। संस्कृत साहित्यमें जैनियोंके अगणित ग्रन्थ हैं और दूसरे धर्मोंके ग्रन्थोंके मुकाबिलेमें उनकी प्रतिष्ठा किसी प्रकार कम नहीं है, इस बातको अब प्रायः सब ही विद्वान स्वीकार करने लगे हैं। ऐतिहासिक तत्त्वोंकी खोज करनेमें जैनियोंके शिलालेख, ताम्रपत्र, मन्दिरों और ग्रन्थोंकी प्रशस्तियां, कथाभाग आदि सामग्री सबसे अधिक सहायता पहुंचा रही है। प्राकृतसाहित्य तो एक प्रकारसे जैनियोंका ही है। इस साहित्यमें सबसे अधिक ग्रन्थ जैनियोंके ही पाये जाते हैं। प्राकृत जैनियोंकी मुख्य भाषा है। कनडीसाहित्यके विषयमें जैनहितैषीके पाठक पढ़ ही चुके हैं कि, लगभग १३ वीं शताब्दीतक कनडीमें जैनियोंके सिवाय और कोई ग्रन्थकर्ता ही नहीं हुए हैं और अठारहवीं शताब्दी तकका जितना कनडी साहित्य प्राप्य है, उसमें दो तिहाईसे भी अधिक ग्रन्थ जैनविद्वानोंके बनाये हुए हैं। हिन्दी–साहित्यमें भी जैनग्रन्थोंकी कमी नहीं है। 'दिगम्बर जैनग्रन्थकर्त्ता और उनके ग्रन्थ' नामक पुस्तकमें हमने भाषाके ग्रन्थकर्त्ताओंकी एक सूची दी है, जिससे पाठक जान सकते हैं कि, हिन्दीमें भी जैनधर्मके हजारों गद्यपद्यमय ग्रन्थ हैं। परन्तु दुःखका विषय है कि, अभीतक हिन्दीका कोई शृंखलाबद्ध इतिहास नहीं बना है और न हिन्दीके वर्तमानलेखकोंका ध्यान जैनसाहित्यकी ओर आकर्षित हुआ है। इससे इस विषयमें यद्यपि निश्चित रूपसे कुछ नहीं कहा जा सकता है, तो भी हमको विश्वास है कि, हिन्दीमें भी जैनियोंका साहित्य कुछ कम महत्त्वका नहीं होगा। गुजराती भाषामें जैसा कि हम आगेके नोटमें बतलावेंगे जैनसाहित्य की कनडीके ही समान प्रधानता है। तामिल भाषा बहुत प्राचीन और प्रौढ़ भाषा है। इसमें भी जैनविद्वानोंके बनाये

हुए सैकड़ों ग्रन्थ हैं और उनका तामिलसाहित्यमें बड़ा सत्कार है। यहां तक कि तामिलके कई जैन ग्रन्थ मद्रास यूनीवर्सिटीकी उच्च कक्षाओंमें पढ़ाये जाते हैं। जैनमित्रमें तामिलके जैनग्रन्थोंकी एक सूची प्रकाशित हुई थी, उसे पाठकोंने पढ़ी ही होगी। द्रविड़-भाषामें भी बहुतसे जैनग्रन्थ हैं। भारतवर्षकी उक्त भाषाओंके सिवाय दूसरे देशोंकी भाषाओंमें भी जैनग्रन्थोंके अस्तित्वका पता लगा है। **तिब्बती**भाषामें बहुतसे जैनग्रन्थोंका अनुवाद हुआ है, ऐसा मालूम हुआ है। **प्रश्नोत्तररत्नमाला**के तिब्बती अनुवादसे ही इस बातका निश्चय किया गया है कि, वह **जिनसेनस्वामी**के शिष्य महाराज **अमोघवर्ष**की बनाई हुई है-शंकराचार्य, विमलचन्द्र आदि की नहीं।

गुजराती जैन साहित्य।

गुजराती भाषाके दश पन्द्रह वर्ष पहलेके लेखक गुजराती साहित्यमें जैनियोंका कोई विशेष अधिकार वा स्थान ही स्वीकार नहीं करते थे, परन्तु पिछले तीन चार वर्षोंमें इस विषयकी जो चर्चा हुई है, उससे विद्वान लोग मुक्तकंठसे स्वीकार करने लगे है कि, गुजराती साहित्यको जैन विद्वानोंने अतिशय पुष्ट और गौरवान्वित किया है। कई लेखक तो यहां तक कहते है कि, गुजरातीको जन्म ही जैनियोंने दिया है। इस विषयमें हम यहांपर कुछ गुजराती पत्रों और लेखकोंके विचार उद्धृत करते हैं। सितम्बर सन १९०९ के **समालोचक** नामक पत्रने '**रायचंद्रकाव्यमाला** की समालोचना करते हुए लिखा था-"इन सब प्रयत्नोंमें जैनसाहित्यको जैसा न्याय मिलना चाहिये, वैसा नहीं मिल सका........ ग्रन्थोंकी दुर्लभता, जैन और जैनेतर साहित्य प्रेमियोंकी उदासीनता

और धनिकोंकी सहायताका अभाव भी इसमें एक कारण है। जैन-साहित्य गुर्जर साहित्यके अंगोंमेंसे एक मुख्य अंग है। गुजरातमें एक समय जैनी प्रबलतर राज्यसत्ताका उपयोग करते थे। उनके धर्मका, साधुओंका, यतियोंका और सेठोंका जनसमाजपर गहरा प्रभाव पड़ा था, और वह अब तक हमारे जीवन व्यवहारमें प्रत्यक्ष हो रहा है। जैन धर्मी लेखकोंने गुजराती साहित्यकी साधारण सेवा नहीं की है। ग्यारहवीं शताब्दीमें जैनियोंने प्राकृतमें ग्रन्थ लिखे थे, उससे एक अपभ्रंश भाषा बनी और उस अपभ्रंश भाषाका आधुनिक स्वरूप गुजराती है। ....ऐसा मालूम होता है कि, साहित्यके इतिहासकी टूटी संकलोंको जैनसाहित्य जोड़ेगा।...... जैनसाहित्यके प्रकाशित होनेसे गुर्जरसाहित्यपर अधिक प्रकाश पड़नेकी संभावना है। जैनियोंके 'रासा' ऐतिहासिक हैं। उनमेंसे देशकालकी परिस्थिति, लोकाचार, लोकव्यवहार, जनस्वभाव आदि बहुतसे उपयोगी विषयोंका बहुतसा आवश्यक परिचय मिलता है। देशकी तात्कालिक सांसारिक आर्थिक तथा व्यापारसम्बन्धी स्थिति कैसी थी, इसका भी पता इन रासाओंसे लगेगा।.......कविता प्रचलित देशी (राग) और दोहोंमें लिखी गई है। भाषाका स्फुरण शुद्ध, सरल और सुगम है...... विचार स्पष्टतासे प्रगट किये हैं। कविताका व्याकरण शुद्ध मालूम होता है। शब्दोंकी विपुलता है। अलंकार सरल और भाषा आडम्बर रहित है।" प्रथम गुजराती साहित्यपरिषद्के सभापति श्रीयुत **गोवर्धनराम** महाशयने अपने व्याख्यानमें जैनियोंके साहित्यका ग्यारहवीं शताब्दीसे अठारहवीं शताब्दीतकके इतिहासका शृंखलाबद्ध परिचय दिया है। उसमें आपने एक जगह कहा है–चौदहवीं शताब्दीमें गुजरातके बाहिर

जब संस्कृतके बड़े २ प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखे गये हैं। तब गुजरातमें तेजसिंह कविके एक ग्रन्थके सिवाय जितने ग्रन्थ लिखे गये हैं, वे सब जैनसाधुओंके ही बनाये हुए हैं।.........इन साधुओंने अपने गच्छोंका आश्रय पाकर साहित्यवृक्षको जब इतना अंकुरित किया था, तब ब्राह्मणादिकोंका साहित्य जो राजपूत राजाओंके कालमें स्फुरायमान था, वह सर्वथा अस्त हो गया था और इस साहित्यके अस्त होनेके पीछे गुजराती साहित्यका मूल पहले आरोपित किया गया था।"

शास्त्रीजीका सन्देह।

हमने गत छठे अंकमें लिखा था कि, "जैनपताकाके बाद इधर कुछ समयसे सहयोगिनीका स्थान खाली था और अनेक सहयोगियोंके बीचमें यह कमी बहुत खटकती थी। अच्छा हुआ कि, इसकी पूर्ति जैनरत्नमालासे हो गई।" इसपर शास्त्रीजीको न जाने कौनसे सन्देहने आकर घेरा कि. आप, अपनी श्रीमती रत्नमालाको "मान न मान मैं तेरा महमान"की उक्तिके अनुसार सारे सहयोगियोंकी बहिन करार देते हैं। पर हमारी समझमें सभ्य और सदाचारी समाजमें रहनेवाले शास्त्रीजीको इतनी चिन्ताकरनेकी और इस प्रकार 'बादरायण' सम्बन्ध मिलानेकी जरूरत नहीं थी। क्या बहिनके सिवाय स्त्रियोंके साथ और कोई सम्बन्ध ही ऐसा नहीं हो सकता है, जिसमें पवित्रव्यवहारकी कल्पना हो सके? शिष्ट पुरुष तो स्त्रीमात्रको अच्छी दृष्टिसे देखते हैं और फिर एक चार पांच महीनेकी बालिकाके विषयमें तो शंकाका कुछ कारण ही नहीं है। शास्त्रीजी महाराज, हृदयकी इतनी दुर्बलता अच्छी नहीं। आप घबड़ाइये नहीं, सहयोगीगण अपनी सहयोगिनीकी बाल-लीला स्नेह कौतुक

दृष्टिसे देख रहे हैं। न आप उसके आदर सत्कारकी चिन्ता कीजिये और न कुछ और सोचिये।

शास्त्रीजीका सामयिक संलाप।

जैनहितैषीके छट्ठे अंकमें हमने महासभापर कुछ थोड़ेसे नोट किये थे। उनको जैनरत्नमालाके सम्पादकने अनवसर-प्रलाप बतलाकर अपनी सामयिक सुरीली वाणीसे समाजके कर्ण-पुटोंमें अमृतकी वर्षा की है। शास्त्रीजीकी उक्त अमृतमयी वाणीका पूरा परिचय देनेके लिये हितैषीके छोटेसे कलेवरमें स्थान नहीं है और ऐसे विषयोंमें बहुतसा स्थान रोक देना वह अच्छा भी नहीं समझता है; इसलिये हम "**पीयूषं न हि निःशेषं पिबन्नेव सुखायते**"की उक्तिके अनुसार अपने पाठकोंको थोड़ेमें ही सन्तुष्ट करनेका प्रयत्न करते हैं--आप फरमाते हैं कि, "फिरोजाबादमें महासभाका अधिवेशन करानेमें दस्सों बीसोंके झगड़ेसे कोई सम्बन्ध नहीं था। केवल महासभाको वास्तविक महासभा बनानेकी गरजसे यह कोशिश की गई थी और इसका प्रत्यक्ष सुबूत यह है कि, वहां दस्सों बीसोंका नाम तक नहीं लिया गया।" इसपर मैं यह पूछता हूं कि, महासभामें अब वास्तवपना क्या आगया है? क्या महासभाके पिछले तीन वर्षोंके हिसाबको विना जांच कराये ही पास कर देना, जिनका पहले कभी नाम भी नहीं सुना था और जिनके एक चार पंक्तियोंके लेखको भी देखनेका कभी समाजको सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ, ऐसे किसी अपरिचित पुरुषको जैनगजटका सम्पादक बना देना, इस डरसे कि पूर्वसम्पादक जो एक प्रेस मांग रहा है, उससे कहीं छापेका प्रचार न होने लगे, और जो लोग काम नहीं करना चाहते हैं--जिनके कामसे कोई सन्तुष्ट नहीं है--आंख बन्द

करके दस्तखत कर देना मात्र ही जो अपना कर्तव्य समझते हैं, उनके गले जबरदस्ती बड़ी २ जबाबदारीके काम डाल देना, क्या इसीको वास्तविक महासभा बनाना कहते हैं? प्रत्यक्ष प्रमाण भी आपने खूब दिया। दूसरों धर्मोंका नाम न लिया गया, उससे उत्पन्न हुए आन्तरिक द्वेषकी प्रेरणासे यह कार्य नहीं हुआ है? यह भी तो बतलाइये कि, आपके श्रीमानोंने और भी कभी महासभाके अधिवेशनके विषयमें इतना प्रयत्न किया था? हमने एक दल शिक्षितोंका और दूसरा धनिकोंका बतलाया था। इसपर शास्त्रीजी इस चिन्तासे—कि कहीं मेरी अशिक्षितोंमें गिनती न हो जाय – कहते हैं–" धनिक पक्षमें भी शिक्षितोंकी कमी नहीं है।" महाराज, व्याकुल मत हूजिये, आपका शास्त्री परीक्षाका सर्टिफिकेट नहीं छीना जायगा। पर कुसुर माफ हो, आपकी और आप जैसे दूसरे शिक्षितोंकी गणना धनिकोंमें ही की जायगी। क्योंकि आपके विचार अब धनिकों सरीखे ही हो गये हैं। और यह अच्छा भी नहीं मालूम होता है कि, श्रीमानोंकी बग्गियोंमें बैठनेवाले, उनकी बराबरीसे मसनदपर झुकनेवाले तथा सब ओरसे अपनी पांचों उंगली घीमें तर रखनेवाले महाशय गरीब शिक्षितोंमें शामिल कर दिये जांय। एक नीतिकारने कहा है कि, " जो स्वयं काचके मकानमें रहता हो, उसे दूसरेके मकानपर ईंट न फेंकना चाहिये।" परन्तु शास्त्रीजी महाराज अपने नये ग्रहण किये हुए पक्षके जोशमें इसकी कुछ भी परवाह न करके हमपर स्वार्थपरताका दोष मढ़नेको तैयार हुए हैं। आपने जैनहितैषी भाग ९ अंक ४ का प्रमाण देकर यह सिद्ध करना चाहा है कि, " पहले हम बाबुओंकी निंदा और कई सेठोंकी प्रशंसा करते थे, पर अब उससे विरुद्ध लिखने

लगे हैं। " इस विषयमें हमारा निवेदन यह है कि, एक तो जैन-हितैषीके जिस लेखका आपने प्रमाण दिया है, वह उसके वर्तमान सम्पादकका (मेरा) नहीं, किन्तु पूर्वसम्पादक पं० पन्नालालजीका लिखा हुआ है, उस समय वे ही उसके सम्पादक थे, (इस तरह झूटे प्रमाण देकर समाजको धोखा देनेमें शास्त्रीजी सिद्ध हस्त हैं।) दूसरे यह कोई बात नहीं कि, जिसे कोई पहले अच्छा समझता हो, उसे कभी बुरा न समझे और जिसे बुरा समझता हो, उसे कभी अच्छा नहीं समझे। ज्यों ज्यों मनुष्यका अनुभव वा परिचय बढ़ता है, त्यों त्यों वह अपने विचारोंमें परिवर्तन वा संशोधन करता रहता है। यह संसारका नियम है। अब अपनेको ही देखिये न ? कल आप छापेके पूरे पक्षपाती थे, आपने स्वयं कई ग्रन्थोंकी टीकाएं लिखकर छपवाई थीं।

छापेका विरोध करनेवाली ' पताका ' की आपने खबर ली थी, पंचामृताभिषेक, श्राद्ध तर्पण, आचमनादिके आप कट्टर पक्षपाती थे, तेरहपंथी प्रतिष्ठापाठके लिये आपने जीभर विरोध किया था, छापेकी पुस्तकें बेचने, कमीशन खाने और मंत्रयंत्रतावीजादि भेजनेमें भी आप दोष न समझते थे, एक ईसाईको जो कि पहले जैनी था आप प्रायश्चित्तसे शुद्ध कर फिरसे जैनी बनानेके लिये तैयार थे, पर आज आप छापेके यहां तक विरोधी हो गये हैं कि, रत्नमालाके मुखपत्रपर ' श्रीवीतरागायनमः ' या ' जिनाय नमः ' आदि लिखनेमें भी पाप समझते हैं, और शुद्धाम्नायी, दस्सोंका भी सदा अशुद्ध माननेवाले, तथा सेठोंके अनन्य भक्त बननेमें तो अब कुछ कसर ही नहीं है। और कल आश्चर्य नहीं कि, आपको अपना यह मत भी परिवर्तन करना पड़े और किसी तीसरेको ग्रहण करना पड़े। तो

इससे क्या यह हम कहने लगें कि आपने किसी स्वार्थके वशवर्ती हो कर श्रीमानोंकी कृपासे धनवान होनेकी इच्छासे अथवा जीविका बनाये रखनेके विचारसे अपना मत परिवर्तन किया है? यह तो अपने २ विचार हैं, जब जैसे हो जावें। आगे इसका तो आपने कोई झूठा सच्चा प्रमाण देनेकी भी जरूरत नहीं समझी कि हमने श्रीमन्त सेठजीको जैनधर्मका भक्षक कहां और कब लिखा है। आपका विश्वास है कि, "जैनहितैषीका अब तक बहुत कुछ गौरव नष्ट हो चुका है और ऐसी ही प्रवृत्ति रही, तो सच कहते हैं रहा सहा भी न बचेगा।" आप झूठ क्यों कहने लगे? पर हम यह न समझे कि, गौरव किसको कहते हैं? यदि धनिकोंकी कृपाका अर्थ ही गौरव है, तो सचमुच ही जैनहितैषी उसको खो बैठा है—वह आपकी रत्नमालाहीको मुबारिक हो, और यदि ग्राहकोंकी संख्यासे गौरवका कुछ अनुमान होता हो, तो वह दिनपर दिन बढ़ती जाती है। आपकी कृपासे इस वर्ष उसके लगभग ११०० ग्राहकोंने पेशगी मूल्य भेज दिया है। कलके छापेके भक्त शास्त्रीजी आज अपने श्रीमानोंको प्रसन्न रखनेकी इच्छासे कहते हैं कि, "महासभा भी यदि छापेका पक्ष ले लेगी, तो उसका स्वरूप ही क्या रहेगा—उसका अमर नियम भंग हो जायगा। जैनहितैषीको यदि छापा इष्ट है, तो वह दूसरी महासभा कायम कर ले।" यह अमर नियम आज शास्त्रीजीके ही द्वारा सुना गया। बड़े २ सरकारी कानून बदलते रहते हैं, समाज अपने लाभके लिये निरन्तर नये २ नियम बनाता है, बड़े २ विद्वान् अपने कामोंकी रोज २ पद्धतियां बदलते हैं, इस तरह सबके नियमोंमें परिवर्तन होते रहते हैं, परन्तु शास्त्रीजी अपनी महासभाको सर्वथा कूटस्थ रखना चाहते हैं और

छापेके स्वीकार करनेसे उसके स्वरूपको ही नष्ट हुआ समझते हैं। अच्छा महाराज, कीजिये कोशिश जिससे आपका अमर नियम भंग न होने पावे। हितैषीको जुदी महासभाकी जरूरत नहीं है। उसे विश्वास है कि, आप जैसे सैकड़ों शास्त्रियों और श्रीमानोंके हजार सिर पटकने पर भी उसी महासभामें जिसे आप अपनी बतला रहे हैं छापेका प्रस्ताव पास होगा और उसका आप ही सब एक दिन समर्थन करेंगे। जो भारतवर्षकी वर्तमान प्रगतिको सूक्ष्मदृष्टिसे देख रहे हैं, उन्हें इस विषयमें जरा भी सन्देह नहीं।

अच्छा, आप ही की जय सही।

हितैषीके छट्ठे अंकमें मैंने 'सत्यकी जय' शीर्षक विज्ञापनके विषयमें थोड़ीसी पंक्तियां लिखी थीं, उसपर विज्ञापन दाता लाला पुरणमलजीने रत्नमालाकी आठवीं संख्यामें फिर एक लेख लिखा है और इस बातको कि, 'दस्सों बीसोंके झगड़े' में हमारी जय हुई है, जिस तरह उनसे बन सका है सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है। परन्तु अब इस विषयमें मैं कुछ नहीं लिखना चाहता हूं। लिखनेमें कुछ लाभ भी नहीं है। जब सेठ लोगोंकी यही इच्छा है कि, हमारी ही जय होनी चाहिये, तब मैं भी उसमें बाधक नहीं बननी चाहता। और मैं समझता हूं कि, हितैषीके पाठक महाशय भी इस बातपर खयाल करके कि, अब सेठ महोदय कृपा करके स्वयं अपनी उठाई हुई अशांतिसे उपरत होते हैं, उन्हींकी विजय स्वीकार कर लेंगे और अब इस मामलेकी 'कोठीको धोकर अधिक कीचड़ निकालने'के प्रपंचमें न पड़ेंगे।

पूरणमलजी अपने उक्त लेखमें लिखते हैं कि, आगरेमें पं० गोपालदासजीका बहिष्कार करनेके लिये हस्ताक्षर नहीं कराये गये थे। किन्तु इस लेखपर दस्तखत कराये गये थे कि, "जो लोग तीर्थंकरोंको व्यभिचारियोंकी औलाद बतलाते हैं, सो बिलकुल गलत है। क्योंकि तीर्थंकर महाराज उच्च गोत्रमें अर्थात् कुल जाति विशुद्ध उत्तम क्षत्रिय कुलमें उत्पन्न होते हैं। इसलिये हम लोग खुशीसे दस्तखत करते हैं कि, हमारे तीर्थंकरोंमें कोई कलंक नहीं है।" बहुत ठीक, मैं भी मानता हूं। इसी विषयमें दस्तखत कराये गये होंगे; परन्तु मेरी अल्प बुद्धिमें हस्तिनापुरमें जो झगड़ा शान्त हो गया था, उसको फिरसे सुलगानेके विचारके विना तो तीर्थंकरोंके लिये इन सर्टिफिकटोंके संग्रह करनेका प्रयत्न ही नहीं हो सकता था। खैर जो हो। मैं इस विषयमें और वादविवादकी आवश्यकता नहीं देखता। पर सेठ लोगोंको मैं यह स्मरण दिला देना अपना कर्तव्य समझता हूं कि, वे तीर्थंकरोंके समान अपने पूर्व पुरुषोंके, आचार्योंके और दूसरे शलाका पुरुषोंके विषयमें भी इसी प्रकारके सर्टिफिकट पहलेसे तयार करके रख छोड़ें, जिसमें आगे कभी काम पड़े तो दिक्कत न उठानी पड़े। क्योंकि इस अंग्रेजी जमानेमें विना सर्टिफिकटोंके किसीका महत्त्व जायज नहीं समझा जाता है। और ऐसे मौके इस पंचमकालमें अकसर आते हैं।

अन्तमें लेखक महाशयने लिखा है कि, "तुमने जो सेठोंकी मानहानि करनेका साहस किया है, सो इसका परिपाक अच्छा नहीं होगा।" इस विषयमें मेरी भी यही राय है कि, सेठोंका उक्त विजयमंदिर विना इस कलशके शोभा नहीं देगा, इसलिये लगे हाथों इसे भी चढ़वा दीजियेगा। जिससे "**वह मन्दिर यह**

कलश कहावे।" जिन्होंने इतना बड़ा मन्दिर खड़ा किया है, वे क्या उसपर कलशकी कमी रक्खेंगे? द्रव्य है, ऐश्वर्य है, सहायक हैं? और शास्त्रीजी जैसे पुरोहित मौजूद हैं, फिर चिन्ता ही किस बातकी है? ऐसे महत्त्वसूचक समारंभमें यदि एकाध मेरे जैसा निर्धन पिस गया, तो कुछ अन्देशेकी बात नहीं है। लाला पूरणमलजी, अथवा परदेकी ओटसे चोट करनेवाले शास्त्रीजी महाराज, इस माहेन्द्र योगको खाली मत जाने दीजिये। इस पुण्यकर्ममें आप प्रेरणा करनेसे मत चूक जाइये।

वही, उचित वक्ता।

विविध-विषय।

विलायतमें जैनधर्मके प्रसारका प्रयत्न—मि० के. खुशरू जमसेदजी ताराचन्द बी. ए. नामक एक पारसी सज्जन लगभग ११ महीनेसे विलायतमें जीव दयाके प्रचारका प्रयत्न कर रहे हैं। आपने अपने जीवदया प्रचारके उत्तम कार्यके लिये एक नवीन ढंग निकाला है। मि० हर्बर्ट वारेन नामक अंग्रेजसे जो कि जैनधर्मके उपासक हैं। आप जैनधर्मसम्बन्धी व्याख्यान जगह २ दिलाते हैं और वहांकी प्रजाको अहिंसाके स्वरूपका ज्ञान कराते हैं। ता० २१ अप्रैलको मि०वारेनका एक व्याख्यान 'जैनधर्ममें आत्माका स्वरूप' के विषयमें 'चर्च आफ दी यूनीवरसल' नामक गिरजाघरमें हुआ था और श्रोताओंपर उसका अच्छा प्रभाव पड़ा था। व्याख्यान समाप्त होनेके बाद मि० ताराचन्दने प्रत्येक प्रकारकी हिंसा छोड़ देनेके विषयमें सम्पूर्ण श्रोताओंसे आग्रह किया था। आप जैनधर्मसम्बन्धी व्याख्यान दिलानेके लिये और भी

प्रयत्न कर रहे हैं। जैनियोंको लज्जा आना चाहिये कि, उनके धर्मका प्रचार दूसरे लोग कर रहे हैं और वे स्वयं चुप बैठे हैं–उनसे कुछ नहीं होता है।

स्त्रियोंके लिये कॉलेज—भोपालकी बेगम साहबाने देहलीमें स्त्रियोंको उच्च श्रेणीकी शिक्षा देनेके लिये एक कालेज स्थापित करनेका प्रस्ताव किया है। जिसे कि माननीय वाइसराय और उनकी पत्नीने स्वीकार किया है। इस कार्यमें लगभग १२ लाख रुपया खर्च होगा। जिसमें एक लाख रुपया बेगम साहबाने देना स्वीकार किया है। भारतवर्षमें स्त्रियोंको उच्चशिक्षा देनेवाली यह सबसे पहली संस्था होगी।

६७ वर्षका वर और १० वर्षकी कन्या—बम्बईमें कच्छी दशा ओसवाल जातिमें एक ६७ वर्षके वृद्धकी सगाइ १० वर्षकी कन्याके साथ हुई है। और शीघ्र ही विवाह होनेवाला है। इस विषयको लेकर उक्त जातिमें बड़ा भारी आन्दोलन हो रहा है। पंचायतने बुड्ढे बाबाको रोका है कि, आप बेचारी लड़कीपर दया कीजिये, नहीं तो आपकी कुशल नहीं।

विशाल पुस्तकालय—बड़ोदा महाराजने बड़ोदामें एक बड़े भारी पुस्तकालयकी नींव डलवाई है। इसमें लगभग १८ लाख रुपया खर्च होगा। इमारतमें ३–४ लाख रुपया लग जावेगा। महाराजने पुस्तकालय सम्बन्धी एक महकमा ही जुदा स्थापित कर दिया है। इसके द्वारा रियासतभरके पुस्तकालयोंका निरीक्षण और पोषण किया जायगा।

दि० जै० प्रा० सभा बम्बईका नवमा वार्षिकोत्सव–खामगांवमें वैशाख सुदी १०-११-१२ को हो गया। कलकत्ताके सेठ पदमरा-

जनीने सभापतिके आसनको सुशोभित किया था। लगभग तीन हजार भाई उपस्थित हुए थे। प्रान्तिक सभाकी सहायताके लिये ५००) आरा सरस्वती भवनके लिये ५००), 'खंडेलवालजैन' नामका नवीन मासिक पत्र निकालनेके लिये १२००) और जैन-शिक्षा प्रचारक फंडके लिये ११००) की सहायता प्राप्त हुई। वऱ्हाड़के जैनियोंमें शिक्षा प्रचार करनेके लिये और वहांके असमर्थ विद्यार्थियोंकी सहायता पहुंचानेके लिये एक संस्था खोली गई, जिसके सेक्रेटरी श्रीयुक्त चवरे वकील आकोला नियत हुए। महासभामें जो दो पक्ष हो गये हैं, उनके लिये खेद प्रकाशित किया गया और पालिताणामें आगामी वर्ष प्रान्तिक सभाके साथ महासभाका अधिवेशन करानेके लिये तथा उक्त समयपर इन पक्षोंमें सुलह करानेके लिये प्रस्ताव पास किया गया। जैनमहिला परिषत् और खंडेलवाल महासभाका भी जलसा इस अवसरपर किया गया।

आठसौ मुसल्मानोंकी शुद्धि—विहार प्रान्तके एक जिलेमें लगभग ८०० मुसल्मान ऐसे थे जो कि, किसी समय हिन्दू कहार थे। भारतशुद्धि सभा नामक आर्यसमाजकी संस्थाने इन सबको शुद्ध करके हिन्दू बना लिया है। कुछ पुराने ढंगके पंडितोंने इसका विरोध किया था। परन्तु वे शास्त्रोंके प्रमाण देकर चुप कर दिये गये। इन शुद्ध हुये कहारोंको सुनते हैं कि, वहांके हिन्दूओंने हिन्दूकहारोंके समान ग्रहण कर लिया है।

भारतमें शिक्षाप्रचार—भारतवर्ष भरमें सन् १९०९ में ६२०-३३०५ विद्यार्थी शिक्षा पाते थे और उनके लिये ६८६७६००० रुपया खर्च किया गया था। सन् १९१० में कुछ वृद्धि हुई है।

विद्यार्थियोंकी संख्या ६२४५९८२ हो गई थी और उनके लिये ७१८८८००० रुपया खर्च किया गया था। दूसरे देशोंकी अपेक्षा यहांके विद्यार्थियोंकी संख्या और व्ययकी संख्या बहुत ही कम है।

खुर्जेका अनाथालय—राय बहादुर सेठ मेवारामजीके परलोकगत पिता सेठ अमोलकचन्दजीके स्मरणार्थ जो अनाथालय खुर्जामें खुला है, उसके विषयमें सहयोगी जैनप्रचारक एक विलक्षण बात सुनाता है। उसे खबर लगी है कि, उक्त अनाथालयका सुप्रिंटेंडेंट एक ईसाई है। तब क्या शुद्धाम्नायियोंकी इस संस्थाके बच्चोंको ईसाई धर्मकी वा ईसाई विचारोंकी शिक्षा दी जाती होगी ?

समितिपर कर्ज—यह जानकर बड़ा दुःख हुआ कि, जयपुरकी जैनशिक्षाप्रचार समितिकी आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं है। उसपर दो हजार रुपयाके करीब कर्ज हो गया है। एक काम करनेवाली संस्थाके विषयमें समाजकी इस प्रकार उपेक्षा ठीक नहीं। सेठीजीने इस विषयमें जैन प्रचारकमें एक बड़ी हृदयद्रावक अपील की है। उदार सज्जनोंको इस ओर ध्यान देना चाहिये।

राजाकी उदारता—भावनगरके महाराजने अपनी प्रजाकी रक्षाके लिये २० लाख रुपयाका दान किया है।

भस्माकर चूर्ण—करहल जि० मैनपुरीकी जैनमित्र कमेटीने हमारे पास भस्माकर चूर्णकी एक शीशी भेजनेकी कृपा की है। इसका जायका अच्छा है अजीर्ण आदि अनेक रोग इससे आराम होते हैं। हमने दश पांच बार खाया तो मालूम हुआ कि, इससे हाजमा अच्छा होता है। जिन्हें बदहजमीकी शिकायत हो, उन्हें चाहिये कि, भस्माकरकी एक शीशी मंगाकर जांच कर देखें।

परीक्षा.

विदित हो कि " भारतवर्षीय जैन शिक्षा प्रचारक समिति " की आगामी परीक्षा अगस्त १९१२ ईस्वी से प्रारम्भ होगी।

जो पाठशालाओंके प्रबन्धक महाशय अपने विद्यार्थियोंको उक्त परीक्षामें शामिल कराना चाहें वा अन्य कोई महाशय परीक्षा देना चाहें तो उन्हें योग्य है कि निम्न लिखितपते मे "परीक्षा-प्रवेश फार्म" मंगाकर १५ जौलाई १२ ईस्वी तक उसकी पूर्ति करके वापिस भेज देवें।

नोट---विशेष हाल जाननेके लिये पठनक्रम और परीक्षा नियम मँगाके देखिए।

आपका सेवक,

मन्त्री-भारतवर्षीय जैन परीक्षा समिति, जयपुर.

नई पुस्तकें.

धूर्ताख्यान ।

छपकर तयार है ! शीघ्रता कीजिये !

धर्मपरीक्षाके ढंगका यह नवीन ग्रन्थ एक संस्कृत ग्रन्थके आधारसे हिन्दीमें लिखा गया है । इसमें पुराणोंकी पोलें एक मजेदार कथाके साथ खोली गई हैं । नामी २ धूर्तोंकी बातें सुनकर आप चकरावेंगे और कहेंगे कि ये पुराण हैं या किसी मसखेरकी लिखी हुई किताबें हैं । छपाइ बहुत सुन्दर है । मूल्य सिर्फ तीन आने हैं । आप पढ़िये और पौराणिक मित्रोंको सुनाईये ।

धर्मरत्नोद्योत ।

आरा निवासी बाबू जगमोहनदासजी कृत यह कविता ग्रंथ है। इसमें उपासना, प्रमाण, प्रमेय, भेदविज्ञान, उद्यमोपदेश, सुव्रत क्रिया द्वादशानुप्रेक्षा, समाधि भावना और आराधना इस प्रकार नौ अधिकार हैं । प्रत्येक अधिकारमें कई कई विषयोंका वर्णन है । ग्रन्थ देखने योग्य है ।सुन्दर एन्टिक पेपरपर छपा हुवा है । न्यो० १) मात्र है ।

प्राणप्रिय–काव्य ।

यह सुन्दर और सरस काव्य दो वर्ष पहिले जैनहितैषीमें प्रकाशित हुआ था । अब जुदा पुस्तकाकार हिन्दी अनुवाद सहित छपाया गया है । प्रत्येक सहृदयको इसे पढ़ना चाहिये । भक्तामरके चौथे चरणोंकी समस्या पूर्ति की गई है और उसमें नेमिनाथ और राजीमतीका सरस चरित्र निबद्ध किया गया है । मूल्य दो आना.

व्याख्यान।

स्याद्वाद वारिधि पं० गोपालदासजी बरैयाने द० महाराष्ट्र जैन सभाके चौदवें अधिवेशनपर बेलगाममें जो व्याख्यान दिया था, वह अलग बिक्रीके लिये छपाया है। जिन भाइयोंको बांटनेके लिये चाहिये मंगा लेवें। व्याख्यान कैसा है यह पंडितजीके नामसे ही ज्ञात हो सकता है। एक साथ एक सौ प्रतियें ४)में पचास २॥) में भेजी जावेंगी। शीघ्रता करें। बहुत थोड़ी कापियां रह गई हैं।

पुरुषार्थसिद्ध्युपाय।

श्रीअमृतचन्द्रसूरिकृत मूल श्लोक, और नाथूरामप्रेमीकृत अन्वयार्थ भावार्थ सहित। यह ग्रन्थ एक बार छपकर बिक गया था, कई वर्षोंसे यह ग्रन्थ नहीं मिलता था। इस कारण फिरसे संशोधन कराकर छपाया गया है। यह ग्रन्थ जैनतत्त्वोंका भाण्डार है। इसकी प्रशंसा लिखकर ग्रन्थका महत्त्व घटाना है। कागज छपाई माईज पूर्ववत है। न्यो० एक रुपिया।

बालबोध जैनधर्म।

इस सीरीजमें छोटे छोटे बच्चोंको धार्मिक शिक्षण बहुत ही सरलतासे देनेका क्रम है। इसके पढ़नेसे बच्चे बहुत जल्दी धार्मिक विषयोंके जानकर हो जाते हैं। धार्मिक शिक्षणके लिये आज तक कोई भी ऐसी पुस्तक नहीं बनी है, जो इसकी जोड़की हो। मूल्य पहला भाग)॥ दूसरा भाग ~) तीसरा भाग ≈) चौथा भाग छप रहा है।

क्रियामंजरी।

इस पुस्तककी कई वर्षोंसे मांग थी। श्रावकोंके करने योग्य नित्य क्रियाओंकी इसमें हिंदीमें विधि लिखी है। संध्यावंदन, यज्ञोपवीतधारण, आदि सब विधियोंका तथा मंत्रोंका इसमें संग्रह है। मूल्य दो आना।

इन्द्रियपराजयशतक।

मूल प्राकृत गाथायें और उसके नीचे भाषा कविता है। बड़ा ही उपदेश पूर्ण और वैराग्यमय ग्रन्थ है। इंद्रियोंपर विजय प्राप्त करनेके लिये प्रत्येक जीवको पढ़ना चाहिये। हिन्दी कविता कंठ करने योग्य है। मूल्य दो आना।

ज्ञानार्णव।

श्रीशुभचन्द्राचार्यकृत मूल और पं० पन्नालालजी वाकलीवाल कृत हिन्दी भाषावचनिका सहित। यह ग्रन्थ कई वर्षोंसे नहीं मिलता था, इस कारण फिरसे छपाया गया है। न्यो० चार रुपिया।

सृष्टिकर्तृत्वमीमांसा।

स्याद्वादवारिधि पं. गोपालदासजीका सृष्टि कर्त्तास्वण्डनविषयक लेख। न्यो० एक आना।

सज्जनचित्त वल्लभ।

यह ग्रन्थ कई वर्ष पहिले छपा था, किन्तु अब कई वर्षोंसे नहीं मिलनेके कारण फिरसे छपाया गया है। इसमें मूल पद्य उसके नीचे स्वर्गीय पं० मिहरचन्दजीका पद्यानुवाद, और सरल अर्थ है। अन्तमें यती नयनसुखजीका बनाया हुआ पद्यानुवाद भी लगाया गया है। वैराग्यका मनोहर ग्रन्थ है। मूल्य दो आना मात्र है।

पंचेंद्रिय संवाद।

ब्रह्मविलासमें जो पंचेंद्रिय संवाद है, वही ग्राहकोंकी फरमाइससे अलग छपाया गया है। पांचों इन्द्रियोंका परस्परका वार्त्तालाप पढ़ने योग्य है। मूल्य सिर्फ एक आना।

सब प्रकारकी पुस्तकें मिलनेका पता—

श्रीजैनग्रंथरत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग, पो० गिरगांव—बम्बई।

Reg. B. No. [illegible]

ॐ

जैनहितैषी ।

जैनियोंके साहित्य, इतिहास, समाज और
धर्मसम्बन्धी लेखोंसे विभूषित

मासिकपत्र ।

सम्पादक और प्रकाशक—श्रीनाथूराम प्रेमी ।

आठवाँ भाग ।	आषाढ श्रीवीर नि० संवत् २४३८	नौवां अंक

विषयसूची । पृष्ठ

सूचना—द्वितीय आषाढका अंक नहीं निकलेगा।

Printed by G. N. Kulkarni at his Karnatak Press,
No. 7, Girgaon Back Road, Bombay, for the Proprietors.

निम्नलिखित पुस्तकें तयार हो रही हैं।

द्यानतविलास (धर्मविलास)–बहुत ही सुन्दरता और शुद्धताके साथ निर्णयसागर प्रेसमें छप रहा है। आसोज तक तयार हो जायगा।

चरचाशतक—सुगम भाषाटीका और नकशों सहित निर्णयसागर प्रेसमें यह भी छप रहा है। शीघ्र तयार हो जायगा।

न्यायदीपिका—मूल और हिन्दी भाषाटीका सहित प्रेसमें दी जा चुकी है। शीघ्र ही तयार हो जायगी।

गोमट्टसार (कर्मकांड)–मूल और संक्षिप्त भाषाटीका सहित निर्णयसागरमें छप रहा है। ३९ फार्म छप चुके हैं।

प्रवचनसार—मूल, संस्कृत छाया, अमृतचन्द्रसूरि और जयसेनाचार्यकृत दो संस्कृत टीकाएँ, तथा पंडित हेमराजजीकृत भाषा टीका सहित छप रहा है। २९ फार्म छप चुके हैं।

सप्तव्यसन चरित्र—सोमसेनकृत संस्कृत ग्रन्थका हिन्दी अनुवाद छप रहा है। दश फार्म छप चुके हैं। एक महीनेमें तयार हो जायगा।

नेमिदूतकाव्य—विक्रमकविकृत मूल और हिन्दी अनुवाद सहित तयार है। शीघ्र ही प्रेसमें दिया जानेवाला है।

जैन बालबोधक प्रथम भाग।

लगभग एक वर्षसे यह पुस्तक हमारे पास बिलकुल नहीं थी। अब पांचवीं आवृत्ति छपके तयार है। अबकी बार इसकी कविता और भाषामें बहुत कुछ संशोधन किया है। मूल्य चार आना।

मिलनेका पता—**श्रीजैनग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय,**

हीराबाग, पो० गिरगांव–बम्बई।

जैनहितैषी।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम्।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम्॥

आठवां भाग आषाढ श्रीवीर नि० सं० २४३८ नौवां अंक.

चुने हुए उपदेश।

१. धन जीवनको आराम देनेके लिये है, न कि जीवन धन जमा करनेके लिये। एक बुद्धिमानसे लोगोंने पूछा कि "भाग्यवान् कौन है, और अभागी किसे कहते हैं?" उसने उत्तर दिया कि "भाग्यवान् वह है, जिसने खाया और बोया (अर्थात् दान दिया) और अभागी वह है, जो मर गया और छोड़ गया।"

२. दो मनुष्योंने व्यर्थ कष्ट सहा और व्यर्थ परिश्रम किया; एक उसने जिसने माल जमा किया परन्तु खाया नहीं, दूसरे उसने जिसने विद्या पढ़ी और अमल न किया। चाहे तू कितनी ही अधिक विद्या पढ़े, जब कि तू अमल नहीं करता तो नादान है—न बुद्धिमान होता है और न सत्यको प्राप्त कर सकता है। जिसपर कुछ किताबें लदी हों उस गधेको क्या ज्ञान और खबर है कि, मेरी पीठपर लकड़ियां लदी हैं या किताबें?

३. ज्ञान धर्मके पालनेके लिये है न कि सांसारिक आनंद लूटनेके लिये। जिस मनुष्यने सद्गुण, ज्ञान, और धार्मिकताको बेच दिया,

उसने एक खलियान रक्खा और सब जला दिया अर्थात् उसने उनको व्यर्थ खोया—उनका दुरुपयोग किया।

४. एक बुद्धिमान—पंडित—जो कि सांसारिक विषयोंमें फंसा रहता है, अंधे मशालचीके समान है. जो कि उससे दूसरोंको मार्ग दिखाता है और स्वतः (खुद) राह नहीं देखता। जिस मनुष्यने व्यर्थ उम्र खोई, उसने विना कोई वस्तु मोल लिये ही अपना रुपया खो दिया।

५. दश मनुष्य एक थालीमें खा सकते हैं, परन्तु दो कुत्ते बहुत सा खाना मिलने पर भी उसे शान्ततासे—विना लड़े—नहीं खा सकते। लोभी पुरुष सब संसारकी माया पालेनेपर भी भूखा ही रहता है और संतोषी एक रोटीसे ही तृप्त हो जाता है। बुद्धिमानोंने कहा है कि " असंतोषी धनिकसे संतोषी भिक्षुक कई गुणा अच्छा है।" जिस मनुष्यने विद्या पढ़ी और अमल न किया, वह उसके समान है कि जिसने हल जोता और बीज न बोया। अन्तःकरणकी शुद्धता विना, केवल शरीरशुद्धिसे परमात्माका ध्यान वा पूजन करना ऐसा है जैसे विना गरीका नारियल।

७. मूर्ख लोग बुद्धिमानोंको नहीं देख सकते: जैसे कि बाजारी कुत्ते शिकारी कुत्तेको देखकर भौंकते हैं और उसका साम्हना करनेकी शक्ति नहीं रखते हैं। अर्थात् जब नीच पुरुष किसीकी भलाई नहीं कर सकता, तो बदीसे उसके दोष ढूंढ़ने लगता है। अशक्त शत्रु अवश्य बुराई करता है। क्योंकि साम्हने तो बात करते समय उसकी जबान गूंगी हो जाती है।

८. जो बुद्धिमान मूर्खोंसे झगड़ा करे, उसे चाहिये कि इज्जत (मान) की आशा न रक्खे और यदि कोई मूर्ख कड़ी बातोंसे ज्ञानवान् पर प्रबल हो जाय, तो कुछ आश्चर्य नहीं। क्योंकि मूर्ख उस पत्थर-

के समान है, जो कि जवाहरातको तोड़ देता है। यदि कोई ज्ञानवान् किसी मूर्खसे अपमानित किया जाय, तो शोक नहीं करना चाहिये। यदि एक बुरा ढेला गिरकर सोनेकी रकाबीको फोड़ दे, तो न तो ढेलेकी कीमत बढ़ जाती है और न सोने (स्वर्ण) की कम हो जाती है।

९. इस संसारके प्राणियोंमें सबसे श्रेष्ठ मनुष्य और सबसे नीच कुत्ता माना गया है। परन्तु महात्माओंका कहना है कि, कृतघ्न (उपकार न माननेवाले) मनुष्यसे कृतज्ञ (उपकार माननेवाला) कुत्ता उत्तम है। कुत्ता एक रोटीके टुकड़ेका भी अहसान नहीं भूलता चाहे तुम उसे सैकड़ों बार भी पत्थरोंसे मारो। परन्तु कमीने (नीच)-की चाहे तुम उम्रभर परवरिश करो, तो भी वह जरासी बातमें तुमसे लड़नेको तैयार होगा। (गुलिस्तां)

भैयालाल जैन टीचर,

गाडरवारा।

विनोद-विवेक-लहरी।

(३)

स्त्रियोंका रूप।

अनेक स्त्रियां रूपके गर्वमें पृथ्वीपर पैर नहीं रखना चाहतीं। वे समझती हैं कि, हम जिस ओरसे कमरको बल देकर निकल जाती हैं, लावण्यकी तरंगोंमें उस ओरकी सुधबुध डूब जाती है और एक नूतन जगत्की सृष्टि होजाती है। उनके जीमें यह बात जमी हुई है कि, हमारे रूपकी आंधी जिस ओरको चलती है, उस ओरके

लोगोंका धैर्य–फूस उड़ जाता है और धर्म–कोट धराशायी होजाता है। जिस समय पुरुषोंके मनरूपी मैदानमें हमारे रूपकी बाढ़ आती है, उस समय उनका कर्म–जहाज, धर्म–नौका, बुद्धि–डोंगी सब ही डूब जाती है। केवल सौन्दर्याभिमानिनी कामिनीजनोंका ही यह विश्वास नहीं है–बहुतसे पुरुष भी जब स्त्रियोंकी मोहिनीशक्तिके वशीभूत होकर उनके रूपका वर्णन करना आरंभ करते हैं, तब विस्मित होना पड़ता है। वे आकाशके ज्योतिर्विमानोंकी और पृथ्वीके पर्वत पशु, पक्षी, कीट, पतंग, लता, गुल्मादिकोंकी उपमाओंके लिये खूब ही खींचातानी करते हैं और उनमेंसे बहुतोंको तो अपमानित करके लौटा देते हैं। वे पहले चन्द्रमाको रूपसी-ललनाओंके मुख-मंडलके साथ तुलना करनेके लिये आमंत्रित करते हैं और फिर उसे स्याहीके समान मलीन बतलाकर लौटा देते हैं। बेचारा चन्द्रमा अपना कलंक अपने साथ रखकर रातोंरात आकाशकी ड्यूटी पूरी करके छुप जाता है। सुन्दरियोंके ललाटके सिन्दूर-बिन्दुको देखकर वे सूर्यप्रभाकी निन्दा करते हैं। सूर्यदेव क्रोधके कारण पृथिवीको दग्ध करके चले जाते हैं। वे रसमयी रमणियोंके मुखकी हँसीके साम्हने फूले हुए कमलोंमें सूर्यकी किरणोंके नृत्यको वा विकसित कुमुदमें कौमुदी (चांदनी) के नृत्यको कोई चीज नहीं समझते हैं; शायद तबहीसे कमल कुमुदोंमें कीटपतंगोंका निवास होगया है। कामिनियोंके कंठहारका निरीक्षण करके वे तारागणोंका अपमान करते हैं। इससे मालूम होता है कि, भविष्यतमें वे ज्योतिषका अनुशीलन करना छोड़कर सुनारोंकी विद्या सीखनेमें मन लगावेंगे। रंगिनी-ललनाओंके शरीरसंचालनमें वे इतनी लावण्यलीलाका अवलोकन करते हैं कि, उसके साम्हने चांदनी रातमें मन्द मन्द आन्दोलित वृक्षोंके पत्रोंपर अथवा चंचल

सरिताकी हिल्लोलोंपर दिखलाई देनेवाली चन्द्रिका-क्रीड़ाको भी कुछ नहीं समझते हैं। इसीलिये वे रातको सो जाते हैं और पानी भरभर-कर नदियोंको सुखा देना चाहते हैं। और जिस समय वे रमणियोंके नेत्रोंका वर्णन करते हैं, उस समय मलयपवनमें हिलते हुए नील कमलोंकी तो बात ही क्या है, संसारका कोई भी पदार्थ उन्हें अच्छा नहीं लगता है।

इन नारीमूर्तियोंके स्तवन करनेवालोंकी जो उपमानुभवशक्ति है, उसकी भी प्रशंसा किये विना नहीं रहा जाता। एक नेत्र उनकी कल्पनाके प्रभावसे कभी पक्षी जैसे खंजन, चकोर; कभी जलचारी जैसे मछली; कभी वनस्पति जैसे पद्म, पलाश, इन्दीवर; कभी जड़ पदार्थ जैसे आकाशके तारे,—बन जाते हैं। एक चन्द्रमा कभी रमणियोंका मुखमंडल और कभी उनके पैरोंका नख बन जाता है। ऊंचा कैलासशिखर और छोटीसी कमल-कलिका ये दोनों एक ही अंगके उपमा-स्थल हैं। परन्तु कवियोंको जब इतनेसे भी संतोष नहीं होता है, तब वे अनार, कदम्ब, हाथीका मस्तक आदि विषम उपमाएं ढूंढ़ते हैं। जलचारी छोटासा पक्षी हंस और स्थलचारी प्रकाण्ड पशु हाथी, इनकी चालमें स्वभावसे ही बड़ी भारी विषमता है। परन्तु कवियोंकी दृष्टिमें ये दोनों ही रमणीकुल-चरण-विन्यासका अनुकरण करनेवाले हैं। साधारण हाथीकी गतिसे ही इन हंसगामि-नियोंकी गतिकी समानता बतलानेमें उन्हें संतोष नहीं होता है; किन्तु जो हाथी हाथियोंका राजा होता है, उसके साथ इन गजेन्द्र-गामिनियोंकी गतिका मिलान किया जाता है! सुना है, हाथी एक दिनमें बहुत लम्बी सफर कर सकता है; घोड़ा आदि कोई पशु उतनी नहीं कर सकता। जिन्हें दूरकी मंजिल तय करना पड़ती है,

वे इन गजेन्द्रगामिनियोंकी पीठपर चढ़के क्यों नहीं जाते है? क्यों जी, जहां कहीं रेल नहीं हुई है, वहां बीच बीचमें गजगामिनी स्त्रियोंकी डांक लगानेका प्रबन्ध क्यों नहीं किया जाता है?

मैं भी किसी समय कामिनीभक्त कवि था। उस समय मुझे रमणीके समान सुन्दर और कोई भी वस्तु नहीं दिखलाई देती थी। चम्पक, कमल, कुन्द, शिरीष, कदम्ब, गुलाब आदि पुष्प उस समय कामिनीकान्तिग्रथित पुष्पमालिकाके समान मनोहर नहीं मालूम होते थे। वसन्तकी कुसुमवती वसुमती (पृथ्वी) से भी मैं कुसुमवती युवतीपर अधिक प्यार करता था और वर्षाकी उच्छ्वसित सलिला चिररंगिनी तरंगिनीसे भी रसवती रमणीका अधिक पक्षपाती था। परन्तु इस समय मेरे वे विचार नहीं रहे हैं। मुझे अब दिव्यज्ञान हो गया है। मायामय मानव मंडलका इन्द्रजाल छिन्न करके अब मैं बाहर आगया हूं। धीवरके दुर्बल जालको काटकर जिस प्रकार महामच्छ पलायन कर जाता है, क्षुद्र मकड़ीके जालमेंसे जिस तरह गुबरीला निकल भागता है, और दुरन्त बैल रस्सी तोड़ पानेपर जिस तरह पूंछ उठाकार पलायन करता है, उसी प्रकार मैं भी इस जालसे निकल सिरपर पैर रखके भाग आया हूं। कहनेकी जरूरत नहीं है कि, यह सब महा महिमामयी अफीमका प्रसाद है। हे माता अफीम देवी, तुम्हारा भंडार भरपूर रहे। तुम प्रतिवर्ष सोनेके जहाजपर विराजमान होकर चीनदेशको कृतार्थ किया करो, जापान, साइबेरिया, यूरोप, अमेरिका सब ही तुम्हारे अधिकारमें आजावें और तुम्हारे नामकी देशमें जयन्ती मनाई जावे। पर माता, अपने कमलाकान्तको न भूल जाना। इसको अपने चरणोंमें ही रखना। आज मैं तुम्हारी कृपासे सबके उपकारके लिये दो चार मनकी बातें, कहना चाहता हूं।

मेरी बातें सुनकर केवल स्त्रियां ही क्यों बहुतसे पुरुष भी मुझे पागल बतलावेंगे। भले ही बतलावें, मेरी क्या हानि है? जो कोई नई बात कहता है, वह पागल कहलाता ही है। **गालिलिओने** कहा था पृथ्वी घूमती है; इटालीका भद्रसमाज, धर्मसमाज और पंडितसमाज सुनकर हँसने लगा और सबने स्थिर कर लिया कि, गालिलिओकी बुद्धिमें कुछ अन्तर आगया है। परन्तु समयका स्रोत बह गया! अब इटालीका कोई समाज पृथ्वीका घूमना सुनकर नहीं हँसता है और गालिलिओको भी अब कोई पागल नहीं समझता है।

सौन्दर्यके विषयमें सब ही कोई स्त्रियोंकी प्रधानता स्वीकार करते है। विद्या, बुद्धि, और बलमें पुरुषोंकी श्रेष्ठता स्वीकार करके भी रूपका तिलक स्त्रियोंकेही मस्तकपर लगाया जाता है। मेरी समझमें यह बड़ी भारी भूल है। मैंने दिव्यदृष्टिसे देखा है कि, पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंका रूप बहुत ही निकृष्ट है। हे मानमयी महिलाओ, कहीं इस अपराधके कारण तुम अपने कुटिल कटाक्षोंसे कालकूट वर्षण करके मुझे दग्ध नहीं कर डालना, काली नागिनके समान वेणीके द्वारा मुझे बांध नहीं लेना, अथवा क्रोधित होकर भ्रूधनुषपर तीक्ष्ण बाणोंकी योजना करके मुझे विद्ध नहीं कर डालना। तुम्हारी निन्दा करनेमें मुझे भय मालूम होता है। मारी रोककर यदि तुम अपनी नथुनीका फंदा फैला रक्खो, तो न जाने कितने हाथी उलझकर तुम्हारी नाकसे लटक सकते है। फिर बेचारा कमलाकान्त तो किस गिनतीमें है। यदि तुम्हारी नथका लोलक खिसककर गिर पड़े, तो एक आध आदमीका खून होजाना कोई बड़ी बात नहीं है। चन्द्रहारका यदि एकाध चांद स्थान-च्युत होकर किसीके ऊपर गिर पड़े, तो उसके हाथपैर टूट जाना असंभव नहीं है। इसलिये मुझपर क्रोध नहीं करना। और हे रमणी-प्रिय, कल्पना-

प्रिय, उपमाप्रिय कविगण, आप लोग अपनी स्त्रीदेवीकी सुखमयी सुवर्ण-मयी प्रतिमाके भंग करनेके अपराधमें मुझे मारनेके लिये उद्यत न हो जाना। मैं सप्रमाण सिद्धकर दूंगा कि, तुम कुसंस्काराविष्ट पौत्तलिक (मूर्तिपूजक) हो। क्योंकि तुम उपास्य देवताकी प्रकृतमूर्तिको छोड़कर विकृत प्रतिमूर्तिकी पूजा करते हो।

जिनके सुन्दर बाल होते है, वे नकली बनावटी बालोंको उप-योगमें नहीं लाते हैं। जिनके उज्ज्वल और सुदृढ दांत होते हैं, उन्हें बनावटी दांतोंकी जरूरत नहीं होती। जिनका वर्ण यों ही लोगोंके मनको हरण करता है, उन्हें 'पाउडर' लगाकर लावण्यवृद्धिका उपाय नहीं करना पड़ता है। जिनके नेत्र होते हैं, उन्हें कांचके नेत्रोंका आश्रय लेनेकी आवश्यकता नहीं होती। इस प्रकार जिसके पास जो वस्तु होती है, वह उसके लिये ललचाता नहीं है। जो यह समझता है कि, प्रकृतिने उसे किसी पदार्थसे वंचित रक्खा है, वही अपनी कमी पूरी करनेके लिये उपाय करता है। यह सब देख सुनकर मैंने निश्चय कर लिया है कि, स्त्रियोंमें सौन्दर्यका अत्यन्त अभाव है। वे निरन्तर अपने रूपको बढ़ानेके उपायोंमें ही लगी रहती हैं। किस उपायसे हम सुन्दरी मालूम होंगी, इस चिन्तामें वे पागलसी बनी रहती हैं। अच्छे २ आभूषण कैसे मिलें, यही उनकी निरन्तर भावना रहती है—यही उनकी चेष्टा रहती है; अधिक क्या कहा जाय आभूषण ही उनका जप, आभूषण ही उनका तप, आभूषण ही उनका ध्यान और आभूषण ही उनका ज्ञान है। अपने शरीरको सुसज्जित करनेके लिये जो इतना प्रयत्न करती हैं, उनमें प्रकृत सौन्दर्यकी अधिकता होगी, यह मेरी समझमें तो नहीं आता है। जिसकी नाक सुन्दर नहीं होती, उसीको नाकमें नथरूपी रस्सीसे नोलक जगन्नाथको

झुलानेकी रुचि होती है। जिसके कान सुन्दर नहीं होते, उसीको अपने कानोंमें कर्णफूलरूपी नाना फलफूलपशुपक्षीविशिष्ट बगीचोंका जोड़ा लटकाना पसन्द आता है। जिसका वक्षःस्थल मनोहर नहीं होता, उसीको उसपर सात लड़की फांसी डालकर पुरुष-जातिको विशेष-कर दूध पीनेवाले बच्चोंको भयभीत करनेका उपाय करना पड़ता है। यदि वे अलंकारोंके विना ही आपको सुन्दरी समझतीं, तो अलंकारोंका बोझा लादनेके लिये कभी इतनी व्यग्र न होतीं। पुरुष भूषणोंके विना सन्तुष्ट रहता है, परन्तु स्त्रियां भूषणोंके विना मनुष्य-समाजके सम्मुख मुँह दिखलानेमें भी लज्जित होती हैं। अतएव स्त्रियोंके निजव्यवहारसे मालूम होता है कि, पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रीजाति सौन्दर्यमें बहुत निकृष्ट है।

प्रकृतिकी रचनापद्धतिकी समालोचना करनेमे यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है कि, स्त्रीजातिकी अपेक्षा पुरुषजाति अधिक सुन्दर है। जिस विस्तीर्ण चन्द्रकलाप (मोरकी पूंछ) को देखकर जलदमुकुट इन्द्रधनुष भी लज्जित होता है, वह मयूरके ही होता है—मयूरीके नहीं। जिस केसरसे सिंहकी इतनी शोभा है, वह सिंहनीके नहीं होती है। जिस कन्धरसे बैलकी कान्ति बढ़ती है, वह गायके नहीं होता है। मुर्गेके जैसी सुन्दर कलगी और पंखे होते हैं, वैसे मुर्गीके नहीं होते। इस प्रकार जब देखा जाता है कि, उच्चश्रेणीके जीवोंमें स्त्रियोंकी अपेक्षा पुरुष अधिक सुन्दर होते हैं, तब केवल मनुष्योंकी रचना करते समय विधाताने इस नियमका भंग किया होगा, यह समझमें नहीं आता है। विद्यासुन्दर नाटकके रचयिता महाशय, क्या तुम्हारे मनमें यही तत्त्व उदित हो गया था? इसी लिये क्या तुमने अपने नाटकके नायकका नाम 'सुन्दर'

रक्खा था ? तुम क्या यह बात समझ गये थे कि, स्त्री चाहे जितनी विद्यावती क्यों न हो, पुरुषके स्वाभाविक सौन्दर्य और ज्ञानके आगे उसे पराजित होना ही पड़ता है ?

सुन्दरताकी बहार जवानीमें होती है। किन्तु हे रूपान्ध ललनाओ, कहो तो, तुम्हारी जवानी कितने दिन टिकती है ? मेरी समझमें तो वह समुद्रके ज्वारके समान आते आते ही चली जाती है। बीस हुए कि, तुम्हारा ज्वार उतरा। थोड़े ही दिनोंमें तुम्हारे अंग शिथिल हो जाते हैं। बुढ़ापा शीघ्र ही आकर तुम्हारे गलेकी लावण्य-माला छीन ले जाता है। पुरुषमें चालीस पैंतालीसपर जो ओज वा सुन्दरता रहती है, वह तुममें बीस पच्चीसके ऊपर खोजनेसे भी नहीं मिलती है। तुम्हारे रूपकी स्थिति सौदामिनी (बिजली) अथवा इन्द्रधनुष्यके समान बहुत थोड़े समय तक रहती है।

जो लोग रूपका उपभोग करनेमें उन्मत्त रहते हैं, उनके कष्टका थोड़ा बहुत अनुभव हम भोजन करते समय कर सकते हैं। सबसे बड़ा दुःख यह है कि, भोजन थालीमें आते आते ही ठंडा हो जाता है। इसी प्रकार सौन्दर्यरूप भात प्रणय–कलारूप थालीमें आते आते ही ठंडा हो जाता है, फिर क्या मजाल जो उसे कोई खा लेवे ! निदान वस्त्रालंकारादिरूप " आमलीका रस ' मिला कर तथा थोड़ासा आदररूप लवण डाल कर किसी प्रकार उसे गलेके नीचे उतारते हैं।

हे सौन्दर्यगर्वित महिलाओ, सच सच तो कहो, क्षणस्थायी होनेके कारणसे ही क्या तुम अपने रूपका इतना आदर करती हो? तुम्हारा रूप अच्छी तरहसे देखते न देखते, अच्छी तरहसे उपभोग करते न करते अन्तर्हित हो जाता है, क्या इसी कारण लोग

उसके लिये प्यासे पपीहेके समान उन्मत रहते हैं? तुम्हारा रूप वैसा धन है, जो विना जाना हुआ होता है और खो जाता है। क्या इसीलेये तुम उसका असली मूल्य नहीं बतला सकती हो? केवल क्षणस्थायी पदार्थ होनेके कारण ही नहीं, एक दूसरे कारणसे भी स्त्रियोंके सौन्दर्यने मनोहर मूर्ति धारण की है। आज तक जितने ग्रन्थकारोंका मत संसारमें मान्य समझा गया है, वे सब ही पुरुष थे, स्त्री नहीं। इसलिये उन्होंने कामिनियोंके रूपका वर्णन अनुरागदृष्टिसे किया है। मजनूकी अनुरागदृष्टिमें बदसूरत लैला परियोंसे भी बढ़कर थी। जो रमणियां प्रणयकी वस्तु हैं, उन्हें सहजके नेत्रोंसे कौन देखेगा? सुन्दर दर्पणके प्रभावसे कुत्सित वस्तु भी अच्छी दिखने लगती है। मनोमोहिनियोंका रूप प्रीतिका अंजन आंजकर देखना चाहिये, फिर पुरुषोंकी अपेक्षा उसका माधुर्य क्यों न अधिक प्रतीत होगा?

हे प्रणयदेव, पाश्चात्य कवियोंने तुम्हें अन्ध बतलाया है। और है भी यह ठीक। तुम्हारे प्रभावसे लोगोंको अपनी प्यारी वस्तुके दोष नहीं दिख सकते हैं। जिनके नेत्र तुम्हारे अंजनसे रंजित रहते हैं, वे निरन्तर विश्वविमोहक पदार्थोंसे घिरे रहते हैं। विकट मूर्तिको वे देखते हैं कि वह मनोहर है। कर्कशस्वरका अनुभवन करते हैं कि वह सुमधुर है। भूतनीकी अंगभंगीको देखकर कहते हैं कि, यह मृदु-मन्द समीरसे डोलती हुई ललित लवङ्गलताकी लावण्यलीलासे भी अधिक सुखकर है। इसीलिये चीनदेशमें चपटी नाकका आदर होता है, इसीलिये विलायती बीबियोंके ताम्रवर्णबालों और कंजे नेत्रोंपर लोग लट्टू होते हैं, इसीलिये हबशियोंके देशमें मोटे होठोंका सन्मान है, और इसीलिये इस देशमें गोदना—गोदित मिस्सी-कलंकित

चन्द्रवदनका आदर है। यदि स्त्रियां अपने मनकी बातोंको पुरुषोंके समान मुंहपर लाती होतीं, तो हे प्रणयदेव, हम और किसी तरह नहीं, तो तुम्हारे प्रभावसे ही यह अवश्य सुनते कि, पुरुषोंके सौन्दर्यके आगे स्त्रियोंका रूप कुछ भी नहीं है। यद्यपि मनके गुप्त भाव वचन द्वारा प्रकाशित करनेमें स्त्रियोंको बहुत ही संकोच होता है, तो भी कार्यद्वारा उनके आन्तरिक गूढ़ विचार बाहिर हो जाते हैं। यह कौन नहीं जानता कि, स्त्रियाँ परस्परका सौन्दर्य तो स्वीकार नहीं करती हैं, परन्तु पुरुषोंकी भक्त हो जाती हैं। इससे क्या यह सिद्ध नहीं होता है कि, वास्तवमें वे स्त्रियोंके रूपकी अपेक्षा पुरुषोंके रूपकी अधिक पक्षपातिनी हैं?

रूप ही रूपमें स्त्रियोंका सर्वनाश हुआ है। सब यही समझते हैं कि, रूप ही स्त्रियोंका अमूल्य धन है। रूप ही स्त्रियोंका सर्वस्व है। इसीलिये स्त्रियां जिस किसी इच्छित वस्तुको मांगती हैं, लोग उसे केवल रूपके बदलेमें देना चाहते हैं। इसीसे ही संसारमें मनुष्यसमाजको कलंकित करनेवाली वाराङ्गनाओं वा वेश्याओंकी सृष्टि हुई है। और इसीसे परिवारमें स्त्रियोंको दासत्व प्राप्त हुआ है।

इस बातको अब हम नहीं सुनना चाहते कि, क्षणस्थायी सौन्दर्य ही स्त्रियोंकी एकमात्र पूंजी, और संसार सागरसे पार होनेका एकमात्र नौ-यान (जहाज) है। बहुत दिनों सुना, सुनते २ कान अघा चुके हैं--अब और नहीं सुन सकते। हम यह सुनना चाहते हैं कि, नारी जातिमें जो गुण हैं, वे उनके रूपकी अपेक्षा सौ गुणे, हजार गुणे, लाख गुणे, और करोड़ गुणे महत्त्वके हैं। हम सुनना चाहते हैं कि, स्त्रियां मूर्तिमती सहिष्णुता, भक्ति, और प्रीति हैं।

जिन्होंने देखा है कि, वे कितने कष्ट सहन करके सन्तानका पालन करती हैं, जिन्होंने देखा है कि, वे कितने प्रयत्न और परिश्रमसे रोगी कुटुम्बियोंकी सेवा सुश्रूषा करती हैं, उन्होंने स्त्रियोंकी सहिष्णुताका थोड़ा बहुत परिचय अवश्य पाया होगा। जिन्होंने किसी सुन्दरीको पतिपुत्रोंके लिये जीवन विसर्जन और धर्मके लिये बाह्यसुख विसर्जन करते देखा है, उन्होंने थोड़ा बहुत अवश्य समझा होगा कि, किस प्रकारकी प्रीति और भक्ति स्त्रियोंके हृदयमें निवास करती है।

जब हम सोचते हैं कि, कुछ दिन पहिले हमारे देशकी स्त्रियां कोमलाङ्गी होकर भी अपने पति पुत्रों और कुटुम्बियोंके लिये अपने जीवनका उत्सर्ग कर देती थीं—अपने सुखकी अपेक्षा दूसरोंके सुखको महत्त्वका समझती थीं, उसमय हमारे हृदयमें एक नवीन आशाका उदय होता है कि, जब महत्त्वका बीज हमारे अन्तरंगमें छुपा हुआ है, तब क्या हम आज नहीं कल भी अपना महत्त्व नहीं दिखला सकेंगे? हे भारतललनागण, तुम भारतकी सारभूत मणियां हो। तुम्हें झूठे रूपके लिये भटकते फिरनेकी क्या आवश्यकता है? तुम्हारे लिये यह योग्य भी नहीं है।

श्रीकमलाकान्त चक्रवर्ती।

कर्नाटक-जैन-कवि।

(गत छट्ठे अंकसे आगे)

२९ **राजादित्य**—ईस्वी सन् ११२० के लगभग इस कविके अस्तित्वका पता लगता है। राजवर्म, भास्कर और वाचिराज इसके नामान्तर हैं। पद्यविद्याधर इसका उपनाम था। इसके पिताका नाम

श्रीपति और माताका **वसन्ता** था। कोंडि मंडलके 'पूविन बाग' में इसका जन्म हुआ था। यह **विष्णुवर्धन** राजाकी सभाका प्रधान पंडित था। विष्णुवर्धनने ईस्वी सन् ११०४ से ११४१ तक राज्य किया है। कविके समक्ष उसका राज्याभिषेक हुआ था। अपने आश्रयदाता राजाकी इसने एक पद्यमें बहुत प्रशंसा की है और उसको सत्यवक्ता, परहितचरित, सुस्थिर, भोगी, गंभीर, उदार, सच्चरित्र अखिलविद्यावित् और भव्यसेव्य बतलाया है। यह कवि गणित शास्त्रका बड़ा भारी विद्वान् हुआ है। कर्नाटक कवि-चरित्रके लेखकका कथन है कि, कनड़ी साहित्यमें गणितका ग्रन्थ लिखनेवाला यह सबसे पहला विद्वान् था। इसके बनाये हुए व्यवहारगणित, क्षेत्रगणित. व्यवहाररत्न. जैनगणितसूत्रटीकोदाहरण, चित्रहसुगे और लीलावती ये गणित ग्रन्थ प्राप्य हैं। ये सब ग्रन्थ प्रायः गद्यपद्यमय हैं। इसका व्यवहारगणित नामक ग्रन्थ बहुत ही अच्छा है। इसमें गणितके त्रैराशिक, पंचराशिक, सप्तराशिक, नवराशिक, चक्रवृद्धि आदि सम्पूर्ण विषय हैं और वे इतनी सुगम पद्धतिसे बतलाये गये हैं कि, गणित जैसा कठिन और नीरस विषय भी सहज और सरस हो गया है। कविने अपनी विलक्षण प्रतिभासे इस ग्रन्थको केवल पांच ही दिनमें बनाकर तयार किया था, ऐसा इसके एक पद्यसे प्रतीत होता है। यद्यपि इस कविका कोई काव्य ग्रन्थ नहीं मिलता है, तो भी उक्त ग्रन्थोंके पद्य देखकर विश्वास होता है कि यह कवि भी अच्छा था। व्यवहारगणितके प्रत्येक अध्यायके अन्तमें इसने इस प्रकार थोड़ासा गद्य दिया है,–"**इति श्रीशुभचन्द्रदेवयोगीन्द्रपादारविन्दमत्तमधुकरायमानमानसानन्दितसकलगणिततत्त्वविलासे विनेयजननुते श्रीराज्यादित्यविरचिते व्यव-**

हारगणिते–इत्यादि।" इससे मालूम होता है कि, कविके गुरुका नाम **श्रीशुभचन्द्रदेव** था और ये संभवतः वे ही शुभचन्द्र हैं जिनका वर्णन श्रवणबेलगुलके ४३ वें शिलालेखमें आया है और जिनकी मृत्यु ईस्वी सन् ११२३ में बतलाई गई है।

३० **कीर्तिवर्मा**—ईस्वी सन् ११२५ में इस कविके अस्तित्वका पता लगता है। यह चालुक्यवंशीय (सोलंकी) महाराज **त्रैलोक्यमल्ल**-का पुत्र था। त्रैलोक्यमल्लने १०४४ से १०६८ तक राज्य किया है। इसके चार पुत्र थे–विक्रमांकदेव (१०७६ से ११२६), जयसिंह, विष्णुवर्धन–विजयादित्य और कीर्तिवर्मा। कीर्तिवर्मा त्रैलोक्यमल्लकी जैनधर्मकी धारण करनेवाली **केतलदेवी** रानीके गर्भसे उत्पन्न हुआ था। केतलदेवीने सैकड़ों जैनमन्दिर बनवाये थे और जैनधर्मकी प्रभावनाके लिये अनेक कार्य किये थे। उसके बनवाये हुए मन्दिरोंके खंडहर और उनके शिलालेख अब भी उसके नामका कर्नाटक प्रान्तमें स्मरण कराते हैं। कीर्तिवर्माके बनाये हुए ग्रन्थोंमेंसे इस समय केवल एक **गोवैद्य** नामक ग्रन्थ प्राप्य है। इसमें पशुओंके विविध रोगोंका और उनकी चिकित्साका विस्तारपूर्वक वर्णन है। इससे जान पड़ता है कि, वह केवल कवि ही नहीं वैद्य भी था। गोवैद्यके एक पद्यमें उसने आपको कीर्तिचन्द्र, वैरिकरिहरि, कन्दर्पमूर्ति, सम्यक्त्वरत्नाकर, बुधभव्यबान्धव, वैद्यरत्नपालभवन्द्य (?) कविताब्धिचन्द्र, कीर्तिविलास आदि विशेषण दिये हैं। वैरिकरिहरि विशेषणसे बोध होता है कि, वह बड़ा भारी वीर तथा योद्धा भी था। उसने अपने गुरुका नाम **देवचन्द्रमुनि** बतलाया है। श्रवणबेलगुलके ४० वें शिलालेखमें राघवपाण्डवीय काव्यके कर्त्ता श्रुतकीर्ति त्रैविद्यके समकालीन जिन देवचन्द्रकी स्तुति की है, हमारी समझमें वे ही कीर्तिवर्माके गुरु होंगे।

३१ **ब्रह्मशिव**–यह ईस्वी सन् ११२९ के लगभग हुआ है। **कीर्तिवर्म** और **आहवमल्ल** नरेशका यह समकालीन था। यह वत्सगोत्री ब्राह्मण था। इसके पिताका नाम अग्गलदेव था। पहिले यह वैदिकमतका अनुयायी था। और फिर उसे निःसार समझकर लिंगायतमतका उपासक होगया था। इस समयतक वह वेदस्मृति पुराण आदि नाना ग्रन्थोंका अध्ययन कर चुका था। परन्तु उसे इन ग्रन्थोंसे कुछ संतोष नहीं हुआ। लिंगायत मतको भी उसने यथार्थ नहीं समझा, और निदान उसने स्याद्वादानुयायी जैनधर्मको ग्रहण करके अपने आत्माको सन्तुष्ट वा शान्त किया। इसका बनाया हुआ एक **समयपरीक्षा** नामका ग्रन्थ मिलता है, जिसमें शैव वैष्णवादि मतोंके पुराणग्रन्थों तथा आचारोंमें दोष बतलाके जैनधर्मकी प्रशंसा की है। इस ग्रन्थकी कविता बहुत ही सरल और ललित है। कनड़ी भाषाका यह महाकवि समझा जाता है। **समयपरीक्षासे** संस्कृतका भी यह अच्छा विद्वान् था, ऐसा मालूम होता है। निम्न लिखित गद्यसे मालूम होता है कि, इसके गुरु श्रीवीरनन्दि मुनि थे:—

“ इदु भगवदर्हत्परमेश्वरचरणस्मरणपरिणतान्तःकरणवीरनन्दिमुनीन्द्रचरणसरसीरुह-षट्चरण-मिथ्यासमयतीव्रतिमिरचण्डकिरण-सकलागमनिपुण-महाकविब्रह्मशिवविरचितसमयपरीक्षायां:–”

ये वीरनन्दि चन्द्रप्रभकाव्यके कर्त्ता नहीं, किन्तु दूसरे मेघचन्द्र त्रैविद्यदेवके पुत्र होंगे जिनकी कि मृत्यु ईस्वी सन् १११५में हुई थी, ऐसा अनुमान होता है।

३२ **कर्णपार्य**–समय ईस्वी सन् ११४०। इसके कण्णप, कर्णप, कण्णमय, कण्णमय्य, आदि नामान्तर हैं, जो इसके ग्रन्थोंमें अगह

जगह पाये जाते हैं। 'किलेकिल' दुर्गके स्वामी गोवर्धन वा गोपन राजाके विजयादित्य, लक्ष्मण वा लक्ष्मीधर, वर्धमान और शान्ति नामके चार पुत्र थे। कवि इनमेंसे लक्ष्मीधरका आश्रित कवि था। इस कविके बनाये हुए नेमिनाथपुराण, वीरेशचरित्र और मालती-माधव नामक तीन ग्रन्थ कहे जाते हैं, परन्तु इस समय केवल एक नेमिनाथपुराण ही उपलब्ध है। इसमें २२ वें तीर्थंकर नेमिनाथका चरित्र है। ग्रन्थ चम्पूरूप है और उसमें १४ आश्वास हैं। यह ग्रन्थ कविने अपने परिपोषक राजा लक्ष्मीधरकी प्रेरणासे बनाया है, ऐसा प्रशस्तिसे मालूम होता है। इसमें लक्ष्मीधरराजाकी और श्रीकृष्णकी समता बतला कर स्तुति की गई है। लक्ष्मीधरके गुरु **नेमिचन्द्र** मुनि थे और कविके गुरु **कल्याणकीर्ति** थे। कल्याणकीर्ति मलधारि गुणचन्द्रके शिष्य और **मेघचन्द्र** त्रैविद्यदेवके जो कि १११९ में मृत्युको प्राप्त हुए हैं, सतीर्थ वा सहपाठी थे, ऐसा श्रवण-बेलगुलके ३९में शिलाशासनसे मालूम होता है। गुणचन्द्र भुवनैकमल्ल राजा (१०६९ से १०९७ तक) के समयमें उनके गुरु थे। इसकी कविता सुगम और ललित है। रुद्रभट्ट (११८०), अण्डय्य (१२३९), मंगरस (१५०९), और दोड्डय आदि कवियोंने इसकी प्रशंसा की है।

* **द्वितीय नागवर्म**—समय ईस्वी सन् ११४५। यह जातिका जैनब्राह्मण था। इसके पिताका नाम दामोदर था। चालुक्यनरेश जगदेमल्लका यह कटकोपाध्याय (?) और जन्न कविका गुरु था। अभिनव शर्ववर्म, कविकर्णपूर और कवितागुणोदय ये इसकी उपा-

* जैनहितैषीके पांचवे अंक पृष्ठ २१० में इस कविका जो वर्णन आया है, वह अधूरा है। यहां पूरा किया जाता है।

धियां थीं। वाणिवल्लभ (१२००), जन्न, साल्व आदि कवियोंने इसकी स्तुति की है। इसके बनाये हुए काव्यावलोकन, कर्नाटकभाषाभूषण और वस्तुकोश नामके तीन ग्रन्थ हैं। काव्यावलोकन अलंकारका ग्रन्थ है। इसमें ९ अध्याय हैं। पहिले भागमें कनड़ीका व्याकरण है। नृपतुंग (अमोघवर्ष)के अलंकारशास्त्रकी अपेक्षा यह विस्तृत है। कर्नाटक भाषाभूषण संस्कृतमें कनड़ी भाषाका उत्कृष्ट व्याकरण है। मूलसूत्र और वृत्ति संस्कृतमें है—और उदाहरण कनड़ीमें हैं। उपलब्ध कनडी व्याकरणोंमें जो कि संस्कृत सूत्रोंमें है, यह सबसे पहिला और उत्तम व्याकरण है। इसीको आदर्श मानकर सन् १६०४ में भट्टाकलंक (द्वितीय) ने कनड़ीका वृहत् व्याकरण (शब्दानुशासन) संस्कृतमें बनाया है। वस्तुकोश कनड़ी भाषामें प्रयुक्त होनेवाले संस्कृत शब्दोंका अर्थ बतलानेवाला पद्यमय निघण्टु वा कोश है। वररुचि, हलायुध, शाश्वत, अमरसिंह आदिके ग्रन्थ देखकर इसकी रचना की गई है।

(क्रमश.)

जैन लाजिक (न्याय)।

(२)

इन्द्रभूति गौतम (६०७—५१५ ईस्वीसे पूर्व)

२. कहते हैं कि, महावीर स्वामीके उपदेश और सिद्धांतोंको जो जैन शास्त्रोंमें वर्णन किए जाते हैं उनके एक शिष्य इन्द्रभूतिने एकत्रित किए हैं। ये शिष्य प्रायः गौतमके नामसे प्रसिद्ध हैं।

---

१ **अथ सत्यार्थसम्पन्नं श्रुतार्थं जिनभाषितम्।**
द्वादशाङ्गश्रुतस्कन्धं सोपाङ्गं गौतमो व्यधात्॥
(जैन हरिवंशपुराण।)

ये केवेली थे और महावीर स्वामीके मुख्य गणधर थे। इनके पिताका नाम ब्राह्मण **वसुभूति** और माताका ब्राह्मणी **पृथिवी** था। ये मगध देशमें **गोर्वर** नामक ग्राममें पैदा हुए थे और महावीरस्वामीके निर्वाणके १२ वर्ष पश्चात् ९२ वर्षकी अवस्थामें इनका

इन्द्रभूति गौतम और सुधर्मस्वामी दोनोंने मिलकर जैन शास्त्रोंको सम्पादन किया था, परंतु इन्द्रभूति उसी दिन केवली हो गए अर्थात उन्होंने केवल-ज्ञान प्राप्त कर लिया, जिस दिन महावीर स्वामीका निर्वाण हुआ। इस कारण वे अपने गुरु महावीरके पदपर आरूढ नहीं हुए और उसको अपने धर्मभ्राता सुधर्मस्वामीके सुपुर्द किया–

इन्द्रभूतिप्रभृतीनां त्रिपदीं व्याहरत् प्रभुः ॥

(हेमचंद्रकृत महावीरचरित्र अध्याय ५, हस्तलिखित प्रति मुनि धर्मविजय व इन्द्रविजयजीसे मांगी हुई।)

१ "पूर्ण ज्ञानके प्रोफेसर"—इस उपाधिके विषयमें विशेष जाननेके लिये आर. जी. भांडारकरकी सन-१८८३–१८८४ की रिपोर्टके पृष्ठ १२२ को देखो।

यत् प्रज्ञाप्रसरेऽतिशायिनि तथा प्रालेयशैलोज्ज्वले
जैनी गौरचरित्र यद्यपि यथा सद्यः पदैः कोटिशः।
अङ्गोपाङ्गमहोदया समभवत्त्रैलोक्यसंचारिणी
वन्द्योऽसौ गणभृज्जगत्त्रयगुरुर्नाम्नेन्द्रभूतिः सताम् ॥४॥

(सिद्धजयती–चरित्र टीका)

पिटरसन साहबकी तृतीय रिपोर्ट (पृष्ठ ११०.)

श्रीमन्तं मगधेषु गोर्वर इति ग्रामोऽभिरामः श्रिया
तत्रोत्पन्नप्रसन्नचित्तमनिशं श्रीवीरसेवाविधौ।
ज्योतिः संश्रयगौतमान्वयवियत्प्रद्योतनद्योमणिं
तापोत्तीर्णसुवर्णवर्णवपुषं भक्त्येन्द्रभूतिं स्तुवे ॥

(गौतमस्तोत्र जिनप्रभसूरि कृत, काव्यमालासप्तमगुच्छक।)

४. इन्द्रभूति गौतमके विषयमें विशेष जानना हो, तो सितम्बर सन् १८-८२ के इन्डियन एंटिकुयेरीके अंक ११ में डाक्टर क्लाटकी खरतरगच्छकी पट्टा-

राजगृही (राजगिर) के गुणावा ग्राममें देहान्त हुआ था। यह मान-कर कि महावीर स्वामीने ईस्वीसन्से ५२७ वर्ष पूर्व निर्वाण पद प्राप्त किया, इन्द्रभूतिकी उत्पत्ति ईस्वीसन्से ६०७ वर्ष पूर्व और मृत्यु ५१५ वर्ष पूर्व होनी चाहिए।

जैनियोंके धर्मशास्त्र।

४. जैनियोंके शास्त्र जो प्रायः धार्मिक समझे जाते हैं, ४५ सिद्धान्तों अथवा आगमोंमें विभाजित हैं। और वे ११ अंग, १२ उपांग, इत्यादिमें बँटे हुए हैं। ये बालकों, स्त्रियों, वृद्धों और मूर्खोंके लाभार्थ अर्द्धमागधी या प्राकृत[1] भाषामें बनाए गए थे। इसी उद्देश्यसे बौद्धधर्मके शास्त्र भी प्रारंभमें मागधी या पाली भाषामें लिखे गए थे। ऐसा माना जाता है कि, आदिमें अंगोंकी संख्या ११ थी। बारहवां अंग जो 'दृष्टिवाद' अंग कहलाता था, संस्कृतमें[2] लिखा गया था।

५. **दृष्टिवाद**—दृष्टिवाद अंग अब नहीं रहा है। इसके ५ भाग थे। प्रथम भागमें तर्कशास्त्रका कथन बताया जाता है। ऐसा

वलीको और वेबर साहबकी जरमन भाषाकी पुस्तकके पृष्ठ ९८३ व १०३० को देखो, जहां जिनदत्तसूरिके 'गणधरसार्धशतकम्' पर सर्वराजगणिकी वृत्ति और खरतरगच्छकी "श्रीपट्टावलीवाचना" दी हुई है।

१. हरिभद्रसूरि अपनी दशवैकालिकवृत्तिके तीसरे अध्यायमें लिखते हैं कि:—

बालस्त्रीवृद्धमूर्खाणां नृणां चारित्रकाङ्क्षिणाम्।
अनुग्रहार्थं तत्त्वज्ञैः सिद्धान्तः प्राकृतः स्मृतः॥

२. वर्द्धमानसूरि अपने आचारदिनकरमें आगमसे यह उद्धृत करते हैं:—

मुत्तूण दिट्ठिवायं कालिय उक्कालियंग सिद्धंतं।
थीबालवायणत्थं पाइय मुइयं जिणवरेहिं॥

प्रसिद्ध है कि, दृष्टिवाद अंग स्थूलभद्रके समयमें जिनका तपगच्छ पट्टावलीके अनुसार उस वर्षमें देहांत हुआ जिसमें नौवां नन्द चंद्रगुप्तसे मारा गया। अर्थात् ईस्वी सन्से ३२७ वर्ष पूर्वमें वह पूर्ण विद्यमान था। ईस्वी सन् ४७४ तक दृष्टिवाद अंग सर्वतया लोप हो गया। दृष्टिवादमें किस प्रकारसे तर्कशास्त्रका कथन किया गया है, इसका कुछ पता नहीं है।

६. जैनियोंके ४९ प्राकृत शास्त्रोंमेंसे कईमें न्याय विषयका कथन किया गया है। अनुयोगद्वारसूत्र, स्थानांगसूत्र, नन्दीसूत्र, इत्यादिमें नयका वर्णन किया है। नंदीसूत्र, स्थानांगसूत्र, भगवती[४] सूत्र इत्यादिमें प्रमाणके पूरे भेद किये गए हैं।

---

१. धनपतसिंह कलकत्ता द्वारा प्रकाशित नंदिसूत्रके चूर्णिक पृष्ठ ४७५ को और पिटरसन साहबकी संस्कृत हस्तलिखित ग्रन्थोंकी चौथी रिपोर्ट पृष्ठ १३६ को देखो।

२. दृष्टिवाद (जिसको प्राकृतमें दिट्ठिवाद कहते हैं) के, पूर्ण इतिहासके लिए वेबर साहबके जैनियोंके धर्मशास्त्रोंको देखो। जिनका वेयर स्मिथने मई १८९१के इन्डियन एंटिकुयेरीके वीसवें अंकके पृष्ठ १८०—१९२ में अनुवाद किया है।

३. अनुयोगद्वार सूत्रमें नयके सात भेद किये गये हैं:—१ नैगम, २ सङ्ग्रह, ३ व्यवहार, ४ ऋजुसूत्र, ५ शब्द, ६ समभिरूढ, ७ एवंभूत। इन शब्दोंके अर्थके लिये उमास्वातिकृत तत्त्वार्थाधिगम (२१-२६) में देखो, जिसमें नयको सात प्रकारसे विभाजित करनेके स्थानमें प्रथम उसके ५ भेद किए हैं, फिर उन पांचमेंसे एकके अर्थात् शब्दके ३ भेद किये है।

४. स्थानांग सूत्रमें ज्ञानके दो भेद किए है:—१ प्रत्यक्ष, २ परोक्ष। प्रत्यक्षके फिर दो भेद किये है:—१ केवलज्ञान, २ अकेवलज्ञान। अकेवलज्ञानके दो भेद किए हैं:—१. अवधिज्ञान, २ मनःपर्य्ययज्ञान। परोक्ष ज्ञानके दो भेद किए हैं:—१ अभिनिबोध (मतिज्ञान), ५ श्रुतज्ञान (देखो स्थानांगसूत्र पृष्ट ४५-४८ व नंदीसूत्र पृष्ठ १२०-१३४ धनपतसिंह द्वारा कलकत्तेमें प्रकाशित, उमास्वातीके विषय में जो कुछ लिखा है उसे भी देखो।)

७ हेतु—यद्यपि हेतु शब्द इन प्राकृत ग्रन्थोंमें पाया जाता है परन्तु इन ग्रन्थोंमें इसका जो प्रयोग किया गया है उससे यह प्रगट होता है कि उस समयमें इस शब्दके कोई खास ठीक २ अर्थ नहीं हुए थे। स्थानांगसूत्रमें[1] यह शब्द न केवल युक्तिके अर्थमें किन्तु प्रमाण और अनुमानके पर्य्यायवाची शब्दके तौर पर भी प्रयोग किया गया है। हेतु प्रमाणके अर्थमें चार प्रकारका वर्णन किया जाता है:—१ प्रत्यक्ष, २ अनुमान, ३ उपमान, ४ आगम।

८ जब हेतु अनुमानके तौरपर लाया जाता है, तब निम्न लिलिखित रीतिसे कहा जाता है:—

१ यह है, कारण कि वह है। वहां अग्नि है कारण कि वहां धूम है।

२ यह नहीं है, कारण कि वह है। यह ठंडा नहीं है कारण कि वह अग्नि है।

३ यह है कारण कि वह नहीं है। यहां ठंडा है कारण कि अग्नि नहीं है।

४ यह नहीं है, कारण कि वह नहीं है। यहां शिंशप (शीशम) वृक्ष नहीं है कारण कि वहां वृक्ष ही नहीं है। (क्रमशः)

दयाचन्द गोयलीय, बी. ए.

---

१ अथवा हेऊ चउव्विहे पण्णत्ते तं जहा। पच्चक्खे अनुमाणे उवमे आगमे। अथवा हेऊ चउव्विहे पण्णते तं जहा अत्थितं अत्थि सो हेऊ अत्थितं णत्थि सो हेऊ णत्थि तं अत्थि सो हेऊ णत्थि तं णत्थि सो हेऊ। (स्थानांगसूत्र पृष्ठ ३०८–३१० धनपतसिंहद्वारा कलकत्तेमें प्रकाशित)

धन और विद्या ।

(१)

मानवनगरीमें हुआ, उत्सव एक महान ।
दूर दूरके बहुतसे, जुड़े धनिक धीमान ॥
जुड़े धनिक धीमान, सभामें बैठे सब ही ।
विद्या औ धन लगे, अचानक लड़ने तब ही ॥
बीच बचावा किया बहुत, पर बात न सम्हरी ।
वचन-युद्धसे हुई, शब्दमय मानव-नगरी ॥

(२)

विद्यासे धनने कहा, क्यों करती तकरार ।
तुझसे मेरे रहत हैं, चाकर बीस हजार ॥
चाकर बीसहजार, पलें करुणासे मेरी ।
आना कानी करूं, दाल फिर गले न तेरी ॥
है सब विधि मुहताज, अरी विद्या तू मेरी ।
मैं हूं जगमें श्रेष्ठ, बजै मेरी ही भेरी ॥

(३)

तू मतवाला जगतमें, रे कृतघ्न मतिमंद ।
मेरे बिन चलता नहीं, तेरा ठीक प्रबन्ध ॥
तेरा ठीक प्रबन्ध, कहूं तुझको समझाकर ।
हीरा समझा जाय, पारखीके बिन पत्थर ॥
पाता सद्‌गति, वृद्धि, सदा मेरी संगतिसे ।
नाहक तू गरवाय, कहै विद्या यों धनसे ॥

(४)

सुन तू विद्या बावरी, क्या समझाऊं तोहि ॥
करता पर उपकार मैं, मुझसा हुआ न होहि ॥

मुझसा हुआ न होहि, मनुज गजराज चढ़ाऊं ।
जो है मेरा भक्त, उसे नरराज बनाऊं ॥
रहती निर्धन सदा, न समझै मेरे गुण तू ।
जा धनिकोंके निकट, द्रव्य-महिमाको सुन तू ॥

(५)

हंसकर विद्या भनत तब, देखा तव उपकार।
जैसी तव करतूत है, जानै सब संसार ॥
जानै सब संसार, करै तू जिसपर छाया ।
करतबसे गिर जाय, अजब तेरी है माया ॥
आलसयुत तू करै, बनावै तूही तसकर।
अद्भुत तव उपकार, कहै विद्या यों हंसकर ।

(६)

करती विद्या तू मुझे, नाहक ही बदनाम।
निकल पडूं मैं जिधरसे, लाखों करैं सलाम ॥
लाखों करैं सलाम, राजती जाय जहांपर।
दान, धर्म, सुखवृद्धि, बहुतविध करूं तहांपर ॥
उल्टी सीधी बात, सदा धनकी है चलती ।
भिखमँगनी मतिहीन, डाह क्यों मुझसे करती ॥

(७)

सुनकर ऐसे वचन, रोषयुत विद्यारानी।
कहके 'शेखीखोर' फेर उससे बतरानी ॥
तुझको पाकर मूढ़, बता कितने ऐसे हैं।
अमर किया निज नाम, जाय सुरलोक बसे हैं ॥
पर विद्याके परभावसे, लाखों ही ऐसे हुए ।
कर धवल धराको सुयशसे, अमर-नगर-वासी हुए ॥

(८)

सुनकर उनकी बहस, एक ऋषि ऐसे बोले।
वचन समय अनुसार, नीतिरस पगे अमोले॥
होता है क्या लाभ, वृथा झगड़ा करनेसे।
चले न गाड़ी कभी, एक पहिया फिरनेसे॥
है लाल यही शिक्षा तुम्हें, मिलकरके दोनों चलो।
करके उन्नति संसारमें, सुखी रहो फूलो फलो॥

पन्नालाल जैन,
लश्कर (ग्वालियर)

ग्रन्थावलोकन।

(१)

संसार बीच यदि कोइ पदार्थ सार,
संग्राह्य है उभय लोक सुधारकार।
तो जान लो कि वह सम्यक् ज्ञान ही है,
अज्ञान घोर तमनाशक भानु ही है॥

(२)

सत्संगसे नर सुबुद्धि अनेक पाते।
या ग्रन्थपाठ करके उसको बढ़ाते।
ज्ञानाभिवृद्धि–पथ दो सुखगम्य ये हैं।
लाते मनुष्यपन दिव्य मनुष्यमें हैं॥

(३)

सत्संग प्राप्त सब ठौर कहो कहां है?,
ग्रन्थावलोकन सुमित्र! जहां तहां है।

त्यों ही सुप्राप्ति इसकी सब कालमें है,
सत्संगसे सुलभ यों यह हालमें है ॥

(४)

आपत्तिमें सुखद मंत्र यही बताता,
दे ज्ञान-चक्षु शुभ-मार्ग यही दिखाता।
निष्काम-कार्य-पथ-तत्परबुद्धिदाता,
ग्रन्थावलोकन समान न और भ्राता ॥

(५)

मारे बिना अथ च कोप किये बिना ही,
देते सुग्रन्थ उपदेश अमोल ग्राही।
द्रव्यादि किन्तु तुमसे नहिं मांगते हैं,
त्यों ही न और बदला कुछ चाहते हैं ॥

(६)

पूछो कभी वह कदापि नहीं छिपाते,
भूलो निरन्तर तथापि दया दिखाते।
अज्ञानता लख कभी न हंसी उड़ाते,
जाओ समीप जब ही तब ही सिखाते ॥

(७)

विद्वान धार्मिक स्वदेश-स्वजाति-बन्धु,
उद्योगशील शुचि शुद्ध-चरित्रसिन्धु।
होता वही समझ लो स्वपरोपकारी,
जो भाग्यवान जन, पुस्तकप्रीतिधारी ॥

(८)

आदर्शरूप गुरु ग्रन्थ त्वदीय सेवा,
देती अवश्य जनको शिव-स्वर्ग-मेवा।

हैं धन्य वे नर सुकीर्ति सुख्याति पावैं,
जो ग्रन्थ बांचकर स्वात्म-स्वरूप ध्यावैं॥

शिवसहाय चतुर्वेदी।

वनस्पतिमें क्या पांचों इंद्रियां हैं ?

हितैषीके पिछले सातवें अंकमें श्री विधुशेखरशास्त्रीका 'जैनदर्शनके जीवतत्त्वका एकांश' शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ है, उसमें महाभारतके कुछ श्लोक उद्धृत किये गये हैं, जिससे मालूम होता है कि, वृक्षादि वनस्पतियोंमें एक नहीं पांचों इंद्रियां हैं। इस लेखमें महाभारतकी दी हुई युक्तियोंकी आलोचना करके हम यह देखना चाहते हैं कि, वनस्पतियों एक स्पर्शनेन्द्रिय ही है अथवा पांचों इंद्रियां हैं।

पहले यह जान लेना बहुत आवश्यक है कि, इन्द्रिय किसे कहते हैं-उसका स्वरूप क्या है। क्योंकि जबतक हम इन्द्रियोंको ही नहीं समझेंगे, तब तक वे अमुक जीवमें हैं या नहीं; इसका निर्णय ही कैसे कर सकेंगे।

आत्माके लिङ्ग वा चिह्नको इन्द्रिय कहते हैं। अर्थात् आत्माकी पहिचान इन्द्रियसे होती है। संसारी जीवोंके ऐसी कोई अवस्था नहीं है, जिसमें कोई न कोई इंद्रिय न रहती हो। कमसे कम एक स्पर्शनेन्द्रिय तो प्रत्येक जीवके होती है। साधारणतः इन्द्रियोंके पांच भेद हैं। स्पर्शन, जीभ, नाक, आंख और कान। जिससे ठंडे गरम, चिकने और खुरदरे आदिका ज्ञान होता है, उसको स्पर्शनेन्द्रिय कहते हैं; जिससे खारे, खट्टे, चिरपरे आदि रसोंका ज्ञान होता है, उसे जीभ वा रसना कहते हैं; जिससे सुगंधि दुर्गन्धिका अनुभव

होता है, उसे नाक वा नासिका कहते हैं; जिससे काले, पीले, नीले, हरे आदि वर्णोंका तथा चौकोने, तिकोने आदि आकारोंका ज्ञान होता है, उसे आंख कहते हैं; और जिससे अक्षर शब्द आदिका ज्ञान होता है, उसे कान कहते हैं। ये सब इंद्रियां द्रव्य और भावरूप दो २ प्रकारकी हैं। द्रव्येन्द्रिय भी दो तरहकी होती हैं– निवृत्ति और उपकरण और भावेन्द्रियके भी दो भेद हैं–लब्धि और उपयोग। इन सबको अच्छी तरह समझनेके लिये एक आंखको ले लीजिये। आंखमें जो शरीरकी आंखरूप रचना है उसे, और उसमें जो आत्माके प्रदेशोंकी आंखके आकाररूप रचना है उसे, निर्वृत्ति कहते हैं। तथा आंखमें जो काला (पुतली) और सफेद मंडल होता है उसे, और पलक वगैरह होते हैं उन्हें, उपकरण कहते हैं। उपकरण इंद्रिय निर्वृत्तिइन्द्रियका उपकार करती है–उसकी रक्षा करती है। अभिप्राय यह कि जीवोंके शरीरमें जो आंख, कान आदिकी बनावट दिखलाई देती हैं और जिसके द्वारसे पदार्थका विविधरूप ज्ञान होता है, उसे द्रव्येन्द्रिय कहते हैं। उक्त सब इन्द्रियोंके ज्ञानको ढँकनेवाला एक कर्म होता है। यह कर्म जिससे कुछ उघड़ता है (क्षयोपशम रूप होता है), उसे लब्धि कहते हैं और इस उघड़नेसे आत्माका ज्ञान जो अपने विषयकी ओर रुजू होता है, उसे उपयोग कहते हैं। तात्पर्य यह कि, आत्माकी वह शक्ति जिससे कि वह ऊपर कही हुई द्रव्येन्द्रियके द्वारा पदार्थका ज्ञान करता है, उसे भावेन्द्रिय कहते हैं। अर्थात् द्रव्येन्द्रिय ज्ञानका द्वार है और भावेन्द्रिय ज्ञानरूप है। ये दोनों इन्द्रियां एक दूसरेकी अपेक्षा रखती हैं। जब दोनों होती हैं, तब ही ज्ञान होता है। द्रव्येन्द्रिय नहीं हो अथवा उसमें कुछ विकार होगया हो, तो भावेन्द्रियके होते हुए भी अर्थात् ज्ञानका क्षयोपशम और उपयोग होते हुए भी स्पर्श रसा-

दिका ज्ञान नहीं हो सकता है। इसी प्रकारसे बाह्य इंद्रिय होते हुए भी क्षयोपशम वा उपयोगका अभाव होनेसे स्पर्शादिका ज्ञान नहीं हो सकता है।

ये द्रव्यभावादि भेद आंखके समान अन्य सब इंद्रियोंमें भी होते हैं।

इंद्रियोंका स्वरूप आप समझ चुके, अब महाभारतका यह श्लोक देखिये:—

वाय्वग्न्यशनिनिर्घोषैः फलं पुष्पं विशीर्यते।
श्रोत्रेण गृह्यते शब्दस्तस्माच्छृण्वन्ति पादपाः॥

इस श्लोकसे वृक्षोंके कर्णेन्द्रिय सिद्ध की गई है। वे कहते हैं कि, "वायुके शब्दसे, अग्निके शब्दसे और बिजलीके कड़कनेसे वृक्षोंके फलफूल सूख जाते हैं, और शब्द कानके द्वारा ही ग्रहण किया जाता है, इससे मालूम होता है कि, वृक्ष सुनते हैं।" अनेक दार्शनिकोंने शब्दको आकाशका गुण माना है। जान पड़ता है कि, इसी भ्रमपूर्ण विश्वासपर महाभारतकारने अपनी युक्तिकी इमारत खड़ी की है। परन्तु वास्तवमें शब्द आकाशका गुण नहीं है। वह पौद्गलिक स्कन्धोंके परस्पर टकरानेसे उत्पन्न होता है। किसी भी शब्दकी उत्पत्ति स्कन्धोंकी (परमाणुसमूहकी) टक्करके विना नहीं होती है। शब्द अपने उत्पत्तिस्थानके समीपके स्कन्धोंमें हर-कत उत्पन्न करके उन्हें भी शब्दरूप करते हैं और फिर वे शब्द-परिणतस्कन्ध अपने २ आसपासके स्कन्धोंमें धक्का देते हैं—इस तरह परम्परासे शब्दस्कन्ध कानोंकी झिल्ली तक पहुंचते हैं–और वहां जीवको अपना ज्ञान कराते हैं। एक लम्बी लकड़ीमें बहुतसे बराबर धागे २ बांध कर उसके छोरोंपर काठकी या और किसी चीजकी गोलियां लटकाओ। फिर एक छोरकी गोलीको अपनी

ओर खींचकर छोड़ दो, तो वह गोली अपने पासकी दूसरी गोलीको और दूसरी तीसरीको इस तरह अन्त तककी सब गोलियोंको धक्का देकर आगेकी ओर हटाती है। ठीक इसी तरह, एक शब्द-परिणतस्कन्ध दूसरेको और दूसरा तीसरेको शब्दशक्तियुक्त करता हुआ प्राणियोंके कानोंतक पहुंचता है। 'फोनोग्राफ' 'विना तारका तार' आदि यंत्रोंके प्रत्यक्ष प्रयोगोंने तो इस विषयको अब सर्वथा निर्विवाद सिद्ध कर दिया है कि, शब्द पौद्गलिक है। वर्तमानका उन्नत विज्ञान इससे सहमत नहीं हो सकता कि, शब्द आकाशका गुण है।

वायु अग्नि बिजली आदिके शब्दोंसे फूलोंका झड़ जाना तो हमने सुना है, परन्तु सूखजाना कहीं नहीं सुना। परन्तु यदि थोड़ी देरके लिये ऐसा मान लिया जाय कि, कोई वृक्ष ऐसे भी होंगे जिनके फल फूल सूख जाते होंगे, तो भी इससे यह सिद्ध नहीं होता है कि, वे शब्दोंको सुनते हैं। किन्तु यह जान पड़ता है कि बिजली आदिके शब्दोंका जो कि पौद्गलिक हैं वृक्षोंसे स्पर्श होता है और उसका असर उनके फल फूलोंपर इस प्रकारका होता है कि, वे सूख जाते हैं। जिस तरह लजनू वा लज्जावनी अपने पत्तोंको किसीके स्पर्श होनेसे सिकोड़ लेती है, और कमल सूर्यप्रकाशके स्पर्शसे खिल जाता है, उसी प्रकारसे कोई २ वृक्ष ऐसे भी होंगे, जिनके फल फूल बिजली आदिके शब्दस्पर्शसे सूख जाते होंगे। यह बहुत संभव है कि, बिजली आदिके कड़कनेसे हवा आदिमें इस तरहकी खासियत आजाती होगी, जिसका असर वृक्षोंके लिये अहितकर होता होगा। एक पाश्चात्य विद्वानने यूरोपमें इस प्रकारके वृक्षका पता लगाया है, जिसमें भूकम्प होनेके महीनों पहले एक खास प्रकारका असर होता है और उससे मालूम हो जाता है कि, अब

भूकम्प होनेवाला है। इससे यदि कोई यह अनुमान कर लेवे कि, उक्त वृक्षको भविष्यका ज्ञान हो जाता है, तो बड़ी गलती होगी। वास्तवमें भूकम्प होनेके पहिले वायुमें एक विशेष प्रकारका परिणमन होता है और उसका असर उक्त वृक्षपर दृष्टिगोचर होने लगता है। इसी प्रकार वायु बिजली आदिके शब्दोंका भी उन वृक्षोंपर जिनके फल फूल सूख जाते है, कुछ असर पड़ता है। यह नहीं कि वे उन्हें सुनकर अपने फल फूलोंको सुखा देते हैं। सूख जाना दूसरी बात है और सुनना दूसरी। कानका विषय शब्दका अनुभव करना है यह जानना कि शब्द हुआ। शब्द सुनकर उसमें अपने हिताहितकी कल्पना करके सूख जाना संभव हो सकता है। परन्तु यह नियम नहीं हो सकता कि, शब्द सुनकर ही सूखना होता है। इसके सिवाय वृक्षोंके हिताहितका विचार भी तो नहीं है।

आगे नेत्र इंद्रियकी सिद्धिके लिये कहा है:—

वल्ली वेष्टयते वृक्षं सर्वतश्चैव गच्छति।
न ह्यदृष्टस्य मार्गोस्ति तस्मात्पश्यन्ति पादपाः॥

अर्थात् "बेल वा लता वृक्षको वेष्टित करती है और सब ओरको गमन करती है। दृष्टिहीन व्यक्तिको मार्ग नहीं सूझता है. अतएव वृक्ष देखते हैं!" हमारी समझमें गमन करनेरूप कार्यमें नेत्र कारण नहीं हो सकते हैं। नेत्र होते हैं, इसी लिये लताएँ वृक्षपर चढ़ती हैं, यह कोई बात नहीं है। नेत्र न होनेपर भी उनके चढ़नेमें कोई बाधा नहीं आ सकती है। नेत्रहीन मनुष्य चलते फिरते दिखलाई देते हैं, बल्कि लताएँ तो बेसिलसिले चाहे जिस ओरको चढ़ जाती हैं परन्तु कोई २ नेत्रहीन मनुष्य तो विना भूले अपने इच्छित स्थानपर पहुंच जाते हैं।

नेत्र इंद्रियका कार्य देखना है और देखना काले पीले हरे नीले रंगोंका तथा तिकौने चौकाने आदि आकारोंका होता है। यह हो सकता है कि, मनुष्योंको छोड़कर दूसरे जीव जिनके नेत्र होते हैं, यह नहीं जान सकें कि यह हरा रंग है या पीला, परन्तु उन्हें वर्णरूप अनुभव अवश्य होता है। वनस्पतिको वर्ण तथा आकारका अनुभव कदापि नहीं हो सकता और न इसका कोई प्रमाण दे सकता है कि, उसे रूपका ज्ञान होता है। वृक्षोंमें आंखका कोई नियत स्थान नहीं है, जिसके द्वारा वे रूपका अनुभव कर सकें। फिर यह कैसे संभव हो सकता है कि लता देख-करके वृक्षपर चढ़ती है। बात तो यह है कि, लताओंका वृक्षपर चढ़ना उनकी स्पर्शनेन्द्रियका कार्य है। जितने जीव हैं, वे सब अव-स्थाके अनुसार बढ़ते हैं, तदनुसार लताएँ भी बढ़ती हैं, और जिस ओरको उन्हें अवकाश तथा सहारा मिलता है, उस ओरको बढ़ती हैं। यदि एक पोले बांसकी नलीके भीतर एक लता कर दी जाय, तो वह उसीमें एक सीधमें ऊपरको बढ़ जायगी, यह नहीं होगा कि, वह नलीको देखकर उसमें जाना छोड़कर बाहर हो जाय और दूसरी ओरको बढ़ने लगे। क्योंकि उसके नेत्र इंद्रिय नहीं है।

कर्ण इंद्रियके सिद्ध करमें जो युक्ति दी है, उसीके समान महा-भारतकारकी यह युक्ति भी बिलकुल निर्बल है। भ्रमरके आंख होती है। यदि उसकी ओर उंगली दिखलाते हैं, तो वह भागता है। जब तक वनस्पतिमें भी इसी प्रकारकी किसी हरकतका होना बत-लाया जाय, तब तक उसमें नेत्र इंद्रिय सिद्ध नहीं हो सकती।

पुण्यापुण्यैस्तथा गन्धैर्धूपैश्च विविधैरपि।
अरोगाः पुष्पिताः शान्त तस्माज्जिघ्रन्ति पादपाः॥

अर्थात् "बुरी भली गन्ध और विविध प्रकारकी धूपोंसे वृक्ष नीरोग होकर फूलते हैं। इससे मालूम होता है कि, वे सूघते हैं।" इससे वृक्षोंके नासिका इंद्रिय सिद्ध की गई है। परन्तु यह युक्ति भी किसी कामकी नहीं है। फूलने और नीरोग होनेसे नाकका क्या सम्बन्ध? नाकका कार्य तो पदार्थकी सुगन्धि दुर्गन्धिका अनुभव करना है, नीरोग होना वा फूलना नहीं है। मनुष्योंके भी बहुतसे रोग ऐसे होते हैं, जो रोगीके अंगपर किसी पदार्थका धुआँ वा गन्ध लगनेसे आराम हो जाते हैं। पर इसका मतलब यह नहीं है कि, उस धूप-को सूंघनेसे वे आराम होते हैं। वृक्षोंमें जो रोग होते हैं, वे यदि कृमिजन्य हों, तो तीक्ष्ण गन्धके संयोगसे कृमि नष्ट हो जानेके कारण आराम हो ही जाते होंगे, इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है। फूलना कार्य भी वृक्षकी स्पर्शनेन्द्रियका है। जैसे शीतकी अधिकतासे मनुष्यके रोम खड़े हो जाते हैं, उसी प्रकार सुगन्धित परमाणुओंके स्पर्शसे कोई २ वृक्ष भी फूल जाते होंगे। इंद्रियां ज्ञानात्मक हैं। घ्राणेन्द्रिय सिद्ध करनेके लिये भी वृक्षमें कोई ज्ञानात्मक फल बतलाना चाहिये। नीरोग होना, पुष्पित होना, शान्त होना आदि सब शरीरसे सम्बन्ध रखते हैं। इनसे वृक्षके घ्राणेन्द्रिय सिद्ध नहीं हो सकती है।

पादैः सलिलपानाच्च व्याधीनाञ्चैव दर्शनात्।
व्याधिप्रतिक्रियत्वाच्च विद्यते रसनं द्रुमे॥
व्यक्तेनोत्पलनालेन यथोर्द्ध्वं जलमाददेत्।
तथा पवनसंयुक्तः पादैः पिबति पादपः॥

अर्थात् "वृक्ष अपनी जड़ोंसे पानी पीते हैं, उन्हें व्याधियां होती हैं और उनका निवारण भी होता है, अतएव उनके रसना इन्द्रिय होती है। कमलकी नालसे जिस तरह छोटे २ छिद्रोंके द्वारा

जल ऊपर खिंचता है, उसी तरह वृक्ष भी वायुके संयोगसे जड़ों-के द्वारा जलपान करते है।" इससे ऐसा मालूम होता है कि, व्यासजी पानी पीने आदिको ही जीभका कार्य समझते थे। रसना-का कार्य जो रसका अनुभव करना–यह जानना कि यह खट्टा है, मीठा है, चिरपिरा है इत्यादि–इसकी ओर उनकी दृष्टि नहीं थी। यहीं क्यों प्रत्येक इन्द्रियके सिद्ध करनेमें उन्होंने यही भूल की है। पानी हम नाकसे भी पी सकते हैं, बहुतसे योगी गुदाद्वारसे पानीका आकर्षण कर लेते हैं। पर इससे क्या हम यह समझ लेवें कि, नाक आदि स्थानोंमें रसना इंद्रिय है। वास्तवमें पानी पीना शरीरका कार्य है, रसनाका नहीं। वृक्षोंको रोग होते हैं, सो उनके शरीरमें होते हैं। और विशेष प्रकारके खाद्य आदि देनेसे उनका रस उनकी जड़ोंके द्वारा शरीरमें ही पहुंचता है और इससे उनका रोगवि-कार नष्ट हो जाता है। इसमें जीभका कोई सम्बन्ध नहीं। जब तक यह न बतलाया जाय कि, वृक्षोंको इसका अनुभव होता है और वृक्षकी अमुक हरकतसे वह मालूम होता है, तब तक वृक्षके रसना इंद्रिय सिद्ध नहीं हो सकती।

महाभारतके उक्त सब श्लोकोंसे केवल वृक्षोंकी चेतनता और उनकी एक स्पर्शनेन्द्रिय सिद्धि होती है। और एक इंद्रियके सिवाय दूसरी कोई इंद्रिय वृक्षके है भी नहीं।

अन्तमें हम विद्वानोंसे प्रार्थना करते हैं कि, वे जैनधर्मके जन्तु-विज्ञानशास्त्रका बारीकीसे अवलोकन करें और उसे वर्तमान विज्ञान-की शोधोंसे तथा दूसरे दर्शनोंके प्राचीन सिद्धान्तोंसे मिलान करें। हमको विश्वास है कि ऐसा करनेसे उन्हें मालूम होगा कि, जैनधर्म केवल धर्म ही नहीं है, वह एक उच्चश्रेणीके विज्ञानका भंडार है।

सम्पादकीय टिप्पणियां।

कलकत्तेमें स्मृतिसमारोह।

कलकत्तेके सुप्रसिद्ध अटर्नी (सॉलिसिटर) बाबू धन्नूलालजी अगरवालाने अपनी पूज्य माताके स्वर्गवास होनेके उपलक्ष्यमें ता० १ जूनसे ४ जून तक एक स्मृति-समारोह किया था। जैनियोंमें यह बिलकुल नई बात थी, और यह बतलाती थी कि, जैनियोंका शिक्षितसमुदाय वर्तमान देशकालके अनुरूप उन्नति करनेके पथपर अग्रसर होने लगा है। वह समझने लगा है कि, अब केवल ब्रह्म-भोज तथा ऐसे ही दूसरे निरर्थक कार्य्योंमें रुपया बरबाद करनेसे हमारी उन्नति नहीं हो सकेगी। अब अपने प्रत्येक जातीयव्यवहारमें और प्रत्येक रीति-रवाजमें अपने उद्देशोंको प्रगट करना चाहिये। इस स्मृति-समारोहमें बाबू धन्नूलालजीने स्याद्वादवारिधि पं० गोपालदासजी, बाबू अर्जुनलालजी सेठी बी. ए., कुँवर दिग्विजयसिंहजी, पंडित माणिकचन्द्रजी आदि विद्वानोंको बहुत आग्रह और सत्कारके साथ बुलवाया और कलकत्तेके प्रसिद्ध २ जैनेतर विद्वानोंके समक्ष उनके जैनधर्मसम्बधी व्याख्यान दिलवाये और कलकत्तानगरीमें यह घोषित कर दिया कि, जैनधर्म भी एक ऐसा धर्म है, जिसकी फिलासफी बहुत ऊंचे दर्जेकी है और उसके जाननेवाले तथा अच्छी तरहसे समझानेवाले भी जैनियोंमें मौजूद हैं। इस समारोहसे यह भी प्रगट हो गया कि, शिक्षितोंके और आशिक्षितोंके कार्योंमें जमीन आसमानका अन्तर होता है। जिस कार्यको अशिक्षित धनिक केवल मूर्खोंमें बाहवाही लूटनेके लिये करते हैं, उसीको शिक्षित पुरुष अपनी जाति धर्म और देशकी उन्नतिपर लक्ष्य रखके स्थायी लाभके लिये करते हैं। बाबू साहबने इस उत्सवमें लगभग आठ

हजार रुपयाका दान किया और वह न केवल जैनियोंकी ही संस्थाओंको दिया किन्तु सर्वसाधारणकी उपयोगी संस्थाओंको भी देकर अपने विशाल हृदयका परिचय दिया।

सत्कार, व्याख्यान, शंकासमाधानादि।

पूज्यवर पं० गोपालदासजी ता० ३१ मईको कलकत्ता पहुंचे। स्टेशनपर उनका अपूर्व सत्कार हुआ। लगभग १५० सज्जन जिनमें कलकत्तेके प्रायः सब ही प्रतिष्ठित जैनी थे पंडितजीके स्वागतके लिये गये थे। पंडितजी कारणवश कलकत्तेमें लगभग १६ दिन रहे। इस बीचमें उनके कई पब्लिक व्याख्यान हुए, बहुतसे आर्यसमाजी तथा दूसरे भाइयोंके शंकासमाधान होते रहे और जैनसिद्धान्त सम्बन्धी चर्चा तो प्रायः निरन्तर ही होती रही। आपकी पब्लिकसभाओंमें कलकत्तेके नामी २ विद्वान्, पंडित, प्रोफेसर, वकील, वैरिस्टर आदि उपस्थित होते थे। बाबू अर्जुनलालजी सेठी तथा कुँवर दिग्विजयसिंहजीके भी कई प्रभावशाली और महत्त्वके व्याख्यान हुए। गरज यह कि कलकत्तेमें इस बार जैनधर्मकी खूब ही प्रभावना हुई।

सुप्रसिद्ध विद्वानोंके विचार और सभापतिकी वक्तृता।

ता० ४ जूनको कलकत्तेमें जो पब्लिक सभा हुई, उसके सभापति महामहोपाध्याय पं० शतीशचन्द्र विद्याभूषण, एम. ए., पी. एच. डी. बनाये गये थे। इस सभामें स्याद्वादवारिधि पं० गोपालदासजीका 'दिगम्बरजैनसिद्धान्त' के विषयमें एक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण व्याख्यान हुआ। इस व्याख्यानकी प्रशंसामें जस्टिस सर गुरुदासजी बनर्जीने जो कि कलकत्तेके ही नहीं, भारतवर्षके रत्न समझे जाते हैं, जो कुछ कहा, वह जैनधर्मके अनुयायियोंके लिये अभिमानका विषय है। आपने कहा—"मैंने आज जो परमतत्त्व पंडि-

तजीके मुखसे सुने हैं, वे अत्यन्त गंभीर और महत्त्वपूर्ण हैं। मेरा ज्ञान अल्प है। मैं ऐसी कोई बात इस विषयमें नहीं कह सकता हूं, जिससे सुज्ञजनोंको कुछ नूतन आनन्द उत्पन्न हो अथवा कुछ विशेष लाभ हो। परन्तु सभापति महाशयके अनुरोधकी रक्षाके लिये मुझे कुछ कहना ही चाहिये। पंडितजीका कथन बहुत गहन और गुरुतर है। ऐसे सुपंडित और ऐसे सुवक्ताको धन्यवाद देना मेरे लिये आनन्दजनक है। पंडितजीकी तर्कशैली बहुत सीधी और सरल है। इसलिये उसको मानना हमारा कर्त्तव्य है। हम लोग ऐसा नहीं समझते थे कि, पंडितजी ऐसे गहन विषयको इतनी सरलतासे समझावेंगे। ऐसे महत्त्वके तत्त्वोंका ऐसी सरलतासे उपदेश होना सचमुच ही आश्चर्यजनक है। पंडितजीका ज्ञान बहुत बढ़ा हुआ है। ऐसे सद्वक्ताको अवश्य ही धन्यवाद देना चाहिये। पंडितजीने जो कुछ कहा, वह सरल शृंखलाबद्ध कहा। तर्क और युक्तिपूर्वक समझानेमें पंडितजीने कोई कसर नहीं रक्खी। उसको ग्रहण करना न करना दूसरी बात है। इत्यादि।" इसके पश्चात् महामहोपाध्याय पं० प्रमथनाथ तर्कभूषण महाशयने कहा कि, "हम स्या० वा० वादिगजकेसरी पं० गोपालदासजीकी वक्तृता सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुए हैं। मेरे पहिले पं० जीकी विद्वत्ता आदिके विषयमें जस्टिस महाशयने जो कुछ कहा है, उसे मैं दोहराना नहीं चाहता हूं। परन्तु मैं सारे वंगदेशकी ओरसे पण्डितजीको धन्यवाद देकर कहता हूं कि पंडितजीने जैनमतके कठिन तत्त्वोंको बहुत ही सरलतासे समझाया है। पंडितजीका तत्त्वज्ञान प्रगाढ़ है। आपकी अन्य धर्मोंकी खंडनशैली बहुत सुन्दर और तर्कयुक्त है। हम बहुत प्रसन्न हों, यदि अन्यदर्शन भी इसी प्रकार सरल रीतिसे कहे जावें तो। हम लोगोंका आज बड़ा सौभाग्य है जो पंडितजीने हमको जैनधर्मके विषयमें

जिससे कि हम 'बिलकुल अनाभिज्ञ थे अभिज्ञ किया।" अन्तमें सभापति महाशयने अपनी स्पीचमें कहा कि, "मैं बड़ी प्रसन्नताके साथ कहता हूं कि आजतक मुझे जैनधर्मका जानकार आप जैसा एक भी विद्वान् नहीं मिला। मैंने अनेक स्थानोंमें भ्रमण किया है। पंडितजीकी तत्त्व, द्रव्य, स्याद्वादनय, कर्मफिलासोफी आदिकी धाराप्रवाह वक्तृता अद्वितीय हुई। मेरा अनुरोध है कि, पंडितजीके व्याख्यानोंके लिये और भी सभाएँ की जावें और जैनधर्म विषयक आलोचनाएँ की जावें। मुझे जैनशास्त्रोंसे अनुराग है। मैं निवेदन करता हूं कि, कलकत्तेके दिगम्बर जैन सज्जन एक क्लब स्थापित करें और उसमें सब प्रकारके ग्रन्थोंका संग्रह करें, जिससे हम लोग उन्हें सहज ही प्राप्त कर सकें। अनेकान्तका स्वरूप जो पंडितजीने बतलाया वह लोगोंके लिये अपूर्व है। स्वामी शंकराचार्यका खंडनविषय अच्छा है। परन्तु अनेकान्तका खंडन उनमे अच्छा नहीं हुआ और इसका कारण यह मालूम होता है कि, उस समय दूसरोंके धर्मग्रंथ कठिनाईसे प्राप्त होते थे। पंडितजीसे हमारा निवेदन है कि, आगामी शीतकालमें आप यहां कमसे दो व्याख्यान और भी देवें। उस समय बहुतसे विद्वान् जो अभी ग्रीष्मके कारण अन्यत्र चले गये हैं आ जावेंगे। जैन सम्प्रदायमें दो पंथ हैं—एक श्वेताम्बर दूसरा दिगम्बर। इन दोनोंमें परस्पर बड़ा विरोध है। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ, जब मैं काशी गया और वहां एक श्वेताम्बर साधुसे श्वेताम्बर सम्प्रदायके विषय सुनें, परन्तु दिगम्बर सम्प्रदायकी बातें पूछनेपर उत्तर मिला कि, हम कुछ नहीं जानते। जो विद्वान् छहों दर्शनोंका ज्ञान रखता है और उनका खंडन मंडन कर सकता है, वही अपने साथी सम्प्रदायका कुछ भी ज्ञान नहीं रखता है। हमने यहां तक सुना है कि, दोनों सम्प्रदाय एक दूसरेके ग्रंथ भी

अपने यहां नहीं रखते हैं। मैंने दोनों सम्प्रदायके ग्रन्थोंका अवलोकन किया है। मेरी समझमें श्वेताम्बर सम्प्रदायसे दिगम्बर स० प्राचीन है। ब्रह्मसूत्रमें दिगम्बर सम्प्रदायका ही उल्लेख है। दि० सम्प्रदायमें बड़े २ प्रसिद्ध आचार्य हो गये हैं और उनके प्रमेयकमलमार्तंड, अष्टसहस्री, श्लोकवार्तिक, राजवार्तिक आदि न्यायके ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध हैं। इनके न्याय ग्रन्थोंकी युक्तियां अतीव प्रशंसा योग्य हैं। दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायकी पारस्परिक लड़ाईके कारण ही आज हिन्दूधर्मका इतना विस्तार हो रहा है। यदि यह न होती, तो आज जैनधर्मकी ही बहुलना दिखलाई देती। अन्तमें मैं पंडितजीको, और जस्टिस महाशय आदि सम्पूर्ण विद्वज्जनोंको धन्यवाद देकर सभाका कार्य समाप्त करता हूं।"

कलकत्तेसे बाबू मौजीलालजी सिंगईने स्मृतिसभाका जो विशाल विवरण हमारे पास भेजा है, उसी परसे हमने उक्त विद्वानोंके व्याख्यानोंको सारांश दिया है।

विरोधी लेख प्रकाशित होना चाहिये या नहीं ?

इस समय जैनसमाजमें विरोधकी आग सुलग रही है। यों तो जिन्हे नेता वा अगुआ कह सकते हैं, उनकी तो उत्पत्ति ही अभी इस समाजमें नहीं हुई है; परन्तु नाममात्रके लिये जो अगुआ गिने जाते हैं–अथवा अगुआ बननेकी आकांक्षा रखते हैं, उन्होंने अपने दल बनाकर समाचारपत्रों द्वारा तथा व्याख्यानादिके द्वारा अपने २ प्रतिपक्षी दलपर आक्षेप करना शुरू किये हैं। कुछ दिनोंसे इन आक्षेपोंने बड़ा जोर पकड़ा है और बड़ा बेढब रूप धारण किया है। जो महाशय खुर्जासे निकलनेवाली रत्नमालाके ग्राहक हैं और उसके सुयोग सम्पादकके आततायी लेखोंको जिन्होंने जैनियोंकी किसी भी संस्थाको अपने वारसे खाली नहीं जाने दिया है, विचारपूर्वक पढ़ते हैं, वे इस बातके साक्षी हैं। इससे वे लोग जो शान्तिके पक्षपाती हैं, बहुत उद्विग्न हुए हैं और

इस प्रकारके लेखोंको बन्द करनेमें समाजका कल्याण देख रहे हैं। उधर जो रत्नमालासम्प्रदायके अनुयायी हैं, वे भी जब जैनप्रचारक जैसे पत्रोंसे मुंहतोड़ उत्तर पाते हैं–तब अपने आपेमें नहीं रहते हैं और समाजहितैषिताका ढोंल बनाकर कहते हैं कि, "कौमकी बदकिस्मतीसे आजकलके सम्पादकोंने ऐसी चाल चलना अख्तियार कर रक्खी है कि, वे अपने अखबारोंकी तरक्कीका वसीला ही इसमें जान रहे हैं कि, कौममें अशान्ति फैलानेवाले चटपटे लेख प्रकाशित करें। इन्हीं कारणोंसे आजकल लोगोंकी यह आम राय हो गई है कि, अखबारोंसे जो जैनको फायदा पहुंचना चाहिये था, उतना नहीं पहुंचा बल्कि नुकसान हो रहा है।" महासभाके स० महामंत्री महाशय तो दिक होकर यहांतक लिख गये हैं कि, "महासभा सम्बन्धी कोई भी लेख विना हमसे पूछे किसी पत्रसम्पादकको न छापना चाहिये।" अब हमको स्वस्थ होकर इसका विचार करना चाहिये कि, इस प्रकारके लेख जैसे कि, वर्तमानमें जुदे २ पक्षवाले प्रकाशित कर रहे हैं–प्रकाशित होना चाहिये या नहीं और उनसे समाजको हानि पहुंचेगी या लाभ?

सुप्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता डा० मिलने अपनी 'स्वाधीनता' नामक पुस्तकमें इस विषयपर बहुत गंभीरताके साथ विचार किया है और सैकड़ों अकाट्य युक्तियोंसे यह सिद्ध कर दिखाया है कि, प्रत्येक मनुष्यको प्रत्येक विषयमें अपने विचार प्रगट करनेका, चाहे वे असत्य ही क्यों न हों अधिकार है और उससे समाजको हानिकी अपेक्षा लाभ ही अधिक होता है। इस पुस्तककी भूमिकामें श्रीयुक्त पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदीने डा० मिलके कथनका जो थोड़ासा सारांश दिया है, उसे हम यहां उद्धृत करते हैं और आशा करते हैं कि, समाजके हितैषी उसपर विचार करनेकी कृपा करेंगे।

"जिस आदमीको सर्वज्ञ होनेका दावा नहीं है, उसे अपने काम काजकी विवेचना या समालोचनाको रोकनेकी भूलसे भी चेष्टा न करना चाहिये। इस तरहकी चेष्टा करना सार्वजनिक समाजके लिये तो और भी अधिक हानिकारक है। भूलना मनुष्यका स्वभाव है। बड़े २ महात्माओं और विद्वानोंसे भूलें होती हैं। इससे यदि समालोचना बन्द कर दी जायगी, तो सत्यका पता लगाना असंभव हो जायगा। तो लोगोंकी भूलें उनके ध्यानमें आवेंगी किस तरह? हां, यदि वे सर्वज्ञ हों तो बात दूसरी है।

"अकसर लोग कहा करते हैं कि, हम समालोचनाको तो नहीं रोकते, पर व्यर्थनिन्दाको रोकना चाहते हैं। किन्तु व्यर्थ निन्दा कहते किसे हैं? व्यर्थ

निन्दासे मतलब शायद झूठी निन्दासे है। जिसमें जो दोष नहीं है, उसमें उस दोषके आरोपणका नाम व्यर्थनिन्दा हो सकता है। परन्तु इसका जज कौन है कि, निन्दा व्यर्थ है या अव्यर्थ? क्या जिसकी निन्दा की जाय वह? यदि यही न्याय है, तो जितने मुलजिम हैं, उन सबकी जुबानहीको सेशनकोर्ट समझना चाहिये।...कौन ऐसा व्यक्ति होगा, जो अपनी निन्दाको सुनकर खुशीसे इस बातको मान लेगा कि मेरी उचित निन्दा हुई है? जो इतने साधु, इतने सत्यशील और इतने सच्चरित्र हैं कि, अपनी यथार्थ निन्दाको निन्दा और दोषको दोष कबूल करते नहीं हिचकते, उनकी कभी निन्दा ही नहीं होती। अतएव जो कहते हैं कि, हम अपनी व्यर्थनिन्दा मात्र रोकना चाहते हैं, वे मानों इस बातकी घोषणा देते हैं कि हमारी बुद्धि ठिकाने नहीं। जो समझदार हैं, वे अपनी निन्दाको प्रकाशित होने देते हैं और जब निन्दा प्रकाशित हो जाती है, तब उपेक्ष्य होनेपर या तो उसे उपेक्षाकी दृष्टिसे देखते हैं, या वे इस बातको सप्रमाण सिद्ध कर देते हैं कि उनकी जो निन्दा हुई है, वह व्यर्थ है। अपने पक्षका जब वे समर्थन कर चुकते हैं, तब सर्वसाधारण जजका काम करते हैं। दोनों पक्षोंकी दलीलोंको सुनकर वे इस बातका फैसला करते हैं कि निन्दा व्यर्थ हुई या अव्यर्थ।

"हम कहते हैं कि, जबतक कोई बात प्रकाशित न होगी, तब तक उसकी व्यर्थता या अव्यर्थता साबित किस तरह होगी? क्या निन्द्य व्यक्तिको उसकी निन्दा सुना देनेसे ही काम निकल सकता है? हरगिज नहीं। संभव है कि, वह निन्दाको अपनी स्तुति समझे और यदि निन्दाको वह निन्दा मान भी ले, तो उसे दंड कौन देगा? जिन लोगोंके कामकाजका सर्वसाधारणसे सम्बन्ध है, उनकी निन्दा सुनकर सब लोग जबतक उनका धिक्कार नहीं करते, तबतक उन्हें उचित दंड नहीं मिलता। जो लोग इन दलीलोंको नहीं मानते, वे शायद अखबारवालोंसे किसी दिन यह कहने लगें कि, तुमको जिसकी निन्दा करना हो, या जिसपर दोष लगाना हो, उसे अखबारमें न प्रकाशित करके चुपचाप उसे लिख भेजो! परन्तु जिनकी बुद्धि ठिकाने है–जो पागल नहीं है, वे कभी ऐसा न कहेंगे। (जैनसमाजमें ऐसे लोगोंकी कमी नहीं है।)

"कल्पना कीजिये कि किसीकी राय या समालोचनाको बहुत आदमियोंने मिलकर झूठ ठहराया। उन्होंने निश्चय किया कि, अमुक आदमीने अमुक

सभा, समाज, संस्था या व्यक्तिकी व्यर्थ निन्दा की। तो क्या इतनेसे ही उनका निश्चय निर्भ्रान्त सिद्ध हो गया? साक्रेटीसपर व्यर्थनिन्दा करनेका दोष लगाया गया। इसलिये उसे अपनी जानसे भी हाथ धोना पडा। परन्तु इस समय सारी दुनिया इस अविचारके लिये अफसोस कर रही है और साक्रेटीसके सिद्धान्तकी शतमुखसे प्रशंसा हो रही है। इस तरह जब सैकड़ों वर्ष वाद विवाद होनेपर भी निन्दाकी यथार्थता नहीं साबित की जा सकती, तब किसी बातको पहलेहीसे कह देना कि यह हमारी व्यर्थ निन्दा है, अतएव इसे मत प्रकाशित करो, कितनी बडी धृष्टताका काम है?

"मनुष्यके लिये सबसे अधिक अनर्थकारक बात विचार और विवेचनाका रोकना है। जिसे जैसे विचार सूझ पड़े, उसे उन्हे साफ २ कहने देना चाहिये। इसीमें मनुष्यका कल्याण है। इसीसे जितने सभ्यदेश हैं, उनकी गवर्नमेंटोने सब लोगोको यथेच्छ विचार, विवेचना और आलोचना करनेकी अनुमति दे रक्खी है। कल्पना कीजिये कि, किसी विषयमे कोई आदमी अपनी राय देना चाहता है और उसकी राय ठीक है। अब यदि उसे बोलनेकी अनुमति न दी जायगी, तो सब लोग उस अच्छी बातके जाननेसे वंचित रहेंगे और यदि वह बात या राय सर्वथा सच नहीं है, केवल उसका कुछ ही अंश सच है, तो भी यदि वह प्रगट न की जायगी, तो उस सत्यांशसे भी लोग लाभ न उठा सकेंगे। अच्छा अब मान लीजिये कि, कोई पुराना ही मत ठीक है, नया मत ठीक नहीं है। उस हालतमें भी यदि नया मत प्रगट न किया जायगा, तो पुरानेकी खूबियां लोगोंकी समझमें अच्छीतरह न आवेंगी। दोनोंके गुण दोषोंपर जब अच्छीतरह विचार होगा, तभी यह बात ध्यानमें आवेगी. अन्यथा नहीं। एक बात और भी है। वह यह कि प्रचलित रूढ या परम्परासे प्राप्त हुई बातों या रस्मोंके विषयमे प्रतिपक्षियोंके साथ वाद विवाद न करनेसे उनकी सजीवता जाती रहती है। उनका प्रभाव धीरे २ मन्द हो जाता है। इसका फल यह होता है कि, कुछ दिनोंमे लोग उनके मतलबको बिलकुल ही भूल जाते हैं और सिर्फ पुरानी लकीरको पीटा करते हैं।"

उदयलाल।

पुस्तकसमालोचन ।

मनुष्याहार—लन्दनके एक प्रसिद्ध पत्रके सम्पादक मि० सिडनी एच. बियर्ड नामक अंग्रेजकी लिखी हुई अंग्रेजी पुस्तकका यह हिन्दी अनुवाद है। इसके अनुवादक डा० प्यारेलाल गुप्त, एल. एम. एस., संशोधक बाबू दयाचन्दजी जैन बी. ए., और प्रकाशक बाबू चेतनदासजी मंत्री भारत जैन महामण्डल—ललितपुर हैं। इसमें अनेक डाक्टरों, वैज्ञानिकों, पहलवानों और वृद्धपुरुषोंकी साक्षी देकर तथा नाना प्रकारके अनुभवसिद्ध प्रमाण देकर यह सिद्ध किया है कि, मनुष्यका आहार मांस नहीं है। वास्तवमें वह अन्नभोजी वा शाकभोजी है। मांसका भोजन प्रकृतिके विरुद्ध है, अनावश्यक है, क्षय आदि घातक रोगोंका घर है, और अन्न तथा फलका भोजन योग्य है, उत्तम है, बलकारक है, पौष्टिक है, शान्तिदायक है, तथा मानसिक शक्तियोंको विकसित करनेवाला है। अनुवाद अच्छा हुआ है, पर अनेक स्थलोंमें भाषासम्बन्धी दोष रह गये हैं। पुस्तक बहुत ही अच्छी है, और इस समय इसके प्रचारकी इतनी आवश्यकता है कि, इसकी लाखों नहीं करोड़ों कापियां छपाकर मुफतमें वितरण करना चाहिये। इसमें एक जगह लिखा है कि, केवल लन्दन शहरमें ४०० वधगृह (कसाईखाने) हैं और वे इतने बड़े २ हैं कि. सुनकर हृदय कांप उठता है। एक 'स्विफ्ट एण्ड को' के ही वधगृहमें एकदिनमें इतने पशु मारे जाते हैं कि, यदि वे कतार बांधकर खड़े किये जावें, तो उनकी लम्बाई ९० मीलसे कम न होगी !!! संसारके इस घोर पापको देख सुनकर शायद ही कोई ऐसा पाषाणहृदय होगा, जिसका शरीर कंटकित न होजाय और यह न कह उठे कि, इस पापको रोकनेके लिये कुछ प्रयत्न करना चाहिये। यह समय बहुत

ही अनुकूल है, प्रायः समस्त देशोंमें शिक्षाका प्रचार हो रहा है और लोगोंमें वस्तुनिर्णय करके तदनुसार वर्तन करनेका भाव बढ़ता जाता है। यदि इस समय दयालु पुरुष उद्योग करेंगे, और अन्य उपायोंके साथ २ ऐसी २ उत्तम पुस्तकोंका प्रचार भी करेंगे, तो इस पुस्तकके लेखके कथनानुसार एक दिन वह स्वर्णमय समय आवेगा, जब पृथ्वीके निवासियोंमें दुष्टता, निर्दयता, दुःख और दरिद्रताका चिह्न भी शेष नहीं रहेगा। इस पुस्तककी दोहजार प्रतियां वमराना (ललितपुर) निवासी श्रीमान् सेठ लक्ष्मीचन्द्रजीके द्रव्यसे प्रकाशित की गई हैं। पुस्तकके प्रारंभमें सेठजीका एक हाफटोन चित्र भी है। पुस्तकका मूल्य "जीव मात्रपर दया करना" है। हमें आशा है कि, हमारी जातिके अन्यान्य धर्मात्मा पुरुष भी इस पुस्तककी हजार २ दो २ हजार कापियां छपाकर मांसभक्षी लोगोंमें वितरण करनेकी कृपा दिखलावेंगे।

जैननिबन्धरत्नाकर—हिन्दीमें श्वेताम्बरसम्प्रदायका कोई साप्ताहिक पत्र नहीं था। हर्षका विषय है कि, इस कमीको पूरा करनेके लिये लगभग एक वर्षसे 'हिन्दी जैन' नामका सा० पत्र बम्बईसे प्रकाशित होने लगा है। इसके सम्पादक हैं श्रीयुक्त कस्तूरचन्द जवरचन्दजी गादिया। यह ग्रन्थ 'हिन्दी-जैन' के ग्राहकोंको उपहारस्वरूप दिया गया है। जैनहितैषीके आकारके लगभग २४० पृष्ठोंमें ग्रन्थ समाप्त हुआ है। श्वेताम्बराचार्यों और धनिकोंके कोई ९ चित्र भी हैं। इसमें सत्तत्त्वमीमांसा, केवलचन्द गणिका जीवन-चरित्र, मृत्युके बाद नुक्ता (तेरहीं) तथा रोनेपीटनेका रिवाज, मनोनिग्रह, जैनशब्दका महत्त्व, शिक्षासुधार, ईश्वरभक्ति, देवगुरुधर्मका स्वरूप, और हरिविजय सूरिका चरित्र इन ९ निबन्धोंका संग्रह है। दो तीन निबन्धोंको छोड़कर शेष निबन्धोंकी भाषा हिन्दी नहीं,

किन्तु हिन्दी गुजराती और मारवाड़ीकी खिचड़ी है। उनमें सैंकड़ों शब्द ऐसे आये हैं, जिन्हें हिन्दीवाले शायद ही समझें। वाक्यरचना और मुहाविरे भी कुछ विलक्षण ढंगके हैं। कुछ नमूना लीजिये—"इस बाबद नीचेकी गुजराती कविता ज्यादा समझमें आवेगा इससे हरेक बान्धवोंको वह वांचनेकी प्रार्थना है।" (पृ० १९८)· "जैन कौमकी जाहोजलाली बिलकुल नष्ट हो गई है।" (१४७.) "बहोत बूमदे बाजारमें रोनेसे मरे हुए प्राणीका चित्त भंग हो जाता है, जरासा उंडा विचार करके देखा जावे. वरातमें मनुष्य को रीतिसर चलना चाहिये, वैसा न करते हालकी वक्तमें अलग वर्ताव होता है।" (१७४) इत्यादि। प्रूफ संशोधनमें भी बहुत अशुद्धियां रह गई हैं। सत्तत्त्वमीमांसा आदि दो तीन निबन्धोंको छोड़कर शेष निबन्धोंकी रचना बेसिलसिले, गौरवहीन. और महत्त्वहीन मालूम पड़ती है। 'जैनशब्दका महत्त्व' नामक निबन्ध अपने शीर्षकसे बहुत कम सम्बन्ध रखता है। 'ईश्वरभक्ति'का निबन्ध पढ़कर हमको केवल दुःख ही नहीं आश्चर्य भी हुआ। उसमें डंकेकी चोट 'एकेश्वरवाद' की पुष्टिकी गई है, जो कि जैनधर्मके सिद्धान्तसे सर्वथा विरुद्ध है। उसमें साफ २ कहा गया है कि, सृष्टिकी सारी बातें नियमपूर्वक होनेके लिये एक नेताकी आवश्यकता है और वह ईश्वर है। जो एक ईश्वरको नहीं मानते हैं, वे ईश्वर माननेवालोंकी अपेक्षा घाटेमें रहते हैं और अपराधी होते हैं। हम नहीं कह सकते, सम्पादक महाशयने यह लेख आंख बन्द करके कैसे प्रकाशित कर दिया। आपको सोचना चाहिये था कि, साधारण बुद्धिके जैनियोंपर इसका कितना बुरा प्रभाव पड़ेगा। कहां तो जैनी यह उद्योग कर रहे हैं कि, दूसरे लोगोंके जीमेंसे कर्त्तावादकी भ्रमवासना निकल जावे, और

कहां एक जैनपत्रके सम्पादकके द्वारा ऐसे लेख प्रकाशित होते हैं, जिससे जैनी भी कर्त्तावादी बन जावें।

भट्टारक-मीमांसा—सूरतके 'दिगम्बरजैन' नामक गुजराती पत्रका यह नवमा उपहार है। जैनहितैषीमें पिछले वर्ष जो 'भट्टारक' शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ था, उसका यह गुजराती अनुवाद है। ईडरमें एक भट्टारककी गद्दी है। वह लगभग १२ वर्षसे खाली है। अब ईडरके तथा रायदेशके पंच उक्त गद्दीकी पुनः प्रतिष्ठा करना चाहते हैं। इसके लिये उन्होंने मोतीलालजी ब्रह्मचारीको चुना है और उन्हें युवराजका तिलक भी कर दिया है। इस विषयको लेकर इस पुस्तककी भूमिकामें लिखा है कि, "भट्टारककी स्थापना करते समय इस बातपर ध्यान रखना चाहिये कि, जिसे यह पद दिया जाय, वह विद्वान् हो, संसारसे विरक्त हो और भुक्तभोगी हो। अविवाहित तथा अनुभवहीन बालक वा युवाको यह जोखिमका कार्य नहीं सौंपना चाहिये। यदि मोतीलालजीमें उक्त प्रकारकी योग्यता हो, तो बड़ी खुशीकी बात है। पर यदि इस ओर पूरा २ ध्यान न दिया गया हो, तो अब वे कैसे विद्वान् हैं, उनका पूर्व चरित्र कैसा है, उनमें उदासीनता कितनी है, धर्मशास्त्रका उनको कितना ज्ञान है, इत्यादि बातोंका विचार करके यह कार्य सम्पादन करना चाहिये।" पुस्तकका मूल्य दो आना है।

हिन्दी मेघदूत समवृत्त और समश्लोकी हिन्दी अनुवादसहित—अनुवाद पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी और प्रकाशक इंडियन प्रेस प्रयाग। मूल्य छह आना। छपाई सफाई मनोहारिणी। संस्कृत साहित्यमें महाकवि कालिदासका आसन सबसे ऊंचा है। उनके समान प्राकृतिक दृश्यों और मनोगतभावोंकी सुन्दर सरस रचना करनेवाला

शायद ही कोई दूसरा कवि हुआ होगा। उनकी रचनाओंमें 'मेघदूत' यद्यपि एक छोटासा काव्य है, परन्तु उसकी बहुत ही प्रसिद्धि है। एक विद्वानका कथन है कि, यदि कालिदास केवल इसी काव्यके कर्त्ता होते, तो भी विद्वत्समाजमें उनका उतना ही आदर होता, जितना आज हो रहा है। इस काव्यके हिन्दीमें पहले चार अनुवाद हो चुके हैं। परन्तु एक तो वे सब ब्रजभाषामें हैं और दूसरे उनके छन्द मूलके छन्दसे जुदे हैं। खड़ी बोलीमें जो कि भविष्यत्में भारतकी राष्ट्र भाषा बननेवाली है, और संस्कृतके समवृत्तोंमें जिनसे कि, सारे देशवासी परिचित हैं—एक भी अनुवाद नहीं है। इस कमीको पूरी करनेके लिये पं० लक्ष्मीधरजीने यह प्रयत्न किया है। मूल पद्य जिस मन्दाक्रान्ता छन्दमें है, उसीमें यह अनुवाद है और एक पद्यका अनुवाद एक ही पद्यमें किया गया है। इसमें सन्देह नहीं कि, वाजपेयीजीको इस रचनामें अगणित कठिनाइयोंका सामहना करना पड़ा होगा, और अपने परिश्रममें उन्होंने बहुत कुछ सफलता भी प्राप्त की है। परन्तु हमारी समझमें यदि वे समवृत्तके स्थानमें किसी दूसरे बड़े छन्दको अपने अनुवादके लिये चुनते, जैसा कि पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदीने 'कुमारसंभव' के लिये चुना है तो उससे सर्वसाधारणको बहुत लाभ पहुंचता और केवल हिन्दी जाननेवाले भी कालिदासके काव्यरसका स्वाद पा सकते। इस अनुवादको सिवाय विद्वानोंके सो भी कोशकी या टिप्पणीकी सहायतासे—दूसरे बहुत कम समझ सकेंगे और तब हिन्दीमें एक खड़ी बोलीके अनुवादकी आवश्यकता खड़ी ही रहेगी। क्योंकि छन्दकी संकीर्णतासे, उसमें भी लघुगुरुवर्णोंकी क्रमपरिपाटीसे और हिन्दीमें संस्कृतके समान थोड़े अक्षरोंमें बहुत ही आशय प्रगट करनेकी शक्तिकी कमीसे कहीं २ की रचना तो

बहुत क्लिष्ट हो गई है। कहीं २ बलात् ऐसे शब्द लाना पड़े हैं, जिनका खड़ी हिन्दीमें कहीं भी प्रयोग नहीं होता है और कई ऐसे कठिन शब्द आये हैं, जिनको संस्कृतज्ञ भी कठिनतासे समझते हैं। बहुतसे पद्य सुगम भी हुए हैं। जैसे,—

उत्कंठासे घन लख, खड़ा हो रहा यक्ष शोकी।
उसके आगे बहु समयलों अश्रुकी धार रोकी।
मेघोंको तो लखकर, नहीं धीर धारें सँयोगी,
दुःखी क्यों न प्रियमिलनकी चाहमें हों वियोगी॥ ३॥
ज्यों सीताने पवन-सुतको त्यों तुझे सो लखेगी;
सन्मानेगी मुदितमनसे, वैन आगे सुनेगी।
कान्ता पाती जब कुशल है कान्तकी मित्रद्वारा;
होती है तो वह सुखित ज्यों संगमें प्राणप्यारा॥ ३७॥

(उत्तरमेघ)

क्लिष्टताके दोषके सिवाय इस ग्रन्थमें अन्य दोष हमें बहुत कम दृष्टिगत हुए। भावोंके प्रगट करनेके लिये कविने खूब परिश्रम किया है। प्रारंभमें कथाका सार भी दे दिया है, जिससे पद्योंका अभिप्राय समझनेमें बहुत सुगमता पड़ती है। यदि मूलके नीचे उसका सरल भावार्थ और भी लिख दिया जाता, तो पाठकोंको और भी सहायता मिलती। विद्वान् पाठकोंको यह ग्रन्थ अवश्य ही मंगाना चाहिये।

विविध विषय।

बम्बईसे शीघ्र ही 'सत्यवादी' नामक हिन्दी मासिकपत्र निकलनेवाला है। यह 'खंडेलवाल जैन महासभा' का मुखपत्र होगा।

फीरोजपुरकी जीवदया प्रचारक सभा बहुत मुस्तेदीसे कार्य कर रही है। उसके कई अच्छे २ ट्रैक्ट हमारे पास आये हैं, परन्तु स्थानकी कमीसे

हम उन्हें प्रकाशित नहीं कर सके। जैनसमाजको इस सभाकी तन मन धनसे सहायता करनी चाहिये।

जैनतत्त्वप्रकाशिनी सभाके एकके बाद एक दौरे हो रहे हैं। कलकत्तेके दौरेके बाद उसका एक महत्त्वका दौरा अजमेरमें भी हुआ।

जैनगजट अलीगढ़से निकलने लगा है। आ० सम्पादक लाला मिश्रीलालजी और आनरेरी प्रकाशक (!) पंडित श्रीलालजी हुए हैं। यह भी सुना है कि जैनपताकाके सम्पादक लाला अमोलकचन्दजी कुहाड़ाने उपसम्पादकीका भार ग्रहण किया है।

महासभाके अधिकारियोंकी ओरसे यह कानून जारी किया जा रहा है कि, महासभाके विषयमें महासभाके मेम्बरोंके सिवाय अन्य किसीको कुछ कहने सुननेका अधिकार नहीं है। स० महामंत्री महाशय यह भी आज्ञा देते हैं कि, महासभाके विषयमें कोई लेख किसी पत्रमें बिना हमारी सम्मति लिये न छापा जाय और न छपवाया जाय। बहुत ठीक, जो आज्ञा।

इलाहाबादमें ता० १ जुलाईको 'सुमेरचन्द दि० जैन बोर्डिंग हाऊस' नामका बोर्डिंग खोल दिया गया। स्व० बाबू सुमेरचन्दजीकी पत्नीने इस कार्यके लिये २५,०००) रुपया प्रदान किया। स्थापनाके समय लगभग हजार रुपयोंकी और भी सहायता प्राप्त हुई।

सेठ हुकमचन्द दि० जै० बोर्डिंग हाउसकी ओरसे एक विज्ञापन निकला है। जिससे मालूम हुआ कि, उक्त बोर्डिंगमें ६, ७ अंग्रेजी पढ़नेवाले विद्यार्थियोंकी आवश्यकता है। स्कालर्शिप छह, आठ और दश रुपया मासिक दी जायगी। विद्यार्थियोंको शीघ्र दरख्वास्त भेजना चाहिये।

आवश्यक–सूचना।

मैं अब मोरेनासे बम्बई आ गया हूं। जो महाशय जैनहितैषीमें प्रकाशित होनेके लिये लेख संवाद आदि भेजना चाहें अथवा और कोई पत्रव्यवहार करना चाहें, वे पहलेके समान इस पतेसे करें—

नाथूराम प्रेमी, सम्पादक जैनहितैषी,

हीराबाग, पो० गिरगांव, बम्बई।

ॐ

जैनहितैषी।

जैनियोंके साहित्य, इतिहास, समाज और धर्मसम्बन्धी लेखोंसे विभूषित

मासिकपत्र।

सम्पादक और प्रकाशक—श्रीनाथूराम प्रेमी।

आठवाँ भाग।	श्रावण श्रीवीर नि० संवत् २४३८	दशवां अंक

विषयसूची। पृष्ठ

Printed by G. N. Kulkarni at his [illegible] Press,
No. 7, Girgaon Back Road, Bombay. [illegible] Proprietors.

जैनहितैषीके नियम ।

१. जैनहितैषीका वार्षिक मूल्य डांकखर्च सहित १॥) पेशगी है ।

२. प्रतिवर्ष अच्छे २ ग्रन्थ उपहारमें दिये जाते हैं और उनके छोटे बड़ेपनके अनुसार कुछ उपहारी खर्च अधिक भी लिया जाता है । इस सालका उपहारी खर्च ॥) है । कुल मूल्य उपहारी खर्चसहित २) है ।

३. इसके ग्राहक सालके शुरूसे ही बनाये जाते है, बीचमें नहीं, बीचमें ग्राहक बननेवालोंको पिछले सब अंक शुरू सालसे मंगाना पड़ेंगे, साल दिवालीसे शुरू होती है ।

४. जिस साल जो ग्रन्थ उपहारके लिये नियत होगा वही दिया जायगा । उसके बदले दूसरा कोई ग्रन्थ नहीं दिया जायगा ।

५. प्राप्त अंकसे पहलेका अंक यदि न मिला होगा तो भेज दिया जायगा दो तीन महिने बाद लिखनेवालोंको पहलेके अंक दो आना मूल्यसे प्राप्त हो सकेंगे ।

६. बैरंग पत्र नहीं लिये जाते । उत्तरके लिये टिकट भेजना चाहिये ।

७. बदलेके पत्र, समालोचनाकी पुस्तकें, लेख वगैरह **"सम्पादक, जैनहितैषी, पो० गिरगांव-बम्बई"** के पतेसे भेजना चाहिये ।

८. प्रबंध सम्बंधी सब बातोंका पत्रव्यवहार मैनेजर, **जैनग्रंथरत्नाकर कार्यालय, पो० गिरगांव, बम्बई**से करना चाहिये ।

जैनहितैषी।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम् ।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥

आठवां भाग] श्रावण श्रीवीर नि० सं० २४३८ [दशवां अंक.

भारतीय इतिहास और जैन शिलालेख।

(फ्रेंच विद्वान् ए० ए० गेरीनोटके अंग्रेजी लेखका अनुवाद.)

अकसर विद्वान् कहा करते है कि, यद्यपि भारतवर्षीय साहित्य विपुल और विस्तीर्ण है, तथापि उसमें ऐतिहासिक ग्रन्थ बहुत थोड़े हैं। और जो है, उनमें इतिहासके साथ दूसरी मनगढ़न्त बातोंकी तथा दन्तकथाओंकी खिचड़ी कर दी गई है। यह कथन यद्यपि ठीक है, तो भी भारतवर्षमें जो अगणित शिलालेख हैं, उनसे भारतवर्षके साहित्यमें जो इतिहासकी कमी है, वह बहुत अंशोंमें पूर्ण हो सकती है। इसके लिये जी. सेवल डफका The Chronology of India का पहला पृष्ठ और विनसेंट ए. स्मिथ कृत The History of India की पहली आवृत्तिका तेरहवां पृष्ठ पढ़ना चाहिये।

सबसे अधिक शिलालेख दक्षिण-भारतमें हैं। मि० ई० हुलिश मि० जे. एफ. फ्लीट, और मि० लेविस राईस आदि जुदा जुदा विद्वानोंने साथ इंडिया इन्स्क्रिपशन, इंडियन एन्टिकेरी, एपिग्राफिआ

कर्णाटिका आदि ग्रन्थोंमें वहां के हजारों लेखोंका संग्रह किया है। ये लेख शिलाओं तथा ताम्रपत्रोंपर संस्कृत, और पुरानी कनडी आदि भाषाओंमें खुदे हुए हैं। प्राचीन कनडीके लेखोंमें जैनियों-के लेख बहुत अधिक हैं। क्योंकि उत्तर कर्णाटक, दक्षिण कर्णाटक और मैसूर राज्यमें जैनियोंका निवास प्राचीन कालसे है।

उत्तर भारतमें जो संस्कृत और प्राकृत भाषाके लेख मिले हैं, वे प्राचीनता और उपयोगिताकी दृष्टिसे बहुत महत्त्वके हैं। इन लेखोंमें जैन-लेखोंकी संख्या बहुत है। सन् १९०८ में जो जैन शिलालेखोंकी रिपोर्ट मेरेद्वारा प्रकाशित हुई है, उसमें मैंने सन् १९०७ के अन्त तक प्रकाशित हुए समस्त जैन लेखोंके संग्रह करनेका प्रयत्न किया था। उक्त रिपोर्टमें ८५० लेखोंका संक्षिप्त पृथक्करण किया गया है। जिनमेंसे ८०९ लेख ऐसे हैं, जिनका समय उनपर लिखा हुआ है। अथवा दूसरे साधनोंसे मालूम करलिया है। ये लेख ईस्वीसन्से २४२ वर्ष पूर्वसे लेकर ईस्वीसन् १८६६ तकके अर्थात् लगभग २२०० वर्षके हैं और जैन इतिहासके बहुत ही उपयोगी साधन है।

इन शिलाशासनों तथा ताम्रलेखोंके प्रारंभमें बहुधा जैनाचार्यों तथा धर्मगुरुओंकी विस्तीर्ण पट्टावलियां रहती हैं। उदाहरणके लिये **शत्रुंजय** तीर्थके आदीश्वर भगवानके मंदिरका शिलालेख लीजिये, जो कि वि० संवत् १६५० (ईस्वीसन् १५९३) का है। उसमें तपागच्छकी पट्टावली इस प्रकार दी हुई है * तपागच्छके स्थापक **श्रीजगच्चन्द्र** (वि० सं० १२८५) **आनन्दविमल** (वि० सं० १५८२) **विजयदानसूरि, हीरविजयसूरि।**

* देखो, एपिग्राफिआ इंडिका जिल्द दूसरी पृष्ठ ५०–५९।

(वि० सं १६५०) और **विजयसेनसूरि** । इसी प्रकारसे दूसरा शिलालेख **अणहिल्लपाटण** का एपिग्राफिआ इंडिकाकी पहली जिल्दके ३१९–३२४ पृष्ठोंमें छपा है । उसमें खरतरगच्छके **उद्योतनसूरि**से लेकर **जिनसिंहसूरि** तकके पहले २५ आचार्योंकी पट्टावली दी है ।

मथुरामें डा० फुहररने **कनिष्क** और उसके पश्चाद्वर्ती इंडोसिथियन राजाओंके अनेक शिलालेखोंका पता लगाया था और प्रो० बुल्हरने एपिग्राफिआ इंडियाकी पहली दूसरी जिल्दमें उनका बहुत ही आश्चर्यजनक वृत्तान्त प्रकाशित किया था । इसी विषयपर सन् १९०४में इंडियन एन्टिक्वेरीके ३३ वें भागमें प्रो० लुडरने एक और लेख लिखा था और उक्त लेखोंका संशोधन तथा परिवर्तन प्रगट किया था । मथुराके लेख जैनधर्मके प्राचीन इतिहासके लिये बहुत ही उपयोगी हैं । क्योंकि वे कल्पसूत्रकी स्थविरावलीका समर्थन करते हैं और प्राचीन कालके भिन्न २ गणोंका, उनके मुख्य २ विभागों, कुलों और शाखाओं सहित परिचय देते हैं । जैसे कोटिक गण स्थानीय कुल और वाज्री शाखा, तथा ब्रह्मदासिक कुल और उच्चनागरी शाखा इत्यादि ।

जैन शिलालेखों तथा ताम्रशासनोंसे इस बातका भी पता लगता है कि, एक देशमे जैनी दूसरे देशमें कब फैले तथा वहां उनका अधिकाधिक प्रसार कब हुआ । सन् ईस्वीसे २४२ वर्ष पहले महाराज **अशोक** अपने आठवें आज्ञापत्रमें जो कि स्तंभपर खुदा हुआ है, उनका (जैनियोंका) 'निर्ग्रन्थ' नामसे उल्लेख करते हैं, ईस्वीसन्से पहले दूसरी शताब्दिमें उनका उड़ीसाके **उदयगिरि** नामक गुफाओंमें ' अरहन्त ' के नामसे परिचय मिलता है और मथुरामें भी

(कनिष्क हुविष्कके समयमें) वे खूब समृद्धिशाली थे, जहां कि दोनोंके उल्लेख करनेवाले तथा अमुक इमारत अमुकको दी गई यह बतलानेवाले अनेक लेखोंका पता लगा है।

ईस्वी सन्के प्रारंभके एक शिलालेखमें गिरनारपर्वतका सबसे पहले उल्लेख मिला है। जिससे यह मालूम होता है कि, उस समय जैनी भारतके वायव्यमें भी फैल चुके थे। इसी प्रकार आचार्य **श्रीभद्रबाहुके** आधिपत्यमें वे दक्षिणमें भी पहुंचे थे और वहां श्रवणबेलगुलमें उन्होंने एक प्रसिद्ध मन्दिरकी स्थापना की थी। मि० लेविस राइसके संग्रह किये हुए संस्कृत तथा कानड़ी भाषाके सैकड़ों शिलालेख **श्रवणबेलगुलके** पवित्र पर्वतका ऐतिहासिक वृत्तान्त प्रगट करते हैं। इस टेकरीपर सुप्रसिद्ध मंत्री **चांमुडरायने** गोमठेश्वरकी विशाल प्रतिमा स्थापित की थी। गोमठस्वामीकी दूसरी प्रतिमा **कारकलमें** शक संवत् १३५३ (ई० स० १४३२) में और तीसरी **बेनूरमें** शक संवत् १५२५ (ई० स० १६०४) में प्रतिष्ठित हुई।

दक्षिण भारतके जुदे जुदे शिलालेख बहुतसी ऐतिहासिक बातोंका खुलासा करते हैं। हलीबिडके एक शिलालेखसे मालूम होता है कि, वहां गंगराज मंत्रीके पुत्र **बोपने** पार्श्वनाथका मन्दिर बनवाया था और वहां बहुतसे प्रसिद्ध २ आचार्योंका देहोत्सर्ग हुआ था। **हनसोज** देशीयगणकी एक शाखाका स्थान था। **हमूचाई**नामक स्थानमें ‘ उर्वीतिलक ’ नामका सुन्दर मन्दिर बनवाया गया था और उसे गंगराज-कुमारी **चत्तलदेवीने** अर्पण किया था। **मलेयारका** कनक पर्वत कई शताब्दियों तक बहुत ही पवित्र समझा जाता था। इन सब बातोंका ज्ञान उक्त स्थानोंमें मिले हुए लेखोंसे होता है।

उत्तरभारतके मुख्य शिलालेख आबू, गिरनार और शत्रुंजय पर्वत सम्बन्धी हैं। **आबू** पर्वतपर सबसे अधिक प्रसिद्ध मन्दिर दो हैं। एक आदिनाथका और दूसरा नेमिनाथका। पहला अणहिलपाटणके भक्तिवंत व्यापारी **विमलशाहने** वि० संवत् १०८८ (ई० स० १०३१) में बनवाया था और दूसरा चालुक्य (सोलंकी) वंशीय वाघेला राजा **वीरधवलके** सुप्रसिद्ध मंत्री **तेजपालने** और उसके भाई **वस्तुपालने** बनवाया था। इसके एक वर्ष पीछे उक्त दोनों भाइयोंने एक मनोहर मन्दिर गिरनार पर्वतपर और कई मन्दिर शत्रुंजयपर बनवाये।

जैनियोंके शिलालेख और ताम्रलेख भारतके सामान्य इतिहासके लिये भी बहुत सहायक हैं। बहुतसे राजाओंका पता केवल जैनियोंके ही लेखोंसे लगता है। जैसे कि, कलिंग (उड़ीसा)का राजा **खारवेल**। बहुत करके यह राजा जैनधर्मका अनुयायी था। उसके राज्यकालका एक विशाल शिलालेख स्वर्गीय भगवानलाल इन्द्रजीने प्रसिद्ध किया था और उसके विषयमें उन्होंने बहुत विवेचन किया था। उक्त शिलालेख 'णमो अरहंताणं णमो सव्वसिद्धाणं' इन शब्दोंसे प्रारंभ होता है। उस पर मौर्य संवत् १६५ लिखा हुआ है। अर्थात् वह ईस्वी सन्से लगभग १९६–९७ वर्ष पहलेका है। खारवेलकी पहली रानी जैनियोंपर बहुत कृपा रखती थी। उसने जैनमुनियोंके लिये एक गुफा **उदयगिरिमें** बनवाई थी।

दक्षिण भारतके राजाओंमें मैसूरके पश्चिम ओरके गंगवंशीय राजा जैनधर्मके जानकार और अनुयायी थे। कई शिलालेखोंके आधारसे प्रगट होनेवाली एक कथासे मालूम होता है कि नन्दि-संघके **सिंहनन्दि** नामक आचार्यने गंगवंश निर्माण किया था और

इस वंशके बहुतसे राजाओंके गुरु जैनाचार्य थे। जैसे **अविनीत** (कोंगणीवर्मन), **राचमल्ल** (ई० स० ९७७), **परमर्दिदेव** और उसके उत्तराधिकारी (ग्यारहवीं शताब्दिका अन्त और बारहवींका प्रारंभ) इत्यादि। सुप्रसिद्ध **चामुंडराय** जिसने कि श्रवणबेलगुलमें गोमठस्वामीकी अद्भुत प्रतिमा स्थापन की थी, दूसरे **मारसिंहका** प्रधान मंत्री था। इस मारसिंहने गुरु **अजितसेनकी** उपस्थितिमें जैनधर्मकी क्रियानुसार मरण किया था अर्थात् समाधि मरण किया था।

मि० फ्लीटके कथनानुसार कदम्बवंशीय राजा भी जैनी थे। काकुत्स्य वर्गके (सूर्यवंशीय) प्राचीन राजा **मृगेशवर्मा**, **रविवर्मा**, **हरिवर्मा**, और **देववर्मा** आदिने जैनसम्प्रदायके भिन्न २ संघोंको बड़ी २ भेटें दी थीं।

पश्चिमके सोलंकी (चालुक्य) राजा यद्यपि वैष्णव थे, परन्तु वे निरन्तर दान और भेंटोंके द्वारा जैनियोंको संतोषित करते रहते थे। दक्षिणके महाराष्ट्रप्रान्तमें जैनधर्म सामान्य प्रजाका धर्म गिना जाता था। **मलखेड़के** (मान्यखेट). राष्ट्रकूट (राठौर) राजाओंके आश्रयसे जैनधर्मने—विशेषतासे दिगम्बर सम्प्रदायने बहुत उन्नति की थी। नवमी शताब्दिमें दिगम्बर सम्प्रदायको अनेक राजाओंका आश्रय मिला था। राजा **अमोघवर्ष** (ई० स० ८१४—८७७) ने तो अपनी सहायतासे इस सम्प्रदायकी एक बड़े भारी रक्षकके समान सहायता की थी और संभवतः उसीने प्रश्नोत्तररत्नमालिकाकी रचना की थी।

सौदत्तीके रट्टवंशी राजा पहले राष्ट्रकूटोंके करद थे। परन्तु पीछेसे स्वतंत्र हो गये थे। वे जैनधर्मके अनुयायी थे। उनके किये हुए दानोंका उल्लेख ई० स० ८७५ से १२२९ तकके लेखोंमें मि-

लता है। सान्तर नामके अधिकारियोंका एक और वंश मैसूरके अन्तर्गत **हुमचामें** रहता था। ये भी जैनी थे और उनके धर्मगुरु जैनाचार्य थे।

बारहवीं और तेरहवीं शताब्दिमें हयशाल नामक वंशके राजाओंने **मैसूर** प्रान्तमें अपने अधिकारकी खूब तरक्की की थी। पहले ये कलचुरी वंशके करद राजा थे, परन्तु जब उक्त वंशका पतन हुआ, तब उसके उत्तराधिकारी हो गये। इस वंशके सबसे पाचीन और प्रमाणभूत राजा **विनयादित्य** और उसका उत्तराधिकारी **ओरियंग** ये दोनों तीर्थकरोंके भक्त थे। इस वंशके प्रख्यात राजा **विट्टिग** अथवा विल्टिदेवको रामानुजाचार्यने विष्णुका भक्त बनाया था और इससे उसका नाम **विष्णुवर्धन** प्रसिद्ध हुआ था। उसकी राजधानी द्वारसमुद्रमें जिसे कि अब हलीबिड कहते हैं, थी। विष्णुवर्धनके राज्यमें रानी सान्तलदेवीसे जिसकी कि जैनधर्मसे बहुत ही प्रीति थी, जैनधर्मको बहुत सहायता मिली थी। इसके सिवाय उस समय जैनियोंको **गंगराज, मरीयन, भरत** आदि मंत्रियोंका भी आश्रय मिला था। उन्होंने उन सब मन्दिरोंका फिरसे उद्धार कराया था, जिन्हें कि चोल नामके आक्रमणकारियोंने नष्ट कर दिये थे और उन्हें बड़ी २ जागीरें लगा दी थीं जैन शिलालेखोंमें १९ वीं शताब्दीके साल्ववंशीय राजाओंका भी उल्लेख मिलता है, जो कि जैनधर्मके अनुयायी थे।

यह लेख यद्यपि छोटा है, परन्तु मेरी समझमें यह बतलानेके लिये काफी है कि जैन शिलालेखोंमें कितनी अधिक ऐतिहासिक बातोंका उल्लेख है। इन लेखोंका और जैनियोंके व्यावहारिक साहित्यका नियमित अभ्यास भारतवर्षके इतिहासका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये बहुत ही उपयोगी होगा।

सम्पादककी योग्यता
और
रत्नमालाके प्रकाशकका सामयिक संलाप।

रत्नमालाके सम्पादक शास्त्रीजीके सामयिक संलापसे तो हमारे पाठकोंके कर्ण तृप्त हो चुके हैं, परंतु अभी तक उसके प्रकाशकके संलापकी ध्वनि उन्होंने नहीं सुनी होगी। लीजिये, अबकी बार वह भी उपस्थित है। जैनगजटके २७।२८ वें अंकमें रत्नमालाके प्रकाशक लाला नानगरामजीने असामयिक प्रलाप शीर्षक लेख लिखकर हमारे ऊपर पुष्पवर्षा की है। आपके सारे लेखके हमने तीन भाग किये हैं, एक तो वह जिसमें लेखक महाशयने हमारे लेखका मनमाना अभिप्राय निकाल कर विना सम्बन्धकी बातें लिखी हैं। दूसरा वह जिसमें हमारे ऊपर गालियोंकी वर्षा की गई है और जिसे हम वर्त्तमान क्रान्ति–युगकी पुष्पवर्षा समझते हैं और तीसरा वह जिसका समाजका भ्रमनिरसन करनेके लिये हम यहां कुछ उत्तर लिखेंगे।

पं० जवाहरलालजी शास्त्रीने लिखा था कि, महासभाको वास्तविक महासभा बनानेकी गरजसे यह कोशिश (फीरोजाबादकी) की गई थी। इसपर हितैषीके आठवें अंकमें हमने लिखा कि, " जिनका पहले कभी नाम भी नहीं सुना था और जिनके एक चार पंक्तियोंके लेखको भी देखनेका समाजको कभी सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ ऐसे किसी अपरिचित पुरुषको–जैनगजटका सम्पादक बना देना–इस डरसे कि पूर्व सम्पादक जो एक प्रेस मांग रहा है, उससे कहीं छापेका प्रचार न होने लगे × और जो लोग काम करना नहीं चाहते हैं जिनके कामसे कोई संतुष्ट नहीं है–आंख बन्द करके दस्तखत कर देना मात्र ही जो अपना कर्तव्य समझते हैं, उनके गले जबर्दस्ती

बड़ी २ जबाबदारीके काम डाल देना क्या इसीको वास्तविक महा-सभा बनाना कहते हैं ? " इस लेखखंडमें जहां × ऐसा निशान लगा है, वहीं तकके वाक्य जैनगजटके सम्पादकको लक्ष्य करके लिखे गये थे। आगेके वाक्य महासभाके दूसरे कार्यकर्ताओंके सम्बन्धमें थे। जैनगजटके नवीन सम्पादकसे उनका कोई सम्बन्ध नहीं था। फीरोजाबादके कन्वेशनमें श्रीमन्तशेठने साफ इंकार किया था कि मैं अब महामंत्रीका कार्य नहीं करूंगा तो भी धनिक मंडलीने समझा बुझाकर महासभाका जी लुभानेवाला सेहरा उन्हींके सिरपर बांधा था। इसी बातको लक्ष्य करके हमने उक्त पिछले वाक्य लिखे थे। परंतु नानगरामजीने उन्हें अपने ही श्रद्धास्पदके विषयमें समझकर अपने लेखके दूसरे भागकी भरती की है। इस भागके विषयमें हम इससे अधिक और कुछ नहीं कहना चाहते। दूसरे भागके विषयमें कुछ कहनेकी आवश्यकता ही नहीं है। गालियोंका उत्तर ही क्या हो सकता है? हम तो समाजके एक तुच्छ सेवक हैं। इन गालियोंके प्रसादसे तो बड़े बड़े महापुरुष भी वंचित नहीं रहे। जो अपने समाजकी उन्नति करना चाहते हैं, उनके लिये इनकी आवश्यकता भी है। इनके विना कार्य करनेमें न तो उत्साह ही बढ़ता है और न सच्चा जोश ही चढ़ता है। इस लिये इनके प्राप्तिसे तो प्रसन्न ही होना चाहिये।

अच्छा, अब तीसरे भागको लीजिये। मेरी छोटीसी समझमें जैन-गजटका सम्पादक वह होना चाहिये, जिसकी समाजमें इस प्रकारकी ख्याति हो कि, उसके जीमें जैनजातिकी वर्त्तमान अधोगतिकी गहरी चोट लगी है, समाजकी दशा सुधारनेके लिये उसने अपने जीवनका कुछ भाग व्यय किया है और उसके लेखोंमें ऐसी

शक्ति है कि, उनसे सोता हुआ समाज जागृत हो सकता है। और नहीं तो कमसे कम इतना तो अवश्य होना चाहिये कि, उसमें सम्पादककी बौद्धिक योग्यता हो। समाचार पत्र किसे कहते हैं, प्रगतिशील समाजोंके पत्र कैसे निकलते हैं, उनमें किस प्रकारके लेख रहते हैं, लेख कैसे लिखे जाते हैं, भाषासे और लेखसे कितना सम्बन्ध है, और हमारे समाजकी इस समय क्या दशा है, इन बातोंका ज्ञान तो उसे अवश्य होना चाहिये। जहांतक हम जानते हैं जैनगजटके वर्त्तमान सम्पादककी उक्त प्रकारकी ख्याति नहीं है, और फीरोजाबादके मेलेके पहले समाचारपत्र–संसारमें उनका कभी नाम भी नहीं सुना था। यह भी मालूम नहीं है कि, उन्होंने इससे पहले कभी कोई छोटा मोटा लेख भी लिखनेकी कृपा की थी या नहीं। इसी कारण हमने ऊपर उद्धृत किये हुए लेख खंडके पहले वाक्य लिखे थे। इसपर लाला नानगरामजी लिखते हैं कि, " हमारे लाला मिश्रीलालजी सामान्य व्यक्ति नहीं हैं। लाला श्रीलालजी खजांची रईस आनरेरी मानिष्ट्रेटके आप पुत्ररत्न हैं। आप जमींदार हैं, लक्षाधिपति हैं आपके लघुभ्राता लाला चन्दालालजी बंगाल बेंक अलीगढके सब एजेंट हैं। आप अलीगढ़स्थ पूजा कमेटीके सभापति और सरस्वती भवनके मंत्री हैं। पूजा स्वाध्याय सामायिक आपका नित्य कर्म है। श्रीमान् पं० प्यारेलालजीसे आपने धर्मशास्त्रकी शिक्षा ग्रहण करके अच्छी योग्यता प्राप्त की है। उद्योगपरतामें तो समवयस्क जनतासे आप असाधारणता ही रखते हैं। "

बस कीजिये महाराज, बहुत हुआ। क्या इस गुणानुवादको आप सुनाते ही चले जाइयेगा? हमारा तो सुनते २ जी ऊब गया। भला हम जैसे निर्धन इससे क्या लाभ उठावेंगे? अभी आप न जाने

और कितना कहेंगे। अच्छा यदि आपका जी नहीं मानता तो कृपा करके इतना और कह डालिये और समाप्त कर दीजिये कि, "हम जैसे लेखक आपके गुमास्ता और खुशामदा हैं, साहित्य-शास्त्री जैसे विनापैंदीके लोटे हमारे (लाला नानगरामजीके) नामसे आपकी विरदमाला प्रकाशित करते हैं और धनिक मण्डलीके बड़े २ स्थूल काय सज्जन कहते हैं कि, आपमें सम्पादक बननेकी असाधारण योग्यता है। इत्यादि, इत्यादि।" पर श्रीमान् यह तो बतलाइये कि, इस गुणगाथासे और सम्पादककी योग्यतासे क्या सम्बन्ध है? आप ऐसे हैं, वैसे हैं, सब कुछ हैं, पर यह तो कहिये कि, आप लेख भी लिख सकते हैं या नहीं? दश बीस पंक्तिया ऐसी भी लिख सकते हैं या नहीं जिनकी कि भाषा हिन्दी हो अथवा जिनमें समाचारपत्रोंकी हिन्दी भाषाकी दृष्टिसे कोई अशुद्धि न हो? और पहलेकी बात जाने दीजिये—जैनगजटके भी तो अलीगढ़से आठ दश अंक निकल चुके हैं, उन ही में बतला दीजिये कि, कौन कौनसे महत्त्वपूर्ण लेख श्रीमान्के आनरेरी मजिस्ट्रेट रईस जमींदार और विविध उपाधिधारी सेठजीने लिखे हैं जिनकी आशासे आपके धार्मिक जनोंने मेघमयूरवत् अत्याह्लाद प्रकाशित किया था। एकाध हांमें हां मिलानेवाले क्लर्क या सहायकको रख लेना और उसके द्वारा यहां वहांके कूड़ाकर्कटको एकट्ठा करा देना अथवा एकाध गालीगलौंजका लेख लिखा देना, क्या इतना ही सम्पादकका कार्य है? यदि सम्पादकके पदकी आप इतनी ही योग्यता समझते हैं, तो कहना होगा कि, आपने इस पदका गौरव बढ़ानेके विषयमें बड़ी ही उदारता दिखलाई और महासभाको अब कभी सुयोग्य सम्पादकोंके खोजनेकी चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी। जैनियोंमें धनवानोंकी

कमी नहीं है। जिस धनिकको आप देखेंगे, वही पूजाकमेटीका सभापति, पंचायत महासभाका प्रेसीडेंट, मन्दिर भंडारका खजांची, रईस, जमींदार, स्वाध्याय पूजादि कर्मनिरत, धर्मात्मा आदि विविध उपाधियोंसे भूषित मिल जायगा। बस, जब जरूरत पड़ी तभी किसी एकको सम्पादककी पगड़ी बँधवा दी। रही सहायक सम्पादकोंकी बात, सो समाजमें उनकी भी कमी नहीं है। मामूली पढ़ा लिखा मिला कि काम चला। हां, थोड़ासा चलता पुरजा और खुशामदा चाहिये। जिस समाजमें सम्पादकोंकी विपुलता है, वहां सहायक सम्पादकोंकी तो होना ही चाहिये।

सभ्य संसारमें सम्पादकका तथा लेखकका पद बहुत ऊंचा और बहुत बड़ी योग्यताका है। भारतवर्षके प्रसिद्ध लेखक सेंट निहालसिंहको लंदनमें महाराज पंचमजार्जके राज्याभिषेकके समय वहां स्थान मिला था, जहां तक पहुंचना बड़े बड़े राजाओंको भी नसीब नहीं था। सुप्रसिद्ध सम्पादक मि० स्टेडकी आकालिक मृत्युसे बड़े २ राजाओं और महाराजाओंने शोक मनाया है। बंगालके प्रसिद्ध लेखक और सम्पादक रवीन्द्रबाबूका इस समय विलायतमें सत्कार हो रहा है। गरज यह कि सम्पादकका पद कोई साधारण पद नहीं है। इसकी प्राप्ति हरएकके भाग्यमें नहीं। धन ऐश्वर्य प्रतिष्ठा विद्या बुद्धि आदि कोई भी इसकी प्राप्तिके अवश्यंभावी कारण नहीं। बेचारे धनिकोंका तो यहां जिकर ही क्या, हमने बहुतसे बी. ए. एम्. ए. और शास्त्री पंडित आदि विद्वान् ऐसे देखे हैं, जो सम्पादकीकी तो बात ही क्या मामूली लेख भी नहीं लिख सकते हैं। अपने हृदयके विचारोंको वे लेखद्वारा प्रकाशित करनेमें सर्वथा असमर्थ हैं। और कई एक सम्पादक ऐसे देखे हैं, जो वास्तवमें

किसी कालेज या विद्यालयमें नहीं पढ़करके भी गजबके लेख लिखते हैं। अच्छे २ विद्वान् उनके लेखोंके लिये तरसते हैं। यह एक विद्या ही जुदी है। यह उन्हें सिद्ध होती, जो प्रतिभाशाली होते हैं और जो अपने ज्ञानको निरन्तरके अध्ययन और वाचनसे विशाल बना लेते हैं। जिनके ज्ञानकी सीमा बहुत ही परिमित है, मध्यमा और शास्त्री आदि परीक्षाओंके बाहर जिन्हें कुछ ज्ञातव्य ही नहीं मालूम होता है, किसी कालेज या विद्यालयके उत्तीर्णपत्रको ही जो बुद्धिकी कसोटी समझते हैं, अपने कुएसे बाहर भी कुछ होता है, इसका जिन्हें विश्वास ही नहीं है, उन कुपमंडूकोंके पास यह विद्या खड़ी भी नहीं हो सकती है।

एक जातीय पत्रका सम्पादक वह हो सकता है, जिसकी आंखोंके आगे जातिकी भूत और वर्त्तमान अवस्थाका चित्र निरन्तर नृत्य किया करता है, जो अपनी जातिकी रत्ती रत्ती आवश्यकताका ज्ञान रखता है, जिसने उन जातियोंका इतिहास चित्त लगाकर पढ़ा है, जो एकवार पतन करके फिर उठीं हैं और जो अपनी उन्नतिसे संसारको विस्मित कर रही हैं, जो रूढ़ियोंको तुच्छ समझता है, सामाजिक नियमोंको मनुष्यकृत और समयादिके परिवर्तनके साथ परिवर्तनीय मानता है, जिसका हृदय विशाल है, जातिके दुःखसुखको जो अपना दुःखसुख जानता है दूसरी जातिके आवश्यक ज्ञानको संग्रह करनेमें जो पाप नहीं समझता है,अपनी जातिके बुरे रीतिरवाजों तथा दुर्गुणोंका जो कट्टर शत्रु है, उद्योगशीलता अनवरत परिश्रम, सत्यपरता, परार्थपरता आदिगुण जिसके प्यारे सखा हैं और जातिके साथ साथ जिसे अपने देशका कल्याण करना भी अभीष्ट है। इन गुणोंके विना केवल धन ऐश्वर्य और पंडिताई आदिसे कोई इस सिंहासनके बैठनेका अधिकारी नहीं हो सकता है।

यह ठीक है कि, जिस समाजमें योग्य व्यक्तियोंकी कमी होती है—ऐसे सर्व गुणसम्पन्न पुरुष जहां नहीं मिलते हैं, वहां आवश्यकतानुसार साधारण पुरुषोंको भी यह काम सौंप दिया जाता है और जैनसमाजकी भी अभी लगभग ऐसी ही दशा है। परन्तु यह भी तो सोचना चाहिये कि, क्या सचमुच ही हमारे यहां शिक्षितोंका इतना अभाव है? हमारा पिछले बीस वर्षोंका आन्दोलन क्या यों ही व्यर्थ गया? उससे क्या दो चार भी ऐसे शिक्षित पुरुष न निकले जो इस महत्त्वपूर्ण कार्यको सम्पादन करनेकी योग्यता रखते हों? हमारी समझमें यह केवल भ्रम है। यदि महासभाके अधिकार सुयोग्य शिक्षित व्यक्तियोंको दिये जावें, तो उसके मुखपत्रके सम्पादन करनेके लिये एक नहीं दश सुयोग्य सम्पादक मिल सकते हैं।

लाला नानगरामजी समझते हैं कि, जो सम्पादक होना चाहे, उसीको सम्पादक बना देना चाहिये। कार्य करते २ वही सम्पादक बन जाता है। और इसी विश्वासके कारण आप हमसे प्रश्न करते हैं कि, जैनगजटके अमुक २ सम्पादकोंने सम्पादकी करनेके पहले कब और कौनसे लेख लिखे थे? इस विषयमें हमारा निवेदन है कि, एक तो बाबू जुगलकिशोरजी आदि दो एक सम्पादकोंके लेख उनके सम्पादक होनेके पहले यदि आप समाचारपत्र पढ़ा करते हैं, तो आपने भी पढ़े होंगे और दूसरे यदि आपके श्रीमान् ही जैसे दो एक अपरिचित पुरुषोंको पहले भी सम्पादक बना दिये हों, तो इससे क्या यह सिद्ध हो गया कि, अब भी उसी तरह आंख बन्द करके बनाते जाना चाहिये। वह समय तो और भी अधिक अंधकारका था। उस समय तो ऐसा अंधेर होना स्वाभाविक था। उन पिछले उ-

दाहरणोंको देकर क्या आप समाजको और पीछे घसीटना चाहते हैं? इस विषयमें हमें अपनेसे उन्नत समाजोंका अनुकरण करना चाहिये, अन्यान्य उन्नत समाजोंके पत्रोंके सम्पादक वे बनाये जाते हैं, जो पहले अपने लेखोंसे सर्वसाधारणमें प्रसिद्ध हो जाते हैं—जिनकी नामी लेखकोंमें गिनती होने लगती है। धन मान, मर्यादा और पांडित्यके सर्टिफिकटसे वहां काम नहीं चलता है।

आगे हमसे पूछा गया है कि जैनमित्रकी नौकरी करनेके पहले क्या आपने कोई लेखादि लिखकर छपवाये थे? इसका उत्तर यह है कि एक तो मैं किसी संस्थाके प्रतिष्ठित पत्रका सम्पादक नहीं हूं जिसके लिये कोई असाधारण योग्यताकी अवश्यकता हो, और दूसरे जैनहितैषीका सम्पादन करनेके पहले मैं जैनमित्रमें छह सात वर्ष तक लेखादि लिखना सीखता रहा हूं जैनमित्रकी नौकरी करनेके पहले भी यदि आप जैनगजटकी पुरानी फाइलें देखनेका कष्ट उठावेंगे तो उनमें भी मेरे दश पांच टूटे फूटे लेख मिल जावेंगे। यह वात आपको नहीं तो आपके नामसे लेख लिखनेवाले शास्त्रीजीको अवश्य मालूम होगी।

हम इस विषयमें अब और अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं देखते हैं। जिनबातोंका उत्तर देना आवश्यक और उचित था उनका उत्तर हम दे चुके। अन्तमें हम लाला नानगरामजीसे इतना और कह देना चाहते हैं कि, आपके श्रद्धास्पद लालाजी गण्य मान्य वदान्य भले ही हों—हम यह नहीं कहते कि, वे ऐसे नहीं होंगे परंतु इससे उनकी सम्पादककी योग्यताका अनुमान नहीं हो सकता है, और उन्हें सम्पादक बनाकर महासभाके विचारशून्य शासकोंने उनके साथ बड़ा भारी अन्याय किया है। आप भले ही न समझें. पर यह उनका बड़ा भारी अपमान है। एक बात यह भी कह देने

योग्य है कि, आपको अपने लालाजीकी हिमायतमें यह लेख नहीं लिखना चाहिये था क्योंकि हमने सुना है कि, आप लालाजीके गुमास्ते हैं। आपके इस स्वामी सेवकके सम्बन्धसे आपका लेख चापलूसी व झूठी खुशामदकी स्याहीसे भद्दा होगया है और उसका मूल्य कुछ भी नहीं रहा है।

सम्पादकीय टिप्पणियाँ।

विचारपरिषत्।

इटावाकी श्रीजैनतत्त्वप्रकाशिनी सभा इस समय जो कार्य कर रही है, प्रत्येक शिक्षित जैनी उससे परिचित हैं। इस सभाने अन्य-धर्मी लोगोंको जैनी बनानेका जो सिलसिला चलाया है, उससे जैन समाजके समक्ष कई महत्त्वके प्रश्न उपस्थित हो गये हैं और वे प्रश्न ऐसे हैं कि, उनपर जितनी जल्दी विचार किया जाय, उतना अच्छा है। नांदणीमठ (कोल्हापुर) के भट्टारक स्वस्ति श्रीजिनसेनस्वामीने इन प्रश्नोंका विचार और समाधान करनेके लिये आगामी अष्टाह्निका पर्वके अन्तमें एक सभा करनेका विचार किया है। स्वामीजीकी आज्ञासे श्रीयुक्त अण्णापा बाबाजी लट्ठे एम. ए. ने इस अभिप्रायसे कि उक्त सभा होनेके पहले समाजके विचार समाचारपत्रों द्वारा प्रकाशित हो जावें, कुछ प्रश्न प्रकाशित करनेके लिये भेजे हैं। हम उन्हें यहांपर प्रकाशित करते हैं और आशा करते हैं कि, विद्वान् सज्जन उनपर विचार करके अपने युक्तिसिद्ध मत प्रकाशित करेंगे—

१ अजैनियोंमें जैन धर्मका प्रसार करना चाहिये या नहीं? यदि नहीं तो क्यों?

२ यदि कोई अस्पृश्य शूद्र जैनधर्म धारणकरके जैनी हो जाय, तो उसे स्पृश्य मानना चाहिये या नहीं?

३. उसके साथ सवर्णियोंको रोटीव्यवहार या बेटीव्यवहार करना चाहिये अथवा नहीं ?

४. इधरकी (दक्षिणकी) चतुर्थ, पंचम, कासार, सेतवाल आदि जातियोंको किस वर्णमें गर्भित करना चाहिये ?

५. इस विषयमें यदि इधर कुछ प्रयत्न करना हो, तो किस प्रकार करना चाहिये ?

६. यदि आपको कोई अजैनी ऐसे मालूम हों, जो जैनधर्मका पालन करते हैं, तो उनका परिचय दीजिये और यह भी बतलाइये कि उनका सामाजिक व्यवहार किस प्रकार चलता है ?

इन प्रश्नोंका समाधान स्वामीजीके पास भी भेजना चाहिये ।

---

२ मतपरिवर्तन ।

पाठकोंको मालूम होगा कि, आर्यसमाजके उपदेशक पं० दुर्गादत्त शर्माने कुछ समय पहले जैनमित्रमें यह प्रकाशित किया था कि, " यदि आत्माको कहीं शान्ति मिल सकती है , तो जैनधर्ममें ही मिल सकती है । इसलिये मैं आर्यसमाजको छोड़कर जैनधर्म ग्रहण करता हूं ।" इसके बाद आप कुछ समय तक जैनी रहे और इस बीचमें आपके इटावा आदि स्थानोंमें कई व्याख्यान हुए। शर्माजी अच्छे विद्वान् हैं । न्यायकी शास्त्रीय परीक्षाके तृतीय खंडमें आप उत्तीर्ण हैं और व्यावहारिक बातोंमें भी आपका अच्छा ज्ञान है । कई वर्षतक आप आर्यसमाजके उपदेशक रहे हैं । इससे आपके जैनी होनेसे जैनियोंके आनन्दका कुछ ठिकाना नहीं रहा । श्रद्धालु जैनी इस आनन्दका अनुभव कर ही रहे थे कि, अजमेरके शास्त्रार्थके समय जो कि जैनकुमारसभाके वार्षिकोत्सव पर स्याद्वादवारिधि

पं० गोपालदासजी और स्वामी दर्शनानन्दजीके बीचमें हुआ था, आपने उक्त आनन्दको दुःख और ग्लानिमें परिणत कर दिया। आपने पहले तो अजमेरमें जैनियोंकी ओरसे दो एक व्याख्यान दिये और उसमें वैदिक धर्म तथा वेदोंके विरुद्ध बहुत कुछ कहा। परन्तु पीछेसे 'जैनधर्म परित्याग' नामका विज्ञापन छपाकर यह प्रकाशित कर दिया कि, "जैनधर्म निःसार है। वैदिक धर्म ही संसारका कल्याण करनेवाला है इसलिये मैं पश्चात्ताप करता हूं और फिर वैदिकधर्मको ग्रहण करता हूं।" बस फिर क्या था, जिस आनन्दका अनुभव पहले जैनी कर रहे थे, उसीका अनुभव समाजीभाई करने लगे। परन्तु समाजियोंके आनन्दको भी शर्माजीने अधिक कालतक स्थायी रखना उचित नहीं समझा। केवल दश ही दिन पीछे आपने एक और विज्ञापन प्रकाशित करा दिया कि, "मुझे इस बातका दुःख है कि, मुझसे आर्यसमाजी भाइयोंने कई प्रकारकी लाचारियां डालकर 'जैनधर्म परित्याग' शीर्षक विज्ञापन निकलवा दिया। परन्तु सोचनेसे मालूम हुआ कि, किसीके दबावमें पड़कर सत्य धर्मका परित्याग करना कल्याणकारी नहीं है। इसलिये मैं पश्चात्ताप करता हूं और भूलसे त्यक्त जैनधर्मको पुनः ग्रहण करता हूं।" इस समय शर्माजी जैनी हैं और जैनियोंको उनके खोये हुए आनन्दका फिर अनुभवन करा रहे हैं। आगेकी सर्वज्ञ जाने।

हमने यह भी सुना है कि, दिगम्बर जैनियोंसे परिचय होनेके पहले आप कुछ समयतक स्थानकवासी (ढूंढिया) भी रहे हैं और यह तो एक प्रकारसे निश्चित ही है कि, आर्यसमाजी होनेके पहले आप सनातन धर्मी रहे होंगे। इस तरह आपने थोड़े ही समयमें

कई बार धर्मपरिवर्तन करके लोगोंको विस्मित कर दिया है। आपके इस श्रद्धान वैलक्षण्यपर मानस-शास्त्रज्ञोंको खूब बारीकीसे विचार करना चाहिये।

---

३. मतपरिवर्तनपर कुछ विचार।

इस समय भारतवर्षमें धर्मपरिवर्तनका बाजार खूब गर्म है। जो लोग आर्यसमाजके और सनातन धर्मियोंके पत्र पढ़ा करते हैं, उन्हें इस बातका अच्छी तरहसे परिचय होगा। जिस तरह शिक्षित लोगोंके लिये एक पोशाक बदल कर दूसरी पहिनना एक मामूली बात है, उसी तरहसे धर्म बदलना भी बहुतोंके लिये एक मामूली बात हो गई है। आज जो सनातनी है, कल वह समाजी होता है, परसों ईसाई होता है और नरसों वही थियोसोफिस्ट हो जाता है। हम यह मानते हैं कि, इस समय अंधविश्वास, गतानुगतिकता, दुराग्रह आदि बातें पहलेकी अपेक्षा बहुत कम हो गई हैं और धार्मिक विषयोंपर लोग बहुत बारीकी और स्वतंत्रतासे विचार करने लगे हैं। हम यह भी जानते हैं कि, ये देशके भविष्यके कुछ अच्छे लक्षण हैं। क्योंकि जब तक देशमें स्वाधीन चेताओंका जन्म नहीं होता है तबतक उसकी उन्नतिका पथ सुगम नहीं होता है। परन्तु इस स्वाधीन चिन्तनाके मोहमें पड़कर हमें इस बातको नहीं भूल जाना चाहिये कि, धर्मका परिवर्तन करना, विश्वासका बदलना, पोशाक बदलनेके समान दैनिक साप्ताहिक वा मासिक कार्य नहीं है और न इस प्रकारका विश्वास-परिवर्तन किसीके स्वाधीन चेता होनेकी कसौटी है। जो विद्वान् हैं, विचारशील हैं और विविध प्रकारके ग्रन्थोंका अध्ययन तथा मनन करते हैं, उनके विचारोंमें या विश्वासोंमें बड़े

२ परिवर्तन हुआ करते हैं। प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता जान स्टुअर्ट मिलके जीवनचरितमें उसके विचार परिवर्तनोंका बड़ी मार्मिकतासे विचार किया गया है। इस देशके प्राचीन विद्वानोंके चरितोंमें भी इन परिवर्तनोंका पता लगता है। उपमिति भवप्रपंचकथाके रचयिता महात्मा सिद्धर्षि और विद्यानन्दिस्वामी आदिने जो मतपरिवर्तन किये थे, उन्हें प्रायः सब ही जानते हैं। परन्तु यह कोई बाजारी सौदा नहीं है, जो आज लिया और कल वापिस कर दिया। किसीके दबाने धमकाने या लिहाजसे मतपरिवर्तन नहीं होता है। जबतक पूर्वसिद्धान्तकी निःसारता अच्छी तरहसे न समझ ली जाय और स्वीकार्यमतका अध्ययन मनन और परिशीलन अच्छी तरहसे न कर लिया जाय, तबतक पूर्वका परित्याग और नवीनका ग्रहण करना अपनी हँसी कराना है। वह चित्तकी चंचलता और दुर्बलताके सिवाय और कुछ नहीं है। ऐसे मत परिवर्तनको जो लोग महत्त्वकी दृष्टिसे देखते हैं, वे बड़ीभारी भूल करते हैं और मतपरिवर्तन करनेवालोंकी भूलकी तो कुछ सीमा ही नहीं है। वे तो अपनी विचारशीलताका—जो कि उनके मनुष्यजन्मकी विशेषता है—असह्य अपमान करते हैं।

---

४. सावधान !

अजैनोंको जैनी बनानेका सिलसिला जैनियोंमें अभी हाल शुरू हुआ है। मालूम होता है, यह आगे खूब जोरशोरसे चलेगा। इसलिये इस विषयमें जैनियोंको अभीसे सावधान हो जाना चाहिये। पं० दुर्गादत्तजीसे हमारा साक्षात् परिचय नहीं है। हो सकता है कि, उनमें सत्यशीलता वा सत्यनिष्ठा हो, परंतु उन्होंने जो अभी थोड़े ही दिनोंमें कई रंग बदले हैं, उनसे उनके विषयमें सन्देह अ-

वश्य होता है। और यह हमें अपने समाजको सचेत करनेके लिये यथेष्ट कारण मिल गया है। यदि हम शर्माजीका यह रंग बदलना उनके चित्तकी चंचलता वा दुर्बलतासे ही मानलें, इसमें उनका कोई स्वार्थ न समझें तो भी जब हम इस ओर अग्रसर हुए हैं, तब हमें ऐसे लोगोंसे भी काम पड़ेगा, जो अपनी स्वार्थसाधनाके लिये हममें आकर मिलेंगे और ज्योंही उसमें कुछ त्रुटि देखेंगे अथवा दूसरी ओरसे कुछ प्रलोभन दिया जायगा, त्योंही तोते सरीखी आंख बदल जावेंगे। इसलिये हमें अपने जैनी बनानेके मोहको एकाएक उच्छृंखल न होने देना चाहिये। ऐसे मौकोंपर चित्तको कुछ संयमित करके पात्रकी प्रवृत्तिका खूब विचार कर लेना चाहिये और तब उसपर भक्ति करनी चाहिये। आशा है कि, हमारे इस प्रस्तावपर तत्त्वप्रकाशिनी सभा ध्यान देगी।

---

५ आधुनिक बौद्ध धर्म।

प्राच्यविद्यामहार्णव श्रीयुत नगेन्द्रनाथ वसुने इस नामका एक ग्रन्थ अंग्रेजी भाषामें लिखा है। यह ग्रन्थ बड़े ही महत्त्वका है। नगेन्द्रबाबूने वर्षों परिश्रम करके और बंगालके ग्राम ग्राममें घूमकरके इस ग्रन्थका सम्पादन किया है। इसमें यह बतलाया गया है कि, वंग और कलिंग (उड़ीसा) देशमें इस समय भी बौद्धधर्म गुप्त रूपसे प्रचलित है और जहां तहां फैलता जाता है। महामहोपाध्याय पं० हरप्रसादशास्त्री एम. ए. ने उक्त ग्रन्थकी भूमिका लिखी है। उसमें उन्होंने लिखा है कि, शंकराचार्यने बौद्ध धर्मको भारतवर्षसे निकाल दिया, यह विश्वास भ्रमपूर्ण है। इसमें कोई तथ्य नहीं है। क्योंकि शंकराचार्यके पीछे भी यहां अनेक बौद्ध राजा

हुए हैं और बौद्धोंका खूब जोरशोर रहा है। ईसाकी नवमी दशवीं शताब्दिमें पाल वंशके बौद्ध राजा बंगालका शासन करते रहे हैं। १२७६ ईस्वीमें श्रावस्तीका एक बौद्धस्तूप बना था। ई० स० १३३१ में ब्रह्मदेशके नरेशने बुद्धगया का संस्कार कराया था। तमलुक नामक स्थानसे सैंकड़ों बौद्ध पण्डित आसाम आदि देशोंमें बौद्ध धर्मका प्रचार करनेके लिये जाते थे। कात्यायन गोत्रके एक बंगाली पंडितको सिंहलमें बौद्धागम चक्रवर्तीकी पदवी मिली थी। सोलहवीं शताब्दिके अन्तभागमें तारानाथ नामके लामाने तिब्बतसे एक दूत भेजा था। उसने सारे बंगालमें भ्रमण करके लामाको संवाद दिया था कि, पश्चिमबंगाल और उड़ीसामें बौद्धधर्म प्रबल है। चीनी यात्री हुएनसंगने लिखा है कि, जब वह भारतमें आया, तब बंगालमें दशहजार मठ और एक लाख बौद्ध भिक्षुक थे। अवश्य ही उस समय इन भिक्षुओंके पालनेवाले एक करोड़ बौद्ध गृहस्थ बंगालमें होंगे। इत्यादि बातोंसे साफ जाहिर है कि, शंकराचार्य द्वारा भारतसे बौद्धनिर्यासकी बात कल्पनामात्र है। बौद्धधर्म बंगालसे कभी लुप्त नहीं हुआ। इस समय भी वह वहां जीवित है। परन्तु उस पर चैतन्यकृत वैष्णवधर्म, शहजिया धर्म आउले भजा, कर्ताभजा, तांत्रिक आदि सम्प्रदायोंका आवरण पड़ा हुआ है। सहजिया मत बौद्धमत ही है इस बातको शास्त्रीजीने बहुत अच्छी तरहसे सिद्ध किया है। जगन्नाथपुरीका मान्दिर बौद्धोंका मन्दिर है। पुरुषोत्तमकी श्रीमूर्ति बौद्धमूर्ति है। चैतन्यदेवका वैष्णव मत महायान और वज्राचारी बौद्ध सम्प्रदायका और पौराणिक वैष्णवमतका मिश्रण है। श्रीकृष्णकी व्रजलीला और प्रेमसाधना महायानीय साधनाका रूपान्तर है। पुराणोंमें विष्णुको

कहीं भी द्विभुज नहीं बतलाया है—सर्वत्र चतुर्भुज कहा है। परन्तु चैतन्य देवने विष्णुको द्विभुज बतलाया है। यह बौद्धधर्मकी नकल है। इसके कई प्रमाण दिये गये हैं। गरज यह कि, बौद्धधर्म भले ही रूपान्तरित हो गया हो, परन्तु अब भी वह बंगालमें मौजूद है। **बंगाल जैनियोंका भी प्रधान क्षेत्र था**। हजारीबागमें पार्श्वनाथ, भागलपुरमें वासुपूज्य, राजमहलमें महावीर, इस तरह बंगालमें जैन तीर्थंकरोंके स्मृतिचिन्ह अब भी हैं। पश्चिम बंगालके पंचकोट स्थानमें नाथपूजकोंका एक दल है, नेड़ानेड़ियोंमें नाथ-साधना (महावीर-पूजा) होती है, और योगी जातिमें जैनाचार परिलक्षित होते हैं। बंगालमें जितने धर्मसम्प्रदाय प्रचलित हैं, उन सबहीमें यदि बारीकीसे देखा जाय, तो जिनपदांक मिलेंगे। सुवर्णवणिक (सुनार) जातिकी भी किसी २ शाखामें जैनाचारोंके लक्षण पाये जाते हैं। यह बात बड़ी प्रसन्नताकी है कि, अब हमारे देशवासी विशेष करके बंगाली विद्वान् ऐसे २ पाण्डित्यपूर्णग्रंथ लिखकर देशका मुंह उज्वल करने लगे हैं। सुना है, यह ग्रन्थ बंगला भाषामें भी शीघ्र प्रकाशित होगा।

---

६. ईसाकी जीवनी।

तिब्बतमें **हीमिस** नामका एक स्थान है। वहां बौद्धोंका एक बड़ा भारी मठ और पुस्तकालय है। रूसके **नोटोविच** नामक परिव्राजकको वहांके पुस्तकालयमें ईसाकी हस्तलिखित जीवनी मिली है, जो कि बड़ी २ दो जिल्दोंमें है और पालीभाषामें लिखी हुई है। अभी तक कहा जाता है कि, ईसा एक कुँवारीसे पैदा हुआ था, परन्तु इस जीवनीसे मालूम हुआ है कि, नहीं उसका बाप भी था।

इसराइलमें वह एक गरीब माबापके यहां पैदा हुआ था। १३ वें वर्षकी अवस्थामें वह सिन्ध भाग आया था और १४ वें वर्षमें उसने जगन्नाथ, राजगृह, काशी आदिकी यात्रा की थी और फिर उसने कुछ दिनों वेदोंका अभ्यास किया था। इसके बाद उसने बौद्धोंकी शरण ली, उनसे पाली सीखी और शुद्ध बौद्ध हो गया। इसके पीछे वह पश्चिमकी ओर चला गया और वहां मूर्तिपूजाके विरुद्ध व्याख्यान देने लगा, फिर पारसी धर्मका विरोध करने लगा। २९ वर्षकी अवस्थामें वह थाजूडिया पहुंचा और नवीन मतका प्रचार करने लगा। इत्यादि। इससे मालूम होता है कि, अन्यान्य मतोंके समान ईसाई धर्म भी इसी भारतवर्षकी सामग्रीसे तयार किया गया है। ईसाई धर्ममें जो बौद्धधर्मका प्रभाव परिलक्षित होता है, उसका भी कारण यही मालूम होता है। इस जीवनीकी बातसे ईसाईसंसारमें बड़ी हलचल मची है। बहुतसे पादरी इसे झूठी सिद्ध करनेके प्रयत्नमें लगे हैं।

---

७. श्रावस्तीनगरी

जैनियोंके आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभका जन्म श्रावस्ती नगरीमें हुआ था, इसलिये वह जैनियोंकी तीर्थभूमि है। बौद्ध लोग तो उसे बहुत ही पूज्य मानते हैं। बौद्धोंकी प्रधान नगरियोंमें वह एक है। क्योंकि स्वयं बुद्धदेव वहां बहुत दिनोंतक धर्मोपदेश करते रहे हैं। बौद्ध राजाओंने वहां बड़े २ मठ विहार और स्तूपादि बनवाये थे। अभी तक इस नगरीका पता नहीं लगता था कि, कहां है। ऐतिहासिक शोध करनेवाले विद्वान् जुदा जुदा स्थानोंमें उसकी कल्पना करते थे। परन्तु बीसों वर्षोंके परिश्रमके बाद अब निश्चय हो गया

है कि, सहेटमहेट नामक स्थान ही प्राचीन श्रावस्ती है और इसके विषयमें प्रायः सब ही विद्वानोंका एक मत हो गया है। सहेटमहेट नामके खंडहर रायती नदीके किनारे गोंड़ा और बहरायच जिलोंकी सीमापर हैं। इन खंडहरोंके खुदवानेमें और वहांके लेखादिकोंके ढूंढ़नेमें बहुत ही परिश्रम किया है। गत अप्रैलकी नागरीप्रचारिणी पत्रिका-काशीमें इस विषयका एक विस्तृत लेख प्रकाशित हुआ है। ऐतिहासिक विषयोंसे प्रेम रखनेवाले सज्जनोंको उसे अवश्य पढ़ना चाहिये।

ईडरकी गद्दी।

गुजरातमें ईडर नामकी एक रियासत है। वहां मूलसंघके भट्टारकोंकी एक गद्दी है। यह गद्दी बहुत पुरानी है और इसपर अच्छे २ विद्वान् भट्टारक रह चुके हैं। इस गद्दीके अधिकारमें एक विशाल पुस्तकालय है। जिसमें कई हजार प्राचीन अर्वाचीन जैन और जैनेतर ग्रन्थोंका संग्रह है। और इसीके कारण उक्त गद्दीकी बहुत बड़ी ख्याति है। लगभग १९ वर्षसे यह गद्दी खाली है। भट्टारक कनककीर्तिके बाद उसका कोई अधिकारी नहीं हुआ। कनककीर्तिके शिष्योंमें एक शिष्य बहुत ही दुराचारी और मूर्ख निकला। सुनते हैं, वह गद्दीकी बहुतसी सम्पत्ति लेकर चला गया है और एक शहरमें रहकर जैनियोंके द्रव्यका सदुपयोग कर रहा है। सांसारिक सुखोंको भोगना ही उसका प्रधान लक्ष्य है। इस गद्दीके प्रबन्धकर्ता तथा उपासक ईडर और रायदेशके पंच हैं। ईडरके आसपासके ग्रामवाले पंच रायदेशके पंच कहलाते हैं। ये सब लोग इस बातके लिये व्याकुल हो रहे हैं कि, किसी तरहसे हमारी गद्दी खाली न

रहे और उसपर कोई भट्टारक विराजमान हो जाय । इसके लिये वे कई वर्षोंसे प्रयत्न कर रहे हैं । कई सुयोग्य पात्र तलाश किये गये और उनके बिठानेका प्रयत्न भी किया गया, परन्तु सफलता नहीं हुई । कई महाशय तो ईडर तक पहुंच गये और स्वीकृत भी हो गये, परन्तु पीछे कुछ न कुछ बहाना बनाकर लम्बे हो गये । जहां तक हमें मालूम हुआ है, इसका कारण वर्तमानमें 'भट्टारक'पदकी अपकीर्ति है । पात्र जितने ढूंढे गये, वे प्रायः उत्तरभारतके थे और उत्तरभारतमें तेरहपंथके प्रभावसे भट्टारकोंके विषयमें लोगोंके खयाल बहुत ही खराब हो रहे हैं । इसलिये उक्त अपकीर्तिकी परवा न करके भट्टारक बन जाना हरएकका काम नहीं है । इस तरह पंचोंका कई बारका प्रयत्न निष्फल गया । परन्तु पंचोंको जबतक कोई भट्टा-रक न बन जावे, तब तक चैन कहां ? उन्होंने अपना प्रयत्न बराबर जारी रक्खा और यहां तक निश्चय कर लिया कि, यदि कोई सदा-चारी वा सुपंडित न मिलेगा, तो न सही जैसा मिलेगा वैसा ही विराजमान कर देंगे । पर अब और अधिक समय तक गद्दीको खाली न रक्खेंगे ।

आखिर पंचोंकी इच्छा पूरी हो गई । एक पात्रको तजवीज करके उन्होंने उसे युवराजका तिलक कर दिया । इस बातको तीन चार महीने हो गये । अब सिर्फ भट्टारकका तिलक करना बाकी है । आगामी कार्तिक या अगहन मासमें सुनते हैं कि, यह कार्य भी सम्पादित हो जायगा ।

जो महाशय भट्टारक बनाये जानेवाले हैं उनका नाम ब्रह्मचारी मोतीलालजी है । आप जैसवाल जातीय हैं । उम्र आपकी लगभग ३० वर्षकी होगी । दो तीन वर्षसे आप ब्रह्मचारी हो गये हैं ।

इसके पहले श्रीयुत पन्नालालजी ऐलकके समक्षमें कुछ प्रतिज्ञाएँ की थी। उक्त प्रतिज्ञाएँ पत्रोंमें प्रकाशित हो चुकी हैं। उन्हें पढनेसे समाजको सन्तोष हो जाना चाहिये था। परन्तु इस समय उनके विषयमें तरह तरहकी बातें सुनाई पड़ने लगी हैं। यहांके गुजराती समाजमें जिसका कि ईडरकी गद्दीसे सम्बन्ध है इस विषयकी खूब चर्चा हो रही है और बाहरसे भी हमारे पास कई पत्र आये हैं। सारांश इन सब बातोंका यह है कि, समाजका एक बड़ा भाग मोतीलालजी ब्रह्मचारीसे प्रसन्न नहीं है और उनकी योग्यताके विषयमें उन्हें शंका है। कई लोगोंने ईडर और रायदेशके पंचोंसे प्रेरणा की है कि, वे मोतीलालजीको योग्यता विद्वत्ता और सदाचारताका परिचय सर्वसाधारणको देवें और तब उन्हें भट्टारक बनावें। परन्तु पंचमहाशय चुप हैं। अभीतक उन्होंने इस विषयमें कोई सन्तोष जनक उत्तर प्रकाशित नहीं किया है।

मोतीलालजीसे हमारा परिचय है। मोरेनामें हम उनके साथ कई महीने रह चुके हैं। हमारा उनके साथ मित्रताका सम्बन्ध है, परन्तु '**दोषावाच्यः गुरोरपि**' की नीतिके अनुसार हमको कहना पड़ता है कि, भट्टारक जैसे महत्त्वके पदको धारण करनेकी योग्यता उनमें नहीं है। यद्यपि कुछ दिनोंसे उनमें समाजकी उन्नति करनेका जोश दिखलाई देता है और शायद वह सच्चा भी हो, परन्तु केवल जोश हीसे काम नहीं चल सकता है। एक धर्मके गुरुका कमसे कम उपदेशकका कार्य स्वीकार करनेके लिये और भी किसी बातकी योग्यता आवश्यक है। जिस कमीके कारण हमारा गुजराती समाज घोर अज्ञानकी कीचड़में फँस गया है, वह कमी भी यदि पूरी न हो सकी, तो फिर इस विटम्बनाका फल ही क्या होगा?

इससे तो यही अच्छा है कि, गद्दी खाली पड़ी रहे। हमें आश्चर्य होता है कि, ईडर और रायदेशके पंच मोतीलालजीको इस पदके लिये चुननेका साहस कैसे कर बैठे? और सबसे बड़ा आश्चर्य मोतीलालजीकी बुद्धिपर होता है, जो इस प्रकार अनधिकार प्रवेश करनेके लिये तयार हो गये। यदि समाजकी सेवा ही करनी थी, तो क्या उनको और कोई मार्ग नहीं सूझता था? क्या वे समझते हैं कि, हम भट्टारक होनेके योग्य है। यों तो भट्टारककी योग्यता बहुत बड़ी है, परन्तु कमसे कम उसे किसी एकाध भाषाका और धर्मशास्त्रका तो अच्छा ज्ञान होना चाहिये। जब तक यह न हो, तब तक धर्मका उपदेश ही क्या दिया जायगा। हमें इच्छा न होते हुए भी कहना पड़ता है और इसके लिये हम मोतीलालजीसे क्षमा मांगते हैं--कि उन्हें न तो संस्कृतका ज्ञान है, न हिन्दी ही वे जानते हैं--उनकी चिट्ठियोंमें अशुद्धियोंकी भरमार रहती है और न धर्मशास्त्रमें उनकी कुछ गति है। जैनधर्मकी बहुत मोटी मोटी बातोंका भी उन्हें ज्ञान नहीं है। इन बातोंको मैं जरा भी बढ़ाकर नहीं लिख रहा हूं। पंचोंकी इच्छा हो, तो वे किसी विद्वान्से उनकी परीक्षा करवा लें।

मोतीलालजी कुछ समय तक मोरेनामें रहे हैं, इससे शायद उनके भक्तजनोंने समझ लिया है कि, वे जैनसिद्धान्त पाठशालाके विद्यार्थी थे और इस कारण वे बड़े भारी विद्वान् होंगे। परन्तु यह उनका भ्रम है। सिद्धान्त पाठशालाके लिये उन्होंने अपना जीवन अर्पण कर दिया था, इस कारण वे उसके छात्राश्रमका तथा सरस्वती भवनका प्रबन्ध करते थे। पढ़ना तो उन्होंने प्रारंभ भी नहीं किया था। हां यदि वे वहां वर्ष दो वर्ष रहते और इस विडम्बनामें नहीं पड़ते, तो अवश्य कुछ न कुछ योग्यता प्राप्त कर लेते।

भट्टारकमें पाण्डित्यके सिवाय एक गुण और चाहिये । वह गुण सदाचार और वैराग्य है । आपके आचरणके सम्बन्धमें तो हम कुछ कह नहीं सकते है क्योंकि आपके पूर्वचरितसे तो हम परिचित नहीं और मोरेनामें आपके चरित सम्बन्धी कोई उल्लेख योग्य बात हमने देखी सुनी नहीं । परन्तु इतना हम अवश्य कहेंगे आपके परिणामोंमें विरक्तिकी झलक नहीं मालूम होती है । और मंत्रतंत्र विद्यासे भी आपको प्रेम है, जिससे कि पूर्वके भट्टारकोंने जैनसमाजका सर्वनाश किया था ।

इस तरह हमारी समझमें ईडर और रायदेशके पंचोंने जो चुनाव किया है, वह बिलकुल ठीक नहीं हुआ है । इससे जैनधर्मकी बड़ी भारी अप्रभावना होगी । अब वह समय नहीं रहा, जब केवल वेषसे काम चल जाता था, इस उन्नतिके समयमें वेषके साथ पाण्डित्य भी चाहिये । हम यह नहीं चाहते हैं कि इस विषयमें हमारी जो सम्मति है, वही मान ली जाय । हो सकता है कि, हमारी जांच ठीक न हो, परन्तु इस विषयमें एक बार विचार अवश्य करना चाहिये और यदि सचमुच गलती हुई हो, तो उसे सुधारना चाहिये । बम्बई प्रान्तिक सभाको और गुजरात प्रान्तके प्रत्येक शिक्षित जैनीको इस ओर ध्यान देना चाहिये और ईडरकी गद्दीका प्रबन्ध करनेवाले पंचोंको इस बातके लिये लाचार करना चाहिये कि वे इस महत्त्वके कार्यको विना सर्व साधारणकी सम्मति पाये कदापि न करें । यह विषय किसी तीर्थक्षेत्रकी रक्षा और प्रबन्धसे कम महत्त्वका नहीं है । बल्कि बुराई भलाईकी जबाबदारी सामान्य तीर्थोंकी अपेक्षा इस धर्मोपदेश तीर्थपर बहुत अधिक है ।

अन्तमें हम एक बात और कह देना चाहते हैं । वह यह कि ईडर और रायदेशके पंचोंमें भोले श्रद्धालु भाइयोंकी संख्या अधिक

है। इसलिये एक तो वे योग्यता और अयोग्यताका विचार यों ही नहीं कर सकते हैं और दूसरे यदि दूसरे लोगोंकी प्रेरणासे या चिट्ठी पत्रीसे उन्हें कुछ विचार होता है, तो वे लोग जिनका कि इस गद्दीके हो जानेसे स्वार्थ है, उलटी सीधी पट्टियां पढ़ाकर फिर ठंडे कर देते हैं। इस विषयकी जो शिकायतें पंचोंके पास जाती हैं, उनमेंसे किसीके विषयमें तो उक्त महात्मा समझा देते हैं कि, यह तेरह पंथी है यह तो चाहता ही है कि, वीसपंथी भट्टारकोंका मार्ग न चले। किसीके विषयमें कह देते हैं कि, इसकी मोतीलालजीसे पुरानी शत्रुता है और उसका कारण यह है कि किसीके विषयमें समझा देते हैं कि इस पर गद्दीका कुछ रुपया निकलता है, इसलिये चाहता है कि कोई गद्दीका अधिकारी नहीं होने पावे। इस तरह स्वार्थसाधु लोग किसीके आक्षेपको पंचोंके सामने नहीं टिकने देते हैं। इसलिये जो भाई इस विषयमें कुछ उद्योग करें, वे इन सब प्रपंचोंका विचार करके करें।

आशा है कि, हमारी यह प्रार्थना व्यर्थ न जावेगी। गुजराती सज्जन बहुत जल्दी इस ओर लक्ष्य देंगे।

पुस्तक-समालोचन।

वर्णविचार, अर्थात् सार्वभौमिक वर्णमालाकी आलोचनापर प्रबन्ध—बाबू अयोध्याप्रसाद वर्मा कर्तृक विरचित २३।११ वाराणसी घोष सेकेण्ड लैन, जोड़ासांकू कलकत्ता। संसारमें सैकड़ों प्रकारकी लिपियां प्रचलित हैं। उनमें सबसे परिपूर्ण सुगम और सुन्दर देवनागरी लिपि है। ज्यों ज्यों जुदा २ देशोंका पारस्परिक सम्बन्ध बढ़ता जाता है त्यों त्यों विद्वानोंका ध्यान इस ओर आकर्षित

होता जाता है कि, समस्त पृथ्वीपर एक ही प्रकारकी लिपिका प्रचार होना चाहिये--अर्थात् भाषाएँ चाहे भिन्न २ रहें परन्तु वे सब एक ही लिपिमें लिखीं जावें। इससे एक भाषाके जाननेवालोंको दूसरी भाषाओंका ज्ञान बहुत सुगमतासे हो सकता है और दूसरे व्यावहारिक कार्योंमें भी बहुत सुविधाएं हो सकती हैं। कुछ समय पहले यूरोपके विद्वानोंने अंग्रेजीको सार्वभौमिक लिपि बनानेका प्रयत्न किया था। और इसके लिये उन्होंने कई समितियां स्थापित की थीं, इस देशमें भी एक समिति स्थापित हुई थी, परन्तु अंग्रेजी लिपि इतनी अपूर्ण है कि, प्रयत्न करने पर भी इस विषयमें सफलता नहीं हुई। अब कुछ समयसे विद्वानोंकी दृष्टि देवनागरी लिपिपर पी है। और वे इसका विस्तार करनेका प्रयत्न करने लगे हैं। इसके उद्योगके लिये कलकत्तेमें 'एक लिपि विस्तार परिषत्' नामकी सभा कई वर्षसे स्थापित है इस सभाका उद्देश यह है कि, भारतवर्षमें जो अनेक प्रान्तीय भाषाएं हैं वे सब एक ही लिपि अर्थात् देवनागरीमें लिखी जाना चाहिये। परन्तु इस निबन्धके लेखक महाशय चाहते हैं कि देवनागरीको अकेले भारतवर्षकी ही नहीं बल्कि समस्त भूमण्डलकी लिपि बनानेका उद्योग करना चाहिये। यद्यपि और लिपियोंसे देवनागरी बहुत अंशोंमें परिपूर्ण है, परन्तु उसमें भी फारसी अरबी अंग्रेजी आदि वैदेशिक भाषाओंके बहुतसे उच्चारणोंको प्रकाशित करनेके संकेत नहीं हैं और इसका कारण यह है कि, इस लिपिका निर्माण इसी देशके प्राकृतिक उच्चारणोंके अनुसार किया गया था। परन्तु लेखक महाशयको विश्वास है कि, यदि इसमें कुछ नवीन संकेतोंकी सृष्टि और कर ली जाय तथा वर्णशैलीके कुछ नियमोंका परिवर्तन कर दिया जाय, तो यह लिपि

सर्वशक्तिशालिनी हो सकती है। सारे भूमंडलकी भाषाएँ इसमें सुगमतासे लिखी जा सकती हैं। इस निबन्धमें इसी विषयका विस्तार पूर्वक विवेचन किया गया है और नये २ संकेतों तथा परिवर्तनोंका स्वरूप दिखलाया गया है। निबन्धकी भाषामें अशुद्धियोंकी भरमार है। परन्तु विषयकी उपयोगिता पर दृष्टि देनेसे वे सब क्षम्य मालूम होती हैं। प्रत्येक विचारशील पुरुषको यह निबन्ध पढ़ना चाहिये। आधा आनेका टिकट भेजनेसे निबन्ध मुफ्तमें प्राप्त हो सकता है।

भट्टारक—दक्षिणमहाराष्ट्र जैनसभाने एक ट्रेक्ट कमेटी बनाई है। इस कमेटीके द्वारा जैनधर्म सम्बधी छोटे २ ट्रेक्ट छपाये जावेंगे और लागतके दामोंपर बेचे जावेंगे। उक्त कमेटीका यह तीसरा ट्रेक्ट है। जैनहितैषीमें प्रकाशित हुए 'भट्टारक' शीर्षक लेखका यह मराठी अनुवाद हैं। छपाई सुन्दर है। मूल्य एक प्रतिका एक आना। १०० का पांच रु०।

प्राचीन दिगम्बर अर्वाचीन श्वेताम्बर—लेखक, तात्या नेमिनाथ पांगल, प्रकाशक सम्पादक दिगम्बरजैन, सूरत। मूल्य दो आना। जैनशासनके दिवालीके अंकमें 'श्वेताम्बर प्राचीनके दिगम्बर' नामका एक लेख मुनि विद्याविजयजी लिखित प्रकाशित हुआ था और उसमें यह सिद्ध किया गया था कि, श्वेताम्बर प्राचीन हैं। इस गुजराती पुस्तकमें उसी लेखका खंडन किया गया है और दिगम्बर सम्प्रदायको प्राचीन बतलाया है।

नरमेध यज्ञ मीमांसाकी समालोचना और **जैनास्तिकत्व मीमांसा**—लेखक पं० हंसराज शर्मा। पृष्ठसंख्या ४८ और २०। मूल्य तीन पाई और छह पाई। मिलनेका पता लिखा नहीं। इन

दो पुस्तकोंमें इटावा निवासी पं० भीमसेन शर्माके लिखे हुए दो लेखोंका प्रतिवाद किया गया है। पं० भीमसेन शर्माने लिखा था कि, वेदोंमें नरमेध अर्थात् पशुका बलिदान करना कहीं भी नहीं लिखा। जहां नरमेध कहा गया है, वहां मेधावी मनुष्यका संस्कार समझना चाहिये। पहली पुस्तकमें इसके विरुद्ध व्यासजी, वाल्मीकि, नीलकंठ आदि विद्वानोंके प्रमाण देकर सिद्ध किया है कि नहीं, वैदिक कालमें पशुओंके समान मनुष्य भी यज्ञमें होमे जाते थे। यदि ऐसा न होता तो स्मृतिकार कलिकालमें नरमेध करनेका निषेध क्यों लिखते? स्मृतिकारोंके समय अहिंसाका प्रभाव पड़ चुका था, इसलिये उन्होंने नरमेधको वैदिक कर्म स्वीकार करके भी कलिमें निषेध किया था। दूसरी पुस्तकमें व्याकरण, कोषादिके प्रमाणोंसे जैनियोंको आस्तिक सिद्ध करके जैनधर्मका संक्षिप्त स्वरूप बतलाया है और अफसोसके साथ कहा है कि, जिनके धर्ममें पशु और मनुप्यों तकका हवन तथा मांस भक्षण अच्छा बतलाया है, वे तो आस्तिक कहलावें और जिनके यहां पदपदपर अहिंसाका उपदेश है, वे नास्तिक कहलावें।

प्रद्युम्न चरित्र—मराठी रूपान्तरकार विष्णु यशवन्त मोकाशी और प्रकाशक गुलाबसाव बकारामजी रोडे, वर्धा (सी. पी.)। पृष्ठसंख्या ३७४, मूल्य ढाई रुपया। हिन्दी प्रद्युम्नचरित्रका यह मराठी अनुवाद है। इसकी रचना अच्छी पद्धतिसे हुई है और भाषा भी अच्छी मालूम होती है। परन्तु जान पड़ता है कि, इसके अनुवादक न तो हिन्दीको ही अच्छी तरहसे समझ सकते हैं और न जैनधर्मसे ही कुछ परिचय रखते हैं। समयाभावसे हम इसके थोड़ेसे पृष्ठ बांच सके, परन्तु उतनेमें ही इससे जैनधर्मसे विरुद्ध अनेक बातें

मिलीं। वे बातें इतनी साधारण हैं कि, जैनधर्मका थोड़ा भी ज्ञान रखनेवाला उनमें नहीं भूलता। यथा:—"ह्या भूमंडलाच्या ठायीं जम्बु वृक्षाच्या आकारासारखें जम्बु नांवाचें द्वीप होतें. ज्या ठिकाणीं बाहिनीनाथ नांवाचा एक सुवृत्त पुरुष सेवा करित असे." वास्तवमें जम्बू द्वीपको जम्बू वृक्षसे चिन्हित बतलाया है और उसकी बाहिनीनाथ अर्थात् समुद्र सुवृत्त रूपसे (गोलाईरूपमें) सेवा करता है। परन्तु आप लिखते हैं कि, जम्बू द्वीप जम्बू (जामुन) वृक्षके आकारका है। और उसकी कोई बाहिनीनाथ नामका पुरुष सेवा करता है। पृष्ठ ८९ में लिखा है—"भरतक्षेत्रांत उत्सर्पिणीकाल ज्यांस अवसर्पणीकाल असेंहि संज्ञितात, त्याचें परिवर्तन होत आहे असें दिसतें।" हिन्दीमें उत्सर्पिणीकाल और अवसर्पिणीकाल लिखा है। पर आप 'और' का अर्थ अथवा समझे हैं, इसलिये उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीको एक ही बतलाते हैं। "असें दिसतें" का क्या मतलब? क्या वास्तवमें नहीं है, पर ऐसा दिखता है, यह? इसके कुछ ही आगे आदिनाथकी आयु 'चौरासी लाख' लिखी है। 'पूर्व'-को आपने न जाने क्यों उड़ा दिया? ग्रन्थके अन्तमें ग्रन्थकारका परिचय देते समय आप लिखते हैं कि "नदीतट नांवाच्या सुगच्छ क्षेत्रांत श्रीरामसेन नांवाचे आचार्य होऊन गेले।" नदीतट काष्ठासंघके एक गच्छका नाम है, पर आप उसको क्षेत्र या देश समझ बैठे। यदि आप हिन्दी ही अच्छी जानते होते, तो ऐसी भद्दी गलतियां न होतीं। हिन्दी अनुवादमें ये बातें बहुत ही खुलासा तौरपर लिखी हुई हैं। श्रीयुक्त गुलाबसावजीका ग्रन्थ प्रकाशित करनेका उद्योग प्रशंसनीय है, परन्तु हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि, यह कार्य बहुत ही सावधानीसे करावें।

सबल-सम्बोधन।

(१)

बल आपको मिला है किस वास्ते? बिचारो।
क्या इसलिये मिला है, तुम दुर्बलोंको मारो?॥
जो बोल भी न सक्के, उनपर छुरी चलाओ?।
सीधे, परोपकारी, जो हों, उन्हें मिटाओ?॥

(२)

या साधु-सज्जनोंपर डालो दबाव, ऐंठो?।
पीकर नशा, बुरे ही लोगोंमें नित्य बैठो?॥
हरदम हरामकारी, मक्कारियाँ सुझाना।
लड़ भिड़ बिगड़ झगड़ कर उत्पात ही मचाना॥

(३)

औरोंका दिल दुखाकर आनन्द-मग्न रहना।
क्या आपका यही है कर्तव्य? सत्य कहना!॥
क्या शक्तिका यही है उपयोग ठीक भाई?।
क्या सृष्टि निर्बलोंकी उसने नहीं बनाई?॥

(४)

यों सर्वदा बलफते शेखी बघारते हो।
पर जो चुभे सुई तो तुम चीख मारते हो!॥
तुमसे जो इस तरह है पीड़ा सही न जाती।
तो औरको सताते फटती है क्यों न छाती?॥

(५)

जो हैं भुजा फड़कती, ताकत अगर भरी है।
कुछ जोश खूनमें है कुछ भी बहादरी है॥

तो दीन बन्धुओंको दुखसिन्धुसे उबारो ।
या चोर डाकुओंको दो दण्ड मेरे यारो ॥

(६)

रक्षा करो निबलकी, बलवान जो सतावें ।
बलकी यही सफलता, सब शास्त्र ही बतावें ॥
छोड़ो ये व्यर्थ हत्या, उत्पात औबुराई ।
इससे कभी तुम्हारी होनी नहीं भलाई ॥

(७)

रावणने कर उपद्रव, पाया है उसका फल क्या ।
दुर्योधनादिकोंकी इच्छा हुई सफल क्या ?
निजबन्धु-बान्धवोंको सब अन्तमें सताकर ।
यमलोकको सिधारे बदनाम होके भूपर ॥

(८)

जिसके लिये करो तुम हत्या हराम हरदम ।
जिसके सँवारनेमें इतना करो परिश्रम ॥
छुट जायगा तुम्हारा वह देह यक-न-यक दिन ।
हो प्राणहीन प्यारे करने लगेगा भिन भिन ॥

(९)

चटपट उसे उठानेकी फिक्र होगी सबको ।
कोई न माननेका तब आपके अदबको ॥
गाड़ेसे कृमि पड़ेंगे, बहनेसे होगी विष्ठा ।
जलनेसे, राख होगी, बस तीन ही हैं निष्ठा ॥

(१०)

उस देहके लिये यों दिन-रात पाप करना ।
औरोंकी जान जावे, पर अपना पेट भरना ।

क्या काम बुद्धिमानोंका है? जरा विचारो।
कुछ भी असर पड़े, तो चींटीको भी न मारो॥

रूपनारायण पाण्डेय।

(कमलाकर.)

जयमाला।

चित्रकारका नाम छविनाथ है। चित्र खींचना ही उसके जीवनका व्रत है। कवि जिस तरह काव्यका आलाप करके, स्वरमें छन्दको मिला कर, कविताद्वारा अपने मनका भाव प्रकाशित करता है। उसी तरह छविनाथ अपनी निपुण कलमसे रंगको फैलाकर, तथा रेखाओंको खींचकर अपने मनका भाव चित्रमें स्पष्ट रूपसे झलका देता है। उसके अंकित चित्र ऐसे सुन्दर तथा प्राकृतिक-भावयुक्त होते हैं कि उन्हें देखकर यथार्थ वस्तुका भ्रम होता है। आकाशमें पक्षी उड़ता है—उसका खींचा हुआ चित्र देखकर उसे लोग सहसा नहीं कह सकते कि, यह सचमुच पक्षी है या उसका चित्र! चित्रकलामें उसकी ऐसी निपुणता देखकर प्रायः देशके समस्त चित्रकार मन ही मन उससे द्वेष रखते हैं। परंतु छविनाथके मनमें ईर्षा-द्वेषका लेश भी नहीं है। उसका मन दूधके समान स्वच्छ है; वह बालकोंके समान सदैव प्रसन्न रहता है।

छविनाथ एक उच्च श्रेणीका चित्रकार है, उसकी इस निपुणताको सर्वसाधारण लोग नहीं जान सकते। केवल समस्त चित्रकार ही उसके गुणसे परिचित हैं। परन्तु वे इस बातको प्रकट न करके अपने २ नामके बढ़ानेहीमें प्राणपनसे चेष्टा करते हैं। छविनाथ चित्र खींचनेहीमें तन्मय रहता है, उसे प्रशंसापानेकी तिलमात्र भी इच्छा नहीं है।

एकबार राजसभामें प्रश्न उठा कि देशभरमें सर्व श्रेष्ठ चित्रकार कौन है। इसका निर्णय करनेके लिये राजाने देशके समस्त चित्र-कारोंको निर्दिष्ट समयपर एकत्रित होनेके लिये आज्ञा दी।

चित्रकारोंने परस्पर विचार करके निश्चय कर लिया कि देहा-तके रहनेवाले छविनाथको यह राजाज्ञा किसी तरह विदित न होने पावे। वे लोग यह भली भांति जानते थे कि यदि चित्रप्रदर्शनमें छविनाथका चित्र आया तो हम लोगोंका आशा–कुसुम मुरझाकर गिर जावेगा–और उसको ही विजय प्राप्त होगी।

धीरे २ निर्दिष्ट समय भी आ पहुंचा। सब लोग राजसभामें उपस्थित हुए। केवल छविनाथ ही इस सभामें नहीं आया।

राजाने सबको सम्बोधन करके कहा कि " तुम लोगोंमें सर्व-श्रेष्ठ चित्रकार कौन है मैं इसकी परीक्षा करना चाहता हूं। इस लिये नववर्षके प्रथम दिन तुम सब लोग एक २ उत्तम चित्र तैयार करके राजसभामें उपस्थित होओ। उन चित्रोंपरसे ही यह निर्णय किया जावेगा "।

राजाज्ञा सुनकर चित्रकार लोग प्रसन्नता पूर्वक अपने २ घर लौटे। उन्होंने मन ही मनमें संकल्प किया कि, छविनाथको इस बातकी गंध भी न मिलना चाहिये।

[२]

एक पांच वर्षका बालक नदीके किनारे खेल रहा है। खेलते २ जब वह आगे पीछे दौड़ता है, तो उसके काले काले केश वायुके हिल्लोलसे उड़ उड़कर अपूर्व सौन्दर्य दरशाते हैं। उसके सुदीर्घनेत्र दो फुले हुए नीलकमलके समान सुन्दर और भावपूर्ण दिखाई देते हैं।

छविनाथ देखते २ नदीपर आ पहुंचा। वह एक सुन्दर तसबीर खींचना चाहता था, किन्तु उसे मनके अनुसार आदर्श नहीं मिलता था। बालकको देखकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ–उसे अपने मनके अनुसार आदर्श मिल गया। वह धीरे धीरे उसके पास जाकर पूछने लगा—

छवि०—तुम्हारा क्या नाम है?

बालक—(हँसके) मनोहर।

छविनाथ मन ही मन बड़ा प्रसन्न हुआ कि नाम भी ठीक है—मनोहर यथार्थमें मनोहर ही है। अनेक यत्न और प्रलोभनसे उस बालकको उसने एक पत्थरपर बिठाया। बालक हंसते २ कहने लगा, "भाई? यह तसवीर मुझे देओगे?

छवि०—चित्र तैयार होनेपर यही तसबीर मैं तुम्हें दूंगा, परन्तु इसे तैयार करनेमें दो तीन दिन लगेंगे, तुम रोज ठीक समयपर यहां आ जाया करो।

बालक—(प्रसन्न होकर) बहुत अच्छा।

छविनाथने पाकटसे कलम और रंग निकाल कर चित्र खींचना प्रारंभ किया। तीसरे दिन चित्र तैयार हो गया। बालक उसे देखकर बहुत प्रसन्न हुआ, और चित्रकारका हाथ पकड़के बड़े आग्रहसे उसे अपने घर ले गया। मनोहरका पिता इस मनोहर चित्रको देखकर मुग्ध हो गया–मन ही मन कहने लगा अहा! मेरे लड़केका चित्र इतना सुन्दर! चित्रकी ओर देखकर फिर अपने लड़केका मुँह निरीक्षण करके चकित हो रहा। वह आनंदमें इतना मग्न हो गया कि, छविनाथकी अभ्यर्थना करना भी भूल गया।

[३]

आज नववर्षका प्रथम दिन है। राजसभा लतापुष्पोंसे सुसज्जित हो रही है। सुन्दर चन्द्रातपमण्डित सभास्थलके मध्यमें राजसिंहासन सुशोभित है। दहिनी ओर एक सुन्दर गलीचेपर न्यायार्थी-चित्रकार गण अपने २ चित्र लिये हुए बैठे हैं साम्हनेकी ओर दर्शकोंके बैठनेकी जगह है।

देशके समस्त चित्रकार राजसभामें उपस्थित हैं। छविनाथको इसकी खबर पहिले ही मिल चुकी थी। परन्तु वह जानकर भी आज इस सभामें नहीं आया।

चित्र-परीक्षा प्रारंभ होनेमें अब अधिक विलम्ब नहीं है। ऐसे समयमें एक आदमी हांपते २ राजसभामें उपस्थित हुआ। उसके हाथमें छविनाथका अंकित किया हुआ मनोहरका चित्र है। सब लोग इस आगन्तुक पुरुषकी ओर देखने लगे। राजाके इशारेसे पहरेवालोंने रास्ता छोड़ दिया, उसने आकर चित्र रखके प्रार्थना की, कि "महाराज! मैं भी विचारप्रार्थी हूं, यह चित्र परीक्षाके लिये लाया हूं।"

चित्र-परीक्षा प्रारंभ हो गई। राजाने एक २ करके सब चित्रोंकी परीक्षा की और अन्तमें मनोहरके चित्रको दहिने हाथसे उठाया। उन्होंने बहुत समय तक उसका निरीक्षण करके उच्च स्वरसे कहा कि "यह चित्र जिसका खींचा है, वही तुम सब चित्रकारोंमें श्रेष्ठ चित्रकार है।"

सब लोग उस चित्रकी ओर देखने लगे। एक ही साथ सभामें उपस्थित समस्त लोगोंकी दृष्टि उस चित्रपर जा पड़ी सब ही आश्चर्यसे देखने लगे कि—नदीके तीरपर एक पत्थरपर बैठी हुई सुन्दर सुकुमार-बालककी अपूर्व मूर्ति है। उसमें कृत्रिमताका लेश भी

नहीं है। उस मूर्तिको देखकर चित्रसे बालकको गोदमें लेनेके लिये दर्शकोंके दोनों हाथ स्वतः ही आगेको बढ़ते हैं।

राजा—(मनोहरके पितासे) इस चित्रके बनानेवालेका क्या नाम है और वह कहां है ?

राजन्! इसके बनानेवालेका नाम मैं नहीं जानता और यह भी नहीं जानता कि वह कहां रहता है। परन्तु यह चित्र मेरे बालककी जीवन्त प्रतिमूर्ति है। ऐसा मनोहर चित्र मैंने आजतक नहीं देखा, इसी लिये महाराजकी सेवामें इसे विचारके लिये उपस्थित किया था।

अनेक अनुसन्धान होनेपर भी चित्रकारका पता नहीं लगा। राजाने मनोहरके पिताको प्रचुर पुरष्कार देकर उस चित्रको अपने पास रख लिया। उस दिन कुछ भी विचार स्थिर नहीं हो सका।

राजाने विचारप्रार्थी चित्रकारोंको बुलाकर कहा "तुम लोगोंमें कौन श्रेष्ठ चित्रकार है, इसका निर्णय कुछ भी नहीं होसका। इस लिये तुम लोग फिरसे चित्र तैयार करके लाओ, मैं तुम्हारा विचार करूंगा।

(४)

आज पुनर्बार चित्र-परीक्षाका दिन है। राजा राजवेश धारण करके रानीकी स्वहस्तग्रथित—पुष्पमालाको कंठमें धारणकर सिंहासनपर विराजमान हैं। पीछे चिककी ओटमें राजवंशीय—महिलाओंके बैठनेकी जगह है।

इसबार न मालूम क्या सोचकर छविनाथ चित्र-परीक्षा देखने आया है। राजसभामें एक ओर दर्शकोंके बैठनेका स्थान है, वहांपर ही वह बैठा है। परन्तु किसीने उसे पहचाना नहीं।

राजाके सन्मुख चित्र रक्खे गये। सब लोग आजके फैसलेको जाननेके लिये उत्सुक हो रहे हैं। विचार आरंभ होगया। ऐसे समयमें छविनाथकी दृष्टि राजमहलके कक्षमें लटकी हुई एक तसवीरके ऊपर पड़ी। वह धीरेसे उठा और तसवीरकी ओर अग्रसर हुआ। किसीने भी उस ओर लक्ष्य नहीं किया। सब लोग चित्रपरीक्षा देखनेमें व्यस्त हो रहे हैं। राजाने एक एक करके सब चित्र देखे। अंतमें एक चित्रको उठाकर अपने हाथमें लिया ही था, कि इतनेमें चोर! चोर! इस शब्दसे सभामंडप गूंज उठा। राजाने देखा कि, दो पहरेवाले एक आदमीको बाँधे हुए लिये आते हैं। पहरेवालोंने राजासे निवेदन किया कि "महाराज! यह मनोहरका चित्र चुरानेको गया था।"

राजाने स्थिर दृष्टिसे छविनाथके आपत्तिग्रसित मुखका निरीक्षण किया। वह सिर झुकाये स्थिर भावसे खड़ा है। उसके चेहरेपर भयका नाम भी नहीं है। दर्शक लोगोंके कोलाहलसे सभामंडप विकम्पित हो उठा। राजाके कटाक्षपातसे कुछ देरमें शान्ति स्थापित हुई।

राजा–(बंदीसे) तुमने महलमें क्यों प्रवेश किया?

बंदी–(निर्भय मनसे) चित्र देखनेके लिये।

राजा कुछ कहा ही चाहते थे कि, इतनेमें मनोहरके पिताने आकर कहा–महाराज! यह वही चित्रकार है, जिसने मेरे लड़के मनोहरका चित्र अंकित किया था।

दर्शकोंमें सन्नाटा छागया–सभास्थल निस्तब्ध हो गया। लोग उत्कंठित होकर फैसला देखनेकी प्रतीक्षा करने लगे।

राजाज्ञासे बंदी बंधन मुक्त कर दिया गया। राजाने सिंहासनसे उठकर रानीकी हाथकी गुंथी हुई पुष्पमालाको अपने कंठसे उतारकर छविनाथके गलेमें पहना दी।

जयका बाजा बज उठा। चिकके अन्तरालसे विजय गीत सुनाई देने लगे। राजाके विचारसे सब लोग संतुष्ट हुए। केवल जिन लोगोंने विचार कराना चाहा था, वे ही गर्दन झुकाये बैठे रहे। *

शिवसहाय चतुर्वेदी,

देवरी (सागर.)

विविध विषय।

भारतीय वायुवैमानिक।

आजकल पाश्चात्य देशोंमें नये २ आविष्कार हो रहे हैं। कोई तारहीन टेलीग्राफके द्वारा समाचार भेजनेका आविष्कार कर रहा है। कोई दक्षिण और उत्तरीय मेरुकी खोजमें व्यस्त हो रहा है। कोई २ समुद्रके समान तथा उससे भी सुगमता पूर्वक आकाशमें विचरण करनेके लिये नये २ आविष्कारोंके द्वारा वायुयानोंमें सुधारणा कर रहे हैं। इस आविष्कारके युगमें भारतवर्षकी ओर निगाह करनेसे मनको बड़ा परिताप होता है। जहां देखते हैं वहां गंभीर सन्नाटा, लज्जाकर विश्राम और शोकावह शान्ति दिखाई देती है। परन्तु कुछ समयसे हिन्दुस्थानका भविष्य भी प्रकाशमय दिखाई देने लगा है। क्योंकि भारतवासी भी समयके साथ चलनेकी चेष्टा करने लगे हैं। अभी हालमें एक भारतवर्षीय वायुवैमानिकका प्रादुर्भाव हुआ है। श्रीयुक्त स. भ. सेट्टी, बी. ए., एम. आई. ई. ई. महीपुरके सहकारी इञ्जीनियर हैं, आपने एक नया वायु-

---

* बंगला साहित्य मासिक पत्रसे अनुवादित.

यान निर्माण किया है। उस यानपर आरोहण करके सेट्टी महाशय स्वयं आकाशमें उड़े थे। यह बात हम लोगोंके लिये कुछ कम आनंदकी नहीं है। इस वायुयानको आस्ट्रेलियाके एक वैमानिकने श्रीयुक्त सेटी महाशयको यान-निर्माणके लिये धन्यवाद देकर खरीद लिया है। इसका वेग एक घंटेमें ४०-४५ मीलका है। यह वायु-यान उच्चश्रेणीके विमानोंमेंसे एक होकर एक भारतवासीका बनाया हुआ है और उसके चलानेके चक्रादि भी इन्हींके कल्पना-प्रसूत हैं यह बात भारतीय धीशक्तिके लिये कुछ कम गौरवकी बात नहीं है। सुनते हैं कि सेट्टी महाशय अब एक नये प्रकारके वायु-यानकी कल्पना कर रहे हैं। यदि भारतवासी शिक्षित युवक श्रीयुक्त सेट्टी महाशयका अनुकरण करके विज्ञान-पथके पथिक बनें तो भविष्यमें उनसे बहुत कुछ आशा की जा सकती है।

अंग्रेजीमें जैनग्रन्थ—जैनहितैषीके पाठकोंको मालूम है कि, लंडनमें 'जैनलिटरेचर सुसाइटी' नामकी एक संस्था स्थापित हो चुकी है। खुशीकी बात है कि, अब इस सुसाइटीने अपनी नियमावली प्रकाशित की है और अपना काम भी शुरू कर दिया है। सुसाइटी अंग्रेजीमें जैनफिलासोफी, साहित्य और इतिहासके अनुवादित वा स्वतंत्र ग्रन्थ प्रकाशित करेगी। उसने श्रीमल्लिषेण सूरिकृत स्याद्वादमंजरी और हरिभद्रसूरिकृत षट्दर्शनसमुच्चय इन दो ग्रन्थोंका अनुवाद कराना शुरू कर दिया है और तत्वार्थाधिगमसूत्र, अष्टसहस्री, आत्मख्यातिसमयसार तथा सम्मतितर्कके अनुवादोंका वह प्रबन्ध कर रही है। सुसाईटीके भारतीय और यूरोपीय दो विभाग हैं। भारतीयविभागमें २६ और यूरोपीयविभागमें १२ मेम्बर हो चुके

हैं। यूरोपके विद्वानोंने बिना कुछ लिये मुफ्तमें जैनग्रन्थोंका अनुवाद करना स्वीकार किया है। इससे पाठक जान सकते हैं कि, उन्हें जैनसाहित्यसे कितना प्रेम है। अब सुसाइटीको केवल ग्रन्थ प्रकाशित करनेके लिये धनकी आवश्यकता है। आशा है कि, हमारे यहांके धनिक इस धर्मप्रभावनाके कार्यमें अवश्य ही सहायता करेंगे। सुसाइटीके सेक्रेटरीका पता यह है–मि० एच. वारन, नं० ८४ शेलगेट रोड, वैटरसी, लंदन (S. W.)

जैनप्रचारक बन्द—देवबन्दका उर्दू जैनप्रचारकका बन्द होना सुनकर समझा था कि, रत्नमालाके मार्गका एक गहरा घाव करनेवाला कंटक अलग हो जायगा। परन्तु देखते हैं कि, श्रीमतीको चैन नसीब नहीं। उनके साथ पहले ही जैसी छेड़छाड़ करनेके लिये जैनप्रदीपकी तयारी हो रही है। लाला ज्योतीप्रसादजीने प्रकाशित किया है कि, यदि कोई विघ्न उपस्थित न हुआ, तो जैनप्रदीप सितम्बर महीनेमें ही प्रकाशित हो जायगा।

साधु और अर्जिकाका ब्याह—अमृतसरमें एक श्वेताम्बर साधु और अर्जिकाने आर्यसमाजकी पद्धतिके अनुसार परस्पर विवाह कर लिया है। विना इच्छाके छुटपनमें मुँडे हुए मूर्ख त्यागी और क्या करेंगे? श्वेताम्बरसमाजके साधुओंमें ऐसे चेले मूंड मूंडकर अपना परिवार बढ़ानेकी इच्छा बहुत प्रबल हो रही है। इस इच्छाका कुछ संयम न होजाय, तो अच्छा है।

विज्ञानशिक्षाके लिये दान–श्रीयुक्त तारकनाथ पालित महाशयने कलकत्ता विश्वविद्यालयके लिये साड़ेसात लाख रुपयाकी सम्पत्ति दान की है। इस सम्पत्तिके द्वारा विश्वविद्यालय एक विज्ञान कालेज स्थापित करेगा। पालित महाशयके इस दानसे देशका बड़ा उपकार होगा।

गुप्तदान–एक मनुष्यने गुप्तरूपसे श्रीमान् बड़े लाटके पास पच्चीस हजार रुपये भेजे हैं। इस लिये कि इन रुपयोंका व्यय क्षयी रोगकी हास्पिटलमें किया जाय।

प्रशंसनीय दान–डेरागाजीखांके लाला टेकचन्दजीने स्त्रियोंके लिये अस्पताल बनानेके लिये ६५०००) और एङ्गलो-संस्कृत स्कूलके लिये ११००) रु. दान दिया है।

हिन्दूविश्वविद्यालय–हिन्दूविश्वविद्यालयके लिये कलकत्तेके शीतलप्रसाद खड्गप्रसादकी कोठीके मालिक श्रीयुक्त बाबू मोती-चंद और बाबू गोकलचन्दने एक लाख रुपया, सेठ ताराचंद घन-श्यामदासने २५०००, रु. बाबू बल्देवदास जुगल किशोरने ११००० रु., बाबू नारायणदास बैजनाथने ५०१, और बाबू गोपालदास चौधरीने ५००) रु. बंगाल बेंकमें जमा करा दिये हैं।

स्त्रियोंके लिये वैद्यकीय कालेज—गतवर्षके महारानी मेरी दिल्लीदरबारके लिये भारतमें आई थी उस समय वे कोटा रिसाय-तमें गई थी। महारानीसाहबकी भेटके स्मरणार्थ कोटा संस्थानकी ओरसे १ लाख रुपयाकी लागतमे दिल्लीमें स्त्रियोंके लिये एक वैद्य-कीय कालेज खोला जानेवाला है। श्रीमान् बडे लाट इस कालेजके लिये फंड स्थापित करनेका उपक्रम कर रहे हैं। कई भारतीय नरेशोंने इस कामके लिये द्रव्यद्वारा सहायता देनेका आश्वासन दिया है। तबसे आजतक १५ लाख रुपया जमा हुए हैं। वैद्यकीय कालेजकी इमारत और शिक्षणसम्बन्धी आवश्यक सामानके खरी-दनेमें यह रुपया खर्च होगा। हिन्दुस्थानी नर्स वा मिडवाइफ (धात्री विद्या जाननेवाली) तैयार करनेके लिये कालेजके साथमें एक वैद्यकीयशाला खोलनेका विचार हो रहा है।

मद्रास गवर्नमेण्टने बालिकाओंको छात्रवृत्तियां प्रदान करनेके अभिप्रायसे प्रतिवर्ष १० हजार रुपये देनेका प्रबन्ध किया है। देखा गया है कि जितनी बालिकाएं प्रथम कक्षामें आती हैं उनका केवल छठवां भाग तीसरी, चौथी कक्षा तक पहुंचता है। छात्रवृत्तिके मिलनेसे संभव है कि अधिक बालिकाएं आगे तक पढ़ेंगी।

अन्धोंके लिये नये ढंगकी पुस्तकें—अंधोंके लिये पुस्तकें पहले उमड़े हुए अक्षरोंमें छपती थीं, फिर बिन्दुओंमें छपने लगीं, बिन्दुओंका छपना विशेष उपयोगी सिद्ध हुआ। ये बिन्दु-मय पुस्तकें टाइपमें नहीं छपती। इनका मजमून प्लेटोंपर ढाल लिया जाता है। इस छपाईमें एक दोष है। वह यह कि, प्लेटका मजमून कागजके एक ही तरफ छप सकता है। दूसरी तरफ नहीं। परन्तु हालहींमें न्यूयार्कके एक बड़े भारी छापाखानेने जिसमें केवल अन्धों ही के लिये पुस्तकें छपती हैं, एक नई युक्ति ढूँढ निकाली है जिससे २९ हजार पन्ने दोनों तरफ केवल एक घंटेमें छप सकते हैं।

अमेरिकाके एक ग्वालेने यह अनुभव किया है कि जिन गायोंका दूध निकालते समय गाना सुनाया जाता है उनका दूध एक तिहाई बढ़ता जाता है किन्तु संगीत अच्छा होना चाहिये। कोई धीमा मधुर राग गाना चाहिये।

बबूलके छोटे २ वृक्षोंकी जड़ोंके समीप कितने कांटे होते हैं पर वृक्षके बढ़ जानेपर वे नहीं रहते। यदि छोटे २ वृक्षोंमें इस प्रकार कांटे न होते तो पशु उन्हें खा डालते और वे कभी बढ़ने न पाते प्रकृति देवी अपनी रचना की रक्षा स्वयं करती है।

अमर्याद आमदनी—अमेरिकामें मि० जॉन डी. रॉकफेलर्स नामक एक व्यवसायी हैं। उनकी वार्षिक आमदनी १८ करोड़

रु. है। इसके अनुमानसे आपकी प्रति मिनटकी आमदनी २७६ रुपया होती है।

रंगीन फोटो—आजकल फोटोग्राफर लोग कैमराके द्वारा जो तसवीर निकालते हैं उसका रंग सफेद और काला ही रहता है। और कोई दूसरा रंग उसमें नहीं आता। अभी तक तसवीरोंमें जो रंग दिया जाता था वह ऊपरसे दिया जाता था। परन्तु अब रंगीन तसवीरें भी निकलने लगी हैं। कपड़ोंका लाल पीला आदि रंग आप ही आप काले वा सफेद रंगके समान फोटोमें आजाता है। हालमें अर्नेष्ट और जूलियस रेनवर्ग नामक दो भाइयोंने काचोंके प्रबंधसे ऐसा उपाय निकाला है कि किसी भी चीजका स्वाभाविक रंग उसकी तसवीरमें भी आ जाता है। इन लोगोंने रायल फोटो सोसाइटीके सभ्योंके समक्ष तसवीरें निकालकर यह नयी प्रक्रिया साबित कर दी है। परन्तु इसका केमरा तैयार करनेमें बहुत खर्चा पड़ता है इस लिये इस नये ढंगसे रंगीन तसवीर उतारनेमें बहुत दाम लगते हैं। पर धीरे २ कोई ऐसी युक्ति निकलेगी कि ये तसवीरें भी सस्ते दरसे निकाली जा सकेंगी।

महँगाई—आजकल सारे संसारमें सब चीजोंका भाव महंगा होता जाता है। अर्थशास्त्र जाननेवालोंका कहना है कि थोड़े ही दिनोंके भीतर पदार्थोंका मूल्य प्रतिशत १० से २० तक और बढ़ जायगा। इसका कारण यही बतलाया जाता है कि कई स्थानोंमें सोनेकी नयी २ खानि निकलती जाती हैं, जिससे सोना अधिक मिलनेसे सस्ता हो रहा है। भारतमें भी खाद्यपदार्थ आदि हालमें बहुत महँगे हो चले हैं और उनके सस्ते होनेकी कोई आशा भी नहीं है। सरकार भावकी तेजीका कारण दरयाफ्त कर रही है।

आवश्यक-सूचना।

सम्पादक महाशय वायुरोगसे सख्त बीमार हैं। बीस दिन हो चुके, आराम कब होगा परमात्मा जाने। इसी कारण इस अंकके निकलनेमें आशासे अधिक बिलम्ब होगया। आगामी अंक भी यदि समयपर न निकल सके तो ग्राहकगण अधीर न होवें। तारनपन्थ आदि दो एक बहुत जरूरी और अधूरे लेख भी प्रकाशित नहीं हो सके इसलिये क्षमा करें। आगामी अंकके लिये ग्राहकगण तकाजा न लिखें।

मैनेजर।

क्षमावणीके कार्ड।

जिन भाईयोंको चाहिये इकट्ठे मंगा लेवें। ये कार्ड ऐसे हैं कि कई वर्षोंतक काममें आ सकते हैं, अर्थात् इनमें मिती वगैरहकी जगह छोड़ दी गई है। सैकड़ा चार आना डांकखर्च अलग। एकसौ कार्ड मंगानेवालोंको छह आनेके टिकट भेजकर मंगाना चाहिये।

जैनहितैषीके ग्यारह सौ पते।

जिन महाशयोंको सूचीपत्र, विज्ञापन, समाचार पत्र, मेलाप्रति इत्यादिकी प्रतियें रवाना करना हो, वे जैनहितैषीके ग्राहकोंके छपे हुए ११०० पते मंगाकर बड़ी आसानीसे रवाना कर देवें। सब ठिकाने परपरेट अर्थात् डाकखानेकी टिकटों सरीखे छेद किये हुए हैं। मूल्य एक सैंकड़ेका तीन रुपया।

जैनसिद्धान्तप्रवेशिका ।

दूसरी बार छपकरके तयार है । मूल्य वही तीन आना है । जिन्हें जरूरत हो, शीघ्र मंगा लेवें ।

विश्वलोचनकोश ।

श्री श्रीधरसेन कविपंडितका अपूर्व कोश हिन्दीभाषाटीका सहित छपकर तैयार है । एक जैनविद्वानका बनाया हुआ सबसे पहला यही कोश छपकर तयार हुआ है । बहुत ही अच्छा और बडा कोश है । अमरकोश आदि प्रचलित कोशोंसे यह बहुत ही बडा और विलक्षण है । यह मेदिनीके ढंगका नानार्थ कोश है । कवियों तथा विद्वानोंके बडे कामका है । सरस्वतीप्रचारक शेठ [illegible]ारंगजी गांधीने केवल ग्रंथप्रचारकी बुद्धिसे इसको प्रकाशित [illegible]या है और मूल्य बहुत ही स्वल्प रक्खा है । प्रत्येक जैनीको [illegible]की एक २ प्रति खरीद कर रखना चाहिये । मूल्य एकरुपया [illegible]त आना ।

सुक्तमुक्तावली ।

श्रीसोमप्रभाचार्यकी सूक्तमुक्तावली जिसका प्रत्येक श्लोक कंठ करने लायक है, और जो सचमुच ही मोतियोंकी माला है, फिरसे छपकर तयार है । अबकी बार यह पाठशालाके विद्यार्थियोंके बहुत ही कामकी बन गई है । क्योंकि इस संस्करणमें पहले [illegible]गावेगा । फिर कविवर बनारसीदास और कँवरपालजीका पद्या[illegible]की नयी अन्तमें अन्वयानुगत हिन्दी भाषाटीका (रत्नकरंडके [illegible] सस्ता भावार्थ छपाया गया है । मूल्य सिर्फ छह आना । महेंगे हो [illegible] सरकार

श्रीजैन ग्रंथरत्नाकर कार्यालय

हीराबाग, पो० गिरगांव

ॐ

जैनहितैषी।

जैनियोंके साहित्य, इतिहास, समाज और धर्मसम्बन्धी लेखोंसे विभूषित

मासिकपत्र।

सम्पादक और प्रकाशक—श्रीनाथूराम प्रेमी।

आठवाँ भाग। | भाद्रपद, श्रीवीर नि० संवत् २४३८ | ग्यारहवाँ अंक

विषयसूची। पृष्ठ

पत्रव्यवहार करनेका पता—
श्रीजैनग्रन्थरत्नाकरकार्यालय,
हीराबाग पो० गिरगांव, बम्बई।

Printed by G. N. Kulkarni at his Karnatak Press,
No. 7, Girgaon Back Road, Bombay, for the Proprietors.

जैनहितैषीका नया उपहार।

लीजिये, ग्राहक महाशय, दिवाली आ गई। जैनहितैषीका नये वर्षका उपहार तैयार होने लगा। इस वर्षके उपहारके ग्रन्थ बिलकुल नये और अपूर्व होंगे।

पहला ग्रन्थ।

उपहारका पहला ग्रन्थ **उपमितिभवप्रपंचाकथा**का दूसरा भाग है। जिन लोगोंने विगतवर्षमें इसका पहला भाग पढ़ा है, वे जानते हैं कि यह ग्रन्थ कैसा विलक्षण और जैनसिद्धान्तके गूढ़से गूढ़ रहस्योंको कितनी सरलताके साथ बतलाता है। इस भागमें जीवके तिर्यञ्चगतिमें परिभ्रमण करनेका बहुत ही हृदयद्रावक और आश्चर्यजनक वर्णन है। इसके पढ़नेसे मनोरंजनके साथ साथ तिर्यंचगतिका सारे स्वरूपका ज्ञान हो जाता है। उपमितिभवप्रपंचाकथाके समान ग्रन्थ जैनसाहित्यमें बहुत ही थोड़े हैं। विद्वानोंमें इस ग्रन्थका बड़ा आदर है। यह दूसरा भाग छप चुका है। सिर्फ बायडिंग होना बाकी है। हमारा विचार इसे पहले अंकके साथ रवाना कर देनेका है।

दूसरा ग्रन्थ।

बंगलाके एक सर्वश्रेष्ठ उपन्यासका हिन्दी अनुवाद है। इस उपन्यासमें मनुष्यको कर्मवीर बनानेकी शिक्षा दी गई है। आज तक हिन्दीमें इस श्रेणीका एक भी उपन्यास ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ। कथानिबन्ध बहुत ही मनोहर और कौतूहलवर्द्धक है। इसका नाम आगामी अंकमें प्रकाशित किया जायगा। लगभग ४०० पृष्ठका ग्रन्थ होगा। सम्पादकके बीमार हो जानेसे इस ग्रन्थके तैयार होनेमें विलम्ब हो गया। अनुवाद प्रारंभ हो गया है। ढाई तीन महीनेमें ग्रन्थ छपकर तैयार होगा।

इस वर्ष भी जैनहितैषीका मूल्य उपहारसहित दो रुपया एक आना होगा।

जैनहितैषी ।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम्।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥

आठवां भाग] भाद्रपद, श्रीवीर नि० सं० २४३८ [ग्यारहवां अंक.

कञ्चुका ।
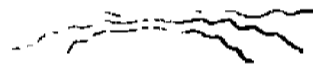
(१)

राजनीति ।

दशमी शताब्दीके प्रारंभमें यहां इतने छोटे २ स्वाधीन राज्य स्थापित हुए थे कि उनकी गिनती करना कठिन होगया था। स्वार्थी बल-हीन और विलासप्रिय राजालोग अपने २ राज्यमें सब चिन्ताओंसे मुक्त होकर समय बिताया करते थे, और मुसल्मान लोग मौका पाकर धीरे २ पंजाबकी सीमामें प्रबल होते जाते थे। हम जिस समयका उल्लेख करते है. उस समय चंदेलवंशीय राहल राजाका पुत्र **हर्ष-देव** बुन्देलखंडका राजा था। वह बड़ा स्वदेशानुरागी था और सदैव इसी चिन्तामें मग्न रहता था कि भारतवर्ष विदेशी आक्रम-णोंसे किस तरह बच सकता है। सीमान्त प्रदेशोंको सुरक्षित रखनेके लिये समस्त देशके राज्यबलको एकत्र करना आवश्यक और उचित

समझकर उसने एक बार भिन्न २ प्रदेशोंकी राजसभामें दूत भेजे; परन्तु किसीने भी उसकी बातपर ध्यान नहीं दिया।

उस समय भारतवर्ष पुण्यहीन था; मनुष्यकी चेष्टासे उसका उद्धार होना असंभवसा हो गया था। एक दिवस संध्यासमय हर्षदेव योद्धा और पंडितोंके साथ राजसभामें बैठे थे; इतनेमें भाटोंने आकर उनका यशोगान करना प्रारंभ किया। राजाने उन्हें रोककर कहा कि—"मैं सिर्फ इस छोटेसे बुन्देलखंडका शासनकर्त्ता हूं, समस्त सागरोंसहित पृथ्वीका अधीश्वर कहके मेरा अपमान मत करो।"

भिन्न भिन्न देशोंकी राजसभाओंसे लौटे हुए दूतगण एक एक करके राजालोगोंकी सम्मति प्रगट करने लगे। कन्नौजसे लौटे हुए दूतने कहा—"महाराज कन्नौजपति **महेन्द्रपालदेव** और उनके सभा-पण्डितोंने कवि **राजशेखर**प्रणीत 'विद्धशालभंजिका' भेजी है और उसके शिरोभागपर अपने हाथसे आपके प्रस्तावका उत्तर लिख दिया है।" राजाने ग्रन्थको लेकर देखा। उसपर लिखा था—"**काव्य शास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्**।" राजाने विरक्ति प्रकट करके सिर झुका लिया। दूसरे दूतने आकर राजाकी शरणमें एक पत्र रक्खा। उसे राजाने स्वयं पढ़ा। चेदिकुलके कलचूरिवंशीय मुग्धतुङ्ग-प्रसिद्धधवल राजाने लिखा था कि—"मैं स्वयं पराक्रमी और बाहुबल सम्पन्न हूं। यवन लोगोंको सहज ही दूर करनेकी शक्ति रखता हूं। अन्य राजाओंसे मिलकर मैं अपने आत्मगौरवको घटाना नहीं चाहता।" हर्षदेवने मंत्रीसे कहा—इसीको विपत्तिकालकी विपरीत बुद्धि कहते है। छोटेसे कौशलराजको हराकर तथा समुद्रतटके दुर्बल राजाओंको जीतकर कलचूरि राजा बहुत अभिमानी होगया है।

इस समय चोलराज्यमें **वीरनारायण** वा परान्तकदेव राज्य करते थे। उन्होंने केरल–राजकुमारीसे विवाह करके, विशेषकर केरलपतिकी सहायतासे पाण्ड्यराजको पराजित किया था तथा एक बार लंकातक विजय यात्रा करके वहांके राजा पंचम **काश्यपको** हराया था। हर्षदेवको विश्वास था कि वीरनारायण समस्त दक्षिण प्रदेशका सार्वभौम राजा हो सकता है। इसलिये उसने उसकी विजय-यात्रापर आनन्द प्रकाश करके अपनी सहानुभूति प्रकट की थी। परन्तु वीरनारायणके पत्रमें केवल यही उत्तर लिखा था,–"उत्तर भारत बहुत दूर है।" ...हर्षदेवने विचारा कि मैं एक बार समी-पवर्त्ती राजाओंसे स्वयं मिलूं और उनकी इच्छा देखूं; पीछे जो हो, कुछ न कुछ विचार स्थिर करूंगा।

२

प्रगल्भा।

लूनीर नदीका जल बहुत निर्मल और शीतल है। अजमेर प्रान्तमें इस समय जहांपर तारगढ़ है उसकी दक्षिण दिशासे होकर एक समय लूनीर नदीकी धारा बहती थी। बड़े प्रातःकाल कुमारी कञ्चुकाने नदीके शीतल जलमें स्नान करके देवमंदिरमें प्रवेश किया। इस समयके पाठकोंको कञ्चुका नाम अच्छा न लगेगा, परन्तु क्या किया जाय, कवित्वप्रिय पाठकोंके लिये ऐतिहासिक नामका परिवर्तन नहीं हो सकता। नाम कैसा ही हो पर कुमारी थी बहुत सुन्दरी। क्योंकि उसके देवमन्दिरमें प्रवेश करते ही, एक सौम्यमूर्ति सन्यासी युवक उसे देखकर देवपूजाका मंत्र भूलके मन ही मन यह पाठ पढ़ने लगा था,—

कनककमलकान्तैः सद्य एवाम्बुधौतैः
श्रवणतटनिषक्तैः पाटलोपान्तनेत्रैः।
उषसि वदनबिम्बैरंससंसक्तकेशैः
श्रिय इव गृहमध्ये संस्थिता योषितोऽद्य॥

इस समय अजमेरमें नये चौहान वंशका राज्य था। राजा गोवकके पुत्र चन्दन उस समय सिंहासनारूढ़ थे। कुमारी कञ्चुका राजा चन्दनकी बहिन थी।

सुन्दरीने ईश्वरके चरणोंमें अंजली प्रदान करके सन्यासीके चरणों-पर अपना मस्तक नवाया। सन्यासी चकित हो उठकर कहने लगा-"मैं आपका प्रणाम ग्रहण करनेके अयोग्य हूं विशेषकर इस देव-मन्दिरमें ईश्वरके सिवाय दूसरा कोई वंदनीय हो सकता।" कुमारीने मदहास्यसे कहा-"जब स्वयं चौहाननरेश आपके भक्त हैं, तब यदि उनकी छोटी बहिनने आपको प्रणाम किया तो इसमें हानि क्या हुई?" सन्यासी यह परिचय पाकर मन ही मन बहुत प्रसन्न हुआ।

राजकुमारी यद्यपि प्रगल्भा मालूम होती है परन्तु उसके दोनों नेत्र मुग्धाके नेत्रोंके समान हैं। सन्यासीकी ओर देखकर बातचीत करनेके समय उसके दोनों पलक ज्यों ही कुछ ऊपर उठकर और सुकोमल दृष्टिको ढककर अवनत हुए त्यों ही सन्यासीका मस्तक घूम गया। सन्यासीने देखा कि उसके प्राणोंने प्राचीन वक्षोगृह छोड़कर युवतीकी कुछ खुली हुई दृष्टिके मार्गसे सौन्दर्य्यके नवमन्दि-रमें प्रवेश किया है। वह चिन्ता करने लगा कि अब यदि यह मनो-मोहिनी नेत्रोंके पलक खोल करके फिर देखेगी भी, तो भी, इसमें सन्देह ही है कि गये हुए प्राण फिर लौटेंगे या नहीं।

इसके बाद ही कुमारीकी देवभक्ति बढ़ उठी। वह दोनों समय मंदिरको आने लगी और कभी २ तो वह अपनी दासियोंको भी साथ लाना भूल जाने लगी।

एक दिन सन्यासी मन्दिरकी सीढ़ियोंपर बैठकर बायें हाथसे नेत्रोंको बंदकर मानस पूजामें मग्न हो रहा था। उसी समय कुमारी धीरे २ उसके पास आई। अब तक सायंकालकी आरतीके लिये मंदिरका द्वार नहीं खुला था। सन्यासीका ध्यान भंग हो गया। उसने नम्रस्वरसे कुमारीसे कुशल प्रश्न किया। कुमारीने कहा- "मैं सन्यास धर्मग्रहण करूंगी और आपकी शिष्या होऊंगी।" कुमारी सचमुच बड़ी प्रगल्भा है। इसके पीछे उन दोनोंकी क्या बातचीत हुई यह कहना कठिन है; परन्तु इतना हम कह सकते हैं कि देवमंदिरका द्वार मुक्त होनेके पहले ही उन दोनोंके हृदय-द्वार मुक्त हो चुके थे।

इसके दूसरे दिन सन्यासी युवकने राजसभामें प्रस्ताव पेश किया कि मैं पुरोहित होकर कुमारी कल्लुकाका विवाह बुन्देलखंडके राजा हर्षदेवके साथ कराना चाहता हूं। राजाने उसे स्वीकार कर लिया। सन्यासी तूनीरके तटमें स्नानादि नित्यकर्म समाप्त करके अजमेरसे यद्यपि प्रस्थानित हो गया, परन्तु यह बात उसके मनमें घूमती ही रही कि तूनीरका जल बहुत निर्मल और शीतल है।

६

युद्धक्षेत्रमें।

यह चिरकालकी रीति है कि सन्धि न होनेसे युद्ध करना पड़ता है। चन्देलपति हर्षदेवने बुन्देलखंडको भारतवर्षका केन्द्र बना-

नेका निश्चय करके छोटे छोटे राजाओंके साथ अनेक युद्ध किये। कई स्थानोंमें विजय प्राप्त करनेके पश्चात् चेदिवंशीय–कलचुरि राजाओंके साथ युद्ध प्रारंभ हुआ। इस समय गर्वोन्मत्त मुग्धतुङ्ग प्रसिद्ध-धवलका स्वर्गवास हो चुका था। उसका पुत्र बालहर्ष वर्तमानमें राजा था। मध्यप्रदेशका वर्तमान सागर जिला चेदिराज्यका प्रधान स्थान था। बुन्देलखंडकी दक्षिण सीमापर सागर जिलेके उत्तरीय भागमें शाहगढ़ नामक नगरमें उभय पक्षका संग्राम हुआ। एक दिन युद्ध-यात्रा होनेके पहले रानी कञ्छुकाने स्वप्नमें देखा कि एक प्रकाशमय मेघके टुकड़ेपर राजा विराजमान हैं और रानी जितनी ही बार राजाके चरणोंका स्पर्श करनेके लिये हाथ फैलाती है, उतनी ही बार सिंहासन उससे दूर हट जाता है। जागृत होनेपर रानीने प्रतिज्ञा की कि मैं युद्धक्षेत्रमें भी स्वामीके पास सदैव उपस्थित रहूंगी। राजाने बहुत निषेध किया; परन्तु रानीने एक भी न सुनी और हंसकर कहा–"सन्यासीमहाराज, चौहानवंशकी लड़कियां युद्धको देखकर भयभीत नहीं होतीं।" रानी राजासे 'संन्यासी महाराज' कहा करती थी।

शाहगढ़में सेनाका कोलाहल सुनाई देने लगा। फाल्गुन शुक्ला त्रयोदशीके मध्यान्ह समयसे युद्ध प्रारंभ हुआ। संध्या हो गई तो भी दोनों दलोंमेंसे कोई भी निरस्त नहीं हुआ। सहसा रानीके मनमें एक उत्साहकी तरंग उठी। किसी तरहसे वह डेरेमें न रह सकी। वह व्यग्र होकर युद्धवेश धारण करके घोड़ेपर सवार हो गई और डेरेपर जो पचास पैदल सिपाही मौजूद थे, उनको साथ लेकर 'जय चंदेलपतिकी जय' कह करके एक ओरसे शत्रुसेनापर टूट पड़ी। रात्रिके समयमें नयी सेनाके आजानेसे थकी हुई सेनाने

उत्साहहीन होकर युद्धस्थलसे भागना शुरू कर दिया। 'मार' 'मार' शब्द कहती हुई बुन्देलखंडकी सेना उसका पीछा करने लगी।

विजय प्राप्त करनेके पश्चात् राजा और रानी दोनों एक साथ अपने शिविरको लौटे। रानीकी आज्ञासे तत्काल ही खुली हुई चांदनीमें शय्या बिछाई गई। युद्धवेशका परित्याग किये बिना ही महाराज उसपर लेट गये। रानी उनके पास ही बैठ गई। वैद्य बुलाया गया; परन्तु महाराजने स्थिर भावसे कह दिया, "चिकित्साका कुछ फल नहीं होगा, अब उपाय करना व्यर्थ है।" तो भी रानीके अनुरोधसे वैद्यने महाराजके वक्षःस्थलके घावपर औषधका लेप किया और रानीने अपने हाथसे औषध पिलाकर पतिका मुखचुम्बन किया।

हर्षदेवने रानीका हाथ अपने हाथमें लेकर कहा—"मेरा एक अनुरोध मानना पड़ेगा। तुम प्रतिज्ञा करो कि, मेरी चितापर अपना प्राण विसर्जन नहीं करोगी।" महारानीका कंठ शोकके आवेगसे रुद्ध हो गया। उन्होंने बड़ी कठिनाईसे कहा—"देव, रमणीजन्मका जो यथार्थ सुख है, उससे आप मुझे किस अपराधके कारण वंचित करते हैं?" महाराजने रानीको अपनी भुजाओंसे वेष्टित करके कहा—"देवी, दैवदत्त जीवनको आत्महत्या करके नाश करनेका किसीको अधिकार नहीं है। सुखकी आशा छोड़कर दुःख वहन करो, यही जीवनका यथार्थ गौरव है। जिस मंत्रसे हम और तुम दोनों लूनीरके तीरपर दीक्षित हुए थे, उसी मंत्रसे बालक यशोवर्माको दीक्षित करो। पुत्रकी जननी बनकर हमारी इच्छा पूर्ण करनेके लिये अपने जीवनकी रक्षा करो।" रानीकी आज्ञासे पुत्र यशोवर्माके लानेके लिये उसी समय सवार दौड़ाये गये।

परिशिष्ट ।

एपिग्राफिया इंडिकामें संग्रह किये हुए शिलालेखोंसे पाठक जान सकेंगे कि, महाराज हर्षदेवकी इच्छा और उनकी रानीकी साधना बहुत अंशोंमें पूर्ण और सफल हुई । यशोवर्माने अपनी मातासे युद्ध दीक्षा लेकर गौड़, मगध, कौशल, काश्मीर, मिथिला, मालव, चेदि, कुरु और गुर्जर देशका विजय किया ।

तिब्बत नरेशके यहांसे कन्नौजपतिने एक सुन्दर देवमूर्ति प्राप्त की थी । ईस्वी सन् ९४८ में यशोवर्मा उक्त देवमूर्तिको कन्नौजसे ले आये और एक विशाल मन्दिर बनवा कर उसमें उसको प्रतिष्ठित की । यह मन्दिर उन्होंने अपने मातापिताकी वैकुंठ-कामनासे बनवाया था । *

जनरल बूथ ।

इस विचित्र व्यापारमय विश्वमें जिस समय कोई अमंगल प्रबल हो उठता है, उसी समय- उसके साथ ही साथ उस अमंगल निवारणके लिये भी किसी न किसी साधनका उत्पन्न होना देखा जाता है । मानव-जातिका इतिहास इस बातका साक्षी है। सत्रहवीं शताब्दीमें इंग्लैंड जब राजशक्तिके दुर्व्यवहारसे पीड़ित था, उस समय वीर-शिरोमणि क्रामवेलके उद्योग और पराक्रमने वहांपर प्रजा-शक्तिके अधिकार और आधिपत्यको प्रतिष्ठित किया था ! फिर अठारहवीं शताब्दीके अंतमें जब कि फ्रांस विलासप्रिय बूर्बोवंशके अत्याचार और धनिक जमींदारोंकी स्वार्थपरताके कारण अधःपत-

* बंगला साहित्यमें प्रकाशित एक गल्पका अनुवाद ।

नकी अंतिम सीमापर जा पहुंचा था, उस समय फरासीसी विप्लवके ताण्डवनृत्यने उन लोगोंकी मृतप्राय देहमें चेतनाका संचार किया था। प्राचीन कालमें हमारे भारतवर्षमें भी जिस समय वैदिक धर्म क्रियाकांडकी बहुलताके कारण जीव-बलि-युक्त यज्ञकर्ममें परिणित हुआ, उस समय नई उठी हुई बौद्धधर्मकी प्रबल लहर उसे बहा ले गई। वर्तमान समयमें भी जब हमारे देशमें एक ओर अगणित प्राणहीन संस्कार और अर्थहीन आचार-पद्धतियां, समाजके प्राणको अत्यन्त सीमाबद्ध और संकीर्ण कर रही थीं, तब पश्चिमसे आई हुई सभ्यताका एक ऐसा धक्का लगा कि उसने सोते हुए जातीयजीवनको चंचल करके समाजमें नवजीवनका सूत्रपात कर दिया। इस तरह प्रत्येक जातिका इतिहास देखनेसे विदित होता है कि जब, पृथ्वीके किसी देश या अंशविशेषमें कोई अमंगल सिर उठाता है, तो उसी समय उसके दमनके लिये कोई न कोई साधन उत्पन्न हो जाता है।

एक समय जब कि इंग्लैंडके दरिद्र और निम्नश्रेणीके लोग धर्म, प्रेम, करुणा आदि मनुष्यत्वके समस्त गुणोंसे अज्ञ रहकर पापरूपी कीचड़में फंस रहे थे; उस समय जिस उदार और निर्मल चरित्र महात्माने उन लोगोंके अंधकारमय प्राणोंमें धर्मरूपी-ज्योतिका संचार करके हीन अवस्थासे उनका उद्धार करनेके लिये अपने जीवनका उत्सर्ग कर दिया और जिसके आत्मोत्सर्गके फलसे पापकी अंतिम सीमापर पहुंचे हुए लाखों नरनारी नवीन जीवन धारण करनेको समर्थ हुए, उसका संक्षिप्त वृत्तान्त हम अपने पाठकोंको सुनाना चाहते हैं।

पाठकोंने सुना होगा कि ईसाइयोंकी एक 'मुक्तिफौज' (साल्वेशन आर्मी) नामकी संस्था है जिसकी इस देशमें भी बीसों शाखाएं हैं।

इस जगत्प्रसिद्ध मुक्तिफौजके प्रतिष्ठाता और नेता कर्मवीर जनरल बूथका जन्म सन् १८२९ ई०की १० वीं अप्रेलको इंग्लेंडके नेटीहम नगरमें एक दरिद्र परिवारमें हुआ था। पारिवारिक दरिद्रताके कारण उनका बाल्यकाल दुरवस्थामें ही व्यतीत हुआ। कालेजोंमें उच्च-कोटिकी शिक्षा पानेका सौभाग्य उन्हें प्राप्त नहीं हुआ। कुछ धर्म-याजकोंकी कृपासे सामान्य शिक्षा ही उन्हें नसीब हुई। ये बाल्य-कालसे ही धर्मानुरागी थे। शैशव अवस्थामें ये चर्च आफ लंदन आदि धार्मिक संस्थाओंमें योगदान करके लोगोंको व्याख्यान आदि-के द्वारा धर्मोपदेश दिया करते थे। परन्तु धार्मिक सम्प्रदायोंकी संकुचित छायामें रहकर अपनी उन्नति करना कठिन समझ कर अंतमें इन्होंने Hallelujat Band (हेललागबेंड) नामक धर्म-प्रसारक-दलका संगठन किया। यह दल गांवगांवमें जाकर वहांके जहलसे छूटे हुए अपराधियोंके घरोंपर और थियेटरोंमें जाकर तथा शराब-खानोंके दरबाजोंपर घूम २ कर धर्मोपदेश तथा 'पातकी शरण' और 'दीनबन्धु' नामक उपदेशपूर्ण और हृदयग्राही गीतोंको गागाकर सुनाने लगा। कुछ समयके बाद देखते ही देखते—जिन लोगोंका अधिक समय प्रायः चोरी, मद्यपान, जुआ आदिमें व्यतीत होता था, जो भूलकर भी ईश्वरका नाम नहीं लेते थे, वे मि. बूथके उपदेशसे इस सम्प्रदायके अनुयायी होकर धर्मज्ञ बन गये। इस तरह मि. बूथने धर्मप्रचारका यह एक अभिनव पन्थ खोल दिया। परन्तु वे यह बात बहुत जल्द समझ गये कि, इस संसारमें ऐसे अभागे, आश्रयहीन और रोगशोकसे जर्जरित लाखों ही पापी हैं, जिनके रोनेका शब्द आकाशमें रातदिन गूंजता रहता है। उस विशाल-हृदय कर्मवीरको दुःखकातर, भूखों और पापमार्गपर चलनेवाले नरनारियोंकी आर्तध्वनिने स्थिर नहीं बैठने दिया।

मि. बूथने यह भलीभांति समझ लिया कि दरिद्रता ही सब देशोंके अधिवासियोंकी शोचनीय दुरवस्थाका एक मात्र कारण है। मनुष्य भूखकी ज्वालासे दग्ध होकर चोरी, नरहत्या, ठगाई और मिथ्या भाषण करता है। भूखसे ही स्त्रियां अपनी कुलीनतापर पानी फेर देतीं हैं। राक्षसी भूखकी ताड़नासे ही माताएं पिशाचिनींके समान आचरण करके अपने भूखे बालकके मुखका ग्रास छीन लेती हैं। और अपने पेटकी कन्याओंको पाप-पथ पर चलाती हैं; परन्तु इस नैतिक दुरवस्थाके मूल कारण दारिद्र्यको दूर करना थोड़े दिनोंका और सहज काम नहीं है। यह सोचकर मि. बूथने उत्साही लोगोंका एक दल संगठन करके पूर्व-लंदनके कई स्थानोंमें सभा-संकीर्तन, धर्मोपदेश व्याख्यानादि देकर तथा पुष्टिकर पदार्थोंका वितरण करके धर्मप्रचारका कार्य बड़े उत्साहके साथ प्रारंभ किया। मि. बूथके आडम्बररहित, सरल और सुन्दर उपदेशोंको सुनकर कुछ वर्षोंके भीतर ही अनेक दरिद्र, समाजच्युत, तथा पापी नर-नारियोंने इस दलमें सम्मिलित होकर अपने निम्न जीवनको क्रम क्रमसे उन्नत करके इस दलको बढ़ाकर महामंडलका रूप प्रदान कर दिया।

सन् १८७९ ई० में इस विराट् मंडलीको मि. बूथने एक नवीन रूपमें परिणित कर दिया। उन्होंने ब्रिटिश सेना--विभागके आदर्शपर इस मंडलीके नियम गठन करके उसके कार्यको नाना विभागोंमें विभक्त कर एक एक विभागके ऊपर एक एक कार्यका भार सोंपा। मंडलीके सभ्योंको सैनिकवेशमें सुसज्जित कर उन्हें सेना--विभागके समान 'कप्तान' 'मेजर' 'कर्नल' इत्यादि उपाधियां दीं। सभ्योंके रहनेके लिये लंदनके कई स्थानोंमें

बारकें बनवाई और इस सैन्यदलका नाम The Salvation Army अर्थात् ' मुक्तिफौज ' रक्खा। इस फौजका काम पापोंके विरुद्ध चढ़ाई करना ठहरा। मि० बूथने इस सेनाके नायक बनकर ' जनरल ' उपाधि धारण की। जनरल बूथके परिचालनसे इस मुक्तिफौजने पापियोंको पापसे मुक्त करनेके लिये खुले तौरसे सभा सोसाईटियोंमें सरल भाषामें व्याख्यानों तथा धर्मोपदेशोंका देना, शराबकी दूकानों तथा जहलखानोंपर जाकर लोगोंको समझाना, छोटे २ ग्रामोंमें परिभ्रमण करके लोगोंको पापसे बचने और सुचालपर चलनेका उपदेश देना, रोगियोंकी औषध और परिचर्या करना, नाइट स्कूलोंको स्थापित करके उसमें उन लोगोंकी शिक्षाका प्रबन्ध करना आदि लोकोपकारी कामोंकी प्रतिष्ठा की। परन्तु सब देशोंमें सर्वदा जैसी घटनाएँ हुआ करती हैं, वैसा ही हाल यहांका हुआ। जनरल बूथकी इस धर्मप्रचारक मंडलीके विरुद्ध देशमें एक तुमुल आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। कितने एक समाचारपत्रोंने इस आन्दोलनकी पुष्टि करके मुक्तिफौजके विरुद्ध अनेक मिथ्या अपवाद फैलाने शुरू किये। गवर्नमेण्ट तक इस फौजके नामसे भयभीत होकर मुक्तिफौजकी सभाओं और उसकी व्यापक कार्रवाईयोंको आईन--विरुद्ध कहके उसका निषेध करने लगी। मुक्तिफौजके कर्मचारियोंको सर्वसाधारणकी शान्तिभंग करनेके अपराधमें अभियुक्त करके उन्हें दंडित करने लगी; परन्तु जनरल बूथ इस आपत्तिसे डरनेवाले नहीं थे। क्यों कि वे जानते थे कि शक्तिके मदसे मतवाले लोगोंने अपने गुरु यीशू ख्रीष्ट तकको जब अपमान करके अंतमें उनका प्राण तक ले लिया था, तब मै और मेरी मुक्तिफौज तो क्या चीज है? जनरल बूथ हतोत्साहित नहीं हुए।

इस उपद्रवको कुछ भी न गिनकर वे और भी उत्साह और तेजीके साथ अपने काममें लग गये।

जनरल बूथको स्वदेशवासियोंकी अवज्ञा अधिक दिन सहन न करनी पड़ी। थोड़े ही समयके भीतर देशवासीगण विस्मित नेत्रोंसे देखने लगे कि, दरिद्र, निरक्षर, शराबी, प्रवञ्चक और दुर्दशाकी चरमसीमापर पहुंचे हुए हजारों लोगोंने मुक्तिफौजके योगसे अपनी अवस्थामें आश्चर्यजनक परिवर्तन किया है।

इस तरह धीरे २ जनरल बूथके इस कामकी प्रशंसा सारे सभ्य जगतमें फैल गई और इसका परिणाम यह हुआ कि यूरोपके अन्यान्य देशोंमें भी इस मुक्तिफौजकी शाखाएं स्थापित हो गईं। इसके कुछ दिन बाद इसकी शाखा भारतवर्ष और लंकामें भी प्रतिष्ठित हो गई। वर्तमान समयमें पृथ्वीके ५६ देशोंमें इस मुक्तिफौजके कार्य्यक्षेत्र हैं और उनमें इक्कीस हजारसे अधिक कर्मचारी काम करते हैं। अनाथालय, औषधालय, उद्योगालय आदि स्थापित करके आज पृथ्वीके प्रायः समस्त देशोंमें यह संस्था मनुष्यसेवाका पुण्यकार्य कर रही है।

सन् १८९० ई० में जनरल बूथकी पत्नीका स्वर्गवास होगया। बूथकी पत्नी मुक्तिफौजके स्त्रीविभागकी प्रायः १० वर्ष तक परिचालिका रहकर अपने स्वामीके काममें पूर्ण सहायता देती रही थी। इंग्लेंडमें पतित नारियोंके उद्धारके लिये इस दयावती स्त्रीने जो २ काम किये हैं, वे इंग्लेंडके सामाजिक इतिहासमें उसके नामको सदैव गौरवान्वित करते रहेंगे। पत्नीवियोगके पीछे जनरल बूथने एक पुस्तक प्रकाशित की थी। उस पुस्तकमें निम्नश्रेणीके लोगोंकी अवनति और दुःख दारिद्र्यका चित्र पूर्णरूपसे अङ्कित

किया गया है और उसके निवारणके लिये भी अनेक मार्ग तथा युक्तियां दिखाई गई हैं।

मुक्तिफौज संगठनके समय उसके प्रति लोगोंका जो विरोधभाव जागृत हुआ था, वह इतने दिनोंके पश्चात् पूर्णरूपसे विलुप्त होगया। जनरल बूथ सन् १९०३ में सम्पूर्ण पृथ्वीका परिभ्रमण करके जब स्वदेश लौटे, तब उस समय एडवर्ड महलमें उनके सन्मानार्थ एक भारी सभा हुई। उस सभाके १० हजार दर्शकोंने जनरल बूथकी हृदयसे भक्तिपूर्ण अभ्यर्थना की।

जनरल बूथ अश्रान्तपरिश्रमी, सदा प्रसन्नचित्त और मधुर प्रकृतिके पुरुष थे। किसी तरहका गर्व या अहंकार उनके चरित्रको स्पर्श तक न कर सका था। उनके समान सन्मान भी बहुत ही कम धर्मनेताओंको मिल सका है।

धर्मप्रचारके कार्यमें जनरल बूथने मार्किन युक्तराज्यमें पांच-बार, आस्ट्रेलियामें तीन बार, भारतवर्षमें दो बार तथा यूरोपके समस्त प्रदेशोंमें अनेक बार भ्रमण किया था। वर्तमान कालके जड़-वाद और नास्तिकताके समयमें जनरल बूथने अपनी मुक्तिफौजको लेकर जो अद्भुत कार्य किया है, उसकी तुलना केवल मध्ययुगके मठप्रतिष्ठापक बौद्धोंके साथ ही हो सकती है। आज समस्त यूरोप सिर नवाकर यह बात स्वीकार करता है कि जनरल बूथ वर्तमान युगके सर्वश्रेष्ठ धर्मनेता थे। परन्तु बूथ केवल धर्मनेता ही न थे। उन्होंने असंख्य आशाहीन और लक्ष्यहीन नरनारियोंके अंधकारमय हृदयको आनंद उल्लासके प्रकाशसे उज्ज्वल किया है, पतित लोगोंके चिर दुःखी जीवनको अपने प्रेमद्वारा नव-जीवन प्रदान किया है और भूखोंको अपने हाथसे भोजन खिलाकर उन्हें संतुष्ट किया है।

इस विश्वहितैषी महात्माका गत २७ अगस्तको ९३ वर्षकी अवस्थामें स्वर्गवास हो गया। उक्त महात्माका नश्वर शरीर भले ही नष्ट हो जाय, परन्तु उसने संसारके मंगलके लिये जो जो उज्ज्वल कृत्य किये हैं वे सहस्रों वर्ष बीतनेपर भी मलीन नहीं हो सकते।*

शिवसहाय चतुर्वेदी।

नोट—जनरल बूथका जीवनचरित प्रत्येक देशहितैषी और धर्मप्रेमी पुरुषके पढ़ने और मनन करने योग्य है। इस समय हमारे देशमें एक नहीं सैकड़ों बूथ जैसे कर्मवीरोंकी आवश्यकता है। इसमें सन्देह नहीं कि, प्रायः समस्त पापोंकी जड़ दरिद्रता है। संसारमें जितने पाप होते हैं, उनका बहुत बड़ा भाग पेटके कारण ही होता है। यदि जनरल बूथके समान हमारे यहांके धर्मप्रचारकगण उपदेशके साथ २ दरिद्र लोगोंके पेट भरनेका भी कुछ यत्न करें—उन्हें पेट भरनेके उद्योगोंमें लगानेकी व्यवस्था करें, तो लाखों अभागे अपने खोये हुए मनुष्यत्वको प्राप्त कर सकते हैं। इस समय देशके निम्नश्रेणीके लोगोंकी अवस्था बहुत ही शोचनीय है। दयालु धर्मात्माओंका कर्तव्य है कि, उन्हें अपनी उदारताका सहारा देकर ऊंचे उठावें और साथ ही शान्तिप्रद धर्मका अमृत पिलाकर उन्हें स्वस्थ करें। केवल धर्म धर्म पुकारनेसे धर्म नहीं होता है—धर्मके लिये कुछ करके दिखलाना चाहिये।

सम्पादक।
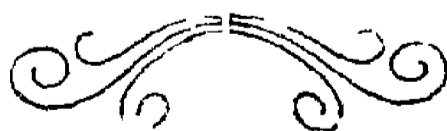
* प्रवासीसे एक लेखके आधारसे।

जैनसमाजका ध्येय।

(श्रीयुक्त ए. बी. लट्ठे. एम्. ए. के मराठी लेखका अनुवाद ।)

वास्तवमें देखा जाय तो 'समाजके ध्येय' और 'जैनसमाजके ध्येय'में कुछ भी भेद नहीं है। क्योंकि 'जैन' विशेषण मनुष्यत्व-का ही निदर्शक है—मनुष्यत्वसे भिन्न किसी दूसरी बातका उससे बोध नहीं होता। अतएव जो मनुष्यमात्रका ध्येय है वही जैन-समाजका ध्येय है। वह ध्येय कौनसा है? इस प्रश्नका उत्तर एक ही है—वह एकसे अधिक प्रकारका हो भी नहीं सकता। यदि उसमें भी विभिन्नता होगी, तो कहना होगा कि हमने जैनधर्मकी नीवको ही नष्ट कर दी। वह ध्येय और कोई नहीं एक मोक्ष है।

मोक्ष क्या? यह सब ही जानते हैं कि सम्पूर्ण कर्मोंसे छुटकारा पानेको मोक्ष कहते हैं। इस सम्पूर्णमें सुख देनेवाले कर्म पुण्य और दुख देनेवाले कर्म पाप, ये दोनों ही आ जाते हैं। अच्छा तो अब यह बतलाइये कि पुण्य भी नहीं और पाप भी नहीं, तब मनुष्य इन सबको छोड़कर और क्या करे? समाज व्यवस्थाकी भी फिर क्या जरूरत है? फिर तो जंगलोंमें जाकर रहना ही मनुष्यकी मुक्तिका अद्वितीय साधन कहलाया? सांसारिक अथवा ऐहिक सुधार सम्बन्धी प्रपंचोंमें भी उलझनेकी हमें क्या आवश्यकता है?

इन सब प्रश्नोंका संक्षेप उतर यह है कि यद्यपि मनुष्यका सर्वोच्च साध्य संसारसे छुटकारा पाना है, तथापि छुटकारेका अर्थ भाग जाना नहीं है और न भाग जानेवालेको यह संसार छोड़ता ही है। चाहे जंगलमें जाओ, चाहे किसी गिरिकन्दरमें जाकर प्रवेश करो; पर मोक्ष नहीं मिलनेका। उसकी प्राप्तिके लिये मनुष्यको

चाहिये कि वासनाओंको जीते–इच्छाओंका निरोध करे। पर ये वासनाएं ऐसा कहनेसे नहीं छूटती हैं कि हम इन्हें छोड़ते हैं बल्कि उनको छोड़नेकी इच्छा भी एक प्रकारकी वासना ही है। यह वासना भी जिसके प्रबल होती है, उसका छुटकारा होना असंभव है। इसीलिये अकंलक स्वामीने एक जगह कहा है कि मनुष्यको मोक्षकी भी इच्छा नहीं करनी चाहिये। देवगतिकी अपेक्षा मनुष्यगति—जिसमें कि मनोविकारोंकी इतनी प्रबलता है–श्रेष्ठ है, ऐसा जो कुदन्कुन्दस्वामीने कहा है उसका कारण भी यही है। यद्यपि यह वस्तुतः ठीक है कि सर्व मनोवृत्तियोंका दमन करना चाहिये तथापि इसका यह अर्थ नहीं है कि मनुष्यको मुक्त होकर पत्थर बन जाना चाहिए। मोक्षावस्थामें भी आत्मा अनन्त सुखमय रहता है, इस सिद्धान्तका भी यही अभिप्राय है कि मनुष्यका वास्तविक ध्येय शून्यावस्था नहीं है। आत्मानुशासनमें जो आचार्य महाराजने प्रतिज्ञा की है कि–"प्रत्येक मनुष्य सुखकी आशा करता है और सुख धर्मसे प्राप्त होता है, इसलिये मैं उसीका स्वरूप कहता हूं—" उसका भी उद्देश यही है।

तो फिर मोक्ष और मनोविकारोंका सम्बन्ध कैसे मिलाया जाय? निवृत्ति और प्रवृत्तिकी एकता कैसे की जाय? इस प्रश्नका पारमार्थिक उत्तर देनेका यह स्थान नहीं है; परन्तु परमार्थकी अविरुद्धतासे यदि देखा जाय तो सुख और दुःखका अनुभव करते हुए भी समताभाव रखना मनुष्यका श्रेष्ठतम साध्य है। इसी समतातत्त्वकी प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिये। सोचिये कि यह ध्येय कितना उच्च और गंभीर है? मोक्षका यही एक साधन है और मेरी समझमें यह कहनेमें भी कुछ अत्युक्ति नहीं होगी कि यह समतातत्त्व

संसार अथवा प्रवृत्ति और मोक्ष अथवा निवृत्ति इन दोनोंका संयोग करनेका स्थान है। यह इतना बहुमूल्य है कि ऐहिक व्यवस्थामें भी यह चरितार्थ होता है और परमार्थकी प्राप्ति भी इसीसे होती है।

समाजव्यवस्थाकी दृष्टिसे यदि विचार किया जाय तो यह ध्येय —इस समताभावनाकी प्रतिष्ठा करना—मनुष्यमात्रके सुखका बड़ा भारी कारण हो सकता है। सुखमें उन्मत्त नहीं होना और दुःखसे निराश नहीं होना; अत्यन्त प्रभावशाली महात्माओंके जीवनमें भी इससे श्रेष्ठ तत्त्व और क्या मिल सकता है? इस भावनाका वर्णन करते हुए अमितगतिसूरि कहते हैं:—

सत्त्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदः
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वं
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ।
सदा ममात्मा विदधातु देव॥

बतलाइये, इस उदार वृत्तिके आगे समाजका कौनसा दोष टिक सकता है? सुधारकोंकी ऐसा कौनसी मनोवृत्ति है जिसका इसमें समावेश नहीं होता? इस भावनाके जागृत होनेपर क्या समाजके किसी अंगविशेषपर कोई अन्यायाचरण कर सकता है? निग्रो, रेडइंडियन, चमार, ढेड़, भंगी, पतित, अपराधी, बल्कि इनसे भी अधिक कोई दुखी हो तो उसके भी दुख इस समता भावनासे समूल नष्ट हो जावेंगे।

आफ्रिकाकी गुलामगीरीकी बेड़ी तोडनेवाले वुइल्बर फोर्सकी न्यायबुद्धि, वाशिंगटनका स्वातंत्र्यप्रेम, लेडी नायटिंगेलकी जीवदया, निकलंकभट्टकी स्वधर्मभक्ति और विद्यानन्दिकी सत्यनिष्ठा

ये सब इसी भावनाके फल हैं। इस भावनाकी प्रेरणा, पोषण और उदय यही जैनसमाजका ध्येय है।

'जैनवाग्विलास.'

श्रीवादिराजसूरि।

जैनियोंमे ऐसे बहुत कम लोग होंगे जिन्होंने सुप्रसिद्ध एकीभावस्तोत्रके कर्ता वादिराजसूरिका नाम न सुना हो। परन्तु ऐसे लोग शायद दो चार ही कठिनाईसे मिलेंगे जिन्हें यह मालूम हो कि वादिराज कौन थे, कब हुए हैं और उनकी कौन कौन सी रचनाओंसे जैनसमाज उपकृत हुआ है। हम अपने पाठकोंको इस लेखके द्वारा आज इसी महानुभावका थोड़ासा परिचय देना चाहते हैं।

वादिराजसूरि नन्दिसंघके अचार्य थे। उनकी शाखा या अन्वयका नाम अरुङ्गल था। परन्तु यह नन्दिसंघ वह नन्दिसंघ नहीं है जिसकी गणना चार संघोंमें की जाती है, किन्तु द्रमिल[1] या द्राविड़ संघका एक गच्छ या भेद है। पाठकोंको मालूम होगा कि इस द्रमिलसंघके स्थापक पूज्यपादस्वामीके शिष्य वज्रनन्दी हैं। इसकी गणना पांच जैनाभासोंमें की जाती है। द्रविड देशमें होनेके कारण इसका नाम द्राविड़ संघ पड़ा है। अस्तु। वे संभवतः दाक्षिणात्य थे। षट्तर्कषण्मुख[2], स्याद्वादविद्यापति, जगदेकमल्लवादी आदि उन-

---

१—श्रीमद्द्रमिलसंघेऽस्मिन्नन्दिसंघेऽस्त्यरुङ्गलः।
अन्वयो भाति योऽशेषशास्त्रवाराशिपारगः॥
(Vide Ins. No 39, Nagar Talup, Mr. Rice)

२—षट्तर्कषण्मुखरुं स्याद्वादविद्यापतिगळुं जगदेकमल्लवादीगळुं एनिसिद श्रीवादिराजदेवरम्। (Vide No. 36. Idid)

की उपाधियां थीं। वे सिंहपुरनिवासी त्रैविद्यविद्येश्वर श्रीपालदेवके प्रशिष्य, मतिसागरमुनिके शिष्य और सुप्रसिद्ध रूपसिद्धि ग्रन्थके कर्त्ता **दयापालमुनिके** सब्रह्मचारी या सतीर्थ थे। शक संवत् ९४८ के लगभग उनके अस्तित्वका पता लगता है जब कि उन्होंने पार्श्वनाथचरितकी रचना की थी। पार्श्वनाथचरितकी निम्नलिखित प्रशस्तिसे इन सब बातोंका पता लगता है:--

श्रीजैनसारस्वतपुण्यतीर्थनित्यावगाहामलबुद्धिसत्वैः ॥
प्रसिद्धभागी मुनिपुङ्गवेन्द्रैः श्रीनन्दिसंघोऽस्ति निबर्हितांहः ॥१॥
तस्मिन्नभूदद्भुतसंयमश्रीस्त्रैविद्याधरगीतिकीर्तिः।
सूरिः स्वयं सिंहपुरैकमुख्यः श्रीपालदेवो नयवर्त्मशाली ॥ २ ॥
तस्याभवद्भव्यमहोत्पलानां तमोपहो नित्यमहोदयश्रीः।
निषेधदुर्मार्गनयप्रभावः शिष्योत्तमः श्रीमतिसागराख्यः॥ ३ ॥
तत्पादपद्मभ्रमरेण भूम्ना निःश्रेयसश्रीरतिलोलुपेन।
श्रीवादिराजेन कथा निबद्धा जैनी स्वबुद्धेयमनिंद्यापि ॥ ४ ॥
शाकाब्दे नगवार्धिरन्ध्रगणने संवत्सरे क्रोधने
मासे कार्तिकनाम्नि बुद्धिमहिते शुद्धे तृतीयादिने।
सिंहे पाति जयादिके वसुमती जैनी कथेयं मया
निष्पत्तिं गमिता सती भवतु वः कल्याण निष्पत्तये ॥ ५ ॥

१—हितैषिणो यस्य नृणामुदात्तवाचा निबद्धा हितरूपसिद्धिः।
वन्द्यो दयापालमुनिः स वाचा सिद्धः सतां मूर्धनि यः प्रभावैः ॥
यह रूपसिद्धिव्याकरण मैसूरकी ओरियंटल लायब्रेरीमें मौजूद है।

२—यस्य श्रीमतिसागरो गुरुरसौ चञ्चद्यशश्चन्द्रभूः
श्रीमान्यस्य स वादिराजगणभृत्सब्रह्मचारी विभोः।
एकोऽतीव कृती स एव हि दयापालव्रती यन्मन-
स्यास्तामन्यपरिग्रहग्रहकथा स्वे विग्रहे विग्रहः ॥ ४ ॥

(मल्लिषेणप्रशस्तिः)

लक्ष्मीवासे वसति कटके कट्टगातीरभूमौ
कामावाप्तिप्रमदसुलभे सिंहचक्रेश्वरस्य ।
निष्पन्नोऽयं नवरससुधास्यन्दसिन्धुप्रबन्धो
जीयादुच्चैर्जिनपतिभवप्रक्रमैकान्तपुण्यः॥ ६ ॥

पिछले दो पद्योंसे यह भी मालूम होता है कि पार्श्वनाथचरित-की रचना जयसिंह महाराजके राज्य कालमें उनकी राजधानीमें हुई थी। यह सुन्दर राजधानी कट्टगा नामक नदीके किनारे थी।

इतिहासका पर्यवेक्षण करनेसे जाना जाता है कि ये जयसिंह महाराज चौलक्यवंशमें हुए हैं। पृथिवीवल्लभ, महाराजाधिराज, परमेश्वर, चालुक्यचक्रेश्वर, परमभट्टारक और जगदेकमल्ल आदि इन-की उपाधियां थीं। इनके वंशमें जयसिंह नामके एक और राजा हो गये हैं, इसलिये इन्हें द्वितीय जयसिंह कहते हैं। इनके राज्य समयके ३०से अधिक शिलालेख और ताम्रपत्र मिलते हैं; परन्तु उनमें इस बातका पता नहीं लगता कि इनका राज्याभिषेक कब हुआ था। उक्त लेखोंमें सबसे पहला लेख शक संवत् ९३८ का और सबसे पिछला शक संवत् ९६४ का है, जिस से इतना तो निर्विवाद सिद्ध होता है कि उन्होंने कमसे कम शक संवत् ९३८से ९६४ तक राज्य किया है। इसके बाद उनका पुत्र सोमेश्वर (आहवमल्ल)उनके राज्यका स्वामी हुआ था।

यह राजा बड़ा वीर और प्रतापी था। उसके एक लेखमें जो कि शक संवत् ९४९ पौष कृष्ण २ का लिखा हुआ है–लिखा

१ यह कट्टगानदी कहां है और जयसिंहकी राजधानी कहां थी यह मालूम नहीं। जयसिंहके पुत्र सोमेश्वर प्रथमने तो अपनी राजधानी कल्याणनगर (निजामराज्यके अन्तर्गत कल्याणीमें) स्थापित की थी।

है कि राजाओंके राजा जयसिंहने–जो भोजरूप[1] कमलके लिये चन्द्र और राजेन्द्रचोल (परकेसरीवर्मा) रूप हाथीके लिये सिंहके समान था–मालवावालोंके सम्मिलित सैन्यका पराजय किया और चेर तथा चोलवालोंको सजा दी।

आगे जो मल्लिषेणप्रशस्तिका कुछ अंश उद्धृत[2] किया गया है उसके तीसरे पद्यमें जो जयसिंहकी राजधानीको 'वाग्वधूजन्मभूमौ' विशेषण दिया है और दूसरे पद्यमें वादिराजको 'सिंहसमर्च्यपीठविभवः' विशेषण दिया है उससे मालूम होता है कि जयसिंह महाराजकी राजधानीमें विद्याकी बहुत चर्चा थी–बड़े बड़े वादी कवि तथा नैयायिक पण्डितोंका वहा निवास था और जयसिंह महाराज वादिराजसूरिके भक्त थे–उनकी सेवा करते थे। यद्यपि इस प्रकारका कोई प्रमाण नहीं मिला है कि जयसिंहनरेश जैनी थे या जैनधर्ममें श्रद्धा रखते थे; परन्तु यह बात दृढतापूर्वक कही जा सकती है कि जैनधर्मपर और जैनधर्मके अनुयायियोंपर उनकी कृपा होगी। यही कारण है कि वादिराजसूरिपर उनकी भक्ति थी।

हमारे यहां एक कथा प्रसिद्ध है–और उसका एकीभावकी संस्कृत टीकामें तथा और भी कई ग्रन्थोंमें[3] उल्लेख मिलता है कि वादिराजसूरिको एक बार कुष्टरोग हो गया था। महाराज जयसिंहके दरबारमें जब इस बातका जिकर छिड़ा तब वहां बैठे हुए किसी श्रावकने–जो कि वादिराजका भक्त था–पूछनेपर गुरुनिन्दाके भयसे यह कह दिया कि–नहीं मेरे गुरु वादिराज कोढ़ी नहीं हैं।

१ कई विद्वानोंको इस विषयमें सन्देह है कि जयसिंहने भोजका हराया था।

२ देखो, *काव्यमाला सप्तमगुच्छक*, पृष्ठ १२ की टिप्पणी।

३ देखो, वृन्दावनविलास पृष्ठ ३१ का ३४ वां पद्य।

इसपर बड़ी जिद्द हुई। आखिर यह ठहरा कि महाराज कल स्वयं चलकर वादिराजको देखेंगे। श्रावक महाशय उस समय कहते तो कह गये पर पीछे बड़ी चिन्तामें पड़े। और कोई उपाय न देख गुरुके पास जाकर उन्होंने अपनी भूल निवेदन की और कहा अब लज्जा रखना आपके हाथ है। कहते हैं कि उसी समय वादिराजसूरिने एकीभावस्तोत्रकी रचना की और उसके प्रभावसे उनका कुष्ट-रोग दूर होगया। एकीभावका चौथा श्लोक यह है—

प्रागेवेह त्रिदिवभवनादेष्यता भव्यपुण्या-
त्पृथ्वीचक्रं कनकमयतां देव निन्ये त्वयेदम्।
ध्यानद्वारं मम रुचिकरं स्वान्तगेहं प्रविष्ट-
स्तत्किं चित्रं जिन वपुरिदं यत्सुवर्णीकरोषि॥ ४॥

अर्थात्—हे भगवन्, स्वर्ग लोकसे माताके गर्भमें आनेके छह महीने पहलेहीसे जब आपने पृथ्वीको सुवर्णमयी कर दी, तब ध्यानके द्वारसे मेरे सुन्दर अन्तर्गृहमें प्रवेश कर चुकनेपर यदि आप मेरे इस शरीरको सुवर्णमय कर दें तो क्या आश्चर्य है?

वादिराजसूरिकी इस प्रार्थनासे अनुमान किया जाता है कि अवश्य ही उनके शरीरमें कुछ विकार हो गया था और वे उसको दूर करना चाहते थे और वह विकार जैसा कि उक्त कथामें कहा गया है—कुष्टरोग था।

दूसरे दिन महाराजने जाकर देखा तो वादिराजसूरिका दिव्य शरीर था—उनके शरीरमें किसी व्याधिका कोई चिह्न नहीं दिखलाई देता था। यह देखकर उन्होंने उस पुरुषकी ओर कोपभरी दृष्टिसे

१ एकीभावके तीसरे पांचवे और सातवें श्लोकका भी इसीसे मिलता जुलता भाव है।

देखा जिसने कि दरबारमें इस बातका जिकर किया था। मुनिराज राजाकी दृष्टिका अभिप्राय समझकर बोले—राजन्, इस पुरुषपर कोप करनेकी आवश्यकता नहीं है। वास्तवमें उसने सच कहा था—मैं सचमुच ही कोढ़ी था और उसका चिह्न अभी तक मेरी इस कनिष्ठिका अंगुलीमें मौजूद है। धर्मके प्रभावसे मेरा कुष्ट आज ही दूर हुआ है। इत्यादि। यह सुनकर महाराजको बड़ा आश्चर्य हुआ। मुनिराजपर उनकी बड़ी भक्ति हो गई। मल्लिषेणप्रशस्तिका ' सिंहसमर्च्यपीठविभवः ' विशेषण इसी बातको पुष्ट करता है। ऐसे प्रभावशाली महात्माकी जयसिंहनरेश अवश्य ही भक्ति करते होंगे।

वादिराजसूरि कैसे दिग्गज विद्वान् थे, इस बातका अनुमान पाठक नीचे लिखे हुए पद्योंसे करेंगे। ये पद्य श्रवणबेलगुलके 'मल्लिषेणप्रशस्ति ' नामक शिलालेखमें खुदे हुए हैं:—

त्रैलोक्यदीपिका वाणी द्वाभ्यामेवोद्गादिह।
जिनराजत एकस्मादेकस्माद्वादिराजतः॥ १॥
आरूढाम्बरमिन्दुबिम्बरचितौत्सुक्यं सदा यद्यश-
श्छत्रं वाक्चमरीज-राजिरुचयोऽभ्यर्णं च यत्कर्णयोः।
सेव्यः सिंहसमर्च्यपीठविभवः सर्वप्रवादिप्रजा-
दत्तोच्चैर्जयकारसारमहिमा श्रीवादिराजो विदाम्॥ २॥

यदीय गुणगोचरोऽयं वचनविलासप्रसरः कवीनाम्:—

श्रीमच्चौलुक्यचक्रेश्वरजयकटके वाग्वधूजन्मभूमौ
निष्काण्डं डिण्डिमः पर्यटति पटुरटो वादिराजस्य जिष्णोः।
जह्युद्यद्वाद्दर्पो जहिहि गमकता गर्वभूमा जहारि
व्याहारेष्यो जहारि स्फुटमृदुमधुरश्रव्यकाव्यावलेपः॥ ३॥

---

१ यह प्रशस्ति शक संवत् १०५० की लिखी हुई है।

पाताले व्यालराजो वसति सुविदितं यस्य जिह्वासहस्रं
निर्गन्ता स्वर्गतोऽसौ न भवति धिषणो वज्रभृद्यस्य शिष्यः।
जीवेतां तावदेतौ निलयबलवशाद्वादिनः केऽत्रनान्ये
गर्वं निर्मुच्य सर्वं जयिनमिनसभे वादिराजं नमन्ति ॥ ४ ॥

वाग्देवीसुचिरप्रयोगसुदृढप्रेमाणमप्यादरा—
दादत्ते मम पार्श्वतोऽयमधुना श्रीवादिराजो मुनिः।
भोः भोः पश्यत पश्यतैष यमिनां किं धर्म इत्युच्चके-
रब्रह्मण्यपराः पुरातनमुनेर्वाग्वृत्तयः पान्तु वः ॥ ५ ॥

भावार्थ- त्रैलोक्यदीपिका (त्रैलोक्यको प्रकाशित करनेवाली) वाणी या तो जिनराजके मुखसे निर्गत हुई या वादिराजसूरिसे। वादिराजकी महत्त्वसामग्री राजाओंके समान थी। चन्द्रमाके समान उज्ज्वल यशका छत्र था, वाणीरूपी चँवर उनके कानोंके समीप ढुरते थे, सब उनकी सेवा करते थे, उनका सिंहासन जयसिंहनरेश-से या पुरुषसिंहोंसे अर्चित था और सारी प्रवादी प्रजा उच्चस्वरसे उनका जयजयकार करती थी। उनके गुणोंकी प्रशंसा कवियों-ने इस प्रकार की है—चालुक्यचक्रवर्ती जयसिंहकी राजधानीमें जो कि सरस्वतीरूपी स्त्रीकी जन्मभूमि थी—विजेता वादिराजसूरि-की इस प्रकार डुगडुगी पिटती थी कि हे वादियो, वादका घमंड छोड़ दो, हे काव्यमर्मज्ञो, तुम अपनी रसकताका गर्व त्याग दो, हे वाचालो, वाचालता छोड़ दो और हे कवियो, कोमल मधुर और स्फुट काव्यरचनाका अभिमान त्याग दो। जिसकी हजार जिह्वायें हैं वह नागराज पातालमें रहता है और इन्द्रका गुरु जो बृहस्पति है वह स्वर्गलोकमें चला गया है। ये दोनों वादी उक्त स्थानोंमें जीते रहें तो अच्छा हो। क्योंकि इन्हें छोड़कर यहां तो और कोई वादी ही नहीं रहा है। बतलाइये, यहां और कौन हैं? जो थे

वे तो सब बलक्षीण हो जानेसे गर्व छोड़कर राजसभामें इस विजयी वादिराजको नमस्कार करते हैं। इत्यादि।

एकीभावस्तोत्रके अन्तमें किसी कविका बनाया हुआ जो यह श्लोक है, उसे तो पाठकोंने सुना ही होगा—

वादिराजमनु शाब्दिकलोको वादिराजमनु तार्किकसिंहः।
वादिराजमनु काव्यकृतस्ते वादिराजमनु भव्यसहायः॥

अर्थात् जितने वैयाकरण हैं, जितने नैयायिक हैं, जितने कवि हैं और जितने भव्यसहायक हैं वे सब वादिराजसूरिसे पीछे हैं। भाव यह कि वादिराजके समान कोई वैयाकरण नैयायिक भव्यसहायक और कवि नहीं है।

एक प्रशंसात्मक श्लोक और भी सुनिए:—

सदसि यदकलङ्कः कीर्तने धर्मकीर्ति-
र्वचसि सुरपुरोधा न्यायवादेऽक्षपादः
इति समयगुरूणामेकतः संगतानां
प्रतिनिधिरिव देवो राजते वादिराजः॥

(Vide Ins. No. 39, Nagar Talup, by Mr. rice)

अर्थात् वादिराजसूरि सभामें बोलनेके लिये अकलंकभट्टके समान हैं, कीर्तिमें धर्मकीर्तिके (न्यायबिन्दुके कर्ता प्रसिद्ध बौद्ध नैयायिकके) समान हैं, वचनोंमें बृहस्पति (चार्वाक) के समान हैं और न्यायवादमें अक्षपाद अर्थात् गौतमके समान है। इस तरह वे (श्रीवादिराजदेव) इन जुदा जुदा धर्मगुरुओंके एकीभूत प्रतिनिधिके समान शोभित होते हैं।

श्रीवादिराजसूरिकी प्रशंसामें ऊपरके श्लोकोंमें जो कुछ कहा गया है उससे अधिक और क्या कहा जा सकता है? वह समय

सचमुच ही धन्य था जब जैनसाहित्य और जैनधर्मका मस्तक उन्नत करनेवाले ऐसे २ महात्मा जन्म लेते थे।

वादिराज स्वामीके बनाये हुए केवल चार ग्रन्थोंका पता लगता है—१ एकीभावस्तोत्र, २ यशोधरचरित, ३ पार्श्वनाथचरित और ४ काकुत्स्थचरित। इनमेंसे एकीभावस्तोत्र केवल २९ श्लोकोंकी छोटीसी स्तुति है। उसका सर्वत्र बहुलतासे प्रचार है। इस स्तोत्रकी कविता बड़ी ही कोमल सरस मधुर और हृदयद्रावक है। दूसरा यशोधरचरित छोटासा चतुःसर्गात्मक काव्य है। इसमें केवल २९६ पद्य हैं और उनमें यशोधर महाराजकी संक्षिप्त कथा कही गई है। इस काव्यको तंजौरके श्रीयुत टी. एस. कुप्पूस्वामी शास्त्रीने अभी हाल ही छपाकर प्रकाशित किया है। वादिराजसूरिकी रचनामें यह बड़ी खूबी है कि, वह सरल होनेपर भी कोमल मधुर और मनोहारिणी है। हमारी इच्छा थी कि उनके ग्रन्थोंके कुछ पद्य यहां उद्धृत करके पाठकोंको उनकी खूबी दिखलाते; परन्तु स्थानाभावसे हम ऐसा न कर सके। अस्तु। तीसरा ग्रंथ पार्श्वनाथचरित है। उक्त ग्रन्थके हमने दर्शनमात्र किये हैं; पर उसे पढ़ नहीं सके। हमारे मित्र पं० उदयलालजी काशलीवालके पास वह है। उन्होंने हमसे उसके कवित्वकी बहुत ही प्रशंसा की है। श्रीयुत टी. एस. कुप्पूस्वामी शास्त्री उक्त काव्यको छपाना चाहते हैं—उन्होंने उसे बहुत ही पसन्द किया है; परन्तु खेद है कि अभीतक उन्हें कहींपर उसकी दूसरी प्रति नहीं मिली। चौथा ग्रन्थ काकुत्स्थचरित है। यशोधरचरितमें उक्त ग्रन्थका उल्लेख तो मिलता है; परन्तु तलाश करनेपर भी उसका कहीं पता नहीं लगा।

श्रीपार्श्वनाथ-काकुत्स्थचरितं येन कीर्तितम्।
तेन श्रीवादिराजेन दृब्धा याशोधरी कथा ॥ ५ ॥ सर्ग १

इन चार ग्रन्थोंके सिवा मल्लिषेणप्रशस्तिका जो 'त्रैलोक्यदीपिका वाणी' आदि श्लोक है उससे मालूम होता है कि वादिराजसूरिका कोई 'त्रैलोक्यदीपिका' नामका ग्रन्थ भी है।

वादिराजसूरि केवल कवि नहीं थे। वे न्यायादि शास्त्रोंके भी असाधरण विद्वान् थे। तब अवश्य ही उनके बनाये हुए न्याय व्याकरणादि विषयक ग्रन्थ भी होंगे परन्तु कालके कुटिलचक्रमें पड़कर आज उनका दर्शन दुर्लभ होगया है। एक सूचीपत्रमें वादिराजके रुक्मणि-यशोविजय, वादमंजरी, धर्मरत्नाकर, और अलंकाष्टकटीका इन चार ग्रन्थोंके नाम और भी मिलते हैं: परन्तु वादिराजनामके और भी कई विद्वान् होगये हैं इस लिये निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वे इन्ही वादिराजके हैं अथवा किसी अन्यके।

वादिराजसूरिका पार्श्वनाथचरित शक संवत् ९४८ में बना है, यह पूर्वमें कहा जाचुका है; परन्तु शेष ग्रन्थ कब बने-प्रशस्तियोंके अभावसे इस बातका पता नहीं लगता। यशोधरचरितके विषयमें इतना कहा जा सकता है कि वह जयसिंह महाराजके ही राज्यकालमें बना है। क्योंकि उसके तीसरे सर्गके अन्त्य श्लोकमें और चौथे सर्गके उपान्त्य श्लोकमें कविने चतुराईसे जयसिंहका नाम योजित कर दिया है—

---

१ अर्थात् जिसने पार्श्वनाथचरित और काकुत्स्थचरितकी रचना की, उसी वादिराजने यह यशोधरचरित बनाया। काकुत्स्थ नाम रामचन्द्रका है, अतएव इस ग्रन्थमें बहुत करके उन्हींका चरित होगा।

२ यह ग्रन्थ मैसूरकी ओरिएंटल लायब्रेरीमें मौजूद है।

"व्यातन्वञ्जयसिंहतां रणमुखे दीर्घं दधौ धारिणीम् ॥८५॥"
"रणमुखजयसिंहो राज्यलक्ष्मीं बभार॥ ७३॥"

श्रीवादिराजसूरिका निवासस्थान कहां था, उन्होंने कब दीक्षा ली थी और कबतक इस धराधामको अपनी पुण्यमूर्तिसे सुशोभित किया था यह जाननेका कोई साधन प्राप्त नहीं होनेसे खेद है कि इस विषयमें हम कुछ नहीं लिख सके।

श्रीवादिराजसूरिके समकालीन कई बड़े २ विद्वान होगये हैं। श्रीविजयभट्टारककी—जिनका कि दूसरा नाम पण्डितपारिजात था—स्वयं वादिराजसूरिने एक पद्यमें स्तुति की है। वह पद्य यह है—

यद्विद्यातपसोः प्रशस्तमुभयं श्रीहेमसेने मुनौ
प्रागासीत्सुचिराभियोगबलतो नीतं परामुन्नतिम्।
प्रायः श्रीविजये तदेतदखिलं तत्पीठिकायां स्थिते
संक्रान्तं कथमन्यथानतिचिराद्विद्येदृगीदृक्तपः॥

ये विजयभट्टारक हेमसेन मुनिके पदपर बैठे थे। इनकी प्रशंसाका एक श्लोक मल्लिषेणप्रशस्तिमें भी मिलता है। इस श्लोकसे यह भी मालूम होता है कि उस समयके कोई गंगवंशी नरेश उनके भक्त थे:—

गंगावनीश्वरशिरोमणिबन्धसन्ध्या-
रागोल्लसच्चरणचारुनखेन्दुलक्ष्मीः।
श्रीशब्दपूर्वविजयान्तविनूतनामा
धीमानमानुषगुणोऽस्ततमःप्रमांशुः॥

बहुत करके ये गंगवंशीनरेश चामुंडराय महाराज होंगे। क्योंकि चामुंडरायका समय शककी दशवीं शताब्दी ही है। उनका जन्म शक संवत् ९०० में हुआ था। यद्यपि वे महाराज राजमल्लके मंत्री या सेनापति थे तो भी राजा कहलाते थे। और यह तो प्रसिद्ध ही है कि वे जैनधर्मके परम भक्त थे।

गद्यचिन्तामणि और क्षत्रचूडामणि काव्यके कर्त्ता वादीभसिंहके विद्यागुरु पुष्पसेन भी वादिराजके समकालीन थे।

महाकवि मल्लिषेण (उभयभाषाकविचक्रवर्ती) जिन्होंने कि शक संवत् ९६९ में महापुराणकी रचना की है लगभग इसी समयके ग्रन्थकर्ता हैं।

दयापाल मुनि जो कि वादिराजके सतीर्थ थे बड़े भारी विद्वान् थे। मल्लिषेणप्रशस्तिमें उनकी प्रशंसाके कई पद्य हैं। स्थानाभावसे हम उन्हें उद्धृत नहीं कर सके। नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्ती और कनडीके रन्न, अभिनव पम्प, नयसेन आदि प्रसिद्ध कवि भी लगभग इसी समय हुए हैं। शककी इस दशवीं शताब्दीने जैनियोंमें बीसों विद्वद्रत्न उत्पन्न किये थे।

नोट—इस लेखके लिखनेमें हमें यशोधरचरितकी संस्कृत भूमिकासे और सोलंकियोंके इतिहाससे बहुत कुछ सहायता मिली है अतएव हम दोनों ग्रन्थोंके लेखकोंका हृदयसे उपकार मानते हैं।

---

१ श्रीयुक्त टी. एस. कुप्पूस्वामी शास्त्रीने यशोधरचरितकी भूमिकामें लिखा है कि वादीभसिंहका वास्तविक नाम अजितसेन मुनि था। वादीभसिंह उनका एक विशेषण या पदवी थी। यथा मल्लिषेणप्रशस्तौ—

सकलभुवनपालानम्रमूर्धावबद्धस्फुरितमुकुटचूडालीढपादारविन्दः।
मदवदखिलवादीभेन्द्रकुम्भप्रभेदी गणभृदजितसेनो भाति वादीभसिंहः॥

२ पुष्पसेनमुनि वादिराजके समकालीन होनेसे वादीभसिंहका समय भी एक प्रकारसे निश्चित हो जाता है जो कि पहले अनुमानोंसे सिद्ध किया जाता था।

सम्पादकीय टिप्पणियां ।

१. जैनसिद्धान्तभास्कर ।

पाठकोंको मालूम होगा कि आरा-जैनसिद्धान्तभवनकी ओरसे एक ऐतिहासिक पत्र (त्रैमासिक) के निकलनेका प्रबन्ध हो रहा था । हर्षका विषय है कि, आज वह हमारे समक्ष उपस्थित है और हम उसका प्रसन्नतापूर्वक दर्शन कर रहे हैं । हमको जैसी आशा नहीं थी सहयोगी वैसी सजधजसे निकला है । उसका आकार प्रकार कागज चित्र आदि सब ही कुछ संतोष योग्य है । जैनियोंमें वह बिलकुल नई चीज है । इस प्रथम अंकमें छह चित्र कई कविताएं और कई ऐतिहासिक लेख हैं । हमको आशा है कि-हमारा समाज अपने इस इकलौते ऐतिहासिक पत्रको प्रीतिपूर्वक अपनायगा । इसके सम्पादक और प्रकाशक कलकत्तेके सेठ पदमराजजी रानीवाले हुए हैं । वार्षिक मूल्य तीन रुपया रक्खा गया है ।

---

२. जैनियोंकी मृत्युसंख्या ।

बाम्बे गवर्नमेंटने सन् १९११ की जन्ममरणसम्बन्धी रिपोर्ट हाल ही प्रकाशित की है । इस रिपोर्टसे मालूम होता है कि इस प्रेसीडेन्सीके प्रत्येक जिलेके हिन्दू जैन और मुसलमानोंकी औसत मृत्युसंख्या प्रतिसहस्र २९, १५, और २७ निकली है अर्थात् जहां हजार हिन्दुओंमें और हजार मुसलमानोंमें २९ और २७ आदमी मरते हैं, वहां जैनियोंमें केवल १५ मरते हैं । इस हिसाबसे औरोंकी अपेक्षा जैनियोंकी मृत्युसंख्या आधेके लगभग है । जहां तक हमारा खयाल है दूसरे प्रान्तोंमें भी जैनियोंकी मृत्युसंख्याका

परिमाण बम्बईके ही समान होगा। और नहीं तो इतना तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि हिन्दू मुसलमानोंसे वह कम ही होगा—अधिक नहीं। क्योंकि सर्व साधारण हिन्दू और मुसलमानोंकी अपेक्षा जैनियोंकी स्थिति अच्छी है और इस कारण वे औरोंकी अपेक्षा आरोग्यरक्षा विशेषताके साथ कर सकते हैं। इसके सिवा उनके भोजनपानादिके भी धार्मिक नियम ऐसे हैं कि अनेक रोगोंसे उनकी सहज ही रक्षा हुआ करती है।

---

३. जैनियोंकी जनसंख्या क्यों घट रही है ?

अब प्रश्न यह है कि जब जैनियोंकी मृत्युसंख्या औरोंसे बहुत कम है, तब उनकी जनसंख्या दिनपर दिन घट क्यों रही है? पिछली मनुष्यगणनाके अनुसार १० वर्षमें जब अन्य सब धर्मवालोंकी जनसंख्या कुछ न कुछ बढ़ी है तब जैनियोंकी लगभग ८६००० घट गई है! अवश्य ही इसका कारण इसके सिवा और कुछ नहीं होसकता कि जैनियोंमे पैदायश बहुत कम होती है। अर्थात् यद्यपि उनमें मौतें थोड़ी होती हैं; परन्तु पैदायश उन मौतोंकी अपेक्षा भी थोड़ी होती है—जितने मरते हैं उतने पैदा नहीं होते और इस तरह उनकी संख्या दिनपर दिन कम होती जाती है। अब दूसरा प्रश्न यह उपस्थित होता है कि जैनियोंमें पैदायश कम क्यों होती है? हमारी समझमें इसका एक कारण तो यह है कि जैनियोंमें अविवाहित पुरुष बहुत रहते हैं। क्योंकि एक तो जैन-समाजका विस्तार ही बहुत थोड़ा है और जो है उसमें भी सैकड़ों जातियां तथा उपजातियां हैं। साथ ही ब्याहकी फिजूलखर्चियां इतनी बढ़ गई हैं और लड़कियोंकी दर इतनी चढ़ गई है कि विवाह करना

कोई साधारण कार्य नहीं रहा है। हर एक पुरुषकी शक्ति नहीं कि वह इस बृहदनुष्ठानका भार वहन कर सके। बहुतसी जातियां तो ऐसी हैं जिनमें निर्धन पुरुष युवावस्थासे कमाई करते करते वृद्ध भी हो जाते हैं तो भी ब्याहके योग्य धनसंचय नहीं कर सकते हैं। कई जातियां ऐसी भी हैं जिनकी संख्या इतनी थोड़ी है कि उनमें ब्याहका संयोग मिलना ही दुस्तर हो गया है और इस कारण उन जातियोंका क्षय बहुत ही शीघ्रताके साथ हो रहा है। यह अविवाहितोंकी संख्या कई जातियोंमें तो इतनी अधिक है कि सुनकर उनके भविष्यकी बड़ी भारी चिन्ता हो जाती है। इन अविवाहित पुरुषोंकी अधिकतासे जनसंख्याकी वृद्धि नहीं होती है, यह तो स्पष्ट ही है, साथ ही इनसे समाजमें व्यभिचारकी प्रवृत्ति और नैतिक चरित्रकी हानि भी बड़ी भारी होती है। दूसरा कारण यह है कि जैनियोंमें बाल्यविवाह और वृद्धविवाह बहुत होते हैं और इससे उनमें विधवाओंकी संख्या बहुत बढ़ती जाती है और इस कारण जो स्त्रियां सुहागिन रहकर सन्तानोत्पादन करके प्रजाकी वृद्धि करतीं, वे विधवा होकर समाजको प्रायः उसके नैतिक चरित्रकी हानि करनेके सिवा और कोई लाभ नहीं पहुंचा सकती हैं। तीसरा कारण यह मालूम होता है कि जैनसमाजमें धनिकोंकी संख्या अधिक है और शिक्षाके अभावसे उनमें विलासप्रियता बहुत बढ़ गई है जो कि प्रजोत्पादनमें बहुत बड़ी हानि पहुंचाती है। हम देखते हैं कि जहां साधारण श्रेणीके लोगोंके चार चार छह छह सन्तानें होती हैं, वहां धनिकोंके यहां एक भी नहीं होती है—बेचारे दूसरोंके लड़कोंको गोद लेकर अपना वंश चलानेकी चिन्तामें रहते हैं।

---

४. दूसरी समान जातियोंकी संख्या क्यों नहीं घटती ?

यहां हमसे यह प्रश्न किया जा सकता है कि हिन्दुओंमें भी तो बहुतसी उच्च श्रेणीकी जातियां ऐसी हैं जिनमें वे सब कारण मौजूद हैं जो जैनियोंमें बतलाये गये हैं फिर उनकी वृद्धि क्यों होती है ? उनकी जनसंख्या कम क्यों नहीं होती ? इसका उत्तर यदि विचार करके देखा जाय तो बहुत ही सहज है। जिन जातियोंके रीति रवाज जैनियोंके ही समान हैं, वास्तवमें उनकी संख्याका भी न्हास जैनियोंके समान हो रहा है; परन्तु उनकी गणना जुदा न होकर हिन्दुओंमें होती है और हिन्दुओंमें ब्राह्मणसे लेकर चमार तक गिने जाते हैं। इसलिये उक्त जातियोंमें जो कमी होती है उसकी पूर्ति शूद्रोंकी तथा दूसरी ऐसी ही जातियोंकी बड़ी भारी वृद्धिसे हो जाती है जिनमें विवाहके प्रपंच अधिक नहीं हैं और इस कारण जिनमें कुँवारे बहुत ही कम रहते हैं, जिनमें पुनर्विवाहकी प्रथा जारी है इस कारण स्त्रियां विधवा न होकर बराबर प्रजोत्पादन करती रहती हैं, और जिनमें विलासताका लेश भी नहीं है इस कारण खूब सन्तानोत्पत्ति होती है। गरज यह कि उनका भी–जिनकी कि समाजिक स्थिति जैनियोंके समान है–जैनियोंके जैसा ही क्षय हो रहा है, परन्तु वह मालूम नहीं पड़ता है–दूसरी वृद्धिंगत जातियोंकी गणनामें सम्मिलित होनेसे छुप जाता है।

---

५. रक्षाका उपाय।

जैनसमाजको इस बड़े भारी अनिष्टसे बचानेका जिससे कि उसका भविष्य बहुत ही शोचनीय दिखलाई दे रहा है उपाय क्या है ? जिस अनिष्टसे प्रत्येक दश वर्षमें लगभग साठ हजार मनुष्य कम हो

जाते हैं और इस कारण जिससे इस सिर्फ तेरह लाख जनसंख्या-व्यापी समाजका केवल एक ही शताब्दीमें नामशेष हो सकता है उससे रक्षा पानेका उपाय सोचना प्रत्येक जैनीके लिये आवश्यक है। यह जीवन मरणका प्रश्न है। यदि इसका विचार न किया जायगा तो और किसका किया जायगा? हमारी समझमें ऊपर जो थोड़ेसे कारण बतलाये गये हैं यदि वे सही हैं, तो सबसे पहले उनके दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिए। अविवाहितोंकी संख्या तब घट सकती है जब व्याहकी कठिन समस्या हल हो जाय और यह समस्या तब हल हो सकती है, जब जैनियोंकी जितनी जातियां हैं वे सब परस्पर बेटीव्यवहार करने लगें। यह हम जानते है कि जैनसमाजमें जो कि बहुत ही अप्रगतिशील है और जिसमें शिक्षाकी बहुत कमी है—अभी यह कार्य होना कठिन है, तो भी इसकी चर्चा होनी चाहिए और शिक्षित पुरुषोंको साहस करके इसपथपर अग्रसर होना चाहिए। इसके विना न तो कन्याओंका मिलना सुलभ हो सकता है और न उनकी दर ही घट सकती है। बऱ्हाड़ आदि प्रान्तोंमें कई जातियां तो ऐसी हैं—उनकी जनसंख्या इतनी थोड़ी है कि यदि उन्हें सहारा न दिया जायगा—दूसरी जैन जातियां उनके साथ सम्बन्ध करना स्वीकार न करेंगी, तो पचास साठ ही वर्षमें उनकी समाप्ति हो जावेगी! उनमें अविवाहितोंकी संख्या देखकर बड़ी ही दया आती है। व्याहकी फिजूल खर्चियां घटानेकी भी कोशिश होना चाहिये और इसके लिये समाजके शिक्षित पुरुषोंको कटिबद्ध होना चाहिए। क्योंकि बहुतसे लोग इन व्याहोंके बढ़े हुए खर्चके कारण ही अविवाहित रहते हैं। पंचा-यतियोंको इस खर्चकी इयत्ता इतनी कर देना चाहिए जिससे गरी-

बसे गरीब पुरुष भी इसके कारण विवाहसे वंचित न रहने पावे। बाल्यविवाह और वृद्धविवाहके रोकनेके लिये समाजमें आन्दोलन हो रहा है; परन्तु उसकी गतिको अब और बढ़ाना चाहिए। उपदेशों, लेखों, ट्रेक्टों और पंचायतियोंके नियमोंसे इसकी गति बढ़ सकती है। विलासप्रियताको कम करनेका उपाय एक शिक्षा है। धनिक-समाजमें जब तक शिक्षाका प्रचार न बढ़ेगा तब तक वह कम नहीं हो सकती।

---

६. बेटी–व्यवहारकी आवश्यकताका विरोध।

श्रीमती रत्नमालाकी १६ वीं लतिकामें किसी गुमनाम महाशयने 'सुधारकोंकी शुभचिन्तना' शीर्षक एक लेख लिखा है और हमारे कुछ सुधारसम्बन्धी विचारोंपर प्रहार किया है। एक आक्षेप तो हमारे ऊपर यह किया है कि हम जैनियोंकी समस्त जातियोंमें परस्पर बेटीव्यवहारका प्रतिपादन करते हैं। यदि लेखक महाशय दो चार युक्तियां देकर यह बतला देते कि परस्पर बेटी व्यवहार होना क्यों अच्छा नहीं है? उसमें क्या दोष है? शास्त्रकारोंका इस विषयमें क्या मत है? तो अच्छा होता; उनपर कुछ विचार करनेका अवसर मिलता। परन्तु उन्हें तो केवल हितैषीको सुधारक बतलाकर बदनाम करना है। युक्तियां देनेके प्रपंचमें क्यों पड़ें? आप केवल बालविवाह वृद्धविवाह और कन्याविक्रयको जैनियोंकी संख्या घटनेके कारण समझते हैं–परस्पर बेटीव्यवहार होनेके प्रतिबन्धको नहीं। आप यदि थोड़ासा कष्ट उठाकर जैनियोंकी १०-२० जातियोंकी जनसंख्या जाननेका यत्न करते और फिर उनमें जो अविवाहित हैं उनकी गणना करते तो आपको मालूम हो जाता

कि परस्पर बेटीव्यवहार होनेके विना जैन जातियोंका कैसी शीघ्रतासे क्षय हो रहा है। अभी पिछली साल आकोलाके वकील श्रीयुक्त चवरेने बऱ्हाड़ प्रान्तके जैनियोंकी जो गणना की थी, उससे मालूम हुआ था कि उक्त प्रान्तमें १७ जातियां हैं, जिनमेंसे सेतवाल और परवारोंको छोड़कर किसीके भी तीन सौसे अधिक घर नहीं हैं। बदनोरे आदि एक दो जातियां तो ऐसी हैं कि उनके सौसे भी कम घर हैं और वे भी थोड़ी ही वर्षोंमें समाप्त हो जानेवाले हैं। क्योंकि जातिके थोड़ेसे घरोंमें विवाहसम्बन्ध मिलता नहीं और दूसरी जातिके जैनियोंको दया आती नहीं कि उनसे सम्बन्ध करके उनके वंशकी रक्षा करें। यह दशा केवल बऱ्हाड़ प्रान्तकी ही नहीं है, दूसरे प्रान्तोंमें भी ऐसी बीसों जातियां हैं जो अपनी अल्प संख्याके कारण समाप्तिके सम्मुख जा रही हैं। अविवाहितोंकी संख्या बढ़नेका कारण विवाहका खर्च भी है; परन्तु ऐसे अविवाहित पुरुष खंडेलवाल, अग्रवाल, परवार आदि ऐसी ही जातियोंमें अधिक है, जिनकी संख्या अच्छी है। जैनियोंकी जितनी जातियां हैं; उनमें परस्पर विवाहसम्बन्ध होने लगे, इसका प्रयत्न प्रत्येक जातिहितैषीको करना चाहिए। जैनशास्त्र इसके अविरोधी हैं। वे तो द्विजवर्णोंमें भी परस्पर बेटीव्यवहारके विरोधी नहीं हैं। इस विषयमें लोकविरुद्धताके सिवा और किसी भी बातकी दुहाई नहीं दी जा सकती। परन्तु जो विचारशील हैं हमको विश्वास है कि वे इस लोकविरुद्धताकी अपेक्षा जैनजातिकी रक्षाकी ओर ही विशेष ध्यान देंगे।

---

७. दूसरे आक्षेप।

दूसरा आक्षेप यह किया गया है कि हम दस्सों बीसों परवारों विनैकयोंको मिलाना चाहते हैं। परन्तु इस विषयकी चर्चा

पहले बहुत कुछ हो चुकी है, इसलिये हम यहांपर उसका फिर पिष्टपेषण नहीं करना चाहते। हमारे शुभचिंतक महाशय और उनके अनुयायी आज तक इस विषयका कोई प्रमाण नहीं दे सके कि दस्से हमेशा दस्से ही बने रहेंगे—वे कभी शुद्ध नहीं होंगे। उनके पास एक लोकाचाररूपी जीर्ण शीर्ण जंग खाये हुए खड्गके सिवा अपने पक्षकी रक्षा करनेका और साधन नहीं है। परन्तु स्मरण रखिए इस खड्गका कितना ही डर दिखाया जाय, समयका असाधारण परिवर्तन और हमारी आवश्यकताएँ अपना काम करके छोड़ेंगीं। परवारोंमें चार साकोंके सम्बन्धको प्रचलित करनेकी बहुत बड़ी आवश्यकता है। इसके विना सम्बन्ध मिलानेमें बड़ा ही कष्ट होता है और कष्ट सहकर भी लोग इच्छित वर और कन्याएँ नहीं पा सकते हैं। फल यह होता है कि अनमेल विवाह बहुलतासे होते हैं और हजारों पुरुष और स्त्री जीवन भरके लिये सुखसे हाथ धो बैठते हैं। शुभचिन्तक महाशयने इस प्रथाके जारी करनेमें भी क्या हानि होगी यह बतलानेकी कृपा नहीं की। मालूम नहीं इस पद्धतिको जारी करके परवार जाति किस महापापकी भागिनी होगी।

---

८. हमारा काम प्रयत्न करना है।

शुभचिन्तक महाशयने अपने लेखमें इस बातकी हँसी उड़ाई है - हमपर यह कटाक्ष किया है कि हमें उक्त तीनों प्रयत्नोंमें सफलता नहीं हुई—हमारे तीनों प्रस्ताव समाजने स्वीकार नहीं किये। आपने पहले शायद यह समझ रक्खा होगा कि जैनहितैषीमें कोई लेख प्रकाशित हुआ कि समाज उसे तत्काल ही मस्तक नवाकर स्वीकार कर लेगा। खैर, अच्छा हुआ कि आपका यह भ्रम और भय दूर

होगया। आप लोगोंके सौभाग्यसे इस समय हमारे देशमें–विशेष करके जैनसमाजमें अशिक्षितोंकी संख्या इतनी है–आंखें बन्द करके लोकरूढ़ीकी पूंछ पकड़कर चलनेवाले इतने हैं और उनके मुखिया या पंचायतियोंके शासक ऐसे महाशय हैं जिनको न देशकालका ज्ञान है और न जिनकी संकीर्ण बुद्धिमें सम्मिलित समाजके हितकी वासनाका कभी उदय होता है। अतएव अभी इस प्रकारके भयकी आवश्यकता नहीं। इस समय तो साक्षात् सर्वज्ञ भी आकार यदि उपदेश दें तो उनकी भी कोई न सुनेगा फिर एक छोटेसे नगण्य पत्रकी तो बात ही क्या है? पर समाजकी इस स्थितिसे हम लोग निराश होनेवाले अथवा अपना प्रयत्न छोड़ देनेवाले नहीं है। आजतक जिन जिन महात्माओंने समाजसंशोधनके कार्य किये हैं उन्होंने हमको सिखलाया है कि तुम काम किये जाओ–प्रयत्नसे मुंह मत मोड़ो। कुछ फल होता है या नहीं इस बातका विचार करनेकी तुम्हें आवश्यकता नहीं। यदि तुम सच्चे जीसे प्रयत्न करोगे, तुम्हारा प्रयत्न दूसरोंके हितके लिये होगा, तो उसमें अवश्य सफलता होगी। ये समाजसंशोधनके कार्य हैं भी ऐसे ही कि उनमें सफलता प्राप्त करनेके लिये पचासों वर्ष चाहिए। ये ऐसे कार्य नहीं कि वर्ष छह महीनेमें हो जावें। आज तक संसारमें जितने सुधार हुए हैं वे सब बहुकालव्यापी आन्दोलनके फल हैं। कोई २ सुधारोंमें तो हजारों वर्ष लग गये हैं। पर इससे सुधार करनेवाले कभी निराश नहीं हुए। यह भी आप मत समझ लें कि हमने अभीतक जो कुछ लिखा है, वह सब निष्फल गया। नहीं, यदि हम अपने कई लेखोंसे किसी एक भी पुरुषके विचार अपने अनुकूल कर सके तो हम अपने उन सब लेखोंको सफल समझते हैं। हमारे चार साकोंके प्रस्तावको आपके मुखियोंने

भले ही रद्दीकी टोकरीमें डाल दिया हो; और द्रोणागिरिमें जिन्होंने उसका अनुमोदन किया था उन्हें आप भले ही उठमिल्ला बतलावें, पर यह निश्चय रखिए कि उसे परवारसमाज बहुत जल्दी अपना-यगी। इसे अपनाए बिना अब उसका निर्वाह भी नहीं होसकता। झांसी और पन्नाकी ओर तो इस प्रकारके विवाह होने भी लगे हैं। दूसरे प्रान्तवालोंको भी कभी न कभी यह सुबुद्धि सूझेगी।

---

९. अशान्तिके मिटानेका उपाय।

जैनगजटका सम्पादन आजकल इस खूबीसे हो रहा है जैसा पहले कभी नहीं हुआ था और शायद आगे भी नहीं होगा। यद्यपि उसके आनेरेरी सम्पादक 'सही' करदेनेके सिवा कभी एक अक्षर भी नहीं लिखते हैं तथापि सहकारी सम्पादक स्वनामधन्य बाबू अमो-लकचन्दजी अपने अपूर्व सम्पादनकौशलसे उसे सेठ महासभाका मुखोज्ज्वलकारी पत्र बना रहे हैं! उसके ३८-३९वें अंकमें एक वाचनीय लेख प्रकाशित हुआ है। उसके लेखक कलकत्तेनिवासी कोई एक जैन सज्जन हैं। सहकारी सम्पादक महाशय पहले कलकत्ते-में ही रहते थे। हो सकता है कि किसी कारणसे आपने ही अपना नाम छुपाकर उक्त लेख लिखनेकी कृपा की हो। यद्यपि इस लग-भग ढाई पृष्ठव्यापी लेखमें यह समझना बहुत कठिन है कि एक पैरेका दूसरेसे क्या सम्बन्ध है और उसके लिखनेका उद्देश्य क्या है, तथापि बांचनेवाला यह अच्छी तरहसे समझ सकता है कि लेखकने उसमें अपने श्रद्धास्पद और जीवनसर्वस्व सेठ महात्मा-ओंके विचारोंके जो अनुयायी नहीं है उन सबहीका खूब सत्कार किया है और उन्हें कषायग्रसित पुरुषोंके एक दलमें शामिल किया

है। लिखा है कि यह दल समाजकी हरप्रकारकी उन्नतिके साधक कारणोंमें बाधक हो रहा है और समाजमें अशान्ति फैलाकर उसे रसातलमें पहुंचा रहा है। इस सारे लेखका निष्कर्ष यह है कि जैनियोंमें जो अशान्ति फैल रही है उसका प्रधान कारण पं० गोपालदासजीको दी हुई स्याद्वादवारिधि वादिगजकेसरी आदि पदवियां हैं। यह भी बडा अन्याय है कि लोग उनके नामके साथ प्रातःस्मरणीय पण्डितवर्य्य विद्वच्छिरोमणि आदि विशेषण जोड़ने लगे हैं। क्योंकि वे कहींकी परीक्षामें उत्तीर्ण नहीं हैं। अष्टसहस्री, श्लोकवार्तिकादि कोई ग्रन्थ उन्होंने पढ़े नहीं हैं। लोगोंने छोटी छोटी सभाओंमें सिद्ध साधक बनकर उनके पीछे यह पुंछल्ले जोड़ दिये हैं और इन पुंछल्लेरूपी शस्त्रोंका प्रयोजन दक्षिणके भोले सेठोंके समान उत्तरके पंडित सेठोंको जालमें फँसाना है! इत्यादि। हमारी इच्छा उक्त लेखका उत्तर देनेकी नहीं है–हमारे पास इतना स्थान और अवकाश भी नहीं है कि ऐसे लेखोंका उत्तर दिया करें। हम सिर्फ यह कहना चाहते हैं कि जब अशान्तिका यह कारण है, तब क्यों न प्रान्तिकसभाबम्बई और जैनतत्वप्रकाशिनी सभाके प्रस्ताव रद्द कर दिये जावें और महासभा–जो कि सब सभाओंपर स्वामित्वका दावा करती है—क्यों न उक्त पुंछल्लोंको छीन कर यह डुगडुगी पिटवा दे कि आयन्दा कोई भी पुरुष गोपालदासजीके पीछे उक्त पुंछल्ले न लगाया करे; बल्कि उन्हें पण्डितजी भी न लिखा करे। यह तो एक बहुत छोटीसी बात है। यदि इस छोटेसे उपायहीसे सेठोंके कषायरहित दलकी शान्ति हो जाय–उनकी आत्मा शीतल हो जाय—समाज रसातलसे जाता हुआ बच जाय और कषायवान् दल शस्त्ररहित होकर उत्तरके सेठोंको जालमें न फंसा सके

तो फिर इसका अनुमोदन कौन न करेगा ? मेरी समझमें पं० गोपालदासजी भी (कुसूर माफ हो, केवल गोपालदास) इस प्रस्तावको स्वीकार करनेसे इंकार नहीं करेंगे । इंकार करनेका उन्हें कोई हक भी नहीं है । दर असलमें यह उन्हींकी भूल है जो विना कोई परीक्षा दिये पदवियां स्वीकार कर बैठे और कषायरहित दलके इस नवाविष्कृत नियमको तोड़ बैठे कि विना परीक्षा दिये किसीकी बुद्धि या प्रतिभाका विकाश हो ही नहीं सकता है। आजतक जितने विद्वान् हुए हैं वे सब परीक्षाएं देकर ही हुए हैं। पंडितजीको पहले परीक्षा देकर पीछे पदवियां लेनी थीं । जैसा कि सुनते हैं महासभाके मुनीम लाला किरोड़ीमलने पं० पन्नालालजीकी परीक्षा लेकर उन्हें न्यायदिवाकरकी पदवी दी थी ! रही उत्तरके सेठोंको अपने वशमें करनेकी बात। सो यदि पंडितजीको यह अभीष्ट हो, तो इन पदवियोंके झगड़ेमें न फँसकर उत्तरके सेठ लोगोंके विशेष करके सबके अगुए सेठ मेवारामजीके, अनुयायी–उपासक-सेवक-खुशामदा–चापलूस बन जावें । क्योंकि इस अभीष्टके सिद्ध करनेका इससे अच्छा कोई उपाय नहीं। इसी उपायके बलसे आज समाजके अनेक पंडितोंके गहरे हो रहे हैं । पण्डितजी, अब उच्चाटन प्रयोगको छोड़कर वशीकरण मंत्रको काममें लाइए ।

पुस्तक-समालोचन ।

जैनवाग्विलास, सचित्र मासिकपत्र—प्रकाशक, गुलाबसाव बकारामजी रोड़े, वर्धा और सम्पादक, दत्तात्रय भीमाजी रणदिवे । वार्षिक मूल्य दो रुपया । मराठीमें एक अच्छे मासिकपत्रकी बहुत

आवश्यकता थी। हम देखते हैं कि इस आवश्यकताको नवोदित वाग्विलास पूर्ण कर देगा। इसके सम्पादक मराठीके एक अच्छे मार्मिक कवि और लेखक हैं। आपकी इच्छा इसे एक उच्च श्रेणीका साहित्यपत्र बनानेकी है। सहयोगीके इस प्रथम अंकमें प्रसिद्ध चित्र-कार धुरंधरका बनाया हुआ राजा श्रेणिक और रानीका चित्र और तद्विषयक प्रियाराधन नामकी कविता है। विवाह हो जानेके उप-रान्त जब रानी चेलनाको यह ज्ञान हुआ कि राजा श्रेणिक जैन नहीं किन्तु बौद्ध हैं, तब उसे बहुत दुःख और संताप हुआ। जब यह बात श्रेणिकको मालूम हुई, तब वह रानीका संताप दूर करनेके लिये उसके समीप गया और नानाप्रकारके चाटु-कार वचन कहकर तथा अपना आन्तरिक प्रेम प्रगट करके उसे मनाने लगा। चित्रमें रानी उदास अवस्थामें खड़ी है और राजा उसे प्रसन्न करनेका प्रयत्न कर रहा है। कविता बहुत ही सरस और सुन्दर हुई है। दूसरा लेख 'जैनसमाजाचे ध्येय' शीर्षक है जिसका हिन्दी अनुवाद अन्यत्र प्रकाशित किया जाता है। तीसरे ले-खमें आचार्य पूज्यपादका संक्षिप्त परिचय दिया गया है, जिसमें कई बातें नई और जानने योग्य हैं। इसके सिवा मनुष्य जन्माचें सार्थक, चुटकिले तथा भक्तामरस्तोत्रकथाहार आदि और भी कई साधारण श्रेणीके लेख हैं। जैनसमाजको चाहिए कि वह इस पत्रको आश्रय देकर प्रकाशक महाशयका उत्साह बढ़ावे। पत्रका मूल्य दो रुपया कुछ अधिक मालूम होता है।

सार्वधर्म—स्या० वा० पं० गोपालदासजीके हिन्दी सार्वधर्मका यह मराठी अनुवाद है। अनुवादक हैं सेठ जीवराज गोतमचन्दजी दोसी शोलापुर और प्रकाशक है दक्षिणमहाराष्ट्र जैनसभा। अनुवाद

अच्छा हुआ है। मूल्य ९६ पृष्ठकी पुस्तकका एक आना। विना मूल्य बांटनेके लिये पांच रुपया सकड़ा।

सामायिक पाठ–अनुवादक, रावजी नेमिचन्द शहा शोलापुर और प्रकाशक श्रीयुत सखाराम फूलचन्द। मूल्य दो आना। इस पुस्तकमें दो संस्कृत सामायिक पाठ जिनमें एक अमितगतिसूरिका और दूसरा किसी अज्ञातनामा विद्वानका है तथा एक भाषा सामायिक पाठ पं० महाचन्द्रजीका इस तरह तीन पाठोंका संग्रह और उनका मराठी अर्थ भी दिया है। प्रारंभमें सामायिककी विधि भी दी है।

समाधिशतक–भाषान्तरकार रावजी नेमिचन्द शहा, शोलापुर और प्रकाशक दलूचन्द प्रभुचंद फडिया, आकलूज। मूल्य छह आना। इसमें पहले पूज्यपादस्वामीकृत समाधिशतक मूल, फिर पंडित प्रभाचन्द्रकृत संस्कृत टीका और अन्तमें मराठी टीका दी गई है। मराठी टीका सुपाठ्य और सरलतासे समझने योग्य हुई है। जितने श्लोकोंकी टीका हमने पढ़ी उसमें कोई दोष नजर नहीं आया। प्रारंभमें पूज्यपादस्वामीका ऐतिहासिक परिचय दिया गया है। यह ग्रन्थ बड़े महत्त्वका है। प्रत्येक जैनीको इसका स्वाध्याय करके शान्तिलाभ करना चाहिए। ग्रन्थकी छपाई बहुत अच्छी हुई है।

जैनगद्यावली–प्रथम द्वितीय और तृतीय चतुर्थखंड–प्रकाशक और लेखक वाडीलाल मोतीलाल शाह अहमदाबाद। मूल्य चारों भागका एक रुपया। अहमदाबादसे जो जैन समाचार नामका गुजराती साप्ताहिक पत्र निकलता था, यह गद्यावली उसीके चुने हुए गद्यलेखोंका संग्रह है। इसके लेखक बड़े ही उदारचरित और निष्पक्ष निर्भीक लेखक हैं। हम इन लेखोंको बांचकर बहुत ही प्रसन्न हुए। जैनियोंकी गिरी हुई धार्मिक और सामाजिक दशाका इन

लेखोंमें बड़ा ही हृदयग्राही और वास्तविक चित्र खींचा गया है। सीमन्धरस्वामीके नामके जो ग्यारह खुले पत्र लिखे गये हैं, उन्हें पढ़कर तो चित्त गद्गद हो जाता है। जैनसाहित्यमें वह बिलकुल नये ढंगकी रचना है। यद्यपि गद्यावलीके लेख प्राय ढूंढिया सम्प्रदायको लक्ष्य करके लिखे गये हैं, क्योंकि इसके लेखक ढूंढिया हैं तो भी वे तीनों सम्प्रदायवालोंके लिये उपकारी हैं। हम सिफारिश करते हैं कि, जो भाई गुजराती जानते हों, वे गद्यावलीको मँगाकर अवश्य ही पढ़ें!

नयकर्णिका—श्वेताम्बर सम्प्रदायमें विक्रमकी अठारहवीं सदीके प्रारम्भमें विनयविजय उपाध्याय नामके एक विद्वान् हुए हैं। उन्होंने संस्कृत और गुजरातीमें अनेक ग्रन्थोंकी रचना की है। यह नयकर्णिका उन्हींकी कृति है। इसमें कुल २३ श्लोक हैं जिनमें सप्तभंगी नयका बहुत ही संक्षेप स्वरूप बतलाया गया है। इस पुस्तकका सम्पादन प्रसिद्ध वक्ता पं० लालन और श्रीयुत मोहनलाल दलीचन्द देसाई बी. ए. एल. एल. बी. इन दो विद्वानोंने बहुत बड़े परिश्रमसे किया है। यह सम्पादन बिलकुल उसी ढंगका हुआ है जैसा कि यूरोपियन विद्वान् किसी महत्वपूर्ण ग्रन्थका करते हैं। प्रारंभके ३१ पृष्ठोंमें अनेकान्त फिलासोफीका अभिप्राय और उसका स्वरूप बतलाया गया है। आगे लगभग ३२ पृष्ठोंमें विनयविजयजीका चरित और उनके ग्रन्थका परिचय दिया है। इसके पश्चात् २१ पृष्ठोंमें मूल ग्रन्थके प्रत्येक श्लोकका स्वतंत्र रीतिसे स्फुट विवेचन किया है। और अन्तके आठ पृष्ठोंमें मूल ग्रन्थ गुजराती अनुवादसहित दिया है। सबके पीछे विस्तृत विषयानुक्रमणिका दी है। पुस्तक अच्छी बनी है इसमें सन्देह नहीं; किन्तु हमारी

समझमें यदि सम्पादक महाशय इसकी अपेक्षा नयोंका स्वरूप समझानेके लिये एक स्वतंत्र ग्रन्थ लिखते तो अच्छा होता। पुस्तक मिलनेका पता—मेघजी हीरजी एन्ड कम्पनी, पायधूनी, बम्बई। मूल्य छह आना।

प्रश्नपत्र—जैनशिक्षाप्रचारकसमिति जयपुरकी जनवरी सन् १९१२ की बालिका, बाल, मध्यम, और प्रवेशिकापरीक्षाके ये प्रश्नपत्र हैं। इनके अवलोकनसे समितिके शिक्षाक्रमकी उत्तमताका ज्ञान होता है। प्रश्नप्रत्र बहुत ही योग्यतापूर्वक लिखे गये हैं। उन्हें पढ़कर दूसरे लोग भी लाभ उठा सकते हैं। मूल्य तीन आना है। जिन्हें चाहिए समितिके परीक्षाविभागके मंत्री बाबू उजागरमलजीसे मंगा लेवें।

नोटः—शेष पुस्तकोंकी समालोचना अगामी अंकोंमें क्रमशः की जायगी। भेजनेवाले सज्जन आकुलित न होवें।

विविधसमाचार.

विद्याप्रेम—अमेरिकाके एक विश्वविद्यालयमें एक ८० वर्षकी बुढ़िया पढती है। सन १९१४ में वह उपाधिपरीक्षा देगी।

नवीन जैन बोर्डिंग—वर्धा (सी. पी.) में २ अक्टूबर को दिगम्बर जैन बोर्डिंग स्कूल खुल गया। लगभग पचीस हजार रुपया चन्दा हुआ है। प्रारंभिक उत्सव खूब धूमधामसे हुआ। मध्यप्रदेशमें जैनियोंका यह दूसरा बोर्डिंग स्कूल है।

सम्पादकका महत्त्व—दूसरे देशोंमें पत्रोंका सम्पादन करना बड़े ही महत्त्वका काम समझा जाता है। इसके लिये बड़े ही योग्य पुरुष रक्खे जाते हैं। लन्दन टाइम्सके सम्पादकका वेतन उतना ही है जितना अंगरेजी साम्राज्यके प्रधान मंत्रीका है। अभी हाल ही लार्ड मिलनरने कहा था—पत्रसम्पादन दुनियाका एक बहुत बड़ा काम है। इससे बड़ा यदि कोई काम हो तो शायद केबिनट मिनिस्टरका ही हो।

विज्ञानसे जलवर्षा—लीजिए, विज्ञानसे वर्षा भी होने लगी। अमेरिकाके मिचगान शहरमें थोड़े दिन पहले कृत्रिम वर्षा करनेकी परीक्षा की गई। जिस समय कोई एक लाख वर्गमील आकाशमें बादलोंका नामोनिशान नहीं था उस समय कोई साढ़े चार हजार टन डिनामाइट उड़ाई गई। बस तत्काल ही चारों ओर घनघोर घटा घिर आई और फिर खासी वर्षा हो गई! विज्ञान न जाने क्या २ आश्चर्य दिखलाएगा।

विचित्र स्त्री—मिल हेलेन केलेन नामकी एक अमेरिकन स्त्री गूंगी बहिरी और अंधी है, तो भी वह बड़ी भारी बुद्धिमती है। अपने दृढ निश्चय और परिश्रमसे उसने इतना पाण्डित्य सम्पादन किया है कि वह वहांकी एक अच्छी लेखिका और ग्रन्थकर्त्री समझी जाती है। इस समय वह एक बड़ी भारी संस्थामें सलाह देनेके कार्यपर नियुक्त की गई है!

पारसी औषधालय—बम्बईके पारसियोंने अपने लिये एक स्वतंत्र हास्पिटल खोला है। इसके लिये उन्होंने लगभग २४ लाख रुपयेका चन्दा किया है।

विमानयात्रा—विलायतमें एक कम्पनी खुली है जो मनुष्योंको वहांसे हिन्दुस्थान तक केवल १२ दिनमें विमानोंके द्वारा पहुचानेका प्रयत्न कर रही है।

पुरातत्त्वोद्धारके लिये दान—बम्बईके सुप्रसिद्ध धनी रतनजी टाटाने प्रतिवर्ष २० हजार रुपयेका दान इसलिए देना स्वीकार किया है कि उससे भारतवर्षके पुरातत्त्वकी मौलिक खोज की जाय। इस दानसे पहले पहल मगध देशकी राजधानी पाटलीपुत्र जिस स्थानपर थी, वह स्थान खोदा जायगा और वहांसे प्राचीन भारतीय सभ्यताके कीर्तिचिन्होंका पता लगाया जायगा। पाटलीपुत्र (पटना) सुप्रसिद्ध महाराज चन्द्रगुप्त, अशोकादि चक्रवर्तियोंके समय उन्नतिके शिखरपर पहुंच रहा था। एक समय वहां दशलाखसे ऊपर मनुष्य रहते थे। टाटा महाशय इस दानके लिये भारतवासीमात्रके कृतज्ञता-भाजन हैं।

विदेशयात्राका विरोध—कलकत्तेके मारवाड़ी युवक बाबू कालीप्रसाद खेताननें उच्चश्रेणीकी शिक्षा पाई है। वे अब बैरिस्टरीकी शिक्षा पानेके लिये विलायतको रवाना हो रहे हैं। मारवाड़ी समाज इसका घोर विरोध कर रहा है। हमारी समझमें तो मारवाड़ी भाइयोंको चाहिए था कि उक्त युवकको पहले ही अंगरेजी न पढ़ने देते!

नये कालिज—बीकानेर नरेशने अपनी जुबिलीके उत्सवपर बीकानेरके हाईस्कूलको ‘ डूंगरमेमोरियल कालेज ’ बना देनेकी आज्ञा दी है। एक कालिज

अमरावतीमें खुलनेवाला है। यह स्वर्गीय सम्राट् एडवर्डकी स्मृतिमें खोला जायगा। काशीमें हिबेट क्षत्रिय कालेजकी स्थापना हुई है और उसमें भिनगा-नरेशने एक लाख रुपयेकी सहायता दी है। उधर कलकत्तेके मारवाड़ियोंने मारवाड़ीकालेज खोलनेके लिये ८ लाखका चन्दा किया है! देखते हैं, भारतवासियोंको उच्चश्रेणीकी शिक्षाकी आवश्यकताका बोध होने लगा है।

प्रदीपके प्रकाशमें बाधा—देवबन्दसे ज्योतीप्रसादजीके द्वारा जो 'जैन-प्रदीप' निकनेवाला है, उससे ५००) की जमानत मांगी गई थी। सुनते हैं, इस बाधाको खड़ी करनेमें रत्नमालाके पृष्ठपोषक और सेवकोंने जीजानसे कोशिश की थी। परन्तु प्रदीप शीघ्र निकलेगा। जमानतके रुपये जमा करा दिये गये हैं।

मारवाड़ी विद्यालय—बम्बईमें जो मारवाडी विद्यालय खुलनेवाला था, वह खुल गया। लगभग दो लाखके चन्दा हुआ है।

महाविद्यालयका स्थानपरिवर्तन—जैनगजटमें एक महाशय लिखते हैं-महाविद्यालयको या तो खुर्जा भेज देना चाहिए या फीरोजाबाद! अच्छा है, हमारी समझमें तो जैनियोंकी जितनी संस्थाएं है उन सबके लिये खुर्जा और फीरोजाबादसे कोई अच्छा स्थान नहीं हो सकता। लगे हाथों मथुराके अधिवेशनमें इस विषयका भी प्रस्ताव पास कर डालना चाहिए।

सेठोंकी महासभा—सेठोंकी जैन महासभाका वार्षिक अधिवेशन मथुरामें जम्बूस्वामीके मेलेपर ता० ३० अक्टूबरसे २ नवम्बरतक होनेवाला है।

विद्यार्थियोंकी आवश्यकता—वर्धाके दिगम्बर जैन बोर्डिंगमें भरती करनेके लिये १५ विद्यार्थियोंकी आवश्यकता है। पहली अंग्रेजीसे म्याट्रिक तकमें पढ़नेवाले विद्यार्थियोंको बोर्डिंगके सैक्रेटरी श्रीयुक्त जयचन्द्र श्रावणे, वर्धा (सी. पी.) के पतेसे दरख्वास्त भेजना चाहिये।

आश्रमका वार्षिकोत्सव—श्री ऋषभब्रह्मचर्याश्रम हस्तिनापुरका वार्षिकोत्सव कार्तिक शुक्ला ८ से १४ तक बड़े भारी समारोहके साथ होगा। इसी अवसरपर हस्तिनापुर तीर्थका वार्षिक मेला और बहसूमामें जो कि वहांसे २॥ मील है वेदी प्रतिष्ठाका उत्सव भी होगा।

एक और नया पत्र—इटावाकी जैनतत्त्वप्रकाशिनी सभाकी ओरसे "जैन-तत्त्वप्रकाश' नामका मासिकपत्र आगामी जनवरीसे निकलनेवाला है। उसका डिक्लेरेशन हो चुका है।

Reg. B. No.719.

ॐ

जैनहितैषी ।

जैनियोंके साहित्य, इतिहास, समाज और
धर्मसम्बन्धी लेखोंसे विभूषित

मासिकपत्र ।

सम्पादक और प्रकाशक—श्रीनाथूराम प्रेमी ।

आठवाँ भाग । | आश्विन, श्रीवीर नि० संवत् २४३८ | बारहवां अंक

विषयसूची । पृष्ठ

पत्रव्यवहार करनेका पता—

श्रीजैनग्रन्थरत्नाकरकार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगांव, बम्बई ।

Printed by G N. Kulkarni at his Karnatak Press,
No. 7, Girgaon Back Road, Bombay, for the Proprietors

जैनहितैषीका नया उपहार।

लीजिये, ग्राहक महाशय, दिवाली आ गई। जैनहितैषीका नये वर्षका उपहार तैयार होने लगा। इस वर्षके उपहारके ग्रन्थ बिल-कुल नये और अपूर्व होंगे।

पहला ग्रन्थ।

उपहारका पहला ग्रन्थ **उपमितिभवप्रपंचाकथाका** दूसरा भाग है। जिन लोगोंने विगतवर्षमें इसका पहला भाग पढ़ा है, वे जानते हैं कि यह ग्रन्थ कैसा विलक्षण और जैनसिद्धान्तके गूढ़से गूढ़ रह-स्योंको कितनी सरलताके साथ बतलाता है। इस भागमें जीवके तिर्यञ्चगतिमें परिभ्रमण करनेका बहुत ही हृदयद्रावक और आश्चर्य-जनक वर्णन है। इसके पढ़नेसे मनोरंजनके साथ साथ तिर्यंचगतिका सारे स्वरूपका ज्ञान हो जाता है। उपमितिभवप्रपंचाकथाके समान ग्रन्थ जैनसाहित्यमें बहुत ही थोड़े हैं। विद्वानोंमें इस ग्रन्थका बड़ा आदर है। यह दूसरा भाग छप चुका है। सिर्फ बायडिंग होना बाकी है। हमारा विचार इसे पहले अंकके साथ रवाना कर देनेका है।

दूसरा ग्रन्थ

प्रतिभा -बंगलाके एक सर्वश्रेष्ठ उपन्यासका हिन्दी अनुवाद है। इस उपन्यासमें मनुष्यको कर्मवीर बनानेकी शिक्षा दी गई है। आज तक हिन्दीमें इस श्रेणीका एक भी उपन्यास ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ। कथानिबन्ध बहुत ही मनोहर और कौतूहलवर्द्धक है। लगभग ३०० पृष्ठका ग्रन्थ होगा। सम्पादकके बीमार हो जानेसे इस ग्रन्थके तैयार होनेमें विलम्ब हो गया। अनुवाद प्रारंभ हो गया है। ढाई तीन महीनेमें ग्रन्थ छपकर तैयार होगा।

इस वर्ष भी जैनहितैषीका मूल्य उपहारसहित दो रुपया एक आना होगा।

मैनेजर।

सबसे पहले इसे पढ़िये।

पहले अंकके साथ उपहार रवाना होगा !

उपहारका पहला ग्रन्थ तैयार है; परन्तु दूसरे ग्रन्थके तैयार होनेमें कोई तीन महिनेकी देरी है। इसलिये हम केवल पहला ग्रन्थ पहले अंकके साथ रवाना कर देंगे। हम तो चाहते थे कि इसी ग्रन्थको पूरे दो रुपया एक आनाके वी. पी. से भेजें; परन्तु ग्राहक कुछ अविश्वास न कर बैठें इस खयालसे हम इसे सिर्फ एक रुपया नौ आना १॥⁄) के वी. पी. से भेज देंगे और दूसरा ग्रन्थ ज्यों ही तैयार होगा त्यों ही आठ आनेके वी. पी. से जुदा भेज देंगे। आशा है कि ग्राहक हमारी इस योजनाको पसन्द करेंगे और वी. पी. पहुंचते ही उसे १॥⁄) दे कर छुड़ा लेंगे।

जो सज्जन आगेकी साल ग्राहक न रहना चाहें वे कृपा करके इस नोटिसको पढते ही हमें एक कार्डके जरिये सूचना दे देवें, जिससे हम उनकी सेवामें वी. पी. न भेजें और नाहक डांकखर्चके घाटेमें न पड़ें।

पहला अंक दिसम्बरके भीतर ही भीतर तैयार हो जायगा और पहली जनवरीके लगभग हम वी. पी. जारी कर देंगे।

मैनेजर.

जैनहितैषी।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम्।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम्॥

आठवां भाग] आश्विन, श्रीवीर नि० सं० २४३८ [बारहवां अंक.

जैन लाजिक (न्याय)।

(३)

भद्रबाहु (ईस्वी सन्के ४३३ वर्ष पूर्वसे ३५७ तक)

९. तर्कशास्त्रके कुछ सिद्धान्तोंका दशवैकालिक सूत्रकी जो दशवैकालिकनिरुक्तिके नामसे प्रसिद्ध प्राकृत टीका है उसमें विशदरूपसे विवेचन किया गया है। यह टीका प्राचीन गोत्रके भद्रबाहुकी बनाई हुई है। ४९ वर्ष तक इस महात्माने सांसारिक जीवन व्यतीत किया. १८ वर्ष व्रतपालन करनेमें बिताए और १४ वर्ष तक जैनियोंने उनको युगप्रधान माना। ये श्रुतकेवली थे अर्थात् दृष्टिवादके १४ पूर्वोंके पारंगत थे।

१ विशेषके लिए देखो डाक्टर जे क्लाटकी 'खरतरगच्छ पट्टावली' सितम्बर सन् १८८२ की इंडियन एंटिकुवेरी जिल्द ११ के पृष्ठ २४७ में, वेबरसाहबकी दूसरी किताबके पृष्ठ ८८८ में, पिटरसन साहबकी हस्तलिखित संस्कृत ग्रंथोंकी चौथी रिपोर्टके पृष्ठ १३४ में और डा० हरमन जेकोबी द्वारा सम्पादित कल्पसूत्रकी भूमिका पृष्ठ ११-१५ में।

२. जयसोमसूरिके विचाररत्नसंग्रहमें जिसका पिटरसन साहबने अपनी संस्कृत हस्तलिखित ग्रंथोंकी तीसरी रिपोर्टके पृष्ठ ३०७-३०८ में उल्लेख

१०. उपर्युक्त घटनाएं उक्त टीकाकारके जीवनमें प्रायः सर्वमान्य हैं। हां समयके बारेमें कि वे कब हुए कुछ सन्देह जरूर मालूम होता है। श्वेताम्बरियोंके ग्रन्थोंके अनुसार वे ईस्वी सन्से ४३३ वर्षपूर्वमें पैदा हुए और ३५० वर्षपूर्वमें उनका देहान्त हुआ। किन्तु दिगम्बरियोंका मत है कि दो भद्रबाहु थे। प्रथम तो महावीरस्वामीके निर्वाणसे १६२ वर्ष पीछे तक अर्थात् ईस्वी सन्से ३६५ वर्ष पूर्वतक रहे और द्वितीय[३] भद्रबाहु महावीरस्वामीके निर्वाणसे ५१५ वर्ष पीछे तक अर्थात् ईस्वी सन्से १२ वर्ष पूर्वतक रहे। वे स्पष्टतया नहीं कहते कि इन दोमेंसे कौनसे भद्रबाहु दशवैकालिक निरुक्तिके कर्त्ता थे परन्तु इस बातको मानते हैं कि दूसरे भद्रबाहु वर्तमानके कई जैनग्रन्थोंके कर्त्ता थे। श्वेताम्बरशास्त्र दूसरे भद्रबाहुका कोई भी जिकर नहीं करते हैं; परन्तु ऋषिमंडलप्रकरणवृत्तिमें जो श्वेताम्बरियोंका

किया है, भद्रबाहु युगप्रधान या युगप्रधानोंमें गिने गए हैं। ३. इस पदके सम्बन्धमें विशेष जाननेके लिए आर जी भांडारकरकी १८८३–१८८४ की रिपोर्टके पृष्ठ १२२ को देखो।

१. वेबर साहबकी दूसरी किताबके पृष्ठ १८८ में जिसमें महामहोपाध्याय धर्मसागर गणिकी गुर्वावली सूत्र दिया है इस सम्भूतिविजय और भद्रबाहुके विषयमें 'उभावपि श्रुतपदधरौ' देखने हैं।

२. अपश्चिमः पूर्वभृतां द्वितीयः श्रीभद्रबाहुश्च गुरुर्जिनाय ॥
कृत्वोपसर्गादिहरस्तव यो ररक्ष सङ्घ घरणार्चितांह्रिः ॥ १२ ॥
निर्यूढसिद्धान्तपयोधिराप स्वरयश्चवीरात खनगेन्दुवर्षे ॥ १३ ॥
तयोर्विनेयः कृतविश्वभद्रः श्रीस्थूलभद्रश्च ददातु शर्म्म ॥ १४ ॥
(यशोविजयग्रंथमालामें प्रकाशित मुनिसुन्दरसूरिकी गुर्वावली पृष्ठ ४)

३. अक्टूबर १८९१ और मार्च १८९२ की इंडियन एंटिकुवेरीमें सरस्वतीगच्छकी पट्टावली देखो।

४. सन् १८८३–८४ की डाक्टर आर. जी. भांडारकरकी संस्कृत हस्तलिखित ग्रंथोंकी रिपोर्ट पृष्ठ १३८। यदि भद्रबाहु वास्तवमें उस वराहमिहरके भाई

एक टीका ग्रन्थ है, तथा चतुर्विंशति प्रबन्धमें यह लिखा है कि भद्रबाहु दक्षिणके प्रतिष्ठान नगरमें रहते थे और वराहमिहरके भाई थे। वराहमिहरका होना प्रायः ईस्वी सन्से एक शताब्दी पूर्वमें माना जाता है। अतएव श्वेताम्बरियोंके कथनानुसार भी यह सम्भव है कि दशवैकालिकनिरुक्ति उन भद्रबाहुकी रची हुई है जो जन साधारणके विचारानुसार ईस्वी सन्के प्रारम्भ समयमें हुए।

११ अस्तु, दशवैकालिक निरुक्तिके कर्त्ता कभी हुए हों; परन्तु उन्होंने निम्नलिखित शास्त्रोंकी टीकाएँ (निरुक्तियां) भी लिखी हैं—आवश्यकसूत्र, उत्तराध्ययनसूत्र, आचारांगसूत्र, सूत्रकृतांगसूत्र, दशाश्रुतस्कंधसूत्र, कल्पसूत्र, व्यवहारसूत्र, सूर्यप्रज्ञप्तिसूत्र, ऋषिभाषितसूत्र।

१२ भद्रबाहुने तर्कशास्त्रकी रचनाके अभिप्रायसे अपने ज्ञानको विस्तरित नहीं किया था; किन्तु उनका अभिप्राय जैनधर्मके कुछ सिद्धान्तोंकी सत्यता प्रगट करनेका था। इसके लिए उन्होंने अपनी दशवैकालिक निरुक्तिमें दश अव्यय वाक्योंकी रचना की और इससे यह दिखलाया कि जैनमतके धार्मिक सिद्धान्त इसकी कसोटीपर कैसे ठीक ठीक उतरते है।

थे जो विक्रमादित्यके दरबारके ९ रत्नोंमेंसे थे, तो वे, जरूर छठी शताब्दीमें हुए होंगे। परन्तु मुनि धर्मविजय व इन्द्रविजयका मत है कि भद्रबाहुके भाई वे वराहमिहर नहीं थे जो विक्रमादित्यके दरबारके ९ रत्नोंमेंसे थे।

१. ते उ पइण्ण विभत्ती हेउ विभत्ती विवक्ख पडिसेहो।
दिट्ठंतो आसंका तप्पडिसेहो निगमणं च ॥ १४२ ॥

(दशवैकालिक निरुक्ति पृष्ठ ७४ धनपतसिंहके संरक्षणमें निर्णयसागर प्रेस बम्बई द्वारा प्रकाशित; तथा दशवैकालिक निरुक्तिकी डाक्टर ल्यूमनकी आवृत्ति पृष्ठ ६४९)

·१६ इसका दृष्टान्त इस प्रकार है:—

(१) प्रतिज्ञा—अहिंसा परमोधर्मः अर्थात् अहिंसा परम-धर्म है।

(२) प्रतिज्ञा विभक्ति—जैन शास्त्रोंके अनुसार अहिंसा परम धर्म है।

(३) हेतु—अहिंसा परमधर्म है कारण कि जो हिंसा नहीं करते, वे देवोंके प्रिय होते हैं और उनका आदर सत्कार करना मनुष्योंका धर्म है।

(४) हेतु विभक्ति—जो लोग हिंसा नहीं करते, उनके अतिरिक्त अन्य कोई स्वर्गादि उत्तम स्थानोंमें नहीं रह सकते।

(५) विपक्ष–किन्तु जो लोग जैनशास्त्रोंकी निन्दा करते हैं और हिंसक हैं, वे भी देवताओंके प्रिय कहे जाते हैं और उनका आदर सत्कार करना लोग धर्म समझते हैं और जो बलिदानमें हिंसा करते हैं वे सर्वोत्तम स्थानोंमें निवास करनेवाले कहे जाते हैं। दृष्टान्तके तौरपर मनुष्य अपने ससुरको धर्म समझकर नमस्कार करते हैं चाहे वह जैन शास्त्रोंका निन्दक हो और हिंसक भी हो। इसके अतिरिक्त जो यज्ञादि करते हैं वे देवोंके प्रिय कहे जाते हैं।

(६) विपक्षप्रतिषेध–जो लोग हिंसा करते हैं जो जैन शास्त्रोंमें वर्जनीय है, वे आदर सत्कार पानेके योग्य नहीं हैं और कदापि देवोंके प्रिय नहीं होसकते। जैसे अग्नि

शीतल नहां हो सकती वैसे ही वे भी देवोंके प्रिय नहीं हो सकते और उनका आदर विनय करना धर्म नहीं हो सकता। बुद्ध, कंपिल और दूसरे जो वास्तवमें पूजे जानेके योग्य नहीं हैं उन्होंने अपने आश्चर्यजनक उपदेशों द्वारा प्रतिष्ठा प्राप्त की; किन्तु जैन तीर्थकरोंकी उनके सत्यार्थ-वक्ता होनेके कारण पूजा की जाती है।

(७) दृष्टान्त–अरहंत और साधु लोग भोजन भी अपने हाथोंसे नहीं बनाते हैं। क्योंकि उसके बनानेमें हिंसा होती है। वे गृहस्थोंके यहां आहार लेते हैं।

(८) आशंका–जो भोजन गृहस्थ बनाते हैं वह साधु तथा गृहस्थ दोनोंके लिए ही होता है। इस लिये यदि आग वगैरहमें जीव मर जाएँ तो उस हिंसा और पापके भागी गृहस्थी और मुनि दोनों ही होते हैं अतएव दृष्टान्त ठीक नहीं है।

(९) आशंकाप्रतिषेध–भोजनके लिए मुनि गृहस्थोंके यहां विना किसी प्रकारकी सूचनाके अनियत समयपर जाते हैं। अतएव यह कैसे कहा जासकता है कि गृहस्थोंने साधु मुनियोंके लिये भोजन बनाया था। इस लिए यदि कुछ हिंसा होती है तो साधु उसके भागी नहीं होते।

(१०) निगमन—अतएव अहिंसा परम धर्म है क्योंकि जो हिंसा नहीं करते वे देवोंके प्रिय होते हैं और उनका आदर विनय करना मनुष्योंका धर्म है।

(१४) स्याद्वाद—भद्रबाहु अपनी 'सूत्रकृतांग निरुक्ति' में जैन न्यायके एक दूसरे सिद्धान्त 'स्याद्वाद' अथवा सप्तभंगीनय-का कथन करते हैं।

(१९) स्याद्वादको वे इस तरहसे कहते हैं:--

१ स्यादस्ति, २ स्यान्नास्ति, ३ स्यादस्ति नास्ति, ४ स्याद-वक्तव्य, ५ स्यादस्ति अवक्तव्य, ६ स्यान्नास्ति अवक्तव्य, ७. स्यादस्तिनास्ति अवक्तव्य। (क्रमशः)

दयाचन्द्र गोयलीय, बी. ए.

विनोद--विवेकलहरी

(४)

मेरा मन।

मेरा मन कहां गया? उसे किसने चुरा लिया? जहां वह था वहां तो नहीं है। जहां रक्खा था जब वहां नहीं है, तब अवश्य ही किसीने चोरी की है। सातों पृथिवी खोज डालीं, परन्तु कहीं भी मेरे 'मनचोर' का पता नहीं लगा। ऐसा कौन जबर्दस्त चोर है, जिसने उसको चुराया?

एक मित्र महाशय बोले, जरा रसोईघरमें तो जाकर तलाश करो, शायद वहां तुम्हारा मन पड़ा हो। मैंने सोचा, रसोईघरमें

---

१. आसियसयं किरियाणं अक्किरियाणं च होइ चुलसीति।
अण्णाणिय सत्तट्ठी वेणइयाणं च बत्तीसा॥ २१॥
(सूत्र कृतांगनिरुक्ति, स्कंध १, अध्याय १२, पृष्ठ ४४८, भीमसी माणिक द्वारा सम्पादित तथा निर्णयसागर;प्रेस बम्बई द्वारा मुद्रित)
धनपतसिंह द्वारा बनारसमें प्रकाशित स्थानांगसूत्रके पृष्ठ ३१६ से मिलान करो।

२ कावेल तथा गफ साहब द्वारा अनुवादित सर्वदर्शनसंग्रह पृष्ठ ५५ से मिलान करो। स्याद्वाद अथवा सप्तभंगीनयके पूर्ण विवरणके लिए देखो विमलदासकी बम्बईमें मुद्रित 'सप्तभंगी तरंगिणी'।

मेरे मनका पड़ा रहना कोई आश्चर्यकी बात नहीं। जहां पायसान्न (खीर), पुलाव और हलुवाकी सुगन्धि, क्षुधित पुरुषोंको उन्मत्त करती है और जहांपर बटलोई—समारूढा अन्नपूर्णाकी अवक्तव्य ध्वनि हुआ करती है, अवश्य ही वहांपर मेरा मन पड़ा होगा। जहां शाकराज आलू घृताभिषेक हो चुकनेपर झोलगंगामें स्नान करके मृत्तिकामय, कांस्यमय, काचमय अथवा रजतमय सिंहासनपर विराजमान होते हैं, वहां यदि मेरा मन प्रणत होकर पड़ा हो—भक्तिरसमें सराबोर होकर उस तीर्थस्थानको न छोड़ना चाहता हो, तो कुछ विचित्रताकी बात नहीं। जिस स्थानपर पाचकरूपी विष्णुके द्वारा पूड़ीरूप सुदर्शन चक्र छोड़े जाते हैं, वहां मेरा मन विष्णुभक्त बनकर जा पहुंचता है, अथवा जिस आकाशमें पूड़ी-चन्द्रका उदय होता है, वहां मेरा मन राहु बनकर उसे ग्रास करना चाहता है—और लोग चाहे जिसको कहें, पर मैं तो पूड़ीको ही अखंडमंडलाकार कहता हूं—और जहां मिठाईरूप शालिग्राम विराजमान रहते हैं, मेरा मन वहीं पूजक बनकर उपस्थित हो जाता है। पं० द्वारकादत्तके घरमें जो रामदेई नामकी रसोई करनेवाली थी, देखनेमें यद्यपि वह बहुत ही बदसूरत थी और उमर भी उसकी पचाससे कम नहीं थी तथापि वह भोजन अच्छा बनाती थी और परोसनेमें भी मुक्तहस्ता थी इसलिए मेरा मन उससे प्रेम करनेको तैयार हुआ था। परन्तु रामदेईने अपना सफर जल्दी तय कर डाला इसलिए यह शुभकार्य सम्पादित न हो सका।

मित्र महाशयकी सम्मतिके अनुसार रसोईघरमें मनकी बहुत खोज की; परन्तु वहां कुछ भी पता नहीं चला। मिष्टान्न हलुवा आदि अधिष्ठाता देवताओंसे पूछनेपर उन्होंने भी साफ जवाब दे दिया कि हममेंसे किसीने भी तुम्हारा मन नहीं चुराया।

मित्रने कहा—अच्छा अब एकबार प्रसन्न ग्वालिनीके यहां जाकरके तो तलाश करो। प्रसन्नके साथ मेरा कुछ प्रणय अवश्य है; परन्तु वह प्रणय केवल गव्यरसात्मक है। प्रसन्न देखनेमें मोटी ताजी है। उसके गालोंपर यद्यपि ललाई झलकती है; परन्तु उमर उसकी चालीससे कम नहीं। उसके दांतोंमें मिस्सी, मुखमें हँसी और मस्तकपर एक चमकती हुई छोटीसी टिकली शोभा देती है। जब वह चलती है, तब रसकी हँसीको रास्तेंमे बखेरती जाती है, और उससे मैं अपनी झोली भरता जाता हूं। बस इसीसे लोग मेरी निन्दा करते हैं। जिस तरह पुजारी ब्राह्मणोंके उपद्रवसे बगीचेमें फूल नहीं फूल पाते हैं, उसी तरह निन्दकोंके उपद्रवसे मेरा मुख भी प्रसन्नके सामने विकसित नहीं हो पाता है। नहीं तो गव्यरसका और काव्यरसका खूब ही देनलेन चलता। इससे मैं अपने लिये चाहे दुखी होऊं चाहे नहीं; परन्तु प्रसन्नके लिये अवश्य ही दुखी रहता हूं। क्योंकि प्रसन्न सती साध्वी और पतिव्रता है। परन्तु कठिनाई ऐसी आपड़ी है कि यह बात भी मैं किसीसे मुँह खोलकर नहीं कह सकता हूं। साहस करके एक बार मैंने यह बात कही थी, तो मुहल्लेके एक नष्टबुद्धि लड़केने इसका उलटा ही अर्थ कर डाला था। वह बोला था—प्रसन्न 'है' इसलिए उसे 'सत्' वा 'सती' कहते हैं, वह साधु ग्वालेकी स्त्री है, इसलिये 'साध्वी' है, और विधवावस्थामें भी वह पतिरहित नहीं है इसलिए महती पतिव्रता है। इस विषयमें और अधिक क्या कहूं? जिस अशिष्ट बालकने यह घृणित अर्थ किया था, उसके गालोंपर मैंने चपेटाघात भी किया; किन्तु उससे मेरा कलंक नहीं धुला।

जब लिखनेको बैठा हूं, तब साफ साफ ही क्यों न लिख डालूं?

मालूम होता है, मेरा प्रसन्नपर कुछ अनुराग है। इसके कई कारण हैं—एक तो प्रसन्न जो दूध देती है, वह विना पानीका होता है और दाम भी उसका कम होता है, दूसरे वह कभी कभी मुझे दूध मलाई और मक्खन यों ही विना मूल्य दे जाती है, तीसरे एक दिन उसने मुझसे पूछा था क्योंजी, तुम्हारे यहां ये कागज पत्तरसे क्या रक्खे हैं? मैंने कहा इनमें बहुत अच्छी अच्छी बातें लिखी हैं,–क्या तुम सुनोगी? वह बोली–अच्छा पढ़ो, सुनूंगी। मैंने अपने दफ्तरके कई एक निबन्ध पढ़कर सुनाये। उसने बैठकर सुन लिये। यह गुण क्या छोटा मोटा है? इतने गुणसे कौन लिपि-व्यवसायी व्यक्ति वशीभूत न होगा? प्रसन्नके गुणोंका मैं और कहां-तक वर्णन करूं; उसने मेरा कहनेसे अफीम देवीकी भक्ति करना भी प्रारम्भ कर दी है।

इन्हीं सब गुणोंसे मेरा मन कभी कभी प्रसन्नके घरके चारों ओर चक्कर लगाता है। उसके आसपास ही नहीं, वह उसकी गोशालाके द्वारपर जाकर भी झूंकता है। क्योंकि मेरा जिस प्रकारका अनुराग प्रसन्नके साथ है, उसकी मंगला नामका गायपर भी उसी प्रकारका है। एक दूध मलाई और मक्खनकी आकर है और दूसरी उसकी दान-कर्त्री है। गंगाने विष्णुपदसे जन्म ग्रहण किया था, यह ठीक है; परन्तु लाये थे उसको भगीरथ। मंगला मेरे लिये विष्णुपद और प्रसन्न भगीरथ है, इसलिए मैं दोनोंहीपर बराबर प्रेम करता हूं। प्रसन्न और उसकी गाय दोनों ही सुन्दरी, दोनों ही स्थूलांगी, दोनों ही लावण्यमयी और दोनों ही घटोध्नी हैं। उनमेंसे एक गव्यरस सृजन करती है और दूसरी हास्यरस; और मैं दोनोंहीके निकट विना मूल्य बिक चुका हूं।

किन्तु इस समय तलाश करके देखा, प्रसन्नके घरके आसपास अथवा उसकी गोशालामें भी मेरे मनका पता न चला। तब मेरा मन कहां गया ?

रोते रोते घरसे बाहर निकला। रास्तेमें देखा कि, एक युवती पानीके घड़ेको कांखमें दबाये हुए जा रही है। उसकी वायुके झोकोंसे दोलायमान अलकावली, काली भौंहें और नेत्रोंके अतिशय कृष्णवर्ण चंचल तारे देखकर ऐसा भास हुआ कि, कमलोंके वनमें बहुतसे भ्रमर उड़ रहे हैं। गमन करते समय उसके हिलते हुए अंगोंको देखकर ऐसा बोध हुआ, मानो लावण्यकी नदीमें छोटी २ लहरें उठ रहीं हैं। वह एक एक पद क्या रखती थी, हृदय पंजरकी हड्डियोंको तोड़ती हुई जाती थी। उसे देखकर मैंने समझा, इसीने मेरा मन चुराया है। इस भावनासे मैं उसके पीछे पीछे हो लिया। उसने फिरकर देखा और कुछ रुष्ट होकर पूछा—यह क्या जी ? तुम मेरे साथ क्यों आ रहे हो ?

मैंने कहा—तुमने मेरा मन चुराया है।

युवतीने तत्काल ही मुझे कटूक्तिमें गाली सुनाई। बोली—मैंने तुम्हारे मनकी चोरी तो नहीं की। अलबतह तुम्हारी बहिनने तुम्हारा मन मुझे जाँच करनेके लिये दिया था। परन्तु मैंने तो उसे उसी समय कीमत बतलाकर वापिस कर दिया था। तुम उसीके पास जाकर तलाश करो।

उस दिनसे मैं सीख गया। मनकी खोजमें ऐसी रसिकता करनेका मैंने फिर कभी यत्न नहीं किया और मन ही मन यह समझ लिया कि, इस ससारमें मेरा मन कहीं भी नहीं है। हँसीकी बात नहीं, मैं सच कहता हूं कि

किसी भी वस्तुमें मेरा मन नहीं। शारीरिक सुख स्वच्छन्दतामें मेरा मन नहीं, जो हँसी दिल्लगी मुझे प्यारी थी, उसमें मेरा मन नहीं, मेरी कुछ फटी पुरानी पुस्तकें थीं, उनमें रहा करता था, पर अब उनमें भी मेरा मन नहीं। रहा धनसंग्रह, सो उसमें न कभी पहले था और न अब है। इस तरह किसी भी वस्तुमें मेरा मन नहीं है। तब मेरा मन कहां गया ?

जो लघुचेता हैं अर्थात् जिनका चित्त छोटा है, उनके मनके लिए बन्धन अवश्य चाहिए। नहीं तो उनका मन स्वच्छन्द होकर उड़ जाता है। मैंने आज तक अपने मनको कहीं भी नहीं बाँधा, इसीलिए मैं देखता हूं कि अब मेरा मन किसी भी वस्तुमें नहीं है—न जाने कहां उड़ गया है। मैं ठीक ठीक तो नहीं कह सकता कि इस संसारमें मैं किस लिए आया हूं तो भी ऐसा मालूम होता है कि मैं केवल मनको बँधवानेके लिए आया हूं। मैं जबसे उत्पन्न हुआ हूं तबसे अबतक अपना ही रहा—दूसरेका नहीं हुआ, इसीलिए पृथिवीमें मुझे सुख नहीं। जो लोग स्वभावसे ही सर्वथा आत्मप्रिय हैं, वे भी विवाह करके और संसारी बन करके अपने स्त्रीपुत्रोंको आत्मसमर्पण कर देते हैं और इस कारण सुखी हो जाते हैं। यदि वे ऐसा न करते तो किसी भी प्रकारसे सुखी न हो सकते। मैंने अच्छी तरहसे अनुसन्धान करके देखा है कि दूसरोंके लिए आत्मविसर्जन करनेके सिवा और कोई ऐसा उपाय नहीं जिससे स्थायी सुख मिल सके। धन यश और इंद्रियोंके विषयोंका सुख है सही; परन्तु वह स्थायी नहीं। ये सब वस्तुयें पहली बार जितनी सुखदायक होती हैं, दूसरी बार उतनी नहीं होतीं। तीसरी बार और भी अल्प सुखदायक होती हैं और धीरे धीरे अभ्यास

होजानेसे उनमें कुछ भी सुख नहीं रहता। साथ ही दो दुःखके कारण और भी उत्पन्न हो जाते हैं—एक तो अभ्यस्त वस्तुके सद्भावमें सुख न होकर अभावमें बहुत ही दुःख होता है और दूसरे अपरितोषणी-या आकांक्षाकी वृद्धिसे वेदना होती है। अतएव पृथिवीमें जितनी विषयवस्तुयें हैं, वे सब ही अतृप्तिकर और दुःखमूल हैं। यशकी अनुगामिनी निन्दा है, इन्द्रियसुखोंके अनुगामी रोग हैं, और धनकी अनुगामिनी हानि तथा चिन्ता है। सुन्दर शरीर जरा—ग्रसित हो जाता है, सुनाममें मिथ्या कलंक लग जाता है, धनको स्त्रीका जार भोगता है, और मान तथा प्रतिष्ठा मेघमालाके समान शरत्कालके पीछे अदृश्य हो जाती है। विद्या तृप्ति नहीं देती, उलटी अन्धकारसे और भी गहरे अन्धकारमें पटक देती है। इस संसारकी तत्त्वजिज्ञासाको वह कभी निवारण नहीं कर सकती। क्या आपने कभी किसीसे सुना है कि मैं धन कमाके सुखी या यशस्वी हुआ हूं ? मै शपथ खाके कह सकता हूं कि ऐसी बात आपसे कभी किसीने नहीं कही होगी। धन मानादिकी अकार्यकारिताका—निरर्थकताका इससे अच्छा प्रमाण और क्या हो सकता है ? बड़े भारी आश्चर्यकी बात तो यह है कि ऐसे अकाट्य प्रमाणके होते हुए भी धन मानादिके लिए लोग प्राण देते फिरते हैं। इस बातका विश्वास कि संसारमें धनमानादि ही सारभूत है माताके दूधके साथ ही बच्चोंके हृदयमें प्रवेश कर जाता है। बच्चा देखता है कि पिता माता, भाई बहिन, अड़ोसी पड़ौसी, नौकर चाकर, शत्रु मित्र, आदि सब ही रातदिन हाय धन, हाय यश, हाय मान किया करते हैं। इस लिए वह भी मुंह बोलना सीखनेके पहले ही उसी मार्गपर चलना सीख लेता है। न जाने यह मनुष्यसमाज शास्वत

सुखके उपायका अनुसन्धान कब करेगा ? जितने विद्वान्, बुद्धिमान दार्शनिक, और संसारतत्त्वज्ञताकी डीग हांकनेवाले हैं वे सब मिल करके देखें कि पराए सुखोंकी बढ़वारी करनेके सिवा मनुष्यके सुखका और कोई उपाय है या नहीं ? मै मरकर भस्म हो जाऊंगा मेरा नामतक लुप्त हो जायगा; परन्तु मैं मुक्तकंठसे कहता हूं कि एक न एक दिन लोग मेरी बातको अवश्य समझेंगे कि मनुष्यके स्थायी सुखका इसके सिवा और कोई उपाय नहीं। इस समय जिस तरह लोग पागल होकर धनमानादिके पीछे दौड़ रहे है, एक दिन उसी तरह दूसरोंके सुख-के लिए भी दौड़ेंगे। मैं मरकर धूलमें भले ही मिल जाऊं; परन्तु मेरी यह आशा एक दिन सफल अवश्य होगी। वह कब सफल होगी ? अफसोस कि आज इसका कोई निश्चित उत्तर देनेवाला नहीं।

बात बहुत पुरानी है। लगभग ढाई हजार वर्ष पहले महात्मा महावीर और शाक्यसिंह इस बातको बीसों प्रकारसे समझा गए हैं। उनके पीछे और भी सैकड़ों हजारों महात्माओंने सैकड़ों हजार बार यह शिक्षा दी है। परन्तु लोग किसीसे भी न सीखे—किसी भी तरहसे वे अपने सामनेसे इस धन अभिमानके इन्द्रजालको न हटा सके। अब हमारे देशमें अंगरेजी शासन प्रतिष्ठित हुआ है। इसके प्रारंभहीसे इस विषयमें बड़ा भारी गोलमाल मच गया है। अंगरेजी शासन, अंगरेजी सभ्यता, और अंगरेजी शिक्षाके साथ साथ बाह्य-सम्पत्तिके अनुरागका भी हमारे यहां शुभागमन हुआ है। अंगरेज जातिको बाह्यसम्पत्तिसे बहुत ही प्रेम है। यह प्रेम ही अंगरेजी सभ्यताका प्रधान चिह्न है। जबसे यह जाति यहां आई तबहीसे इस देशकी बाह्यसम्पत्तिने महत्त्वका रूप धारण कर लिया है। हम भी उसका (अंगरेज जातिका) अनुसरण करके और सब कुछ भूलते

जाते हैं। अब भारतवर्षमें सिन्धुसे ब्रह्मपुत्र तक केवल बाह्यसम्पत्तिकी पूजाकी धूम मच रही है। देखो, वाणिज्य-विस्तार कितनी तेजीसे हो रहा है? देखते नहीं हो, रेलके जालसे आर्यभूमि कैसी उलझाई जा रही है? जानते हो, टेलीग्राम टेलीफोन बेतारके तार आदि कैसी अनोखी वस्तुयें हैं? परन्तु कमलाकान्त पूछता है कि तुम्हारे इस रेलजालसे और टेलीग्राम आदिसे क्या मेरा मानसिक सुख बढ़ जायगा? ये चीजें क्या मेरे खोये हुए मनको खोजकरके ला देंगीं? किसीके मनकी आगको बुझा देंगीं? जो कृपण धनकी प्याससे मर रहा है उसकी प्यास बुझा देंगीं? अपमानितका अपमान लौटा देंगीं? रूपोन्मत्तकी गोदमें रूपवती ललनाको लाकर बिठा सकेंगीं? यदि नहीं, तो तुम अपने रेलजाल टेलीग्राफ आदिको उखाड़कर पानीमें फेंक दो—कमलाकान्त शर्माकी समझमें ऐसा करनेसे कोई हानि नहीं होगी।

अंगरेजी या हिन्दीके संवादपत्र, सामयिकपत्र, लेक्चर, डिवेट आदि जो कुछ हम पढ़ते या सुनते हैं, उनमें इस बाह्यसम्पत्तिके सिवा और किसी भी विषयकी कोई चर्चा ही नहीं रहती। हर हर बम् बम्! बाह्यसम्पत्तिकी पूजा करो। हर हर बम् बम्! रुपयोंकी राशिपर रुपये चढ़ाओ। टका भक्ति, टका मुक्ति, टका तुति, टका गति, टका धर्म, टका अर्थ, टका काम और टका मोक्ष। खबरदार उस मार्गपर मत चलना जिससे देशका धन कम हो; परन्तु देशका धन बढ़ानेके मार्गपर आंख बन्द करके चले जाओ! हर हर बम् बम्! धनको बढ़ाओ, धनको बढ़ाओ। रेल औरताररूपी मन्दिरके धनमहादेवको प्रणाम करो। वही काम करो, जिससे धन बढ़े। शून्य आकाशसे धनकी वर्षा होने दो। रुपयोंकी झनझनाटसे भारतवर्षको पूर दो। रुपयोंके सिवा मन और क्या वस्तु है? रुपयोंके सिवा

हमारा कोई मन नहीं। हमारा मन तो टकसालमें ढाला जाता है। रुपया ही बाह्यसम्पत्ति है। हर हर बम् बम्! इसी बाह्यसम्पत्तिकी पूजा करो। इस पूजा या यज्ञके ताम्रश्मश्रुधारी अंगरेज पुरोहित हैं, एडमस्मिथ पुराण और मिल तन्त्रमेंसे इस पूजाके मन्त्र पढ़े जाते हैं। इस महोत्सवमें अंगरेजी संवादपत्र ढोल और हिन्दी संवादपत्र झलरी बजाते हैं, शिक्षा और उत्साहका नैवेद्य चढ़ाया जाता है और हृद-यरूपी बकरेका बलि दिया जाता है। इस पूजाका फल जानते हो क्या है? इस लोक और परलोकमें अनन्त नरक! तब आओ, हम सब मिलकर बाह्यसम्पत्तिकी पूजा करें। आओ, वंचनारूपी बिल्वदलको यशोगंगाके जलसे धोकर, और उसपर मिष्टवाणीरूपी चन्दन छिड़ककर इस महादेवकी पूजा करें। बोलो भाई, हर हर बम् बम्! हम बाह्य-सम्पत्तिकी पूजा करते हैं। बजाओ भाई ढोल, ढम ढम ढम! बजाओ भाई झलरी, टन् टन् टन्! आइए पुरोहित महाशय, पढ़िए मन्त्र और डालिए हमारे इस बहुत कालके पुराने घृतको स्वाहा स्वधा बोलकर अग्निमें। कहां गये यूटीलिटेरियन महाशय! बकरा उछल-कूद मचा रहा है; एक बार बाबा पंचानन्दका नाम लेकर इसे एक ही हाथमें क्यों साफ नहीं कर डालते? हर हर बम् बम्! कमलाकान्त खड़ा है, इसे थोड़ासा प्रसाद देकर तुम स्वच्छन्दतासे पूजा करो।

पूजा करनेमें कोई हानि नहीं, शौकसे करो; परन्तु मैं जो दो चार बातें जानना चाहता हूं उन्हें तो समझा दो। तुम्हारी इस बाह्य-सम्पत्तिसे कितने पुरुष बुरेसे भले हुए है? कितने अशिष्ट शिष्ट हुए ह? कितने अधर्मी धर्मात्मा बने हैं? और कितने अपवित्र पवित्र हुए हैं? मेरी समझमें तो एक भी नहीं। और यदि ऐसा है, तो तुम्हारी यह सम्पात्ति मुझे नही चाहिए। मैं हुक्म देता हूं कि इसे भारतवर्षसे उठाकर फेंक दो।

तुम्हारा मतलब मैं समझे बैठा हूं। तुम चाहते हो कि उदर नामका जो बड़ा मारी गड्ढा है, वह प्रतिदिन खूब भरा जावे। मैं कहता हूं, यह अच्छी बात है; परन्तु इसके लिए इतनी धूम धामकी जरूरत नहीं। इस गड्ढेको भरनेके लिए तुम सब इतने व्यस्त रहते हो कि उसके आगे और सब बातोंको भूल गये हो। मेरी समझमें यदि इस गड्ढेका एक कोना खाली भी रहे तो हर्ज नहीं; परन्तु चित्तको इसके सिवा दूसरी ओर अवश्य लगाना चाहिए। गड्ढेको भरना दूसरी बात है और मनका सुख दूसरी बात है। मानसिक सुख उससे कुछ भिन्न ही वस्तु है। उसकी वृद्धिका क्या कोई उपाय नहीं हो सकता? जब तुम इतना प्रयत्न करते हो तब क्या मनुष्य मनुष्यमें प्रेम बढ़ानेके लिए कोई प्रयत्न नहीं कर सकते? थोड़ीसी अकल लड़ाकर देखो, नहीं तो याद रक्खो सब कुछ धूलमें मिल जाएगा।

मैं हमेशासे केवल अपने गड्ढेहीको भर रहा हूं। दूसरोंके लिए मैंने एक दिन भी कभी चिन्ता नहीं की। इसी लिए मैं सब कुछ खोके बैठा हूं। संसारमें मुझे सुख नहीं और पृथिवीमें मेरे रहनेका कोई प्रयोजन नहीं। दूसरेका बोझा अपने सिरपर क्यों लूं, यह सोचकर मैं संसारी नहीं बना था। उसका फल यह हुआ कि अब कहीं भी मेरा मन नहीं है—मेरा मन लापता है। हाय! मैं सुखी नहीं हुआ। होता कैसे? जब मैं दूसरोंके किसी काममें ही नहीं आया, तब सुखपर मेरा अधिकार ही क्या है?

परन्तु इससे तुम यह न समझ लेना कि हमने विवाह कर लिया है, इसलिए हम सुखी हो गए हैं और हम सुखके अधिकारी हैं। यदि

पारिवारिक स्नेहके प्रभावसे तुम्हारी आत्मप्रियता लुप्त नहीं हुई, यदि विवाह बन्धनसे तुम्हारा चित्त मार्जित नहीं हुआ और यदि अपने परिवारपर प्रेम करके तुम मनुष्यजातिपर प्रेम करना नहीं सीखे तो, तुमने व्यर्थ ही विवाह किया; केवल एक झगड़ा मोल ले लिया। इन्द्रियोंकी परितृप्ति अथवा पुत्रमुख निरीक्षणके लिए विवाह नहीं है। यदि विवाह-संस्कारसे मनुष्यचरित्रका उत्कर्ष नहीं हो सकता, तो उसे निरर्थक ही समझना चाहिए। इन्द्रियां अभ्यासकी वशवर्तिनी हैं। अभ्याससे वे सब शान्त रह सकती हैं। बल्कि मैं तो यहां तक कहता हूं कि मनुष्यजाति अपनी इन्द्रियोंको वशीभूत करके पृथिवीसे लुप्त भले ही हो जाय; परन्तु जिस विवाहसे प्रेमशिक्षा नहीं हो, उस विवाहकी अवश्यकता नहीं।

अन्तमें सब लोगोंसे कमलाकान्त हाथ जोड़कर पूछता है कि क्या आपमेंसे कोई सज्जन कमलाकान्तका विवाह कर देनेका प्रयत्न कर सकते हैं ?

श्रीकमलाकान्त शर्मा।

जीवदया।

प्रिय दयाशय महोदयवर, यह सभा प्रार्थना करती है कि सब सज्जन महाशय निम्नलिखित उद्देश्योंको याद रक्खें, और इनको वर्तावमें लावें:—

(१) किसी जीवकी छोटा हो, या बड़ा हो हिंसा न करो, क्यों कि सबको हमारी तुम्हारी तरह अपने अपने प्राण प्यारे हैं और सर्व जीवों (मनुष्यों व जानवरों) पर दयाभाव रक्खो।

(२) सर्व जीवोंको अपने प्यारे समझो। यदि तुम किसीको प्यार नहीं कर सकते हो, तो उससे घृणा भी मत करो। यदि घृणा करोगे तो तुम्हारा अत्यन्त शुद्ध चित्त भी गंदला हो जायगा।

(३) सर्व दुखी दरिद्री मनुष्योंको दयाभावसे भोजन, वस्त्र औषधी आदिका बराबर दान दो, और ऐसे ही बेजबान जानवरोंको भी यथायोग्य दान देकरसंतोषित करो। क्योंकि ये भी हमारे तुम्हारे समान जीवधारी हैं।

(४) गरीब बेजबान जानवरोंकी तरफ दयाभावके साथ अपना व्यवहार करो। क्योंकि वे अपना दुःख वचनसे स्वयं नहीं कह सकते हैं।

(५) जगतके महान् और सर्व हितकारी, पवित्र आत्माओंका विनीत भावसे सम्मान करो।

(६) दिनके उजालेमें भोजन करो। क्योंकि रात्रिमें भोजन करनेसे बहुतसे छोटे २ जीव भोजनमें आजाते हैं, जिससे हिंसा होती है और फिर उस भोजनके करनेसे बहुतसे रोग भी पैदा हो जाते हैं।

(७) हमेशा साफ और शुद्ध मोटे कपड़ेसे छानकर पानी पियो। क्योंकि जलमें बहुतसे छोटे छोटे जीव होते हैं। उनपर भी दयाँ करना चाहिए।

(८) मांस, मछली, परन्द, और अण्डे, आदि सब प्रकारके मांसाहारका त्याग करो। क्योंकि इससे जीवहिंसा होनेके साथ साथ सैकड़ों रोग भी शरीरमें उत्पन्न हो जाते हैं, और तन्दुरुस्ती बिगड़ जाती है। इस बातको बड़े २ डाक्टर विद्वानोंने स्वीकार किया है।

(९) दूध, घृत, मिष्टान्न, मेवा, फलादिक फलाहारको ग्रहण करो, इससे शरीर नीरोग रहता है, और ताकत बढ़ती है।

(१०) शराब, अफीम, तम्बाकू, सिगरेट, और अन्य नशीली चीजोंको बिलकुल वर्तावमें न लाओ। क्योंकि इससे शरीर बिगड़ जाता है और फिजूल-खर्ची होती है।

जीवदयाप्रचारक-जैनसभा, फिरोजपुर केम्प। } अमोलकचन्द्र, असि० सैक्रेटरी।

तारन-पन्थ

(२)

[सातवें अङ्कसे आगे.]

अब हम इस बातका विचार करना चाहते हैं कि तारनपन्थके स्थापित होनेकी क्या अवश्यकता थी? तारनस्वामीने उसे क्यों स्थापित किया?

हम अपने 'भट्टारकमीमांसा' नामक लेखमें बतला चुके हैं कि प्रायः प्रत्येक धर्म और पन्थको समयकी परिस्थिति उत्पन्न करती है। जिस समय जिस बातकी आवश्यकता होती है, यदि उस समय उस आवश्यकताका अनुभवन करनेवाले थोड़े बहुत पुरुष उत्पन्न हो जाते हैं और प्रत्येक देश तथा प्रत्येक युगमें ऐसे पुरुष बहुधा उत्पन्न हुआ ही करते हैं; तो उनमेंसे कोई न कोई महात्मा उस आवश्यकताकी पूर्ति करनेका उद्योग करता है और यदि वह उद्योग पूरी शक्ति तथा पूरे अध्यवसायके साथ किया जाता है, तो उसके फलस्वरूप नये विचार सिद्धान्त या मतका प्रादुर्भाव होता है। भगवान् महावीर, बुद्धदेव, कबीर, नानक आदि जितने मतप्रवर्तक या मतोंके पुनरुज्जीवक हुए हैं विचार करनेसे मालूम होता है कि प्रायः वे सब ही अपने अपने समयकी आवश्यकता

ओंकी पूर्ति करनेके लिए हुए हैं। इतिहासका अध्ययन हमको बतलाता है कि उनके और और विचार चाहे जैसे रहे हों; परन्तु अपने समयकी किसी न किसी एक आवश्यकताकी पूर्ति उन्होंने जरूर ही की है।

तारनस्वामीके समयके इतिहासपर दृष्टि डालनेसे मालूम होता है कि अन्य पन्थप्रवर्तकोंके समान उन्होंने भी अपने पंथकी स्थापना एक विशेष आवश्यकताकी पूर्तिके लिए की थी। जैनियोंका वह समय–जब कि तारनस्वामी हुए हैं–कहता था कि हमको तारनस्वामीकी आवश्यकता है। समयकी यह मांग जैनियोंके दोनों सम्प्रदायोंसे थी। आश्चर्यका विषय है–कि इस मांगको दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायोंने लगभग एक ही साथ पूरी कर दी। उधर गुजरातमें तो लोंकाशाह नामके पुरुषने जन्म लिया और उसके थोड़े ही समय पीछे[1] इधर दिगम्बरियोंमें तारनस्वामीका प्रादुर्भाव हुआ। लोंकाशाहने अपने समयकी आवश्यताको ढूंढिया पन्थकी नींव डालकर पूरी की और तारनस्वामीने तारनपन्थका उपदेश देकर पूरी की। इसी समय एक और महात्माका भी जन्म हुआ जिसने कि श्वेताम्बरियोंके संवेगी सम्प्रदायकी जड़ जमाई और इसने भी उक्त आवश्यकताकी ही पूर्ति की; परन्तु उक्त दोनों पुरुषोंसे इसके उद्योगका मार्ग भिन्न प्रकारका था। जब हम देखते हैं कि इन तीनों ही पुरुषोंका अविर्भाव लगभग एक ही समयमें हुआ, तब इतिहासके इस अपूर्व समयैक्यपर हमें आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता और इस

---

१ ढूंढिया पन्थकी स्थापना विक्रम संवत् १५०८ में मानी जाती है। तारनस्वामीका जन्म संवत् १५०५ में हुआ था, और छदमस्तवाणी नामक पुस्तकके लेखानुसार ५८ वर्षकी अवस्थामें उन्होंने अपने मतका उपदेश देना प्रारंभ किया था, इस लिए १५६३ के लगभग तारनपंथकी स्थापना हुई होगी

बातका एक प्रकारसे निश्चय करना पड़ता है कि इन तीनों ही पन्थोंको प्रायः एक ही प्रकारकी आवश्यकताने उत्पन्न किया है।

वीतराग मार्गके प्रवर्तक जैनमुनियोंमें शिथिलाचार और प्रवृत्ति-प्रेमका प्रवेश कबसे हुआ, इस बातकी आलोचना हम 'भट्टारक मीमांसा' नामक लेखमें विस्तारके साथ कर चुके हैं, इसलिए उसे यहां फिरसे दोहराना नहीं चाहते; केवल इतना ही कह देना यथेष्ट समझते हैं कि यद्यपि विक्रमके सोलहवें शतकसे कई सौ वर्ष पहलेसे दिगम्बर–साधुओंमें शिथिलाचारकी मात्रा बढ़ रही थी; तथापि तब तक उसकी ओर लक्ष्य देनेवाले किसी समर्थ पुरुषका जन्म नहीं हुआ था। परन्तु सोलहवीं शताब्दीके प्रारंभमें जब यह शिथिलाचारता सीमाका भी उल्लंघन कर गई–भट्टारक रूपधारी जैनमुनि जब जैनधर्मकी प्राणभूता वीतरागताका ही मूलोच्छेदन करनेमें तत्पर दिखलाई देने लगे, तब दिगम्बर सम्प्रदायमें ऐसे अनेक पुरुषोंका जन्म हुआ जिन्हें वीतरागमार्गकी यह दुर्दशा सहन न हुई और जिन्होंने उक्त दुर्दशाको दूर करनेकी आवश्यकताका अनुभवन किया। तारनस्वामी उन्हीं पुरुषोंमेंसे एक थे।

उक्त अनेक पुरुषोंमें तारनस्वामीके सिवा और कौन कौन थे? इस प्रश्नके उत्तरमें यद्यपि हम उन पुरुषोंके नाम नहीं बतला सकते हैं; तो भी इतना कह सकते हैं कि ये वे ही पुरुष थे जिनके अमित उद्योगसे तेरहपन्थका प्रादुर्भाव हुआ था। यद्यपि ज्ञानप्रबोध नामके ग्रन्थके आधारसे जो कि एक साधारण श्रावकका लिखा हुआ है तेरहपन्थकी उत्पत्ति वि०संवत् १६८३ में बतलाई जाती है, और इस समय हम उसे अमान्य ठहरानेके लिए कोई प्रमाण भी नहीं दे सकते हैं तो भी

और संवेगी सम्प्रदाय भी विक्रमकी सोलहवीं शताब्दीमें प्रचलित हुआ है। इस तरह ये तीनों ही पन्थ सोलहवीं शताब्दीमें स्थापित हुए है।

जब हम सोलहवीं शताब्दीके दिगम्बर सम्प्रदायकी अवस्था, भट्टारकोंकी स्वेच्छाचारिताको रोकनेकी आवश्यकता और श्वेताम्बर धर्ममें तत्सदृश संवेगीपन्थके उदयका विचार करते हैं, तब हमें ऐसा भास होता है कि तेरहपन्थका उदय भी विक्रमकी सोलहवीं शताब्दीके भीतर ही हो चुका होगा और इसीलिए हमने लिखा है कि तारनस्वामीके साथ साथ पूर्वकथित आवश्यकताकी पूर्तिका उद्योग करनेवाले और भी अनेक पुरुषोंका प्रादुर्भाव हुआ था। यह बात दूसरी है कि उनके उद्योगका मार्ग तारनस्वामीके मार्गसे बिलकुल भिन्न था।

उस समय जो दशा दिगम्बर सम्प्रदायके गुरुओंकी थी, वही दशा श्वेताम्बर सम्प्रदायके यतियों या साधुओंकी भी थी। दोनों ही एक दूसरेसे बढ़कर थे। दोनों ही वीतरागमार्गके उद्देश्योंको भूलकर प्रवृत्तिमार्गके गहरे कीचड़में फँसते जाते थे, दोनों ही आत्मकल्याणके साधनभूत जिनमन्दिरों और मठोंको मन्त्र तन्त्र ज्योतिष वैद्यक आदि करामातें दिखलानेवाले अद्भुत–स्थान बनाते जाते थे और दोनों ही अपने उपासकोंको शुभमार्गमें प्रवृत्त करानेकी अपेक्षा अपने वैभव, प्रभाव और सुखकी वृद्धि करनेमें अधिक ध्यान देते दिखलाई देते थे। उस समयके अधिकांश श्रावकोंकी अवस्था भी बहुत ही शोचनीय थी। पापपुण्यके काल्पनिक भय और लोभने उनके हृदयोंको बिलकुल निकम्मा कर दिया था। स्वयं सोचने विचारने या शंका आदि करनेकी शक्ति उनमें प्रायः रही ही नहीं थी। जो गुरुमहाराजने कह दिया उनकी समझमें वही पुण्य और वही पाप था। गुरुओंके चरित्र या विचारोंमें तर्क करनेकी वे आवश्यकता ही नहीं समझते थे। गुरु और शिष्योंकी इस अवस्थाको देखकर उस

समयके विचारशील पुरुषोंके मनमें इस प्रकारकी चिन्ता उठना स्वाभाविक ही है कि यदि कुछ समय तक और भी यही दशा रही तो जैनधर्मके वास्तविक स्वरूपका लोप हो जायगा और सौ दो सौ वर्ष पीछे इन स्वांगधारी साधुओं और श्रावकोंको देखकर इस बातका अनुमान करना भी कठिन हो जायगा कि ये उन्हीं महावीर भगवानके अनुयायी हैं जिनके अमूल्य उपदेश प्राचीन जैनसाहित्यमें शुद्ध स्फटिकके समान चमक रहे हैं।

इस चिन्तामें मग्न होकर लोंकाशाहने सोचा होगा कि इस स्थितिके बदलनेके प्रयत्नमें तब तक सफलता न हो सकेगी जब तक कि उपासकवर्ग इन शिथिलाचारी यतियोंके पंजेसे न छूट जायगा और वह छूटना तब तक कठिन है जबतक जिन मन्दिरोंमें लोग आते जाते हैं। क्यों कि जितने धर्मस्थान हैं, प्रायः वे सब ही यतियोंके अधिकारमें हैं। यदि लोग उनमें आते जाते रहेंगे तो मेरे विरुद्ध प्रयत्नमें सफलता न होगी--भोले लोग यतियोंके ही अनुयायी बने रहेंगे। इसलिए इन जिनमन्दिरोंका और उनमें होनेवाली प्रतिमापूजनका निषेध किये विना मेरे उद्देश्यकी सिद्धि नहीं हो सकेगी। ऐसा मालूम होता है कि जिस तरह आजकल उन प्रान्तोंमें जहां कि भट्टारकोंके शासनकी प्रबलता है क्रियाकाण्डहीकी मुख्यता हो रही है--अभिषेक, पूजन, प्रतिष्ठा, गुरुसेवा आदिहीको लोगोंने मुख्य धर्म मान रक्खा है, इसी प्रकार बल्कि इससे भी अधिक उस समय गुजरात प्रान्तमें बाह्य क्रियाकाण्डकी प्रधानता होगी और शास्त्र-चर्चा पठनपाठनादिके अभावसे लोग जैनधर्मके असली तत्त्वोंको भूलने लगे होंगे, इसलिए भी लोंकाशाहने प्रतिमापूजाको अपने उद्देशकी सिद्धिका अन्तराय समझा होगा।

और यही सब सोच विचार कर उसने प्रतिमापूजाको नहीं माननेवाले ढूंढिया सम्प्रदायका उपदेश करना प्रारंभ किया होगा।

इसमें सन्देह नहीं कि सैकड़ों वर्षोंकी प्रचलित प्रतिमापूजनका निषेध करके लोगोंको अपने अनुयायी बनाना और सो भी उस समयमें जब कि लोगोंमें गतानुगतिकता और अन्धश्रद्धाकी बहुत प्रबलता थी--बहुत ही बड़े पुरुषार्थ और साहसका काम है। तो भी जब हम उस समयके यतिसम्प्रदायकी बढ़ी हुई शिथिलाचारता और स्वार्थपरताका विचार करते हैं, तब हमें लोंकाशाहके उद्देश्यके सहज ही सिद्ध हो जानेमें कुछ आश्चर्य नही मालूम होता। जब उन्होंने इस बातका आन्दोलन किया होगा कि तुम्हारे धर्मस्थान प्रपञ्चस्थल बन गए हैं, गुरु कुगुरु बन गए हैं, तुम्हारी धर्मकी ओटमें प्रवञ्चना की जा रही है, और तुम धर्मके असली स्वरूपको भूल गये हो, तब लोग सहज ही भड़क गये होंगे और उनके अनुयायी बन गये होंगे। क्योंकि उस समय एक तो लोगोंमें धर्मप्रीति बनी थी और दूसरे उनके सामने यतियोंकी असत्प्रवृत्तिके प्रत्यक्ष उदाहरण मौजूद थे।

श्वेताम्बर सम्प्रदायके इतिहाससे मालूम होता है कि लोंकाशाह एक साधारण श्रावक थे। वे शायद ग्रन्थ लिखनेका काम करते थे, इस कारण जैनधर्मके तत्त्वोंसे परिचित हो गये थे और उनका धार्मिक अनुभव भी बढ़ गया था। परन्तु यह कहा जा सकता है कि वे जैनधर्मके पण्डित या मर्मज्ञ नहीं थे। इसमें सन्देह नहीं कि उनका उद्देश्य अच्छा था; परन्तु हमारी समझमें अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिए उन्होंने जो मन्दिर और प्रतिमापूजाका निषेध किया वह अच्छा नहीं किया। क्योंकि मन्दिर और प्रतिमाका निषेध

करनेसे द्रव्यक्रियाका प्रायः अभाव ही हो जाता है–केवल भावक्रिया रह जाती है और केवल भावक्रियाके आधारसे कोई भी सम्प्रदाय चिरस्थायी नहीं रह सकता। यदि वे इस विषयमें संवेगी सम्प्रदायके स्थापकका अथवा तेरहपन्थका अनुकरण करके यतियोंकी शिथिलताका और श्रावकोंकी अन्धश्रद्धाका प्रतिबन्ध करते तो अच्छा होता। परन्तु जो हो गया सो हो गया, अब उसकी चिन्ता करनेसे क्या लाभ?

जब हम देखते हैं कि तारनस्वामीका पन्थ ढूंढियापन्थसे ९०–६० वर्ष पीछे स्थापित हुआ, और दोनोंमें प्रतिमापूजाका निषेध किया गया है तब यह अनुमान करना बिलकुल निराधार न होगा कि तारनस्वामीने लोंकाशाहका ही अनुकरण करके अपने पन्थकी स्थापना की होगी। श्वेताम्बरी यतियोंके समान दिगम्बरी भट्टारकोंकी शिथिलाचारतासे वे भी दुखी हो रहे होंगे और इस चिन्तामें होंगे कि इनके पंजेसे श्रावकोंको किस तरह छुटावें। उसी समय उन्होंने लोंकाशाहके नये सम्प्रदायकी सफलताका सम्वाद पाया होगा और उससे उन्हें अपने उद्देश्यकी सिद्धि उसी मार्गसे करनेका उत्साह हुआ होगा।

ढूंढक और तारनपन्थकी बहुतसी बातें एकसी हैं। जैसे प्रतिमापूजाको न मानना, अपने मूल सम्प्रदायके केवल उन्हीं ग्रन्थोंको मानना जिनमें प्रतिमापूजनका विधान न हो, प्रधान ग्रन्थोंके प्रतिमापूजन सम्बन्धी वाक्योंको प्रतिमापूजकोंके मिलाये हुए बतलाना, मन्दिरोंके बदले उपाश्रय या शास्त्रालय बनवाना, आदि। इन सब बातोंसे हमें अपना यह अनुमान बहुत कुछ सही जाना पड़ता है कि तारनपन्थ ढूंढकपन्थका अनुकरण है।

यह अनुकरण उस दशामें और भी अच्छी तरहसे दिखलाई देता, जब तारनपन्थ ढूंढकपन्थके ही समान विस्तार, प्रगति और पुष्टि लाभ करता। इसमें सन्देह नहीं कि उस अवस्थामें हम उसके साधुओंमें, उनकी चर्यामें, उसके नवीन साहित्यमें और श्रावकोंके आचारविचारमें बहुत कुछ समानता या अनुकरणता देख सकते; परन्तु न तो इस पन्थका विस्तार हुआ, न इसमें साधुओंका सम्प्रदाय चला, न साहित्यकी रचना हुई और न इसके उपासकोंमें ही कोई विद्वान् पुरुष हुए। इसके अनुयायियोंने केवल श्रद्धा, आग्रह या गतानुगतिकाके वशवर्ती होकर किसी तरह इसका अस्तित्व बना रक्खा है; नहीं तो अब इसमें कुछ भी नहीं रहा है।

तारनपन्थने ढूंढकपन्थके समान विस्तारलाभ क्यों नहीं किया? इसके हमको कई कारण मालूम होते हैं। १ एक तो तारनस्वामी विद्वान् नहीं थे। उनके ग्रन्थोंकी रचना देखनेसे जान पड़ता है कि उन्हें संस्कृत प्राकृतका ज्ञान नहीं था और शायद देशभाषामें रचना करनेको वे एक पन्थके प्रवर्तककी योग्यताको कम करनेवाला समझते थे, इसलिए उनकी सारी रचना एक विलक्षण ही प्रकारकी भाषामें हुई है जिसे कोई समझ ही नहीं सकता है। इससे थोड़ेसे भोले लोगोंके सिवाय कोई विद्वान् न तो उनके समक्षमें ही अनुयायी हुए और न पीछे उनकी रचनाको देखकर हुए। और यह निश्चय है कि विना विद्वानोंके अनुयायी हुए किसी भी सम्प्रदायका उत्कर्ष नहीं हो सकता। २ दूसरे ऐसा जान पड़ता है कि तारनस्वामी अपने पन्थका पूरा ढांचा तैयार किये विना ही शायद परलोकवासी होगये थे, इसलिए उनका पन्थ जैसा उनके सामने अधूरा था वैसाका वैसा अब तक भी बना है। उनके पीछे भी उनका कोई अनुयायी ऐसा

न हुआ जो उसे पूरा कर जाता। लोंकाशाह भी कोई बड़े भारी विद्वान् न थे; परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वे अच्छे अनुभवी होंगे। ऐसा मालूम होता है कि अपने अभिप्राय प्रगट करके उन्होंने बहुतसे विद्वानोंको अपने अनुयायी कर लिये थे और उनकी सहायतासे वे अपने समक्ष ही ढूंढकपन्थका पूरा ढांचा तैयार कर गये थे। इसलिए उनका पन्थ व्यवस्थित रीतिसे चल निकला। पर तारनस्वामी यह कुछ न कर सके। उनके पन्थमें वे सब बातें नियमित और व्यवस्थित न होने पाईं जिनकी कि प्रत्येक पन्थकी अवस्थितिके लिए आवश्यकता होती है और इस कारण उसकी उन्नति न होसकी। ३ तीसरे उस समय दिगम्बरियोंमें मुनिमार्ग एक प्रकारसे बन्द हो चुका था। गृहस्थाश्रमको छोड़कर यतिमार्गमें प्रवेश करनेकी पद्धति ही नहीं रही थी। इसलिए तारनस्वामीका मार्ग केवल श्रावकोंहीमें रहा—अपने अनुयायियोंको वे गृहत्यागी साधु नहीं बना सके। इस कारण उनके पीछे कोई उनके मन्तव्योंके अनुसार उपदेश देनेवाले न रहे और उपदेशकोंके अभावसे उनका पन्थ पुष्ट न होसका। इसके विरुद्ध श्वेताम्बर सम्प्रदायमें मुनिमार्ग जारी था, इसलिए लोंकाशाहको यतियों वा मुनियोंमें भी अपने अनुयायी बनानेका मौका मिल गया और फिर उन यति मुनियोंने उपदेशादिके द्वारा ढूंढकपन्थके विचारोंका खूब ही प्रचार किया जिससे उसकी आशातीत उन्नति हो गई।

(क्रमशः)

नोट—जबतक यह लेख पूरा प्रकाशित न हो जाय तबतक कोई महाशय इसपर आक्षेपादि करनेकी कृपा न करें। इसके पहले अंशको पढ़कर जो कि गत सातवें अङ्कमें प्रकाशित हुआ था, बहुतसे तारनपन्थी भाई हमपर बेतरह बिगड़े हैं। कई सज्जनोंने तो हमको धमकियां तक बतलाई है। परन्तु हम

इस तरह डरनेवाले नहीं । हमारा अभिप्राय किसी सम्प्रदाय या समाज विशेषकी निन्दा करनेका नहीं है। हम केवल तारनपन्थका स्वरूप और उसका ऐतिहासिक तथ्य दिखला रहे है। यदि हमारे विचारोंमें कुछ भ्रम हो, तो उसे निवारण करनेका प्रत्येक व्यक्तिको अधिकार है। परन्तु अभी नहीं, जब पूरा लेख प्रकाशित हो जाय तब ।

सम्पादक ।

जैनसमाजके शिक्षित ।

जैनसमाजमें लगभग बीस वर्षसे शिक्षितोंके तैयार करनेका प्रयत्न किया जा रहा है। एक ओरसे सरकारी यूनीवर्सिटियां और दूसरी ओरसे धार्मिक पाठशालायें अंगरेजी और संस्कृतके विद्वान् बना रही हैं। पाश्चात्य शिक्षाके अनुयायी अंगरेजीके और संस्कृत शिक्षाके अनुयायी संस्कृतके पढ़नेवालोंको सहायता और उत्साह दे रहे हैं। अब तक सैकड़ों अंगरेजीके और पचासों संस्कृतके पण्डित तैयार हो चुके हैं और हो रहे हैं। यद्यपि दूसरे समाजोंकी अपेक्षा हमारे समाजके इन विद्वानोंकी संख्या कम है; परन्तु इतनी कम नहीं है कि हमको निराश होना पड़े । वकील, बैरिस्टर, सोलीसिटर, प्रोफेसर, कलेक्टर, तहसीलदार, डाक्टर, इंजीनियर और क्लार्क तथा नैयायिक, वैयाकरण, साहित्यशास्त्री और धर्मशास्त्री आदि सब ही प्रकारके विद्वान् हमारे समाजमें है। शिक्षित पुरुषोंहीपर प्रत्येक समाजकी उन्नति और अवनति अवलम्बित है । अतएव इन शिक्षितोंकी ओर हमारा समाज प्रारंभहीसे आशाकी दृष्टिसे देख रहा है। उसे विश्वास है कि इन लोगोंसे हमारे सारे कष्ट दूर हो जावेंगे और हम बहुत जल्दी उन्नतिके शिखरपर पहुंच जावेंगे।

ास्तवमें देखा जाय तो उनका यह विश्वास असंगत नहीं।
क गिरे पड़े समाजमें इतने शिक्षित तैयार हो जाना कोई मामूली
ात नहीं। अनेक देशों और समाजोंके भाग्य केवल एक एक दो
ो ही शिक्षितोंने पलट दिये हैं। इस प्रकारके उदाहरणोंकी इति-
ासमें कमी नहीं। ऐसी अवस्थामें जैनसमाजका अपने शिक्षि-
ोंकी ओर आशाकी दृष्टिसे देखना स्वाभाविक है। परन्तु हम
खते हैं कि उसकी यह आशा निराशामें परिणत हो रही है।
स समय उसकी वही दशा हो रही है जो अनेक समर्थ पुत्रोंके
ोते हुए भी खानेके लिए मुहताज अभागी पिताकी होती है।
ैनसमाजके ये शिक्षित पुत्र उसकी ओर आंख उठाकर भी नहीं
खते हैं। अपनी अपनी स्वार्थ साधनाके मारे उन्हें इतना अवकाश
ी नहीं कि उसकी कुछ चिन्ता करें। जिससे पूछिए वही कहता
ै क्या किया जाय मुझे तो अपने कामके मारे दम लेनेकी भी फुरसत
ाहीं! जैनसमाजकी यह दशा सचमुच ही बड़ी करुणाजनक है।

हम लोग अकसर धनवानोंको दोष दिया करते हैं कि वे समा-
जकी समयोपयोगी संस्थाओंको सहायता नहीं देते हैं अथवा नई
ई संस्थायें खोलनेका प्रयत्न नहीं करते हैं; और हमारा यह कहना
ाहुत अंशोंमें यथार्थ भी है; परन्तु विचार करके देखा जाय तो
स विषयमें जितना दोष शिक्षितोंका है उतना धनिकोंका नहीं।
्योंकि धनिकोंमें प्रायः शिक्षाका अभाव है। उन्होंने अब तक जो
ुछ सहायता संस्थाओंको दी है, उनकी अज्ञताके विचारसे वही
ाहुत है; परन्तु शिक्षितोंकी ओर तो देखिए कि वे क्या कर रहे हैं।
उन्होंने संस्थाओंको क्या सहायता दी है? जानकारके गलती करने
ौर अजानके गलती करनेमें जमीन आसमानका फर्क है। इस समय

हमारी जितनी संस्थायें हैं उन्हें जाकर देखिए तो आपको मालूम होगा कि उन सबकी इस कारण दुर्दशा हो रही है और वे इस कारण उन्नति नहीं कर सकती हैं कि उन्हें योग्य काम करनेवाले नहीं मिलते। मिलें कहांसे? संस्थाओंके पास अभी इतना तो धन नहीं कि वे इन उच्चश्रेणीके शिक्षितोंको पूरा वेतन देकर रख सकें और शिक्षितोंमें उस शिक्षाका संस्कार नहीं जो विना वेतन लिए अथवा उदरनिर्वाह योग्य वेतन लेकर समाजसेवाके लिए उत्साहित करती है, जो जीवनको अपने गृह–प्राचीरकी सीमाका उल्लङ्घन करके समाज देश या विश्वव्यापी बनाती है और जो हजारों विघ्नोंके उपस्थित होनेपर भी जीवनको दूसरोंके लिए न्योछावर करा देती है। दूसरे शिक्षित देशोंकी बात जाने दीजिए, वहां तो ऐसे हजारों लाखों पुरुषरत्न मौजूद हैं; परन्तु हमारे इस भारतवर्षके ही दूसरे समाजोंको देखिए उनमें कितने परार्थतत्पर पुरुष दिखलाई देते हैं। उनकी संस्थाओंके लिए कितने महात्माओंने अपने जीवनोंको सर्वथा अर्पण-कर दिया है। गुरुकुलके स्थापक महात्मा मुंशीलाल, पूना विधवा-श्रमके स्थापक प्रो० कर्वे, सर्वेंट सुसाइटी आफ इण्डियाके स्थापक आनरेबिल मि० गोखले और उनकी सुसाइटीके बीसों सभ्य, हिन्दू कालेज बनारस दयानन्द कालेज लाहौर और गुरुकुल कांगड़ीके कई प्रोफेसर आदि सब इन्हीं महात्माओंमें हैं। इन महात्माओंका ही यह प्रसाद है जो उक्त संस्थाएँ दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति कर रही हैं।

समाजसेवाके लिए अपना जीवन दे देना अथवा अर्धवेतन या निर्वाह योग्य वेतन लेकर समाजका काम करना तो बहुत बड़ी बात है, हमारे समाजके शिक्षितोंमें इतनी भी उदारता नहीं–इतना भी

उत्साह नहीं कि अपने स्वार्थसाधनके दूसरे काम करते हुए ही थोड़ा बहुत समय समाजसेवाके लिए खर्च किया करें। दूसरे निरर्थक कामोंमें या हँसीमजाकमें भले ही वे अपना बहुमूल्य समय बरबाद कर दें; परन्तु समाजके कामके लिए उन्हें जरा भी अवकाश नहीं। यदि वे चाहें और उन्हें परोपकारके कामोंसे थोडा बहुत प्रेम हो, तो अपने अवकाशके समयमें ही वे बहुत कुछ कर सकते हैं—समाज की बहुत बड़ी जरूरतें उनके द्वारा रफा हो सकती हैं। माननीय पं० मदनमोहन मालवीय, लाला लाजपतरायजी, आदि महाशय अपने अवकाशके वक्तमें ही कितनी देशसेवाका कार्य करते हैं यह किसीसे छुपा नहीं है। यदि उचित रीतिसे व्यय किया जाय तो मनुष्यके जीवनका समय थोड़ा नहीं है। दूसरे सब प्रपंच करके भी वह अपना बहुतसा समय बचा सकता है और उसे चाहे जिस शुभकार्यमें लगा सकता है केवल उसके हृदयमें शुभकार्य करनेका उत्साह होना चाहिए।

क्या पण्डित और क्या बाबू हमारे यहां जितने शिक्षित हैं उनमें-से एक एक दो दो अपवादोंको छोड़कर सब ही रुपया ढालनेकी मशीनें हैं। रुपया बनानेके सिवा वे अपने जीवनका और कुछ कर्तव्य ही नहीं समझते। अपनी प्राप्त की हुई शिक्षाका भी वे शायद इसके सिवा और कोई उपयोग नहीं समझते। बाबू लोग तो अपनी बैरिस्टरी वकीली इंजीनियरी आदिसे चांदी बना रहे हैं और पण्डित रथप्रतिष्ठाओंसे, दक्षिणाओंसे, लक्ष्मीपुत्रोंकी सेवासे और अध्यापकी आदिसे अपनी तृष्णाको शमन कर रहे हैं। बाबू तो ठीक ही हैं, पर इन पण्डितोंकी लीला और भी दूरूह है। इधर तो शास्त्रसभामें निरूपण किया जाता है कि अध्यापन क्रियाकाण्ड आदिसे द्रव्यो-

पार्जन करना शूद्रवृत्ति है और उधर कहते हैं कि प्रतिष्ठा करानेकी दक्षिणा हजार रुपयेसे एक कौड़ी भी कम नहीं ली जायगी, या पांच सौ रुपये लिए विना मैं शास्त्रार्थ करनेको नहीं जाऊंगा। एक शिक्षा–संस्थाके प्रबन्धकर्ताने कहा, पण्डितजी, हमारी संस्था निर्धन है हमारे विद्यार्थियोंपर दया करके आप ४०) मासिक स्वीकार कर लीजिए। पण्डितजीने उत्तर दिया, अमुक पाठशालावाले जब मुझे ६०) देनेको तैयार हैं, तब मैं तुम्हारे यहां ४०) पर क्यों जाऊं? साठ रुपयेसे ज्यादाका विचार हो तो मुझसे बात करो। याद रखिए कि इन पण्डितजीने समाजकी स्कालर्शिपसे ही सारी विद्या प्राप्त की है। समाजके श्रद्धास्पद पण्डितोंके विषयमें ऐसी छोटी छोटी बातोंका उल्लेख करना हम उचित नहीं समझते; परन्तु क्या किया जाय समाजको यह समझाए विना जी नहीं मानता कि हमारी वर्तमान धार्मिक शिक्षा भी ऐसी निकम्मी दी जा रही है जिससे केवल स्वार्थसाधु ही उत्पन्न होते हैं। हम पूछते हैं कि क्या हमारे धर्म ग्रन्थोंमें परोपकार या समाजकी निःस्वार्थसेवा करनेमें कोई पुण्य नहीं बतलाया है?

जिस अंगरेजी शिक्षाने भारतवासियोंके कानोंमें चिरविस्मृत जातीयता एकता देशसेवा जातिसेवाका अचिन्त्य शक्तिशाली महामन्त्र फूंका है और जिसके प्रसादसे देशमें हजारों परोपकारिणी और अज्ञाननाशिनी, संस्थायें उत्पन्न हुई हैं, उसको प्राप्त करके भी जब हमारे समाजके शिक्षित युवक समाजकी दशासे दुखी नहीं होते हैं और जिस धर्मशिक्षाने महात्मा अकलंक निकलंक जैसे परोपकारसर्वस्व पुरुषोंकी सृष्टि की थी, उसको पाकर भी जब हमारे पण्डित महाशयोंमें परार्थपरताका लेश नहीं दिखता है, तब इसके सिवा और

क्या कहा जा सकता है कि हमारे समाजका भाग्य ही अच्छा नहीं। सच कहा है–**भाग्यं फलति सर्वत्र न च विद्या न च पौरुषम्।**

समाजकी दृष्टिमें शिक्षितका अर्थ रुपये ढालनेकी मशीन नहीं है। यद्यपि वह इस बातका विरोधी नहीं कि शिक्षित पुरुष रुपये न कमावें अथवा धनवान न बनें; बल्कि वह तो इसे भी अपनी उन्नतिका एक बड़ा भारी कारण समझता है; परन्तु केवल रुपये कमानेवालोंको वह शिक्षित नहीं समझता। वह प्रत्येक शिक्षितमें परार्थपरताका भाव देखना चाहता है। जिस शिक्षितमें यह भाव नही, जिसे अपने और अपने कुटुम्बके पोषणके सिवा दूसरोंके कार्योंके लिए अवकाश नहीं, उसे वह अशिक्षितसे बढ़कर समझता है। उसका होना न होना बराबर है। एक विद्वानके कथनानुसार वास्तविक शिक्षा वह है जिससे मनुष्यकी शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक तीनों प्रकारकी शक्तियोंका विकाश होता है। श्रद्धा, दया, परार्थपरता, प्रेम, दृढनिश्चय, उत्साह, अध्यवसाय आदि मनुष्योचित गुण इन्हीं शक्तियोंके विकाससे उत्पन्न होते हैं। जिस शिक्षासे मनुष्यमें ये गुण नहीं होते, वह शिक्षा नहीं विटम्बना है। केवल पुस्तकोंके रट लेनेसे या परीक्षालयोंकी पदवियां प्राप्त कर लेनेसे कोई शिक्षित नहीं हो सकता।

जैनसमाज, तू अपने हृदयसे इस विश्वासको निकाल दे कि हमारे यहां बहुतसे शिक्षित हो गये हैं और फिर नये सिरेसे शिक्षित बनानेका यत्न कर। अभीतक तूने जो प्रयत्न किया है, वह प्रायः निष्फल ही गया है। पर अब उसकी चिन्ता करनेसे लाभ नहीं। अबकी बार तुझे इस बातका विचार करके उद्योगमें लगना चाहिए कि कैसी शिक्षासे मेरी सेवा करनेवाले उत्पन्न होंगे। तेरी वर्तमान

शिक्षाप्रणाली ठीक नहीं है। सबसे पहले उसीके सुधारनेका प्रयत्न करना हितकारी होगा।

समाजके शिक्षित नामधारी महाशयो, तुम्हारी शिक्षाको इस प्रकार लाञ्छित होते देखकर हमारे हृदयमें बड़ी गहरी चोट लगती है और यह चोट उस समय तो और भी अधिक असह्य हो जाती है जब हम यह विचार करते हैं कि तुम्हारी यथेष्ट संख्या होनपर भी अभागा जैन समाज दुखी है। क्या तुम्हें यह देखकर दया नहीं आती कि तुम्हारे इस पिताके शरीरको बाल्यविवाह, वृद्धविवाह, अपव्यय, जातिभेद आदि भयंकर कुरीतियां चारों ओरसे नोंच नोंच कर मृत्युशय्यापर ले जारही हैं, घोर अज्ञान अन्धकारके कारण उसे कुछ भी नहीं सूझता है, गतानुगतिकता और अन्धश्रद्धाने उसकी इधर उधर हलन चलन करनेकी शक्ति भी नष्ट कर दी है, विचार पारतन्त्र्यने उसकी जवान बन्द कर रक्खी है, और मिथ्यात्वके तीव्र वातरोगने उसके कानोंके परदे बन्द कर रक्खे हैं। हाय ! क्या ऐसे कष्टके समयमें भी उसकी सेवा करनेकी ओर तुम्हारी प्रवृत्ति नहीं होती है? यदि एकान्तमें बैठकर जैनसमाजकी अन्तर्दशाका निरीक्षण किया जाय तो हम तुम तो मनुष्य हैं पाषाणको भी दया आसकती है। भाइयो, यह मानव शरीर और विद्याकी प्राप्ति बारबार नहीं होती है। जीवन पानीके बुदबुदेके समान है। आज है कल नहीं रहेगा। इससे कुछ कर जाओ और संसारमें सदाके लिए अपना नाम छोड़ जाओ। तुम्हारे लिए कार्यक्षेत्रकी कमी नहीं। दृष्टि पसार कर देखोगे तो काम ही काम दिखलाई देंगे। बच्चोंको पढ़ाओ, पढ़े लिखोंको उपदेश दो, स्त्रीशिक्षाका प्रचार करो, विधवाओंकी शिक्षाका प्रबन्ध करो, अनाथोंके भोजन वस्त्रकी

व्यवस्था करो, उत्साही युवकोंको उच्च प्रकारकी शिक्षा प्राप्त करनेके लिए विदेशोंको भेजो, पाठशाला स्कूल कालेज आश्रम खोलनेका यत्न करो, समाचारपत्रोंका सम्पादन करो, उनमें समाजको ऊपर उठानेवाले लेख लिखो, धार्मिक ज्ञानकी वृद्धि करो, बाल्यविवाहादि कुरीतियोंको समाजसे हठानेका उद्योग करो, दूसरे देशोंके साहित्यका अध्ययन करके अपने साहित्यको पुष्ट करो, प्राचीन ग्रन्थोंका सम्पादन मुद्रण करके उनका प्रचार करो, पारस्परिक प्रेमको बढ़ाओ, इत्यादि जितने चाहो उतने काम तुम्हारे करनेके लिए मौजूद हैं। बन सके तो इन कार्योंके लिए अपने जीवनको सर्वथा उत्सर्ग कर दो; नहीं तो तुम्हारी जैसी स्थिति हो उसके अनुकूल अपने प्रतिदिनके घंटे दो घंटे ही इन कामोंके लिए दे दो। यह मत सोचो कि हमारे अकेलेके करनेसे क्या होगा? नहीं, एक एक बूंदसे ही तालाब भरता है। एक एकके करनेसे ही बहुत कुछ हो जायगा। स्मरण रक्खो विना इन कामोंके किये तुम्हारी शिक्षापर जो कलंक लगाया जाता है, वह नहीं धुलेगा और वास्तविक शिक्षितोंमें तुम्हारी गणना नहीं हो सकेगी।

समाज-सेवक

पुस्तकसमालोचन।

पुस्तकत्रय—काशीका बंगीय सार्वधर्म परिषत् काम कर रहा है। उसने अपने प्रकाशित किये हुए तीन बंगभाषाके ट्रेक्ट हमारे पास समालोचनार्थ भेजे हैं—१ सार्वधर्म, २ जैनधर्म, और ३ जैन-तत्त्वज्ञान एवं चारित्र। पहला ट्रेक्ट स्या० वा० पं० गोपालदासजी बरैयाके हिन्दी लेखका बंगला अनुवाद है। प्रारंभमें श्रीयुक्त बाबू

जुगमन्दरलालजी एम्. ए. बैरिस्टर एट लाकी लिखी हुई एक महत्त्वपूर्ण अंगरेजी भूमिका है। अच्छा होता यदि यह भूमिका बंगानुवाद करके प्रकाशित की जाती। दूसरा ट्रेक्ट लोक मान्य तिलकके व्याख्यानका और तीसरा एच. जैकोबीके अंगरेजी लेखका बंगानुवाद है। इन तीनों ही लेखोंको हमारे पाठक हिन्दीमें पढ़ चुके हैं, इसलिए इनके विषयमें विशेष कुछ लिखनेकी आवश्यकता नहीं दिखती। परिषत्का उद्योग प्रशंसनीय है।

जैनविवाहकी नियमावली—झांसी जिलेके नारहट, महरोनी, मड़ावरा, बमराना आदि स्थानाक जैनी भाइयोंकी सम्मतिसे यह नियमावली बनाई गई है और बमरानेके सेठ लक्ष्मीचन्दजीने इसे छपाकार प्रकाशित की है। इसमें विवाहसम्बन्धी फिजूलखर्चियों और दूसरी कई कुरीतियोंका नियमन करनेवाले इक्कीस नियम हैं। पहला नियम यह है कि लड़कीवाला लड़केवालेसे बिलकुल रुपया न ले। यदि उसकी शक्ति न हो, तो पंचलोग विना कुछ खर्च कराये उसका विवाह करवा दें। जो रुपया लेकर लड़की व्याहे, उसके यहां पंचोंको न जाना चाहिए। जो जावेंगे वे दण्डित होंगे। ग्यारहवां नियम है कि अतिशबाजी और वेश्यानृत्य बिलकुल बन्द किये जावें। इक्कीसवें नियममें जैनविवाहविधिके प्रचार करनेकी प्रेरणा की गई है। इसी प्रकारके और भी १८ नियम हैं जिनमें अधिकतर फिजूलखर्ची कम करनेके हैं। अठारहवां नियम चौक बन्द करनेके विषयमें हैं। बुन्देलखंडमें द्विरागमनको चौक कहते हैं। वहां परवारादि जातियोंमें विवाह होते ही बहूको घर ले आनेकी रीति नहीं है। विवाह होनेके कमसे कम छह महीने या वर्ष दो वर्षके बाद जब चौक होता है, तब बहू घर लाई जाती है। जब तक हम

बाल्यविवाहकी रीतिको नहीं उठा सकते हैं, तब तक हमें चाहिए कि इस चौककी पद्धतिको जारी रक्खें। इससे, अधिक नहीं तो वर्ष छह महीना तक तो अपरिपक्व बालक बालिकाओंके समागमका प्रतिबन्ध होता है। जो लोग इसे बन्द करना चाहते हैं वे मानो बालक बालिकाओंके विवाहके समयकी अवस्थामें और भी वर्ष छह महीनाकी कमी करना चाहते हैं। चाहिए तो यह कि यदि प्रौढविवाह जारी नहीं हो सकता है, तो चौक होनेके समयकी मर्यादा और भी बढ़ा दी जाय, अर्थात् ऐसा नियम कर दिया जाय कि दो या तीन वर्षके पहले कोई चौक न करे; परन्तु इसके विरुद्ध मूलमें ही घाटा देनेका प्रयत्न हो रहा है। इस नियमसे सिवा उनके जो कि अपनी क्षणिक वासनाके वशीभूत होकर बुढ़ापेमें विवाह करते हैं—समाजको कोई लाभ नहीं हो सकता। नियम बनानेवा-लोंको इस बातपर विचार करना चाहिए।

वैद्य–मुरादाबादसे इस नामका मासिकपत्र हाल ही निकला है। इसके सम्पादक बाबू शंकरलालजी जैन वैद्य और प्रकाशक पं० हरिशंकर वैद्य हैं। वार्षिक मूल्य केवल एक रुपया है। अक्टूबर और नवम्बरके दो अंक हमारे सामने हैं। इनमें शरीरकी उत्पत्ति, दिनचर्या, आहारसम्बन्धी नियम, आमवात, गिलोय, बालरक्षा, आनुभविक प्रयोग, तक्र, आदि अनेक विषय निकले हैं जो छोटे छोटे होनेपर भी कामके हैं। पत्र होनहार मालूम होता है।

संक्षिप्त विवरण—ललितपुरमें अभिनन्द दिगम्बर–जैनपाठशाला नामकी एक पाठशाला स्थापित हुई है। इसी पाठशालाके पहले वर्षका यह विवरण है। पाठशालाके साथमें एक छात्राश्रम भी है। उसमें इस समय २२ विद्यार्थी निवास करते हैं। पाठशालाने अपना

पठनक्रम स्वतन्त्र बनाया है। उसमें हिन्दी संस्कृत और अंगरेजी इन तीनों ही भाषाओंका ज्ञान बढ़ानेकी ओर लक्ष्य रक्खा गया है। इस वर्ष पाठशाला और छात्राश्रममें १२५) मासिकके लगभग खर्च हुआ है और आगामी वर्षके लिए २००) मासिकका बजट पास किया गया है। बुन्देलखण्डकी इस सुव्यवस्थित संस्थाकी हम हृदयसे उन्नति चाहते हैं।

जैनकाव्यप्रवेश—संयोजक और प्रकाशक मि० मोहनलाल दलीचन्द देसाई बी. ए. एल, एल, बी. प्रिन्सेस स्ट्रीट बम्बई। मूल्य छह आना। पुस्तक गुजराती भाषामें है। इसमें जुदा जुदा कवियोंके ८९ पदोंका संग्रह किया गया है और उनकी सरलतासे समझमें आने योग्य विस्तृत टीका की गई है। बड़ी भारी खूबी इसमें यह है कि पदोंका संग्रह उनके विषयकी सरलता कठिनताके अनुसार क्रमपूर्वक किया गया है और श्वेताम्बर कान्फरेंसके पठन क्रमके अनुसार पहली कक्षासे लेकर अन्तिम कक्षातकके विद्यार्थियोंके लिए उपयोगी बना दिया है। अर्थात् प्रारंभमें जो पद संग्रहीत हैं वे पहली कक्षाके विद्यार्थियोंकी समझमें आने योग्य हैं और उनके बाद दूसरी तीसरी आदि कक्षाओंके विद्यार्थियोंकी बुद्धिमें प्रवेश होने योग्य हैं। देसाई महाशयका यह प्रयत्न बिलकुल नये ढंगका है। उन्होंने ग्रन्थसम्पादनमें बहुत ही परिश्रम किया है। गुजराती जाननेवाले भाइयोंको उनके इस परिश्रमका आदर करना चाहिए। ग्रन्थके परिमाणसे मूल्य बहुत ही कम है।

विविध-विषय ।

दयानन्दकृत वेदभाष्यपर सम्मति-आर्यसमाजके संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वतीने वेदोंपर एक भाष्य लिखा है। आर्यसमाजका उसपर बड़ा विश्वास है। परन्तु जो लोग वैदिक संस्कृतके मर्मज्ञ और प्राचीन इतिहासके ज्ञाता हैं उनका कथन है कि स्वामीजीने वैदिक मंत्रोंको खींच खांचकर वही अर्थ किया है जो उनको अभीष्ट था। आर्यसमाजकी प्रतिष्ठा वे जिस ढांचेपर करना चाहते थे उसी ढांचेको उन्होंने वेदोंमेंसे निकालनेका प्रयत्न किया है। क्योंकि इस देशमें वेद ईश्वरीय ग्रन्थ समझे जाते हैं। विना उनकी दुहाई दिये यहां किसी भी धर्मकी दाल नहीं गलती। यद्यपि स्वामीजीका अभीष्ट ढांचा वैदिक साहित्यसे तैयार न हो सकता था, तो भी उन्होंने जैसे बना तैसे उसीसे तैयार किया। इंग्लैंडमें प्रोफेसर मेक्समूलर वैदिक साहित्यके बड़े नामी विद्वान् हुए हैं। उन्होंने वेदोंपर एक अंगरेजी टीका भी लिखी है। दयानन्दके भाष्यके विषयमें उनसे और देवसमाजके अधिष्ठाता अग्निहोत्रीजीसे कुछ पत्र-व्यवहार हुआ था। यह पत्रव्यवहार विज्ञानमूलक धर्म नामके अंगरेजी पत्रमें अभी हाल ही प्रकाशित हुआ है। प्रो० मोक्षमूलरने अपने उक्त पत्रोंमें लिखा है--"मैं सायनकी विद्वत्ताका अवश्य कायल हूं, परन्तु मैं उनकी सम्मति और निष्कर्षोंसे सहमत नहीं, दयानन्द सरस्वतीसे सहमत होना तो दूरकी बात है।........ मुझे यह जानकर बड़ा ही दुःख हुआ कि वे (दयानन्द) अपने धार्मिक जोशकी आड़में कोई चाल भी चलते थे। .... बड़े ही दुःखकी बात है कि उनके बनाये हुए ऋग्वेद और यजुर्वेदके भाष्योंपर इतना अधिक धन व्यय किया गया। ये दोनों भाष्य

उनकी बहकी हुई बुद्धिकी निपुणताके नमूने और सौगात हैं। मुझे इस बातपर आश्चर्य नहीं जो केशवचन्द्रसेन, दयानन्दसरस्वतीसे सहमत नहीं हो सके।" इससे पाठक समझ सकते हैं कि विद्वानोंकी दृष्टिमें दयानन्दकृत वेदभाष्यका मूल्य कितना है।

चीनमें स्त्रीशिक्षा—चीनमें स्त्रीशिक्षाका प्रचार बड़ी तेजीसे बढ़ रहा है। दश वर्ष पहले वहां एक भी कन्यापाठशाला नहीं थी; परन्तु इस समय वहांके छोटे छोटे कस्बों तकमें पाठशालायें और स्त्रीविद्यालय खुल गये हैं। सैंकड़ों स्त्रियां दूसरे देशोंमें विद्याध्ययन करनेको जा रही हैं। कई बड़े बड़े नगरोंमें स्त्रियों द्वारा सम्पादित स्त्रियोपयोगी पत्र भी निकलने लगे हैं। यदि यही हाल रहा तो चीन भी स्त्रीशिक्षामें पाश्चात्य देशोंकी कक्षामें जा पहुंचेगा।

प्राचीन भारतमें वर्णपरिवर्तन—सुप्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ डा० भाण्डारकरने कुछ नोट लिखे हैं उनसे मालूम होता है कि प्राचीन भारतमें वर्णपरिवर्तनकी प्रथा जारी थी। गुणकर्म और स्वभावके अनुसार वर्णव्यवस्था मानी जाती थी। लोग ब्राह्मणसे क्षत्रिय, क्षत्रियसे ब्राह्मण, क्षत्रियसे वैश्य, शूद्रसे ब्राह्मण आदि बन जाते थे। इसके उन्होंने बहुतसे ऐतिहासिक और पौराणिक उदाहरण दिये हैं। पाठकोंके जाननेके लिए हम थोड़ेसे यहां उद्धृत कर देते हैं:—

मालवाकी राजधानी उज्जयिनीपर जो यूनानी शासक नियुक्त था उसका नाम चष्टन था। परन्तु उसके पुत्र पौत्रादि सब ही हिन्दू बन गये थे और उनके नाम जयदमन रुद्रदमन आदि रक्खे गये थे। इस कुलके राजाओंने लगभग सातसौ वर्षतक राज्य किया। उनमेंसे एक राज़ाने पटह्वनके सुप्रासिद्ध क्षत्रिय राजा सतकरणके यहां

विवाह किया था अर्थात् पीछेसे उक्त यूनानी वंशकी क्षत्रियोंमें गणना होने लगी थी। शाक नामक देशान्तरके लोग भारतमें आकर शाकद्वीपी ब्राह्मण बन गये। यथार्थमें ये भारतवासी नहीं, विदेशी हैं। छट्ठी शताब्दीमें गुर्जर हूण मैत्रिक आदि अनेक विदेशी जातियोंनें भारतपर आक्रमण किया था। हूण सम्राटोंमेंसे तुरमान और मिहिरकुल दोके नाम शिलालेखोंमें मिलते हैं। मिहिरकुलने हिन्दू धर्मको स्वीकार कर लिया था। उसके पीछे ग्यारहवीं शताब्दीमें हूणकुलके राजा क्षत्रिय माने जाने लगे थे और चँदेरीके राजा यशकरणने हूण वंशकी राजकुमारी अहल्यादेवीसे विवाह किया था। इसी प्रकार छट्ठी शताब्दीमें गूजर या गुर्जर यहां आये। ये लोग पंजाबमें तो गूजर जमीन्दार ही रहे; परन्तु जोधपुरमें आकर क्षत्रिय बन गये। क्षत्रिय भी कैसे, ३६ प्रसिद्ध कुलोंमेंसे एक कुल उनका भी बन गया। सातवीं सदीमें जब चीनी यात्री यूआन चुआंग आया था, तब गुर्जर क्षत्रिय कहलाने लगे थे। खानदेशके गुर्जर ब्राह्मण कहलाने लगे। रत्नागिरिक ब्राह्मण भी इन्हीं गुर्जरोंकी सन्तान हैं। जैन कवि राजशेखरने अपने नाटकमें गुर्जरनरेश महेन्द्रपालको रघुकुलतिलक कहकर सम्बोधन किया है। गहलोट राजपूत पहले नागर ब्राह्मण थे, यह बात अनेक प्रमाणोंसे सिद्ध हो चुकी है। क्षत्रियोंके कदम्बवंशका चलानेवाला मयूरशर्मन् था; परन्तु उसके पुत्रका नाम कङ्गवर्मन् था। शर्मन् शब्द ब्राह्मणत्वका और वर्मन् क्षत्रियत्वका बोधक है। मयूरशर्मन् एक क्षत्रियासे विवाह करके क्षत्रिय कुलका संचालक बन गया। वेसनगरके २२००वर्ष पहलेके एक शिलालेखमें लिखा है कि महाराज भागभद्रके दरबारमें हेलोदोरा नामंका एक यूनानी एलची रहता था। उसने भगवान

वासुदेवके लिए गरुडध्वजा बनवाई थी। अर्थात् वह हिन्दू हो गया था और संभवतः उसकी सन्तान हिन्दुओंके प्रतिष्ठित कुलोंमें गिनी जाने लगी थी। ब्राह्मणोंके हरिवंशपुराणमें लिखा है कि नाभागरिष्ठ सेठके दो पुत्र गुण कर्म और स्वभावसे ब्राह्मण बन गये। महाभारतमें लिखा है कि, वसिष्ठमुनि गणिकाके, व्यास धीवरीके और पराशर चाण्डालके पुत्र थे; परन्तु ये तीनों तपस्या तथा गुणोंके कारण ब्राह्मण बन गये। मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृतिमें इस बातका भी विधान मिलता है कि पांचवीं अथवा सातवीं पीढ़ीमें जातिका उत्कर्ष हो जाता है।

मुक्तिफौजका कार्यविस्तार—पिछले अंकमें 'जनरल बूथ' शीर्षक लेखमें मुक्तिफौजका थोड़ासा परिचय दिया जा चुका है। जनरल बूथकी इस दीनदरिद्रोपकारिणी संस्थाका विस्तार बड़ी ही शीघ्रता और सफलताके साथ हुआ है। सन् १८८३ में इंग्लेण्डके पूर्वभागमें मुक्तिफौजकी १४२ शाखाएँ काम करती थीं जिनमें कुल मिलाकर १०६७ काम करनेवाले थे। उस समय उसकी दूसरे देशोंमें भी १२–१३ शाखाएँ थीं। सन् १८९० में जनरल बूथने एक बड़ी भारी पुस्तक लिखकर अपनी संस्थाका पूरा पूरा परिचय दिया और सर्वसाधारणसे उसकी सहायताके लिए अपील की। अपीलने गजबका काम किया। बहुत ही थोड़े वक्तमें लगभग दशलाख रुपये संस्थाको मिल गये। फिर क्या था संस्थाकी दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति होने लगी। इस समय उसकी ८९७२ शाखाएँ ५९ देशोंमें काम कर रही हैं। इन शाखाओंमें २९२०३ पुरुष और स्त्रियां काम करनेवाली हैं। विपत्ति और दुराचारमें फँसे हुए, भूखों मरनेवाले, और पापकर्मोंमें डूबे हुए लोगोंको सुधारनेके लिए मुक्ति

फौजने ९०० के लगभग स्वतंत्र शाखाएँ खोल रक्खी हैं। इन शाखाओंकी मार्फत गत १२ महीनोंमें ६३२७२४९ मनुष्योंको सोनेके लिए बिछौने बांटे गये थे और ११८३९४३७ भूखोंको अन्न दिया गया था। संस्थाकी पुस्तकें ३३ भाषाओंमें छपकर प्रकाशित होती हैं और इतनी ही भाषाओंमें संस्थाके संचालक व्याख्यान देते हैं। हिंदुस्थानमें मुक्तिफौजके २९००से अधिक कार्यकर्त्ता हैं। यहां उसने प्राथमिक शिक्षा देनेके लिए पाठशालाएँ भी खोल रक्खी हैं, जिनमें दशहजारके करीब लड़के शिक्षा पाते हैं। हस्तकलाकौशल्यकी शिक्षाका विस्तार करनेके लिए फौजने लोगोंको दो हजार नई तर्जके करघे बाँटे हैं। कपड़ा बुनना सिखलानेके लिए भी बहुतसे स्कूल खोले हैं। लगभग एक लाख कैदियोंको और इससे तिगुने चौगुने दूसरे असत्कर्म करनेवालोंको सुधारनेका भी फौज प्रयत्न कर रही है। कुष्टादि भयंकर रोगग्रसित मनुष्योंकी रक्षाके लिए बहुतसे औषधालय भी मुक्तिफौजके स्थापित किये हुए हैं। क्या कभी हमारे देशके लोगोंको भी ऐसी दयाप्राण संस्थाके खोलनेकी सूझेगी?

मैसूरमें बलात् शिक्षा—मैसूर सरकार बहुत जल्दी बलात् शिक्षाका कानून पास करनेवाली है। इस कानूनके अनुसार ७ वर्ष से ११ वर्षतककी उमरके प्रत्येक लड़केको पढ़ना आवश्यक होगा। जिन लड़कोंके मा बाप इस कानूनका उल्लंघन करेंगे, उनका पहली बार दो रुपया और आगे प्रत्येक बार दश रुपया जुर्माना किया जायगा। यदि कोई उक्त अवस्थाके लड़कोंको नौकर रक्खेगा तो उसका २०) जुर्माना किया जायगा। मुख्य मुख्य शहरोंकी लड़कियोंके लिए भी यह कानून लागू होगा। जगह जगह नये स्कूल खोले जावेंगे। इस काममें मैसूर सरकार बहुत

सा धन खर्च करनेवाली है। देशी राज्योंकी यह जागृति देखकर बड़ी प्रसन्नता होती है। प्रजाकी उन्नतिके लिए शिक्षाप्रचारके समान और कोई साधन नहीं।

लातूरकी गद्दीके लिए उम्मेदवार—निजाम स्टेटमें लातूर नामका एक स्थान है। वहां भट्टारककी एक गद्दी है। यह गद्दी लगभग २० वर्षसे खाली है। गादीकी मुख्य उपासक सेतवाल जाति है। दक्षिण और बरारमें सेतवालोंकी जनसंख्या बीस हजारके लगभग सुनी जाती है। इस जातिके कुछ अगुए लातूरकी गद्दीपर एक अच्छे विद्वानको बिठानेका प्रयत्न कर रहे हैं। इसके लिए उन्होंने बालकृष्ण राहाकर नामके एक विद्यार्थीको—जो इसी वर्ष मैट्रिकुलेशन परीक्षोंमें उत्तीर्ण हुआ है—चुना है। विद्यार्थीको वे इस समय शोलापुरमें व्याकरण न्याय और धर्मशास्त्रकी शिक्षा दे रहे हैं। इसके बाद उनका विचार है कि उसे जैनसिद्धान्तपाठशाला मोरेनामें दो वर्ष उच्च श्रेणीकी शिक्षा दिलाकर फिर गद्दीपर बिठावें। चाहे जैसे पठित अपठित पुरुषको गद्दीका स्वामी बना देनेकी अपेक्षा यद्यपि यह प्रयत्न बहुत ही अच्छा है—इस समय इस प्रकारके प्रयत्नकी भी बहुत कम आशा थी; परन्तु 'प्रगति और जिनविजय' के सम्पादक महाशय कहते हैं कि "जिसके जितेन्द्रियत्वके विषयमें अभीतक सन्देह है, उस नवीन युवकको भट्टारक बनाना उचित नहीं। संभव है कि वह विषयी होजाय और गद्दीके तथा समाजके अपमानका कारण बन जाय। केवल गद्दीके सम्मानके लिए अज्ञानी अथवा दुराचारी भट्टारकोंको नमस्कार करते करते तो अब हमारा जी ऊब उठा है। इसलिए जबतक कोई अपनी योग्यता और सदाचारताका समाजको अच्छी तरह परिचय न दे दे, तबतक उसे भट्टा-

रक बना देनेकी हम कदापि सम्मति नहीं दे सकते । प्रयत्न करनेसे भट्टारकीका उम्मेदवार विद्वान् बनाया जा सकता है; परन्तु उसे सदाचारी बनाना किसीके हाथकी बात नहीं है । इसलिए जवान लड़केको भट्टारकीकी छाप नहीं लगानी चाहिए ।" हमारी समझमें प्रगतिके सम्पादककी सम्मतिपर सेतवाल पंचोंको विचार करना चाहिए । क्योंकि धर्मके सिंहासनपर बैठनेका अधिकारी केवल विद्वान् नहीं हो सकता; उसे विद्वान और जितेन्द्रिय दोनों होना चाहिए ।

एक होनहार युवकका शरीरान्त—छिन्दबाड़ेके सेठ सुखलालजी पाटनीके पुत्र मांगीलालजी पाटनीका गत अक्टूबरकी दूसरी तारीखको देहान्त हो गया । मांगीलालजी बड़े ही होनहार युवक थे । धनवानोंके घरमें ऐसे बहुत कम लड़के जन्म लेते हैं । उनके विचार बहुत ही ऊंचे उदार और जातिधर्म तथा देशसेवासे परिप्लुत थे । हिन्दीसे उन्हें हार्दिक प्रेम था । उसे राष्ट्रभाषा बनानेका उन्हें निरन्तर ही ध्यान रहता था । मोक्षकी कुंजी, प्राचीन भारत (मेगास्थनीजकी भारतयात्रा), जैनधर्म और हिन्दूधर्म, जैनधर्मकी शान्तमूर्तियां, आदि कई उत्तमोत्तम पुस्तकें भी उन्होंने हिन्दीमें लिखी थीं; परन्तु वे अभी तक प्रकाशित नहीं हो पाई हैं । महाभारतसे लेकर पृथ्वीराज चौहानके समय तकका वे एक शृङ्खलाबद्ध इतिहास लिखना चाहते थे; परन्तु उनका यह विचार उनके साथ ही चला गया । यदि वे जीते तो उनके द्वारा हिन्दी साहित्यका बहुत उपकार होता । उनके जातीयताके विचार भी बहुत ही प्रशंसनीय थे । Jain law को Hindu Law से अलग करनेके लिए जैन समाजके नेताओंको प्रयत्न करते देख वे कहा करते थे— "हिन्दुओंमें कितने टुकड़े हो चुके हैं ? इस तेरह लाख संख्यक

धनिक समाजके अलग हो जानेसे दोनों समाजोंकी बड़ी भारी हानि होगी।" जैनधर्मसे आपको अतिशय अनुराग था। आपके कारण छिन्दवाड़ेका युवकमण्डल बहुत ही सुधर रहा था। आपका विवाह शीघ्र ही होनेवाला था। आपने पितासे स्वीकार करा लिया था कि पढ़ी लिखी कन्याके साथ विवाह होगा, विवाहमें वेश्या-नृत्य न होगा, धार्मिक गायनमण्डली और उपदेशक बुलाये जावेंगे इत्यादि। परन्तु अफसोस! यह कुछ न हुआ। जाति धर्म और देशका एक बहुमूल्य रत्न देखते देखते उठ गया।

जैनप्रदीप प्रकाशित हो गया—देवबन्द (सहारणपुर) से जो जैनप्रदीप नामका उर्दू मासिकपत्र निकलनेवाला था वह निकल गया। इसके सम्पादक जैनसमाजके सुपरिचित लाला ज्योतीप्रसादजी ए. जे. हैं। जो भाई उर्दू जानते हैं उन्हें चाहिए कि ग्राहक बनकर जैनप्रदीपके लेखोंसे लाभ उठावें।

बाल्यविवाह और विधवाओंकी संख्या—मनुष्यगणनाकी रिपोर्टसे मालूम हुआ कि, भारतवर्षमें छह वर्षसे कम उमरकी विवाहिता लड़कियोंकी संख्या २०३४२९ है और उनमें १७७०० विधवायें हैं। ६ से १९ वर्ष तक अवस्थाकी विवाहित लड़कियोंकी संख्या २०९००००० है और उनमें ९४०००० विधवायें हैं। न जाने भारतके सिरसे यह अनिष्ट कब टलेगा। बाल्यविवाहके प्रेमी अपनी भूल कब समझेंगे।

जैन सिविलियन—लाहौरके लाला रामचन्द्र एम. ए. इस वर्ष विलायतकी सिविल सर्विसकी परीक्षामें उत्तीर्ण हुए हैं। आप दिगम्बर जैन हैं। पहले कुछ दिनों लाहौरमें प्रोफेसरी कर चुके हैं। जैनियोंमें आप सबसे पहले सिविलियन हैं।

मुसलमान हाईस्कूल—बम्बईके प्रसिद्ध धनिक सर करीम भाई और उनकी लड़कीने पौने दो लाख रुपयाका विद्यादान किया है। इस दान द्रव्यसे पूना शहरमें 'सर करीमभाई हाईस्कूल' इसी महीनेमें खोला जायगा। मुसलमान भाइयोंका लक्ष्य अब विद्योन्नतिकी ओर खूब आकर्षित हो रहा है।

हिन्दू यूनीवार्सिटीमें जैनधर्म—हाल ही प्रकाशित हुआ है कि बनारस हिन्दू यूनीवर्सिटीमें जैनधर्म और सिक्ख धर्मके पढ़ानेकी व्यवस्था की जायगी और उक्त दोनों धर्मके प्रतिनिधि भी कार्यकारिणी सभामें रक्खे जावेंगे। जैनियोंके लिए बड़ी ही खुशखबर है।

महाराजकी कृपा—कोल्हापुर महाराजने 'प्रगति आणि जिनविजय' को जो कि दक्षिण महाराष्ट्र जैनसभाका मुखपत्र है अपना एक कीमती छापखाना दे देनेकी कृपा दिखलाई है। जैन संस्थाओंको महाराजसे बहुत सहायता मिला करती है।

पढे लिखे—भारतमें प्रति हजारमें १०६ पुरुष और ९९ स्त्रियां पढ़ी लिखी हैं।

शिक्षाके लिये सहायता—तलपुर (सिंध) के हिज हाईनेस सर इमामवख्शने स्वर्गीय सम्राट सातवें एडवर्डके स्मरणार्थ मुसलमानोंमें शिक्षा प्रचारके लिये ७१ हजार रुपया दान दिया है। इस रकमके ब्याजसे स्कालर्शिप दिये जांयगे।

थोड़ी पूंजीमें बड़ी कमाई—अमेरिकामें मि. लेविस नामक एक करोडपति अंग्रेज हैं। उन्होंने साढ़े चार रुपयेकी पूंजीसे तीन करोड़ रुपये उपार्जित किये हैं। वे समाचारपत्रका व्यवसाय करते हैं। यहांके समाचारपत्राध्यक्ष एक दो लाख रुपये भी तक उक्त व्यवसायसे नहीं इकट्ठा कर सके।

निवेदन।

आपको मालूम होगा कि अभी हालमें हमने एक मनुष्याहार नामक पुस्तक की २००० प्रतियां वमराना निवासी सेठ लक्ष्मीचन्द्र-जीकी आर्थिक सहायतासे प्रकाशित की थीं, जिसकी जैनमित्र, जैनहितैषी, वेंकटेश्वर आदि जैसे प्रसिद्ध समाचार पत्रोंने मुक्त कण्ठसे प्रशंसनीय समालोचना की है, परन्तु वे तमाम एक मासके अंदर अंदर वितरण होगईं और हरजगहसे उनकी मांग आ रही है। दयालु पुरुषो! ऐसी पुस्तककी २००० प्रतियोंसे ऐसे देशमें जिसमें २४-२९ करोड़ मनुष्य मांसभक्षी हैं क्या हो सकता है? जबतक लाखों करोड़ों बिना मूल्य प्रकाशित न होंगी, दयाधर्मका यथोचित प्रचार कदापि नहीं होसकता।

अत एव हमने इस बार इस पुस्तककी कमसे कम एक लाख प्रतियां छपानेका विचार किया है; परन्तु यह सब आपकी उदारतापर निर्भर है।

यदि प्रत्येक दयाप्रेमी कमसे कम ९) की भी पुस्तक प्रकाशनमें सहायता दें तो यह कार्य्य अति सरलतासे हो सकता है।

ऐसे महाशयोंके नाम धन्यवादसहित पुस्तकमें प्रकाशित कराये जाँयगे और पुस्तककी १०० प्रति अपने ग्राममें मांसभक्षी भाइयोंमें विना मूल्य वितरणकरनेके लिये उनकी भेट की जायंगीं। आशा है कि धर्मात्मा दयाप्रेमी बांधव ९) की रकम हमारे पास शीघ्र भेजकर इस दयाधर्म प्रचारमें भाग लेवेंगे और अगणित हाहाकार करते प्राणियोंकी रक्षाका असीम पुण्य संचय करेंगे।

दयाचन्द्र गोयलीय जैन, बी. ए.

ललितपुर

वर्षकी समाप्ति ।

ग्राहकोंसे निवेदन ।

इस अंकके साथ जैनहितैषीका आठवां वर्ष समाप्त हो गया। पाठकोंको यह जतलानेकी जरूरत नहीं कि जैनहितैषी जैनसाहित्य और जैनसमाजकी कैसी सेवा कर रहा है। हमारी इच्छा है कि इसके आकार प्रकारमें और इसके लेखोंमें और भी उन्नतिकी जाय और जैनियोंका यह एक सर्वाङ्गसुन्दर पत्र बना दिया जाय। इसके लिए हम अपनी शक्तिभर प्रयत्न कर रहे हैं; परन्तु हमारे इस मनोरथको सफल करना ग्राहकोंके हाथमें है। जब तक हमें सन्तोष योग्य ग्राहक न मिल जावेंगे तब तक हम चाहते हुए भी कुछ न कर सकेंगे। इसलिए पाठकोंसे प्रार्थना है कि वे इसके ग्राहक बढ़ानेका प्रयत्न करें। यदि हमें इस वर्ष अधिक नहीं, केवल दो हजार ही ग्राहक मिल जावें तो हम बहुत कुछ करके दिखला सकते हैं। और इतने ग्राहक हमें सहज ही मिल सकते हैं यदि हमारे प्रत्येक ग्राहक एक एक नये ग्राहकको जुटानेका प्रयत्न करनेकी कृपा कर दिखावें तो। इस वर्षके उपहार ग्रन्थ बहुत ही अच्छे चुने गये हैं। जैनसाहित्यमें वे बिलकुल अपूर्व और अनूठे ग्रन्थ होंगे। उन्हें प्रत्येक शिक्षित जैनीके हाथमें पहुंचानेका प्रयत्न करना जैनहितैषीके प्रत्येक हितैषीका कार्य है।

इस अंकके साथ एक एक छपा हुआ कार्ड रवाना किया जाता है। ग्राहकोंसे प्रार्थना है कि वे अपने एक एक मित्रसे इसे भरवाकर भेज दें। उनके थोड़े ही परिश्रमसे हितैषीकी ग्राहक संख्या यथेष्ट हो जायगी।

जो महाशय नये वर्षमें ग्राहक न रहना चाहें वे एक कार्डसे हमें अवश्य ही सूचित कर दें-जिसमें हम आगामी अंक उनके पास न भेजें। जिन महाशयोंकी इस प्रकारकी सूचना हमें न मिलेगी वे आगामी वर्षके ग्राहक समझे जावेंगे और उनकी सेवामें यथासमय वी. पी. भेज दिया जायगा।

मैनेजर, जैनहितैषी।

सूक्तमुक्तावली।

श्रीसोमप्रभाचार्यकी सूक्तमुक्तावली जिसका प्रत्येक श्लोक कण्ठ करने लायक है, और जो सचमुच ही मोतियोंकी माला है, फि छपकर तयार है। इस संस्करणमें पहले मूल श्लोक, फिर कविवर बनारसीदास और कँवरपालजीका पद्यानुवाद और अन्तमें अन्वयानुगत हिन्दी भाषाटीका (रत्नकरंडके समान) तथा भावार्थ छपाया गया है। मूल्य सिर्फ छह आना।

श्रीप्रभाचन्द्राचार्य विरचित

प्रमेयकमलमार्तण्ड

जैनदर्शनका यह बहुत ही विलक्षण और उच्च कोटिका संस्कृत न्यायग्रन्थ है। श्रीमाणिक्यनन्दि आचार्यका जो परीक्षामुख नामका प्रसिद्ध ग्रन्थ है उसकी यह बृहद्वृत्ति है। इसके कर्ता धारानरेश महाराज भोजदेवके समयमें हुए हैं। लगभग ८००-९०० वर्षका प्राचीन न्याय ग्रन्थ है। जैनधर्मके मान्य सिद्धान्तोंका इसमें बड़े ही पाण्डित्यके साथ निरूपण किया है। अन्यान्य धर्मोंका खंडन भी बड़ी प्रबल युक्तियोंसे किया गया है। यह श्रीहर्षके खंडनखाद्यकी शैलीका ग्रन्थ है। खुले पत्रोंमें बहुत ही सुन्दरताके साथ छपा है। मूल्य चार रुपया।

१. सेठ तुकाराम जावजी,

निर्णयसागर प्रेस, पो० कालबादेवी--बम्बई

२. श्रीजैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग, पो. गिरगांव--बम्बई।

जरूरत—हमारे दफ्तरमें दो क्लर्कोंकी जरूरत है। अंगरेजी और हिन्दी जाननेवाले चाहिए। योग्यताका परिचय और दरख्वास्त मैनेजर जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय बम्बईके पास भेजना चाहिए।